BIHAR YOGA®

धारणा दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

धारणा दर्शन

ॐ, प्रेम, मंगलम्

स्वामी निरंजन

धारणा दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गंगादर्शन में अक्टूबर 1992 से मार्च 1993 तक संचालित
संन्यास सत्र में दी गयीं धारणा एवं मानस दर्शन की
यौगिक, तांत्रिक एवं औपनिषदिक साधनायें



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

धारणा दर्शन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 2001
पुनर्मुद्रण 2022

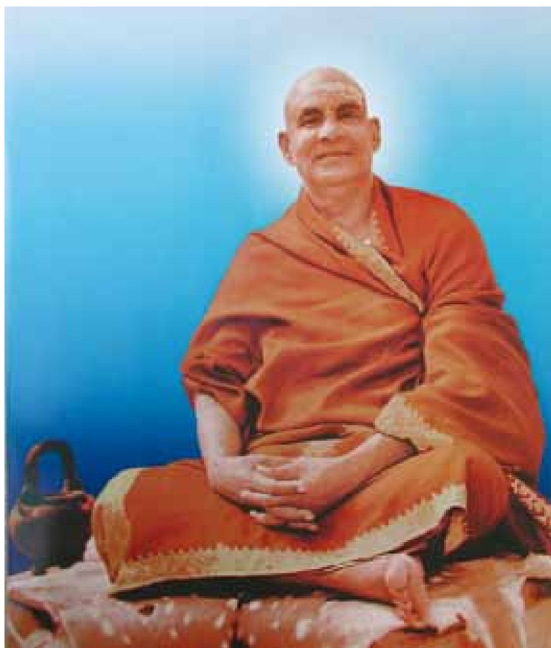
प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु,
पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार

मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड, नई दिल्ली

ISBN: 978-81-86336-21-2

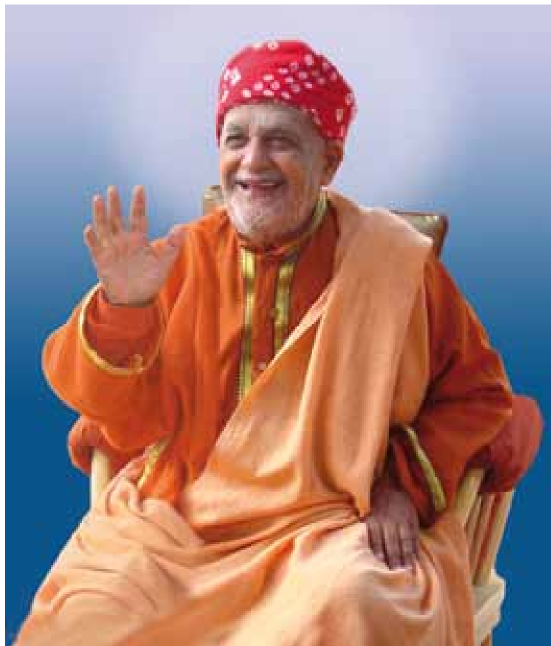
वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.satyamyogaprasad.net

इस पुस्तक का उद्देश्य योगाभ्यासों की प्रासंगिक जानकारी उपलब्ध कराना है; यह अभ्यास-पुस्तक नहीं है और इसका प्रयोग स्वयं या दूसरों को सिखाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। योग का प्रशिक्षण कुशल मार्गदर्शन में लिया जाना चाहिए, जिसने इन अभ्यासों में दक्षता प्राप्त कर ली हो। शिक्षक और शिक्षण विधि के चयन का दायित्व अभ्यासी का है। बिहार योग विद्यालय किसी प्रकार भी अभ्यासी के चयन के लिए उत्तरदायी नहीं है।



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय-सूची

धारणा का महत्त्व

धारणा का महत्त्व

धारणा मन की एकाग्रता है, एक बिन्दु, एक वस्तु या एक स्थान पर मन की सजगता को अविचल रखने की क्षमता है। धारणा की पूर्णता ही ध्यान तक पहुँचाती है। धारणा की अवस्था में मन बाह्य वस्तुओं या धारणा की वस्तु के आस-पास की परिधिगत वस्तुओं के प्रति सजग नहीं रहता है।

फिर धारणा का इतना महत्त्व क्यों है? इसका सही उत्तर, यदि मन की तुलना एक बिजली के बल्ब से की जाये, तो शीघ्र मिल जायेगा। बिजली के बल्ब का प्रकाश सभी दिशाओं में फैलता है, ऊर्जा बिखरती रहती है। आप उस बल्ब से पाँच फुट की दूरी पर खड़े हो जायें तो आपको प्रकाश तो दिखेगा, पर ताप का अनुभव नहीं होगा, यद्यपि उस बल्ब के मध्य स्थित फिलामेन्ट में पर्याप्त ताप विद्यमान रहेगा। इसी प्रकार मन में भी प्रच्छन्न रूप में अपरिमित शक्ति है, परन्तु यह सभी दिशाओं में बिखरी हुई है। मन एक के बाद एक विभिन्न वस्तुओं के विषय में, बिना किसी एक खास विषय की गहराई में गये ही, सोचता रहता है। अत: एक सामान्य मन अपनी शक्ति का उपयोग नहीं करता है।

इधर हाल में विज्ञान ने 'लेजर' की खोज की है, और आधुनिक प्रौद्योगिकी ने उसका उपयोग कर पर्याप्त प्रगति की है। यह एक विधि है, जिसमें एक ही स्रोत से उत्पन्न प्रकाश किरणों को एक-दूसरे की सीध में कर दिया जाता है, जिससे वे सभी एक ही दिशा में गतिमान होती हैं। वे एक-दूसरे के साथ समस्वर होकर स्पन्दित होती हैं। प्रकाश का स्रोत उस बल्ब से बड़ा नहीं भी हो सकता है, जिसकी चर्चा हमने ऊपर में की है। फिर भी यदि आप को उससे पाँच फुट की दूरी पर खड़ा होना पड़े तो 'लेजर किरण' आपके शरीर को जलाती हुई, शरीर के आर-पार एक छिद्र बना देगी। यही अन्तर है सामान्य प्रकाश और संकेन्द्रित प्रकाश में।

इसी प्रकार संकेन्द्रित विचार में भी अपार शक्ति है। इसमें तेजस्वी ज्ञान की शक्ति है, दृश्य प्रपंच की पृष्ठभूमि में अन्तर्निहित सत्य को अधिक स्पष्टता से देखने की शक्ति है। इसमें महान् उपलब्धियाँ प्राप्त करने तथा कल्पनातीत परिमाण में कार्य करने की क्षमता है। एक संकेन्द्रित मन एक विश्रान्त मन भी होता है। जब आप किसी चीज में गहराई से संलग्न हो जाते हैं, तो आप स्वत: विश्रान्त अवस्था में आ जाते हैं। जीवन में आप जो भी करते हैं उसके लिए धारणा अत्यावश्यक है, क्योंकि यह मन को सभी दिशाओं में निरुद्देश्य भटकने से रोकती है। बिना एकाग्रता के आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। इस कथन के सत्य को जानने के लिए आपको केवल अपने चारों ओर देखना भर है।

एकाग्रता के साथ किया गया कार्य आनन्दायक हो जाता है। एकाग्र मन वाला व्यक्ति कोई भी कार्य अधिक दक्षतापूर्वक कर सकता है। जो व्यक्ति एकाग्र नहीं हो सकता तथा जो हाथ में लिये काम को करते समय अन्य चीजों के विषय में सोचता है, वह भूल अवश्य करेगा तथा काम को यदि पूरा भी कर ले, तो अनावश्यक रूप से आवश्यकता से अधिक समय लगायेगा। काम करते समय वह सदा यही सोचता रहेगा कि समय कितना धीरे-धीरे बीत रहा है, वह अपने विषय में, अपनी समस्याओं और अपने परिवार के विषय में चिन्ता करता रहेगा। अपर्याप्त एकाग्रता के कारण संलग्नता अपर्याप्त होगी, अत: कार्य भी ठीक से न होगा। इसलिए दैनिक जीवन के साथ ही साथ आध्यात्मिक साधना के लिए धारणा अनिवार्य है।

मन की गुणवत्ता

संकेन्द्रित मन शक्तिशाली होता है और विक्षिप्त मन दुर्बल होता है। मानसिक शक्ति के विकास के लिए आपको एकाग्र मन का विकास करना होगा। विक्षिप्त मन में मानसिक शक्ति नहीं हो सकती है। यदि विचार बिखरे हों, तो धारणा के विशेष अभ्यासों द्वारा उन्हें संकेन्द्रित किया जा सकता है। तब आपका मन इतना शक्तिशाली हो जायेगा कि आप दूसरों के मन को भी प्रभावित कर सकते हैं। आप अपने आचरण, अपने व्यक्तित्व और अपने संपूर्ण जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। यदि आपको उदर विकार है, मानसिक व्याधि है, श्वास का रोग है या अन्य कोई गड़बड़ी है, तो आप केवल अपनी संकल्प-शक्ति से उन्हें ठीक कर सकते हैं। आप इस संकल्प शक्ति का विकास कैसे कर सकते हैं? इसका रहस्य है कि मन को एक बिन्दु पर एकाग्र करें, संकेन्द्रित करें।

सबल मन का क्या अर्थ है? सबल मन वह है, जो अपने निर्णय का पालन कर सकता है। इसके विपरीत निर्बल मन एक निर्णय लेता है, पर करता कुछ और है। कल से मैं यह या वह कार्य करूँगा, पर जब कल आता है, तो आप सब कुछ भूल जाते हैं। आप वहीं के वहीं रह जाते हैं, क्योंकि आपका मन विक्षिप्त है। इतिहास में आपने जितने महापुरुषों के विषय में पढ़ा है, चाहे वे कलाकार हों, लेखक हों, संगीतज्ञ हों, राजनीतिज्ञ हों, राजपुरुष हों, सेनापति हों, वैज्ञानिक हों या संत-महात्मा हों, उन्होंने अपने मन के स्वरूप के कारण महानता पाई है। प्रकृति के किसी चमत्कार या भाग्य के स्पर्श से वे महान नहीं हुए हैं। वे अपने मन की गुणवत्ता के स्वरूप के कारण महान् हुए हैं। उन सभी का मन एकाग्र और अन्ततः प्रतिभा सम्पन्न था।

यदि आप अपने जीवन में कुछ करना या बनना चाहते हों, तो अपने मन के स्वरूप को उन्नत करना होगा। यदि आपका मन दुर्बल है, तो प्रत्येक क्षेत्र में आपका प्रदर्शन निम्न कोटि का होगा। यदि मन का स्वरूप अति उन्नत है, तो आपका प्रदर्शन भी तदनुरूप उन्नत होगा। मन का उन्नत स्वरूप विकसित करने हेतु आपको अपना, अपने उद्देश्यों का विश्लेषण करना होगा तथा प्रत्येक सुबह और शाम को कुछ समय धारणा के अभ्यास में लगाना होगा।

धारणा के विषय

धारणा का अभ्यास अनेक प्रकार से किया जा सकता है। धारणा का विषय सम्पूर्ण शरीर के अनेक केन्द्रों में से किसी एक केन्द्र, यथा– चिदाकाश, हृदयाकाश, दहराकाश, किसी एक चक्र में या शरीर के सामने के भाग में देखा या खोजा जा सकता है। धारणा तो शरीर के किसी अंग, शारीरिक प्रक्रियाओं, शारीरिक स्थैर्य, विश्रान्ति या तनाव पर की जा सकती है। श्वास को भी धारणा का विषय बनाया जा सकता है।

प्रायः किसी भी वस्तु को धारणा का आधार या विषय बनाया जा सकता है। परन्तु जब एक बार किसी वस्तु या विषय का चुनाव कर लिया, तो फिर अपनी दैनिक साधना में केवल उसी वस्तु का उपयोग किया जाना चाहिए। आपके अवधान में, मन में वह वस्तु या विषय सहज रूप से आना चाहिए। कुछ व्यक्तियों को उनका विषय स्वप्न में या एक झलक के रूप दिखाई पड़ जाता है। स्वाभाविक चयन का यह सर्वोत्तम रूप है। अन्य लोगों को अपने लिए उपयुक्त विषय वस्तु का चयन स्वयं करना होगा। ऐसे व्यक्तियों की

सुविधा की दृष्टि से एक अति विस्तृत सूची तैयार की गई है। इस सूची से आपको अनुमान हो जायेगा कि यह विषय कितना व्यापक है और चयन के लिए कितने अधिक विकल्प हैं। वैसे इन वस्तुओं की संख्या असीम है, पर सुविधा हेतु निम्नांकित सूची दी जा रही है। एक बार सरसरी दृष्टि से देखते जायें, जिससे कि अनुमान हो जाये। सम्भव है कोई एक वस्तु आपको आकृष्ट कर ले या कोई भी वस्तु न जँचे। यद्यपि इस सूची में आपको कुछ भी न जँचे, परन्तु आपके मन में या कल्पना में कोई अनुकूल वस्तु अचानक प्रकट हो जायेगी, इस प्रकार बाद में स्वाभाविक रूप से एक प्रतीक मिल ही जायेगा। जब कभी आप पूर्णरूपेण विश्रान्त रहेंगे, संभवत: यह उसी समय घटित होगा।

देवता, संत, अन्य व्यक्ति– विष्णु, ब्रह्मा, शिव, त्रिमूर्ति, सीता, राम, राधा, कृष्ण, सरस्वती, पार्वती, गणेश, हनुमान, लक्ष्मी, दुर्गा, काली, वरुण, वायु, इन्द्र, सूर्य, सोम, क्राइस्ट, मेरी, बुद्ध, लाओत्सु, मिलारेपा, नरोपा, संत फ्राँसिस, स्वामी शिवानन्द, साईं बाबा, आपके गुरु, अन्य कोई देवता या सन्त, आपके पिता, माता, पति-पत्नी, पुत्र, पुत्री, सम्बन्धी, मित्र, शिक्षक या प्रेरणादाता।

पवित्र वस्तुएँ– शिवलिंग, त्रिशूल, शालिग्राम ज्योति, क्रॉस, वेदी, मन्दिर, गवाक्ष, यूकारिस्त, अर्ध्य-पात्र, प्रार्थना-चक्र, झाड़-फानूस, स्फटिक का गोला, पुरोहित, किसी संत की मूर्ति, तांत्रिक-चित्र, देवदूत, खोपड़ी की माला, शंख, कुण्डलिनी, वेनस-डी-मिलो, डेविड और मैडिसी, पर्सीयस और मेडुसा।

पवित्र स्थल– मंदिर, चर्च, प्रार्थना कक्ष, कैथेड्रल, कोर्टेन, पिरामिड, मस्जिद, मठ, आश्रम, पगोडा, समाधि।

प्राकृतिक दृश्य– पर्वत, पहाड़ी, घाटी, मरुस्थल, मरुद्यान, भृगु-प्रपात, बालू के टीले, श्वेत सागर तट, जंगल, उपवन, धान के खेत, पुष्प-वाटिका, फलोद्यान, मेघाच्छन्न आकाश, वर्षा, कुहासा, आँधी, हिमपात, बवँडर, भूकम्प, सागर, लहरें, जापानी उद्यान, कमल-ताल, धूप, नौका, कुआँ, झील, तेज झरना, फव्वारा, जलाशय, बर्फ, हिम।

चेतन वस्तुएँ– हाथी, मृग, शेर, बाघ, बन्दर, गाय, चीतल, गरूड़, गौरैया, हंस, फ्लैमिंगो, रॉबिन, ब्लू जे, कौआ, मुर्गी, तितली, मोर, स्टारफिश, अष्टपाद, मगर, नाग, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, गधा, श्वेत कमल, रक्तकमल, सूर्यमुखी, डैफोडिल, ब्लू-बेल, ऑर्किड, चेरी ब्लासम, मैदान, नारियल के वृक्ष, काई।

अचेतन वस्तुएँ– पृथ्वी, आग, जल, हवा, आकाश, तमस, रजस, सत्त्व, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कर्क, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, माणिक्य, ओनिक्स, नीलम, हीरा, सूर्यकान्त, पुष्पराज, स्फटिक, जामिना, दूधिया, हरिताश्म, तामड़ा, मोती, गोमेद, वैदुर्य, लाजवर्त, जस्ता, लोहा, सोना, चाँदी, पीतल, टिन, ताम्बा, चन्द्रमा, मंगल, शुक्र, वृहस्पति, बुध, प्लूटो, यूरेनस, सूर्य।

रंग और आकृतियाँ– लाल, नीला, हरा, पीला, आसमानी, नारंगी, गुलाबी, काला, उजला, बैंगनी, चाँद की चाँदनी, सूर्य का प्रकाश, अग्नि, ज्योति, दीप शिखा, बिजली की कौंध, तारा, षटकोण, चतुर्भुज, हृदय, बिल्व-पत्र, हिरण्य गर्भ, वर्ग, त्रिभुज, बालचन्द्र, संस्कृत के बीज मंत्र, चक्रों के चित्र, यन्त्र, मण्डल, नाड़ी, प्राण।

मानसिक संघर्ष से बचें

आप किसी महान् संत, ज्योति, ध्वनि, रंग, आकृति, विचार, या अन्य किसी चीज पर धारणा का अभ्यास कर सकते हैं। पर एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि धारणा की साधना में यह आवश्यक नहीं है कि आप धार्मिक प्रतीक का ही चुनाव करें। कभी-कभी तो जो विचार आपकी चेतना पर अधिकाधिक प्रभाव डालते हैं, उनका ही उपयोग किया जा सकता है। मन के साथ संघर्ष करने का कोई लाभ नहीं है। धारणा की साधना में आप किसी धार्मिक प्रतीक की बात सोचते हैं, पर आपका मन उसे नहीं मानता, क्योंकि आपका मन उस प्रकार अनुकूलित है नहीं। जब आप किसी ऐसी वस्तु पर धारणा करना चाहते हैं, जो आपके मन के अनुकूल नहीं है तब आपका मन वहाँ से हट जाता है। किन्तु जब आप किसी अत्यन्त सामान्य चीज पर विचार करते हैं, तब यह विकर्षण नहीं होता है।

जब आप गलत प्रतीक पर धारणा करते हैं, तब चित्त-विक्षेप होता है और मानसिक संघर्ष शुरू हो जाता है। यह समझना अत्यावश्यक है कि जब आप धारणा का अभ्यास कर रहे हों, तब आपके मन में अल्पतम संघर्ष होना चाहिए। अपने मन से संघर्ष करने से कोई लाभ नहीं है। कौन किससे संघर्ष करता है? दो मन तो हैं नहीं। चेतना तो एक ही है, पर विविधता के लिए ये सब मन की अनेक वृत्तियाँ, प्रतिरूप या रूपान्तरण हैं। जब आप खुद से संघर्ष करते हैं, उस समय आप अपनी ही वृत्तियों के बीच कलह उत्पन्न कर रहे होते

हैं। जब आपकी अपनी ही वृत्तियों के बीच संघर्ष तीव्र हो जाता है, तब आपको खण्डित मनस्कता (सिजोफ्रेनिया) का दौरा पड़ता है। अधिकतर मनोरोगी अपने ही मन के शिकार हैं।

अत: यदि आप बतायी गयी किसी विधि से धारणा नहीं कर पाते, तब आप अपनी विधि का चयन स्वयं करें। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप जो भी प्रतीक चुनें वह इतना बाध्यकारी हो कि आपका मन अपने आप उसके प्रति आकृष्ट हो जाये और उसके साथ पूर्णतया तादात्म्य हो जाये। जब इस प्रकार आप अभ्यास करेंगे, तब आप आसानी से धारणा में प्रवेश करने लगेंगे। जब आप ध्यान का अभ्यास करें तो आप चित्त-विक्षेप को भी धारणा का विषय बना सकते हैं। ऐसा ही एक अनुभवी योगी ने किया था, जिसकी कथा निम्नवत है–

एक राजा था जो अपनी धन-सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक आसक्त था, फिर भी वह ध्यान का अभ्यास करना चाहता था, क्योंकि वह अपने अपार वैभव की निस्सारता को समझने लगा था। एक योगी ने उस राजा को कुछ निर्देश दिये। राजा पूरी श्रद्धा से ध्यान करने बैठा, परन्तु जब भी वह परमात्मा पर मन को एकाग्र करना चाहता तो वह विफल हो जाता था। तब बिना जाने ही उसका मन एक सुन्दर स्वर्ण कंगन के चारों ओर मंडराने लगता, जो उसे विशेष रूप से अत्यधिक प्रिय था। उसकी मुग्ध दृष्टि के सामने वह कंगन अपने मोहक इन्द्रधनुषी रंगों सहित चमक उठता। जैसे ही उसे उस कल्पना का भान होता वह संघर्ष कर पुन: परमात्मा की ओर लौटता। पर वह जितना ही अधिक परमात्मा पर मन एकाग्र करने का प्रयास करता उसे उतनी ही अधिक निराशा का अनुभव होता। परमात्मा प्रत्येक बार उसके मन में उस सुन्दर इन्द्रधनुषी कंगन में बदल जाते।

वह पूर्ण नम्रता के साथ योगी के पास अगले निर्देशों के लिए गया। योगी अनुभवी था, उसे पता था कि किस प्रकार कमजोरी को ही शक्ति के स्रोत में परिवर्तित किया जा सकता है। उसने राजा से कहा, "जब तुम्हारा मन उस कंगन में इतना आसक्त है, तब तुम वहीं से ही अपना अभ्यास प्रारम्भ करो। उसकी सुन्दरता और उसकी छटा पर ही धारणा करो।" वस्तुत: वह कंगन ही धातु में घनीभूत ऊर्जा स्पन्दन का एक रूपान्तरण था। ग्रहणशील मन ही उसमें सुन्दरता एवं रंग भर रहा था। अत: मन के स्वभाव को समझो जिसने इस संसार को रचा है, जिसे तुम देखते हो।

धारणा की क्षमता

कठोपनिषद् के मंत्र (2:3:11) में धारणा की चर्चा है, जहाँ मृत्यु के देवता, यम युवा साधक नचिकेता को उपदेश दे रहे हैं।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययो ।।

मन और इन्द्रियों का दृढ़ नियंत्रण ही धारणा योग है। व्यक्ति को सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि इस योग को प्राप्त करना तो कठिन है, पर इसे खो देना सरल है।

धारणा का शाब्दिक अर्थ है एकाग्रता। जिस प्रकार हमें लिखने के लिए एक नुकीली पेन्सिल की आवश्यकता होती है, काटने के लिए एक तेज छुरी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार एकाग्रता के अभ्यास द्वारा मन को भी तेज बनाना चाहिए। एक कुन्द छुरी से हम काट नहीं सकते, एक घिसी पेन्सिल से लिख नहीं सकते, क्योंकि उस पर जो दबाव हम डालते हैं, वह अधिक बड़े क्षेत्र में फैल जाता है। वह संकेन्द्रित नहीं रहता। दैनिक जीवन में एकाग्र मन का महत्त्व सर्वमान्य है, परन्तु सामान्य मन केन्द्रित होकर काम नहीं करता है। वह विक्षिप्त रहता है, वह विशाल क्षेत्र और असंख्य बिन्दुओं पर बिखरा रहता है। इसलिए हम उसकी अन्तर्निहित शक्ति का एक अंश भी उपयोग नहीं कर पाते हैं।

जीवन में हम बहुत-सी चीजों के विषय में जानते हैं– अपने काम के विषय में, अपने परिवार के विषय में, अपने समाज, पर्यावरण, इतिहास, विज्ञान और राजनीति के विषय में, पर हम अपने मन को ही इच्छापूर्वक नियंत्रित और निर्देशित करना नहीं जानते हैं। हम जैसे अधिकतर लोगों में प्राथमिक शिक्षा के रूप में धारणा शक्ति को विकसित ही नहीं किया गया है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, मन अधिक बिखरता जाता है, क्योंकि तनाव और परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं। इसका फल होता है मन की तीक्ष्णता में ह्रास, गलत निर्णय, निष्प्रभावी व्यवस्था, क्षीण स्मृति, और अन्तत: जराजीर्णता।

हम प्रौद्योगिकी और बाह्य जगत् के विशेषज्ञ हो सकते हैं, पर हम अपने मन के ही मालिक नहीं हैं। किसी तरह मन के कार्यों पर नियंत्रण देने वाली यह आन्तरिक प्रौद्योगिकी ही हमें पूर्णतया छल गयी है। यंत्र पर नियंत्रण का अर्थ होता है, जब हम चाहें उसे चलायें, तेज करें, धीमा करें या बन्द कर दें। एक अनुशासित मन से भी यही अपेक्षा होती है। अनुशासित मन तभी सोचेगा, जब आप चाहेंगे, तथा उसी विषय पर सोचेगा जिस पर आप सोचने का निर्णय लेंगे।

जब तेजी से, या धीमे से सोचना चाहें या बिल्कुल सोचना न चाहें, तो वह उस आदेश का तत्काल पालन करे। एक अनुशासित मन में जैसे ही कोई विचार आये, शीघ्रता से उसे जान लिया जाये और निर्देशित कर दिया जाये। उसमें अपनी शक्ति नहीं रहे कि वह मन को इस ओर या उस ओर बहा ले जाये।

यदि हम योगियों, साधुओं, संन्यासियों, संतों और महात्माओं के जीवन का अध्ययन करें, तो हम पायेंगे कि एक चीज सब में समान है। वे अत्यधिक एकाग्र और संकेन्द्रित जीवनयापन करते हैं, जो उस आदर्श या प्रयोजन के प्रति समर्पित होता है, जिसे वे सर्वोच्च ध्येय या लक्ष्य मानते हैं। नियमित और सतत् साधना द्वारा वे अपने ऊपर एवं अपने मन पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। अपनी धारणा शक्ति के माध्यम से वे अपने मन को ध्यान अथवा प्रार्थना में क्रमश: लीन कर देते हैं, जब तक वे मन पर पूर्ण नियंत्रण की अवस्था नहीं प्राप्त कर लेते। सामान्यत: ऐसे महापुरुषों के दर्शन से हमें सर्वप्रथम परम शान्ति, स्थैर्य और आत्मसंयम का आभास मिलता है।

मनुष्य के समस्त उदात्त गुणों का मूल धारणा की क्षमता ही है। इसके विकास के लिए कठिन प्रयास की आवश्यकता है तथा इसके लिए समस्त अवधान भी अनिवार्य है। एक डिग्री प्राप्त करने की अपेक्षा एकाग्र मन का विकास अधिक कठिन है। एक सामान्य मनुष्य इस धारणा की क्षमता के साथ जन्म नहीं लेता, अत: यह आवश्यक है कि जो पूर्व से नहीं है उसका सृजन करने के लिए अपने स्वभाव को बदलें। प्रवचनों या ग्रन्थों से दर्शन शास्त्र की अवधारणाओं का ज्ञान प्राप्त करने से भी यह कठिन है। इसका पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए धारणा की व्यक्तिगत रूप से साधना और अनुसंधान करना अत्यावश्यक है।

धारणा शक्ति के विकास के लिए नियमित साधना आवश्यक है, न कि मात्र उसकी चर्चा। तथापि धारणा का अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम इस बात का आकलन कर लें कि मानसिक विकास की इस अवस्था का प्रभाव क्षेत्र कितना है। धारणा और ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं और अभ्यासों का योग और उपनिषद् ग्रन्थों में वर्गीकरण किया गया है। इस विषय का सर्वाधिक व्यावहारिक परिणाम प्राप्त करने हेतु इस विषय का अध्ययन और इस पर शोध होना चाहिए। धारणा एक हलकी साधना नहीं है। इसमें मन और चेतना की अतल गहराइयों में प्रवेश करना पड़ता है। इसमें सफलता के लिए तीन बातें आवश्यक हैं– 1. सही विधि, 2. सही मार्गदर्शन, और 3. सही समझदारी।

धारणा और विश्रान्ति

मानसिक तनाव से निपटने के लिए धारणा एक महत्त्वपूर्ण साधन है। हम में से अधिकतर व्यक्ति जीवन में ठीक से कभी विश्रान्त नहीं हो पाते। निद्रा में हम विश्रान्त नहीं हो पाते। मद्यपान से भी विश्रान्ति नहीं मिलती। सुखद अनुभव भी हमें विश्रान्ति नहीं प्रदान करते। यह मन का स्वभाव है– सदा बिखरा और विक्षिप्त रहना, बिना सजग ज्ञान के सैकड़ों दिशाओं में दौड़ते फिरना। हम सोच सकते हैं कि इस क्षण हम धारणा कर रहे हैं, पर ऐसा होता नहीं है। कुछ अतिसूक्ष्म अनुभूतियाँ होती हैं, जो चेतन, अवचेतन और अचेतन मन के स्तरों पर लगातार प्रहार करती रहती हैं, जिनमें से अनेक को हम समझ भी नहीं पाते। हमें यह भी पता नहीं चलता कि ये भूमिगत गतिविधियाँ हो रही हैं।

जब हम एक वस्तु के प्रति सजग रहते हैं, तो मस्तिष्क अन्य इन्द्रियों के माध्यम से निरंतर संदेश प्राप्त करता रहता है और उन पर कार्रवाई एवं उनको परिष्कृत भी करता रहता है। तो फिर धारणा कहाँ हो पाती है? जब हमारे व्यक्तित्व में एक ही साथ इतनी चीजें होती रहती हैं तब वहाँ धारणा या विश्रान्ति कैसे होगी? संभव ही नहीं है। इसलिए योग ने मानसिक अनुशासन की प्रक्रिया के द्वारा पूर्ण मानसिक विश्रान्ति की विधि विकसित की है। पतंजलि के योग सूत्र में इसका वर्णन प्रथम सूत्र *'अथ योगानुशासनम्'* में किया गया है। इसका अर्थ होता है– योग सूक्ष्म मानसिक शक्तियों, अनुभूतियों, और मन की अभिव्यक्तियों पर नियंत्रण का एक रूप है।

यहाँ अनु का अर्थ है– 'व्यक्तित्व का अति सूक्ष्म पक्ष' और शासन का अर्थ है 'नियंत्रण करना'। इसलिए *'अथ योगानुशासनम्'* समस्त यौगिक प्रक्रिया की व्याख्या प्रस्तुत करता है, जो सजगता के क्षेत्र के परे की सूक्ष्म अनुभूतियों के नियंत्रण का सिद्धान्त है। हम अभी भी सोच रहे हो सकते हैं, पर हम उन

विचारों के प्रति सजग नहीं हैं। इस क्षण भी हमारे मन की गहराइयों में अनेक भावनायें, कामनायें उठ रही हैं, परन्तु हमें उनका आभास नहीं होता। मन की इस अवस्था को हम कैसे विश्रान्त करें? सूत्र तो बड़ा सरल है, अपने मन को एक बिन्दु पर संकेन्द्रित करें। इस एकाग्रता में प्रगाढ़ता होनी चाहिए। धारणा के विषय के साथ चेतना का विलय हो जाना चाहिए। जब सजगता विषय में विलीन हो जाती है, तब मन की अधिकांश सूक्ष्म शक्तियाँ एक केन्द्र पर एकाग्र हो जाती हैं। इसीलिए अत्यधिक विश्रान्ति प्राप्त होती है, क्योंकि समस्त सूक्ष्म शक्तियाँ एक ही दिशा में काम कर रही होती हैं।

मन का प्रशिक्षण

किसी क्षण-विशेष में हम चेतन, अवचेतन, और अचेतन रूप से हजारों काम कर रहे होते हैं। संवेदी क्षमता जो एक स्थिति में अधिक प्रबल रहती है, वही उस अनुभव के प्रति हमें सजग बनाती है। उदाहरणस्वरूप, कमरे में अधिक गर्मी है, और आप पसीने से सराबोर हो रहे हैं, तो आप जो काम उस समय कर रहे हैं, उसमें एकाग्र होने का आप कितना भी अधिक प्रयास करें, आपका समस्त अवधान उस समय गर्मी के अनुभव की ओर चला जायेगा। किसी अन्य चीज पर अधिक ध्यान या सजगता नहीं रह जायेगी।

दूसरा उदाहरण लें। अचानक आपको स्मरण आता है कि आप अपने घर में ताला लगाना भूल गये हैं। अब चाहे आप जितना भी प्रयास अपने काम में मन लगाने का करें, आपकी सजगता, आपकी चेतना का अस्सी प्रतिशत अंश आपके घर के दरवाजे पर ही रहेगा। इसलिए किसी विशेष समय में जो सूक्ष्म मानसिक शक्ति अधिक प्रबल रहेगी, वह आपकी सजगता की अवस्था को प्रभावित करेगी। इस प्रकार उन सभी अन्य क्षेत्रों को पूरी तरह अवरुद्ध कर देगी जिस ओर आपकी सजगता जा सकती थी। योग में समस्त मानसिक शक्तियों को एक बिन्दु पर संकेन्द्रित कर हम मन को एकाग्र और विश्रान्त करते हैं। सैकड़ों चीजें एक ही साथ होने के बदले, संभव है, दस चीजें ही होंगी और हमारी सूक्ष्म मानसिक शक्तियों का नब्बे प्रतिशत एक बिन्दु पर रहेगा। धारणा की परिकल्पना यही है, योग में मानसिक प्रशिक्षण का पक्ष यही है।

धारणा की परिकल्पना मात्र विचारों को ही रोक देने की नहीं है, वरन् आपके अवधान, आपकी सजगता को उस अवस्था तक ला देने की भी है,

जहाँ शरीर और मन की अतिसूक्ष्म शक्तियाँ एक साथ काम करती हैं। इसलिए धारणा में अधिक विश्रान्ति मिलती है, अधिक मानसिक शक्ति एवं अधिक एकाग्रता प्राप्त होती है। मन को प्रशिक्षित करने की यही विधि है। इस मानसिक प्रशिक्षण से हम अपने वातावरण के प्रति और अपने वातावरण से पारस्परिक-क्रिया के प्रति यथार्थ रूप से सजग होते हैं। अधिकाधिक सजगता के कारण हम अपने व्यक्तित्व की दु:खद नकारात्मक विशेषताओं, नकारात्मक विचारों एवं भावनाओं, क्रोध, चिन्ता, निराशा, अवसाद आदि भावों को नियंत्रित करने में सक्षम हो जाते हैं।

तत्त्वत:, हममें पूर्ण विकसित होने, अपनी सभी सूक्ष्म मानसिक शक्तियों को एक साथ अभिव्यक्त करने की संभावना विद्यमान है और धारणा का यही उद्देश्य भी है। जब यह अवस्था उपलब्ध हो जाती है, तब ध्यान की प्रक्रिया अपने आप अवतरित होती है, क्योंकि तब मन विश्रान्त, समस्वरित और चेतना के व्यापक आयामों के प्रति ग्रहणशील हो जाता है।

चेतना का रूपान्तरण

योग के अनुसार शरीर और मन की अति सूक्ष्म शक्तियाँ प्राण और चित्त द्वारा प्रभावित होती हैं। प्राण-शक्ति ओज है जो भौतिक और संवेदी शरीर को नियंत्रित करता है। चित्त-शक्ति चेतना और मन को नियंत्रित करने वाली मानसिक ऊर्जा है। प्राण एवं चित्त को समझने हेतु तथा मानसिक प्रशिक्षण की अवधारणा को अधिक स्पष्ट करने हेतु हमें एक और चीज को समझना अत्यावश्यक है। विशुद्ध, दिव्य, अनुभवातीत चेतना ऐसे स्तर पर रहती है जो तात्त्विक चेतना के परे है।

तात्त्विक चेतना का अर्थ है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन की सजगता या चेतना। ये ही मूल तत्त्व हैं जिनसे हमारा अस्तित्व निर्मित है। कुण्डलिनी योग में विशुद्ध चेतना हमारे व्यक्तित्व में सहस्रार चक्र के रूप में प्रस्तुत की जाती है, जहाँ द्वैत नहीं है, कर्त्ता और कर्म का भेद नहीं है। तथापि जब यह शुद्ध चेतना इन्द्रिय और वस्तु जगत् में अभिव्यक्ति होना चाहती है, तब इसे रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरना होता है।

विशुद्ध चेतना उच्च विभव ऊर्जा के समान है, जो सीधे शक्ति उत्पादन केन्द्र से आती है जो उन पतले विद्युत तारों में परिवहित नहीं हो सकती जिसमें मात्र 220 विभव की घरेलू ऊर्जा प्रवाहित होती है। उच्च विभव ऊर्जा

को अवमन्दित करने के लिए उसे विभिन्न परिवर्त्तकों से ले जाना अनिवार्य होता है। हमारे अतीन्द्रिय शरीर में ऊर्जा के विभव के अवमन्दन के लिए जो परिवर्तक हैं उनकी संख्या छः हैं। वे चक्र या अतीन्द्रिय केन्द्रों के नाम से जाने जाते हैं।

जब हम परम चेतना और ऊर्जा को विशुद्ध चेतना से भौतिक धरातल पर अभिव्यक्त करना प्रारम्भ करते हैं तो रूपान्तरण की प्रक्रिया पहले मन के स्तर पर, मन के सृजन पर जाती है। मध्य मस्तिष्क में स्थित आज्ञा चक्र में अवस्थित मानसिक शक्ति प्रथम इन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय है जिसके माध्यम से विश्व का बोध अपने इच्छित रूप-रंगों में कर सकते हैं। परिवर्तन की प्रक्रिया का दूसरा स्तर है आकाश तत्त्व, जो मन की अपेक्षा किञ्चित सघन है। आकाश का अनुभव श्रवणेन्द्रिय से होता है। यहाँ ऊर्जा विशुद्धि चक्र द्वारा अवमन्दित होती है, जो कण्ठ के पास अवस्थित है।

परिवर्तन का अगला स्तर है वायु तत्त्व, जो आकाश से भी सघन है। इसका अनुभव स्पर्श से होता है। इस स्तर पर ऊर्जा का अवमन्दन अनाहत चक्र द्वारा होता है, जो हृदय क्षेत्र में अवस्थित है। चौथा स्तर है अग्नि तत्त्व, जो वायु से भी सघन है। इसका दृष्टि से अनुभव होता है। इस स्तर पर ऊर्जा मणिपुर चक्र द्वारा अवमन्दित होती है, जो नाभि क्षेत्र में अवस्थित है।

परिवर्तन का पाँचवाँ स्तर है अपस तत्त्व या जल तत्त्व, जो अग्नि से भी सघन है। इसकी अनुभूति स्वाद से होती है। यहाँ ऊर्जा का अवमन्दन स्वाधिष्ठान चक्र द्वारा होता है जो जघनास्थि क्षेत्र में अवस्थित है। परिवर्तन का अन्तिम आयाम है पृथ्वी तत्त्व, जो जल से भी सघन, अर्थात् सघनतम तत्त्व है। इसका अनुभव गंध द्वारा होता है। यहाँ सुषुप्त कुण्डलिनी या आध्यात्मिक ऊर्जा शक्ति मूलाधार पिण्ड में अवस्थित मूलाधार चक्र में रहती है।

व्यापक दृष्टि का विकास

विशुद्ध ऊर्जा और परम चेतना की परम अवस्था से नगण्य अवस्था तक उत्पत्ति या विकास यही है। अब हम लगभग पूर्णरूपेण भौतिक स्तर पर काम कर रहे हैं। इस स्तर पर इन्द्रियाँ अपनी सूक्ष्म शक्तियाँ अभिव्यक्त करती हैं। मन भी, जो अनुभवातीत, परम चेतना से एक स्तर नीचे ही है, भौतिक स्तर पर ही अपने को अभिव्यक्त करता है। इस स्तर पर क्षमताएँ निष्क्रिय हो जाती हैं। निष्क्रियता की व्याख्या की आवश्यकता यहाँ नहीं है। हम सभी चेतना

और ऊर्जा की निष्क्रियता के जीवित उदाहरण हैं। हम अपनी सीमित दृष्टि के परे देख नहीं सकते। इस दृष्टि को भौतिक स्तर से ज्ञान के उच्चतर क्षेत्र तक विकसित करने के लिए हमें मानसिक प्रशिक्षण, धारणा और ध्यान की प्रक्रिया से गुजरना होगा।

ध्यान का विज्ञान समग्र मानवीय अनुभूतियों के परे चला जाता है। ध्यान का उद्देश्य चेतना को उस अवस्था या आयाम तक उन्नत कर देना है जहाँ व्यक्ति ऊर्जा और चेतना की गति का अनुभव नहीं करता। गीता में यह चेतना की अवस्था के रूप में वर्णित है, "जहाँ सूर्य नहीं चमकता, चन्द्रमा प्रकाश नहीं करता, अग्नि जलाती नहीं और जहाँ एक बार पहुँच कर आदमी लौटता नहीं वही मेरा स्थान है।"

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।

सूर्य प्राण ऊर्जा का प्रतीक है और चन्द्रमा मानसिक ऊर्जा का। भौतिक जगत् का नियन्ता सूर्य है और चन्द्रमा मन और विचारों के सूक्ष्म आयामों पर शासन करता है। अग्नि प्राण-शक्ति की ओजस्विता और चित्त-शक्ति का तथा स्थूल और सूक्ष्म जगत् में प्राण-शक्ति और चित्त-शक्ति की गति का प्रतीक है।

धारणा की प्रक्रिया द्वारा हम एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचते हैं जहाँ समस्त गतियाँ निरुद्ध हो जाती हैं, सभी चीजें ठहर जाती हैं, जहाँ कोई क्रिया नहीं होती। इस निष्क्रिय अवस्था में मानवीय प्रत्यक्ष ज्ञान तिरोहित हो जाता है। इस अवस्था में अनुभव बहुत तेज होते हैं। जब हम रेलगाड़ी में बैठते हैं और खिड़की से दृश्यों को तेजी से आते-जाते देखते हैं तो पहाड़, मैदान, नदियाँ, गाँव, नगर, सभी बड़ी तेजी से निकलते जाते हैं। परन्तु जब गाड़ी रुकती है, और हम खिड़की से बाहर देखते हैं तब हम स्थिर जगत् को देखते हैं, वहाँ दृष्टि विशाल या व्यापक हो जाती है।

योग और ध्यान में हम जीवन की इस व्यापक दृष्टि को प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, जो कि एक उपलब्धि है। धरातल पर तो हमारी दृष्टि बड़ी सीमित रहती है, जब हम पहली मंजिल पर जाते हैं, तो हमारी दृष्टि कुछ व्यापक हो जाती है, जब दूसरी मंजिल पर पहुँचते हैं तो हमारी दृष्टि का परास बढ़ जाता है। यदि तीसरी मंजिल पर पहुँच जाएँ तो दृष्टि और

व्यापक हो जाती है। जितना ही ऊपर हम जाते जायेंगे, दृष्टि अधिकाधिक व्यापक होती जाएगी। यदि हम अपने भवन की उच्चतम मंजिल पर पहुँच जाएँ, जो कि हमारे भौतिक शरीर की सातवीं मंजिल है, तो हमें अपना और जगत् का बड़ा ही व्यापक दर्शन होगा। जब हमें यह दृष्टि उपलब्ध हो जाती है तब हम सत्य को, परम सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं, हम उससे एकाकार हो जाते हैं।

सामान्यत: जीवन में दो अनुभव होते हैं– एक तो आभास से सम्बन्धित है और दूसरा सत्य से। हम आभास के प्रति अधिक चैतन्य रहते हैं और सत्य के प्रति कम। अपनी दृष्टि को बदलना होगा। हमें सत्य के प्रति ही अधिक चैतन्य होना है और आभास के प्रति कम। धारणा की साधना यही दिशा लेती है। साथ-ही-साथ विश्रान्ति, एकाग्रता, अनासक्ति, और उपलब्धि की प्राप्ति होती है। जब हम संकेन्द्रित मन का विकास करते हैं तब जीवन को एक फूल के समान अनुभव करते हैं, समझते हैं और चरितार्थ करते हैं, जिसका प्रत्येक प्रस्फुटन सुन्दर है। ये परमहंस सत्यानन्द के वचन हैं और यही वह दृष्टि है जिसका हमें विकास करना है।

ध्यान की प्रक्रिया

योग के सिद्धान्त और अवधारणा के अनुसार ध्यान मन और चेतना की एक अवस्था है जिसमें सतर्कता, गत्यात्मकता, मन और इन्द्रियों का पार्थक्य तथा पूर्ण एकाग्रता रहती है। यह निश्चित रूप से उन अनुभवों एवं घटनाओं को अवरुद्ध करने की प्रक्रिया नहीं है, जो हमें सतत् प्रभावित करते रहते हैं। राजयोग के सूत्रों में ध्यान की इस प्रक्रिया को आठ चरणों में विभक्त किया गया है– 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान और 8. समाधि।

प्रथम चार चरण बहिरंग हैं, जिनमें शरीर को समस्वरित करने का, शरीर में प्राणिक ऊर्जा को जाग्रत करने और पूर्ण स्थैर्य एवं धीरता लाने का प्रयास किया जाता है। योग और योग का ध्यान पक्ष शरीर को अनावश्यक नहीं मानता, क्योंकि सजगता तो पहले शरीर में ही उत्पन्न की जाती है और शरीर ही मन की शान्ति और स्थिरता को प्रभावित करता है। यदि आपको कुछ चुभता है तो पीड़ा आप कहाँ अनुभव करते हैं? शरीर में जहाँ चुभन होती है वहाँ या मन में? पीड़ा की दोनों ही जगह अनुभूति होती है। इसलिए ध्यान की प्रक्रिया को इस तरह लेते हैं कि मानसिक और शारीरिक अनुभूतियाँ चेतना के एक ही क्षेत्र में रहें, जिससे कुछ भी बिखरा न रहे।

इसलिए योग में चक्रों पर ध्यान की विधि है। अत: बहिरंग योग की विधियों द्वारा शारीरिक अनुभूतियों को नियंत्रित करने के बाद व्यक्ति मानसिक आयाम में प्रवेश करे और मन के केन्द्र की ओर उन्मुख हो। योग के अनुसार सम्पूर्ण दर्शन का यही आधार है। आपको मन के केन्द्र की यात्रा परिधि से ही प्रारम्भ करनी है। मन की परिधिगत अनुभूतियाँ क्या हैं? ये हैं– विचार, संवेदनायें, भावनायें और कामनायें, जिन्हें हम जीवन में एक समान, निरन्तर अनुभव करते रहते हैं।

मन के केन्द्र में पहुँचने के लिए परिधिगत क्रिया-कलापों की सजगता और उन पर नियंत्रण होना चाहिए। प्रत्याहार और धारणा की प्रक्रियाओं में इस पक्ष पर बल दिया गया है। ध्यान की वास्तविक साधनाएँ तो केवल प्रत्याहार और धारणा ही हैं। योग की परम्परा में आपको ध्यान का उल्लेख साधना या विधि के रूप में कहीं नहीं मिलेगा। परन्तु आपको प्रत्याहार और धारणा की अनेक विधियाँ मिलेंगी, जैसे– तत्त्व धारणा, चिदाकाश धारणा, व्योम पंचक धारणा।

ये विभिन्न विधियाँ व्यक्ति को अपने मन के ज्ञान की गहराइयों में लेती हुई मन के सूक्ष्म और स्पन्दनशील भागों में ले जाती हैं। जिस प्रकार स्थूल शरीर की अनेक परतें हैं– बाहर में त्वचा, भीतर में पेशियाँ, तंत्रिकायें, रक्तवाहिकायें, फिर हड्डी, और उसके भी अन्दर अस्थि-मज्जा, उसी प्रकार मानसिक शरीर में भी अनेक परतें या स्तर हैं।

इसलिए ध्यान सरल नहीं है। यदि आप यह सोचते हों कि आँखें बन्द कर लेना और मन को अवरुद्ध करने का प्रयास ही ध्यान है, तो आप ऐसा कर सकते हैं। परन्तु इसमें आपको तब तक सफलता नहीं मिलेगी जब तक आप सशक्त संकल्प शक्ति विकसित नहीं कर लेते हैं। अनासक्ति और वैराग्य की शक्ति के बिना ध्यान का अभ्यास अधिक कठिन है। यदि आप इन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की अनुभूतियों से अनासक्त हैं तो आपको सहज ध्यान की अनुभूति होगी। अतएव, जब तक ऐसा नहीं होता तब तक तो आपको सुनियोजित एवं क्रमिक ढंग से अभ्यास करना पड़ेगा।

धारणा की अवधारणा

योग में धारणा का अर्थ होता है मन को किसी एक बिन्दु पर लगाये रखना, टिकाये रखना। मन को किसी एक बिन्दु पर टिकाये रखना ही धारणा की अवधारणा है। धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'धृ' से हुई है, जिसका अर्थ होता है आधार, नींव। अत: धारणा की वास्तविक परिभाषा है– वह वस्तु या प्रत्यय जिस पर मन दृढ़तापूर्वक आधारित होता है। योग की परम्परा में धारणा राजयोग का अन्तरंग अभ्यास है, जो मानसिक अनुशासन का मार्ग है। धारणा के पूर्व का चरण है प्रत्याहार, जिसमें मन को बाह्य संवेदी वस्तुओं से खींच कर अन्तर्मुखी बनाया जाता है।

इन्द्रियों से विलग होने के पश्चात्, मन गहराई में जा सकता है। वह अपना संसार निर्मित करता है, जब कि इन्द्रियाँ बाहर में ही रह जाती हैं। एक बार जब हम इन्द्रिय-चेतना और मनश्चेतना को अलग कर लेने में समर्थ हो जाते हैं, तब मन को उन अन्य अवस्थाओं की गहराई में निर्देशित किया जा सकता है जहाँ धारणा तीव्र हो। धारणा, जिसे मानसिक एकाग्रता की भी संज्ञा दी जाती है, मनश्चेतना का प्रगाढ़ होना है। जब इन्द्रिय-चेतना का पूर्ण अभाव हो जाता है तब धारणा घटित होती है।

अनुभूतियों की प्रगाढ़ता

धारणा किसी भी रूप में घटित हो सकती है। हम धारणा की तुलना उन दो प्रेमियों के उस अनुभव से कर सकते हैं जब वे घण्टों-घण्टों साथ में बैठे रहते हैं, पर उन्हें लगता है अभी कुछ ही क्षण बीते हैं। फिर भी, यदि कोई अप्रिय कार्य करना होता है तब एक-आध क्षण भी घण्टों के समान गुजरता है। अत: वह प्रगाढ़ता, जिसमें हम एक क्षण को एक घण्टा या एक घण्टे को एक क्षण के रूप में अनुभव करते हैं, धारणा है। अत: सकारात्मक पक्ष में धारणा चेतना का गहरा होना है, जिसमें काल की अवधारणा समाप्त हो जाती है, जहाँ तटस्थ चेतना तिरोहित हो जाती है, और केवल 'दिक्' की चेतना रह जाती है।

जब मन का संवेदी-विच्छेद हो जाता है तब धारणा में जो कुछ भी आन्तरिक रूप से अभिव्यक्त होता है वह अधिक तीव्र एवं शक्तिशाली होता है। ध्यान के समय हम ने इस तीव्रता को भावनात्मक विस्फोट के रूप में अनुभव किया है। बहुत से व्यक्ति जैसे-जैसे ध्यान की गहरी अवस्थाओं में प्रवेश करते हैं, अत्यधिक भावुक हो जाते हैं। इस भावनात्मक विस्फोट का कारण किसी प्रकार का मानसिक, भावनात्मक या मनोवैज्ञानिक अवरोध ही होता है। परन्तु इसके परे अन्य कारण भी होते हैं। योग के अनुसार जब मन के गहरे स्तरों में अचेतन रूप से बिना विक्षेप के विचारों, भावों और भावनाओं की तीव्रता की अनुभूति होती है तो उस क्षण, भाव या विचार का रूप एक अत्यन्त गहरा अनुभव दे जाता है।

ऐसा भावनात्मक विस्फोट भी धारणा की ही एक अवस्था है। अन्तर इतना है कि इस स्थिति में ऐसा कोई आधार या आलम्बन नहीं होता, जिस पर व्यक्ति टिक सके। इसलिए तीव्रता अत्यधिक गहन होती है और हमें

ऐसा लगता है कि यह गहरे अन्तस् से आ रही है। जैसे ही यह भावनात्मक विस्फोट होता है, हम उसे अतीत की किसी घटना, परिस्थिति या अनुभूति से जोड़ देते हैं। बचपन की स्मृतियाँ उभरती हैं, जीवन में जो सुखद या दु:खद अनुभव हुए हैं, उनके बिम्ब तेजी से ऊपर आते हैं, और हम उन्हीं भावनाओं में बह जाते हैं। ध्यान के समय के ये बाह्य अनुभव हैं, जब मन आलम्बनहीन होता है। अत: धारणा की अवस्था में व्यक्तियों को रोते-चीखते, भावनाओं को प्रकट करते, तथा विभिन्न सहज शारीरिक भंगिमायें करते देखना सामान्य बात है।

तत्काल, बहिर्मुखी मन के साथ हम चैतन्य और सजग रहते हैं कि हमारे शरीर को किस प्रकार प्रतिक्रिया या आचरण करना है। बहिर्मुखी अवस्था में प्राण पर भी एक अचेतन नियंत्रण रहता है, जबकि ध्यान में यह अचेतन नियंत्रण नहीं रहता। प्राण पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। मन शरीर से विच्छिन्न रहता है और प्राण सहज स्वाभाविक रूप से गतिशील और प्रवाहित होता रहता है। अत: प्राण की गति के अनुरूप शरीर भिन्न-भिन्न भंगिमायें धारण करने लगता है। जब यह विच्छेद होता है, प्राण स्वतंत्र हो जाता है। मानसिक अवधारणायें शरीर, वातावरण, यहाँ तक की स्थानिक मानसिकता की सीमाओं से भी स्वतंत्र हो जाती हैं।

धारणा की तीव्रता

यहाँ केवल मन को एक बिन्दु पर स्थिर रखना ही महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए धारणा के किसी विषय, जैसे– मंत्र, प्रतीक, विचार, भाव या किसी रूप का उपयोग किया जा सकता है। एकाग्रता की तीव्रता को ही सामान्य रूप में धारणा मानते हैं। महाभारत में एक प्रसंग है जो अभ्यास के लिए आवश्यक एकाग्रता की तीव्रता को दर्शाता है। जब गुरु द्रोण पाण्डव और कौरव कुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा दे रहे थे तो एक दिन उन्होंने सभी कुमारों को पेड़ की डाल पर रखी एक मिट्टी की बनी चिड़िया को देखने और उसकी आँख को तीर से बेधने के लिए बुलाया। एक-एक कर सभी राजकुमार आते गये और गुरु सबसे एक ही प्रश्न पूछते, "क्या देख रहे हो?"

प्रथम कुमार ने कहा, "मैं जंगल, आकाश, पेड़, डालें, पत्तियाँ और पक्षी, सबको देख रहा हूँ।" गुरु ने उसे तीर चलाने को मना कर दिया। फिर उन्होंने दूसरे कुमार को बुलाया और उससे पूछा, "क्या देख रहे हो?" उसने

उत्तर दिया, "मैं पेड़, पत्तियों, डालियों और उस पक्षी को देख रहा हूँ।" गुरु ने उसे भी धनुष रख देने को कहा। इसी प्रकार सभी कुमार आते गये, पर गुरुजी जो शिक्षा देने का प्रयास कर रहे थे, उसे वे समझ नहीं पाये, क्योंकि वे एक विशेष उत्तर की अपेक्षा कर रहे थे।

अन्त में जब अर्जुन आये तो उनसे भी वही प्रश्न किया, "तुम क्या देख रहे हो?" अर्जुन का उत्तर था, "मैं चिड़िया की आँख देख रहा हूँ।" गुरुजी ने फिर दूसरा प्रश्न किया, "क्या तुम्हें पेड़ की पत्तियाँ, डाली जिस पर पक्षी बैठा है, दिखाई नहीं दे रहीं है?" अर्जुन बोला, "नहीं, मुझे तो केवल पक्षी की आँख दिखाई पड़ रही है।" गुरुजी का अगला प्रश्न था, "क्या पक्षी के पंख या सिर भी दिखाई नहीं दे रहा है?" अर्जुन ने कहा, "नहीं, मुझे चिड़िया की आँख के सिवा और कुछ नहीं दिख रहा।" इस पर गुरु ने पूरी तरह संतुष्ट होकर कहा, "तुमने पाठ ग्रहण कर लिया।" अर्जुन की कोई नलिकाकार दृष्टि तो थी नहीं, और न वह अपने आस-पास की दृश्यावली के प्रति अँधा ही था। परन्तु उसकी एकाग्रता की प्रगाढ़ता इतनी अधिक थी कि बोध की समस्त सूक्ष्म शक्तियाँ उस एक बिन्दु– चिड़िया की आँख पर संकेन्द्रित हो गई थीं।

ध्यान के समय यदि मन दोलायमान हो रहा हो तो फिर धारणा की अनुभूति नहीं होगी। धारणा तो वह स्थिति है जिसमें पूर्ण एकचित्तता रहती है। यह तो बहुत अधिक अभ्यास के बाद भी एक आध क्षण के लिए आती है। यदि आप अस्थिर मन से ध्यान की साधना का प्रयास कर रहे हैं, जो एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर आ-जा रहा है, जब भाँति-भाँति के विचारों एवं कल्पनाओं का आवागमन लगा हुआ है, तब न तो यह ध्यान है, न धारणा, यहाँ तक कि यह प्रत्याहार भी नहीं है, क्योंकि वहाँ बहुत अधिक विक्षेप और अस्थिरता है। अत: केवल आँखें बन्द कर किसी प्रतिमा पर मन को ठहराने का प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। मन को, इन्द्रियों को तथा यदा-कदा अभिव्यक्त होने वाली मानसिक सूक्ष्म शक्तियों को समुचित प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिससे धारणा सिद्ध हो सके और ध्यान की अवस्था में प्रवेश किया जा सके।

ध्यान का अर्थ

महर्षि पतंजलि के राजयोग सूत्र में ध्यान की प्रक्रिया सम्बन्धी एक सूत्र है–

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमि: ।।

"दीर्घ काल तक श्रद्धापूर्वक अविरल प्रयास से साधना को दृढ़भूमि प्राप्त होती है।" यही सूत्र मुख्य है जिसे प्रत्येक साधक को जानना आवश्यक है। किसी भी साधना में सिद्धि के लिए तीन गुण आवश्यक हैं– चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक। सर्वप्रथम है– आस्था, विश्वास। यदि आप किसी कारखाने में ही काम कर रहे हैं तो इतनी आस्था तो आपमें होनी ही चाहिए कि इसी कार्य के माध्यम से आपको अपना लक्ष्य प्राप्त होगा। बिना इस विश्वास के आपको काम के प्रति कोई प्रेरणा नहीं मिलेगी। यही सिद्धान्त धारणा में भी लागू होता है। यह आस्था तो आपको होनी ही चाहिए कि हाँ, इसी साधना के द्वारा मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूँगा। चाहे इसमें अधिक समय लगे या कम, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है।

नैरन्तर्य या नियमितता साधना का दूसरा पक्ष है। जब आपको लगे कि इस साधना के द्वारा आपको अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी, तब आप अपनी साधना में नियमित बनने का प्रयास करें। साधना की उस अवधि में, चाहे जो भी विक्षेप आपके मार्ग में आयें, उन सब की उपेक्षा कीजिये। एक बार जब आपने यात्रा शुरू कर दी, तब गन्तव्य तक पहुँचने में कितना समय लगेगा यह आपकी नियमितता पर निर्भर है। यदि आप रास्ते में कहीं पर 20 बार रुकते हैं, तब यात्रा में अधिक समय तो लगेगा ही। परन्तु यदि आप निरन्तर चलते ही रहें तब आपकी यात्रा शीघ्र समाप्त होगी। साधना का पूर्ण लाभ प्राप्त करने हेतु अविरल नैरन्तर्य आवश्यक है।

बहुत बार लोग कहते हैं, "मैं तो इतने अधिक वर्षों से धारणा का अभ्यास कर रहा हूँ, पर अभी तक कुछ हुआ नहीं।" हालाँकि इनमें से अधिकतर लोग नियमित रूप से अभ्यास नहीं करते हैं। संभवत: वे सप्ताह में एक दिन अभ्यास करते हैं, फिर हफ्तों तक कुछ नहीं करते हैं। इसके बाद पुन: जोश आता है, तो कुछ अधिक समय तक अभ्यास करते हैं। यह बात उन्हें ठीक प्रारम्भ में ही समझ लेनी चाहिए कि सप्ताह में एक दिन अभ्यास करना और शेष छ: दिनों तक अभ्यास नहीं करना तो ऐसा ही है, जैसे एक कदम आगे चल कर छ: कदम पीछे चलना। इस प्रकार आप किसी प्रगति की आशा कैसे कर सकते हैं? इसलिए ध्यान की साधना में नैरन्तर्य या नियमितता तो अनिवार्य ही है। जिस प्रकार आप जीवन के अन्य आवश्यक समझे जाने वाले कामों के लिए समय निकाल लेते हैं, उसी प्रकार धारणा की नियमित साधना के लिए भी समय निकालना ही होगा।

दीर्घ काल तक अभ्यास साधना का तीसरा पक्ष है, जिसे भी पूरा करना होगा। किसी चीज का लम्बे समय तक अभ्यास करने का विचार ही अनेक लोगों को मार्ग से विरक्त कर देता है। यदि हमें लम्बे समय तक एक काम करना पड़ता है तो हम ऊब जाते हैं, हमारी रुचि समाप्त हो जाती है। बाह्य चेतना में मन इन्द्रियों का अनुसरण करता है, पर जब हम अन्तर्मुखी होते हैं, जहाँ इन्द्रियाँ मन का अनुसरण करती हैं, तब समय एक महत्त्वपूर्ण घटक नहीं होता। अत: हमें धैर्यपूर्वक, एक निश्चित समय के अन्दर उपलब्धि की अपेक्षा रखे बिना ध्यान के अभ्यास के प्रति समर्पित होना पड़ेगा। यदि एक निश्चित समय में उपलब्धि प्राप्त करने की अपेक्षा है, तो फिर अभ्यास भी तदनुरूप होना चाहिए।

आपको यह भी समझना होगा कि ध्यान की साधना उस कीड़े की यात्रा के समान है, जो एक विशाल वृक्ष की एक छोटी-सी पत्ती से दूसरी पर रेंग रहा है। वृक्ष के केन्द्र तक पहुँचना उसका लक्ष्य हो सकता है, पर प्रारम्भ में ही आप सीधे केन्द्र में नहीं जा सकते हैं। उसके लिए एक भिन्न प्रकार की चेतना आवश्यक है। आप जहाँ भी हैं वहीं से रेंगना प्रारम्भ करना होगा, जैसे उस कीड़े के लिए वही पत्ती सम्पूर्ण विश्व है जिस पर अभी वह रेंग रहा है। वह उसकी डंठल पर पहुँचता है, जो किसी टहनी से जुड़ी है, फिर मोटी डाल से जुड़ी है, अन्ततोगत्वा जो वृक्ष के तने से जुड़ी है। वहाँ से जड़ तक पहुँचा जा सकता है। हमारी मानसिकता, हमारी अपेक्षायें, हमारा जीवन और जगत् हमारी ही पत्ती है जिसे हम धीरे-धीरे कुतर रहे हैं। इस पत्ते से हमें मुख्य तने (धड़) तक पहुँचना है और अन्तत: केन्द्र में छिद्रण करने की चेष्टा करनी है। यही है ध्यान की प्रक्रिया।

आत्मिक प्रतीक

योग परम्परा में ध्यान के तीन पक्षों का उल्लेख मिलता है– 1. साधक की चेतना, 2. साधक का लक्ष्य, जो वह प्राप्त करना चाहता है, और 3. साधना की प्रक्रिया जो साधक अपनाता है। जब ये तीनों एक हो जाते हैं तब ध्यान की अनुभूति अन्दर में अवतरित होती है, और हमारे शरीर और मन की चेतना समाप्त हो जाती है। उस समय ध्यान के अनुभव के अलावा और कुछ नहीं रहता और उसी अवस्था को ध्यान कहते हैं। जब हम ध्यान के अनुभव में लीन हो जाते हैं, तो यह एक जीवन्त अनुभव होता है। जब द्वैत भाव नहीं रह जाता और केवल एक ही अनुभव शेष रह जाता है और वही मन की मुक्ति है।

प्रारम्भ में प्रत्येक साधक की चेतना भिन्न रहती है और वे चेतन-विकास के विभिन्न स्तरों को अपना लक्ष्य बनाते हैं। यद्यपि एक साधक के विचार और प्रेरणाएँ दूसरे साधक के समान ही प्रतीत होती हैं, पर दोनों के मन का विकासात्मक स्तर भिन्न होता है। मन के इस विकासात्मक स्तर का अवलोकन आत्म-निरीक्षण की प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए। आत्मावलोकन के पश्चात् ही व्यक्ति यह निर्णय कर सकता है कि उसके व्यक्तित्व के किस पक्ष का विकास अपेक्षित है।

प्रत्येक व्यक्ति मस्तिष्क, हृदय और हाथ का संयोजन है। मस्तिष्क बुद्धि या जीवन के बौद्धिक पक्ष को प्रस्तुत करता है। हृदय भावनात्मक पक्ष का, जीवन की स्वत: स्फूर्त, स्वाभाविक, अबौद्धिक अभिव्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। हाथ कर्म को, कर्म की प्रेरणा को, तथा जिस विश्व समाज के हम एक अंग हैं, उसमें सहभागी होने के भाव को प्रस्तुत करता है। हम इस प्रकार प्रारम्भ करते हैं– हम अपने संवेदी अंगों एवं कर्मेन्द्रियों को समन्वित एवं समस्वरित करते हैं, क्योंकि मन स्वयं एक ज्ञानेन्द्रिय है।

आत्मा प्रकृति के आयामों, दृश्य सांसारिक अनुभूतियों की ओर आकृष्ट होती है, जिन्हें यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा), पाँच कर्मेन्द्रियों अथवा शारीरिक अंगों (हाथ, पैर, गुदा, जननेन्द्रियों तथा वाणी) और समस्त मन या महत्, जिसमें मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार सम्मिलित हैं, के द्वारा देखती या अनुभव करती है। इन मानसिक शक्तियों में से प्रत्येक एक पृथक्, सूक्ष्म इन्द्रिय भी मानी जाती है।

प्रत्याहार में बहिर्मुखी इन्द्रिय अनुभूतियों को शनैः शनैः वापस खींचा जाता है जिससे कि विक्षेप या बिखराव न हो। प्रत्याहार की अवस्था की सिद्धि के लिए मन को क्रमिक प्रशिक्षण से गुजरना होता है। इसमें वर्षों लग सकते हैं। इन्द्रिय-प्रत्याहार की सिद्धि के पश्चात् धारणा की अवस्था प्रारम्भ होती है, जहाँ एक प्रतीक विषय या ध्यान प्रक्रिया पर पूर्ण एकाग्रता होती है। वहाँ दोनों व्यक्तित्वों 'मैं' और 'तुम' का 'कर्त्ता' और 'कर्म' का पूर्ण लय हो जाता है।

जब तक हम लय की प्रक्रिया में होते हैं, तब तक हम प्रत्याहार और धारणा की अवस्थाओं में हैं। जब लय हो जाता है, तब हम ध्यान और समाधि की अवस्था में होते हैं। अतएव जब तक हमारा लय नहीं हो जाता है तब तक हम नहीं कह सकते कि हम ध्यान कर रहे हैं। हम मात्र इतना कह सकते हैं कि हम अपनी एकाग्रता और सजगता को उन्नत करने की विधियों का अभ्यास कर रहे हैं। ध्यान और समाधि की अवस्था में आने हेतु प्राणों की जागृति भी आवश्यक है, क्योंकि मन और प्राण के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

ध्यान के उपकरण

मन को संघटित करने के लिए तीन साधन आवश्यक हैं– 1. अतीन्द्रिय ध्वनि, 2. आत्मिक प्रतीक और 3. सूक्ष्म श्वास। ध्यान प्रक्रिया को सिद्ध करने हेतु प्रत्याहार और धारणा की अवस्थाओं में इन तीन उपकरणों का उपयोग होता है। इन्द्रिय निवेशों के विच्छेद होने पर ये मन के लिए एक आधार या आलम्बन उपलब्ध कराते हैं। ध्यान की प्रक्रिया में जब धारणा अधिक प्रगाढ़ होती जाती है तब अवधान, इन्द्रिय ज्ञान से धारणा के विषय पर दिशान्तरित हो जाता है। इस समय देश, काल और वस्तु की अनुभूति से सम्बन्ध-विच्छेद की प्रवृत्ति रहती है, क्योंकि चेतना अचेतन आयामों की ओर अग्रसर हो जाती है।

मन इस अवस्था में निद्रालु होने लगता है, क्योंकि शारीरिक और मानसिक ज्ञान लुप्त हो जाते हैं। सारांश यह कि हम उनींदे हो जाते हैं। तन्द्रा में मन अनुभव के अन्य क्षेत्रों में चला जाता है। वह स्वप्न देखने, कल्पना करने और मनोराज्य में भ्रमण करने लगता है और ध्यानावस्था भंग हो जाती है। अत: एक आधार या आलम्बन होना ही चाहिए जिस पर इन्द्रिय-तादात्म्य से बिछुड़ा मन टिक सके। इसीलिए ध्यान के इन तीन साधनों के उपयोग की आवश्यकता है।

मरुभूमि में जा रहे एक कारवाँ की कथा है, जो इस अवधारणा को अधिक स्पष्ट करेगी। एक कारवाँ रात्रि में चला जा रहा था। जब आराम करने का समय हुआ तो सभी ने अपने तम्बू लगा लिये और अपने ऊँटों को बाँध लिया। दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति ने अपने ऊँट को बाँधने की खूँटी खो दी थी। अपने ऊँट को न बाँध पाने के कारण वह परेशान होकर सरदार के पास गया और अपनी समस्या बतायी। सरदार ने कहा खूँटी के लिए परेशान मत होओ, ऊँट को बाँधने के लिए तुम जो करते हो जाकर उसी का अभिनय करो, ऊँट कहीं नहीं जायेगा। आदमी लौट कर आया और ऊँट को बाँधने का उपक्रम करने लगा। ऊँट तत्काल बैठ गया और रातभर वहाँ से उठा नहीं।

अगली सुबह सब कोई यात्रा के निमित्त जगकर तैयारी करने लगे। पर इस व्यक्ति का ऊँट अपनी जगह से उठ ही नहीं रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि सभी ऊँट उठकर खड़े हो गये, पर उसका ऊँट क्यों नहीं उठ रहा है! अत: वह फिर सरदार के पास गया और पूछा कि अब वह क्या करे? सरदार ने हँसकर कहा– जाओ, जिस प्रकार उसे बाँधा था वैसे ही खोलने का नाटक करो, जैसा तुम रोज खोलते समय करते हो। आदमी ने पुन: ऊँट को खोलने का उपक्रम किया और ऊँट चट उठ खड़ा हो गया।

कथा का अर्थ स्पष्ट है। मन में वस्तुत: कोई बन्धन नहीं है। पर मानसिक अनुकूलन के कारण हम समझते हैं कि हम बँधे हुए हैं। मन एक आलम्बन चाहता है, वह बँधना चाहता है। इसलिए हम अपने मन में अपने मानसिक ऊँट को बाँधने और खोलने का अभिनय करते हैं। यहीं पर ध्यान के उपकरण महत्त्वपूर्ण होते हैं। जब हम अचेतन, अवचेतन के अज्ञात आयामों में प्रवेश करते हैं, तब हम इन साधनों का उपयोग मन के अवलम्ब के लिए करते हैं। इसीलिए इतने सारे मंत्र, प्रतीक, और ध्यान के अभ्यास हैं। ये सभी मन के आलम्बन के रूप में, एकाग्रता के संकेन्द्रण बिन्दु के रूप में, चेतना के गहन से गहनतर आयामों में प्रवेश कराने वाली सजगता के रूप में उपयोग के निमित्त हैं।

लय की बाधा

ध्यान की सभी प्रक्रियाओं में किसी-न-किसी माध्यम का उपयोग होता है जिसे मन पकड़े रहे या जिस पर वह आधारित रह सके। यह माध्यम आपकी श्वास हो सकती है, मंत्र हो सकता है, प्रतीक हो सकता है। नादयोग में यह स्थूल या सूक्ष्म ध्वनि होती है। अजपा जप में यह अतीन्द्रिय पथ, सूक्ष्म श्वास और अतीन्द्रिय ध्वनि का सम्मिश्रण होता है। आकाश धारणा में यह आन्तरिक व्योम (आकाश) होता है। त्राटक में विभिन्न वस्तुएँ हैं जिन्हें आन्तरिक और बाह्य रूप से देखते हैं। व्यक्ति की चेतना सदैव एक विषय या प्रक्रिया पर लगी रहती है। इसका कारण है कि मन स्वाभाविक एवं सहज रूप से अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की वस्तु के अनुरूप अपने को ढाल लेता है। दैनिक जीवन में भी मन यही काम बाह्य वस्तुओं और विचारों के साथ सतत् करता रहता है। प्रत्यक्ष ज्ञान की वस्तु के अभाव में व्यक्ति अचेतन अवस्था में चला जाता है।

ध्यान की प्रक्रिया में भी ऐसा ही होता है। अनेक व्यक्ति बिना किसी विशेष विषय पर मन को लगाये हुए ध्यान करने बैठ जाते हैं। वे मात्र आँखें बन्द कर लेते हैं और मन को एक ऊधमी बन्दर की तरह इधर-उधर भटकने के लिए छोड़ देते हैं। या तो वे अपनी ही समस्याओं का चिन्तन करते रहते हैं या निद्रावस्था में चले जाते हैं। इनमें से कोई भी अवस्था ध्यान का अनुभव नहीं है। इस प्रकार तो हम सैकड़ों वर्षों तक भी करते रहें तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। अतएव हमें किसी विषय पर या साधना की किसी प्रक्रिया पर अविरल सजगता बनाये रखने का प्रयास करना चाहिए। हम जैसे-जैसे ध्यान के मार्ग पर प्रगति करते जाते हैं, हम अधिक से अधिक विश्रान्त होते जाते हैं। इस समय सो जाना स्वाभाविक कर्म होता है। यही लय की, अचेतनता की बाधा है जो हमें अपने अस्तित्व की गहराई में उतरने से रोक देती है। एक प्रतीक या एकाग्रता को बनाये रखने वाली विधि को प्रयोग में लाकर इस बाधा को पार किया जा सकता है।

वास्तव में यह लय अथवा अचेतनता की प्रवृत्ति एक सुरक्षात्मक प्रक्रिया है। यह मन की अतल गहराइयों में असमय उतरने से हमें रोकती है। अवचेतन भयों का, विक्षिप्तताओं, एवं दिव्य दर्शनों का सामना हमें अवश्य करना चाहिए, परन्तु यह प्रक्रिया धीरे-धीरे संयत रूप में चलनी चाहिए। मन को समय के साथ क्रमशः विशुद्ध एवं समस्वरित करना चाहिए। यदि अवचेतन भयों की भीषण बाढ़ अचानक आ जाये, तब हम अपने ही मन के नकारात्मक

अन्तर्विषयों से अभिभूत हो जायेंगे। अत: लय हमारे ही मन का एक सुरक्षा आवरण है जिसे नकारात्मक कर्मों और संस्कारों के क्षय हो जाने के पश्चात् ही पार किया जा सकता है। तब अवश्य ही प्रतीक या धारणा के विषय का उपयोग किया जाना चाहिए।

साकार और निराकार

साकार का अर्थ है 'आकार या आकृति सहित' और निराकार का अर्थ है 'बिना आकृति या आकार' के। अनन्त काल से आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के मध्य यह विवाद का विषय रहा है कि ध्यान साकार हो या निराकार। ईशावास्य उपनिषद् के 12 वें मंत्र में कहा गया है–

अन्धतम: प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याऽरता: ।।

जो साकार की उपासना करते हैं, वे गहरे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो निराकार सत्ता की उपासना करते हैं वे उससे भी अधिक अंधकार में प्रवेश करते हैं। इस श्लोक के तो अनेक अर्थ किये जाते हैं, पर हम अपनी चर्चा वहीं तक सीमित रखेंगे जहाँ तक लय और प्रतीक का सम्बन्ध है।

साकार ध्यान में, जहाँ चेतना किसी निश्चित केन्द्रीय बिन्दु या विषय पर स्थिर रहती है, एकाग्रता व्यक्त आयाम में होती है। निराकार ध्यान में, जहाँ व्यक्ति किसी निश्चित केन्द्रीय बिन्दु पर अपनी सजगता को स्थिर नहीं रखता है, एकाग्रता अव्यक्त आयाम में होती है। इसमें वे अभ्यास भी सम्मिलित हैं, जिनमें सजगता को ब्रह्म, ईश्वर और अनन्त जैसे प्रत्ययों पर चिन्तन के क्रम में, मन और आत्मा की खोज के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। ऐसा कैसे होता है कि दोनों ही प्रकार की साधनायें अंधकार में ही ले जाती हैं? कारण यही है कि साकार और निराकार, दोनों ही ध्यान के साधन हैं, स्वयं में वे साध्य नहीं हैं।

साकार ध्यान सरलता से विकृत होकर केवल मूर्त्ति पूजा बनकर रह जा सकता है। लोग पूजा के उद्देश्य को रंचमात्र भी जाने बिना मूर्त्तियों और प्रतिमाओं का पूजन करते रहे हैं। यही बात मंत्र, प्रतीक या ध्यान की किसी वस्तु के सम्बन्ध में हो सकती है। प्रतीक उत्कर्ष का साधन नहीं बन कर बौद्धिक अटकलबाजियों का विषय बन जाता है। इसीलिए उपनिषद्

कहता है कि जो व्यक्त की उपासना करते हैं वे गहनतम अन्धकार में प्रवेश करते हैं। धारणा के विषय का प्रयोजन तो बौद्धिक अटकलबाजी के परे ले जाना है।

अत: अधिक लोग अमूर्त्त प्रत्ययों पर चिन्तन-मनन को प्राथमिकता देते हैं। परन्तु इस विषय पर उपनिषद् कहता है कि जो अव्यक्त की उपासना करते हैं वे गहन अन्धकार में प्रवेश कर जाते हैं। इसका कारण है कि अधिकतर व्यक्ति इस प्रकार के ध्यान के लिए तैयार नहीं होते। इस स्थिति में अनन्त, ईश्वर आदि विषयों का ध्यान लक्ष्य से भटक कर बौद्धिक अटकलबाजी में बदल जाता है, जो गहन अनुभवों पर आधारित नहीं होती। यही हमें ध्यान के मार्ग से दूर ले जाता है। निराकार ध्यान लय, अचेतन और निद्रा की अवस्था में ले जाता है। इसीलिए उपनिषद् हमें साकार ध्यान और निराकार ध्यान, दोनों के अभ्यास, तथा इनके स्थान एवं प्रयोजन को समझने और प्रयोग करने के प्रति सतर्क करता है।

सर्वप्रथम मन को विशुद्ध और एकाग्र करने हेतु सघन साकार ध्यान होना चाहिए। अगले मंत्र में उपनिषद् कहता है कि साकार-ध्यान एक विशिष्ट अनुभूति प्रदान करता है, निराकार-ध्यान भिन्न अनुभूति प्रदान करता है। यह उपनिषद् इंगित करता है कि साकार ध्यान ज्ञान और अनुभव के एक विशेष स्तर पर ले जाता है, जब कि निराकार ध्यान अन्य स्तर पर ले जाता है। दोनों ही आवश्यक हैं और चेतना के विकास के लिए सही समय पर उनका अभ्यास किया जाना चाहिए।

यही उपनिषद् अगले मंत्र में कहता है, "जो यह जानते हैं कि अव्यक्त और व्यक्त, साकार और निराकार एक ही हैं, वे व्यक्त के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं और अव्यक्त के द्वारा अमरत्व प्राप्त करते हैं।" यह मंत्र व्यक्त और अव्यक्त, साकार और निराकार में समन्वय की ओर इंगित करता है। अन्तत: व्यक्ति को सभी रूपों में, आकृतियों में निराकार को देखना चाहिए और निराकार में ही सभी आकृतियों को, रूपों को। पर यह ज्ञान तभी आता है जब साकार और निराकार दोनों ही ध्यान सिद्ध हो जाएँ। साकार ध्यान का निरन्तर अभ्यास अन्तत: 'मृत्यु नदी', अर्थात् अचेतन की बाधा के पार ले जायेगा। इस ज्ञान के पश्चात् व्यक्ति को निराकार पर चिन्तन करना चाहिए। यह चिन्तन भी स्वत: उद्भूत होगा। यही वह बिन्दु है जहाँ व्यक्ति अभ्यास से ध्यान की अनुभूति में चला जाता है, जो बौद्धिक ज्ञान के परे है।

मानस दर्शन

योग के अनुसार मन्त्र या अतीन्द्रिय ध्वनि के अभ्यास से मानसिक बन्धन से मुक्ति होती है। इन्द्रिय आकर्षण के कारण उत्पन्न मानसिक बन्धन से मुक्त करना ही मन्त्र का प्रभाव है। मन्त्र तो ध्वनि स्पन्दन हैं, जो शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक और अतीन्द्रिय संरचनाओं को प्रभावित करते हैं। प्रत्येक ध्वनि स्पन्दन विशेष प्रतिरूप (पैटर्न), बिम्ब या आकृति का निर्माण करते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में ध्वनि स्पन्द को 'नाद' या प्रथम स्पन्दन कहते हैं। यह आद्य स्पन्दन ही वह स्रोत है, जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

बाईबिल में कहा गया है कि 'प्रारम्भ में शब्द था'। यही प्रथम स्पन्दन या नाद, मन्त्रों का आधार है। इस संदर्भ में प्रत्याहार और धारणा की अवस्थाओं के विकास हेतु मन्त्र एक साधन हो जाता है। यह एक आधार या आलम्बन प्रस्तुत करता है जिस पर मन टिक सके और वह अचैतन्य न हो जाए। जैसे-जैसे मानसिक तनाव और विक्षेप कम होते जाते हैं, सजगता और एकाग्रता विकसित होती है।

मन्त्र का अन्य पक्ष है, यन्त्र या अतीन्द्रिय प्रतीक। प्रत्येक मन्त्र में एक या अधिक ध्वनि स्पन्द रहते हैं और प्रत्येक स्पन्द एक विशेष बिम्ब उत्पन्न करता है। विज्ञान ने स्पष्ट कर दिया है कि जब आप कोई राग गाते हैं या कोई वाद्य यंत्र बजाते हैं तो वह राग एक विशेष आकृति उत्पन्न करता है। उसी प्रकार चेतना के क्षेत्र में मन्त्र जो बिम्ब उत्पन्न करता है वही 'यन्त्र' है। जैसे मंत्र शब्द *(मननात् त्रायते)* का अर्थ मन को मनन की प्रक्रिया से मुक्त करना होता है, यन्त्र शब्द का भी अर्थ है *(यम्यते अनेन)* वह तकनीक जिसके द्वारा मन को नियंत्रित किया जाए।

जब विचार प्रक्रिया मंत्र या यन्त्रों द्वारा नियंत्रित होती है तब चेतना अपने को विशुद्ध सच्चे स्वभाव में प्रकट करती है। जब तक चेतना की अनुभूति

अपने विशुद्ध रूप में नहीं होती, मन एक सापेक्ष जड़ता या निष्क्रियता की अवस्था में बना रहता है और वास्तविकता को समझ नहीं पाता। चेतना के समग्र विकास की अनुभूति साधक को तभी होती है जब मंत्रों द्वारा विचार प्रक्रियाओं के बादलों को नियंत्रित कर लिया जाता है।

इसलिए हमारे यहाँ यंत्रों या प्रतीकों की जो आकृतियाँ हैं वे हमारी चेतना के विकास की अवस्था के अनुरूप अत्यन्त सरल से अत्यन्त जटिल बन जा सकती हैं। किसी व्यक्ति का मन्त्र सहज रूप से एक बिम्ब उत्पन्न करता है। मन्त्र जप के समय मन में एक बिम्ब प्रकट होता है, चाहे वह वृत्त हो, तारा हो, वर्ग हो, त्रिभुज हो या अन्य आकृति। प्राय: मनुष्य समझ नहीं पाता कि ऐसा क्यों होता है, और ध्यान में यह सुन्दर हरा, नीला, गुलाबी प्रकाश कैसे आ गया। यही प्रतीक है जो मन्त्र जप के समय चेतना के क्षेत्र में उत्पन्न होता है।

मन की अवधारणा

चेतना के क्षेत्र में जो प्रतीक अभिव्यक्त होता है, उसका हम क्या करते हैं? यही धारणा का बिन्दु है। प्राय: हम ध्यान के लिए बैठते हैं और अपने को खाली करने का प्रयत्न करते हैं। हम सभी प्रकार के संवेदी और मानसिक पहचान भाव और अनुभव से पूर्णत: बचना तथा पलायन करना चाहते हैं। पर अपने मन की अनुशासनहीन प्रकृति के कारण हम पाते हैं कि विचारों में संघर्ष चल रहा है। मन शान्त नहीं हो पाता है और हम उसे बलपूर्वक शान्त करना चाहते हैं। अत: ध्यान के स्थान पर हम मानसिक तनाव का अनुभव करते हैं। मानसिक शान्ति एवं नीरवता के अनुभव के स्थान पर मन को पुन: अभ्यास में लगाने, विचारों को आने से रोकने, सांसारिक चिन्ता और परेशानियों को छोड़ देने के लिए अनवरत संघर्ष चलने लगता है।

अत: मन को एक बिन्दु पर संकेन्द्रित करने हेतु हम प्रतीक का उपयोग करते हैं। मानसिक बिखराव एवं विक्षेप के समय हम अपने को बार-बार उस एक बिन्दु पर लाते हैं। अपने अवधान को संकेन्द्रित करने हेतु वही दृश्य-बिन्दु बन जाता है। अदृश्य बिन्दु पर अपने अवधान को संकेन्द्रित करना अत्यन्त कठिन है। इसी कारण मन्त्र और यन्त्र, ध्वनि और प्रतीक ध्यान के लिए आवश्यक उपकरण हैं। अन्तर्निहित संभावना की अभिव्यक्ति के निमित्त अवचेतन और अचेतन मन की गहराइयों में प्रवेश करने की क्षमता इनमें हैं। मन के इन अज्ञात क्षेत्रों की अवधारणा विकसित करने की ये

वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ हैं। ध्वनि या बिम्ब पर एकाग्रता मानसिक तरंगों को प्रभावित करती है। यदि हम मानसिक-तरंग-प्रतिरूप को पुनर्संयोजित, पुनर्स्थापित और पुनर्निर्मित कर सकें, तब हम एक नये प्रकार की चेतना को अभिव्यक्त कर सकते हैं।

संयम – धारणा की सिद्धि

हम स्पन्दनों के महासागर से घिरे हैं जो एक ही साथ विभिन्न आयामों में स्पन्दित हो रहे हैं। जब हम मंत्र जप करते हैं तब हम प्रत्याहार की प्रक्रिया का प्रारंभ करते हैं। इसमें इन्द्रिय ज्ञान को क्रमशः समेटने की आवश्यकता होती है और तब हम अपने मन को एक बिन्दु पर संकेन्द्रित करने में सक्षम होते हैं। प्रत्याहार की प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने के उपरान्त मानसिक संकेन्द्रण पूर्ण होता है, फिर न किसी प्रकार का विक्षेप होता है न बिखराव। यही धारणा की स्थिति है, किसी प्रत्यय को धारण करने की मन की क्षमता।

उदाहरण के लिए, हम एक फूल पर धारणा कर रहे हैं, और कुछ समय के लिए हम फूल को अपने मन में धारण कर पाते हैं। पर, हम अपने को भूल नहीं पाते। हम उस समय देश और काल के प्रति सजग हैं। यही है धारणा। परन्तु ध्यान है उस प्रत्यय में मन की पूर्ण निस्पन्द सजगता। जब आप फूल के प्रत्यय को अपने मन में धारण कर लेते हैं और उस समय आप अपने या अपने ध्यान की प्रक्रिया के विषय में चैतन्ययुक्त नहीं रहते हैं तब घटित होता है ध्यान।

जब आप अपने मन में फूल के प्रत्यय को धारण कर लेते हैं और फूल आपके अन्दर एक इतना जीवन्त अनुभव बन जाता है कि बाहर के फूल और अन्दर के फूल में कोई अन्तर नहीं रह जाता, जब दोनों ही फूल एक सदृश दिखाई पड़ते हैं वही है समाधि। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों स्तरों की एक साथ साधना को 'संयम' कहते हैं। जब आप तीनों की एक साथ साधना कर सकते हैं, तब आपका मन रचनात्मक, सृजनात्मक और समर्थ हो जाता है। वह अपने में किसी भी विचार को अधिक शक्ति के साथ धारण कर सकता है और उसकी क्षमता, सामर्थ्य की कोई सीमा या व्यवधान नहीं रह जाता। जब आपका संयम सिद्ध हो जाता है, आप किसी भी वस्तु पर धारणा कर सकते हैं। जब मन धारणा में पूर्णता प्राप्त कर लेता है, तब वह सिद्धि या अतीन्द्रिय क्षमता प्राप्त करता है।

जीवन्त अनुभव

जिसे आप बाहर में देख सकते हैं उसे भीतर भी देख सकते हैं। बाहर में देखने हेतु आपको इन्द्रिय पथों का सहारा लेना पड़ता है, परन्तु उसी को अन्दर में देखने हेतु किसी इन्द्रिय माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। यह सामर्थ्य प्राप्त करना है। अतएव साधना के स्वरूप या गुण के विषय में चिन्ता न करें। बस, इतना आश्वस्त हो लें कि साधना इतनी शक्तिशाली है कि आप अन्दर में वस्तु को स्पष्टता से देख सकते हैं, मानो वह वास्तविक ही है। यदि आपकी साधना जीवन्त अनुभूति नहीं दे सकती तब आपको उस पर पुन: एक बार विचार करना चाहिए।

अन्त: और बाह्य अनुभव में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। दोनों एक सदृश होते हैं। परन्तु, बिना इन्द्रियों पर निर्भर हुए आपको यदि अन्त: अनुभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं तो आपका मन सशक्त हो जाता है। आप अपने प्रारब्ध और जीवन-दिशा को प्रभावित कर सकते हैं। अपने जीवन की परिस्थितियाँ बदल सकते हैं। तब ऐसा कुछ भी नहीं रह जाता जिसे आप प्राप्त नहीं कर सकते। वह मानसिक विकास की चरम अवस्था है जहाँ सभी को पहुँचना ही है। मन की वह अवस्था, अनुभव का वह स्वरूप ही परा-मन या अधिमानस है। यह परा मन धारणा का परिणाम है। ऐसा मन जिस विषय पर भी सोचता है, उसे जीवन्त अनुभव बना सकता है।

मानस दर्शन हेतु दिशा-निर्देश

धारणा की प्रारंभिक अवस्था में बाह्य वस्तु प्रतीक हो सकती है। अन्ततोगत्वा जब आपका प्रत्यक्ष ज्ञान अधिक सूक्ष्म होने लगता है, तब आपको आन्तरिक रूप से प्रतीक का मानस दर्शन करना चाहिए। आपको चिदाकाश में, बन्द आँखों के समक्ष, मन के आकाश में एक बिम्ब उत्पन्न करना चाहिए। यह आन्तरिक बिम्ब अधिक सूक्ष्म होता है तथा यह आपको और अधिक गहराई में ले जायेगा।

बहुत लोगों को प्रतीक का एक स्पष्ट बिम्ब धारण करने में कठिनाई होती है। या तो वे मानस दर्शन नहीं कर सकते या फिर बिम्ब ही विलीन हो जाता है। आपके साथ भी यदि ऐसा होता है तो निराश न हों। यह मात्र आपके मन की अवस्था का संकेत है। अशान्त मन से आन्तरिक बिम्ब का मानस दर्शन करना कठिन है। आप बिम्ब के विषय में सोच सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, परन्तु पूरी स्पष्टता से उसे अन्दर में देख नहीं सकते, जैसा आप बाहर में देख

लेते हैं। जैसे-जैसे आपका मन शान्त एवं स्थिर होता जाता है, बिम्ब का मानस दर्शन करना आपको क्रमश: सरल लगने लगेगा। जब मन पूर्णतया नीरव और एकाग्र हो जायेगा, तब आप अपने अतीन्द्रिय-प्रतीक का अन्तर्दर्शन स्थिर बनाये रख सकेंगे। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए नियमित अभ्यास आवश्यक है। परन्तु इसे एक ही बैठक में प्राप्त करने की अपेक्षा न रखें।

जब मन नीरव हो जाता है, आपको अतीन्द्रिय प्रतीक का उपयोग प्रारम्भ कर देना चाहिए। आप चेतना का एक प्रारूप (पैटर्न) बना लें, जिस पर आप अपनी सजगता को स्थिर कर सकें। जब एक अन्तरिक्ष यात्री आकाश में अन्वेषण करता है, वह अपनी स्थिति को पृथ्वी या सूरज से सदा जोड़े रखता है। आपको भी अपनी सजगता को प्रतीक से जोड़े रखना चाहिए। आपकी चेतना, जो एक विचार से दूसरे विचार पर खिसकती रहती है, एक आकृति पर केन्द्रित रहनी चाहिए। जब आप कुछ मिनटों तक, बिना दूसरे विचार पर खिसके, अपनी अविचल चेतना एक प्रतीक पर स्थिर रख सकेंगे तब अन्तर-दर्शन विकसित होगा।

यदि आप मानस दर्शन करना चाहते हैं, तो मन में निम्नांकित बिन्दुओं को धारण कर रखें–

- आपका प्रतीक आन्तरिक या बाह्य हो सकता है। जैसे-जैसे आपका बोध अधिक परिष्कृत होता जाये, आपको वैसे-वैसे सूक्ष्म, आन्तरिक अतीन्द्रिय प्रतीक का उपयोग करना चाहिए।
- आपका प्रतीक ऐसा होना चाहिए जिससे आपका मन अपने आप उससे तादात्म्य स्थापित कर ले, अर्थात् आपका प्रतीक बिना प्रयास आपके अवधान को आकृष्ट कर ले और उसे बाँध रखे।
- अपना प्रतीक नहीं बदलें। यदि आप बदलते हैं तो आपको अपने मन को दूसरे प्रतीक के अनुकूल बनना होगा और उसके अनुरूप अपने को ढालना होगा। इसमें समय और परिश्रम लगता है।
- अपनी बन्द आँखों के सामने प्रतीक के सुस्पष्ट बिम्ब का स्पष्ट मानस दर्शन करने की क्षमता विकसित करने का प्रयास करें। अभ्यास से यह स्वत: प्रकट होना चाहिए।
- यदि आपका कोई विशेष प्रतीक नहीं है, तब इस पुस्तक में दी गई विधियों के अनुसार ध्यान का अभ्यास करें। जब आप तैयार हो जायेंगे तो प्रतीक प्रकट हो जायेगा।

धारणा में व्यवधान

धारणा एवं मानस दर्शन की तकनीकों द्वारा नाड़ियों और अतीन्द्रिय शरीर स्थित चक्रों की शुद्धि हेतु धारणा की साधना की रूपरेखा विशेष रूप से तैयार की गई है। जब धारणा का अभ्यास होता है तो मन की शक्तियाँ एकाग्र होती हैं। जैसे-जैसे मानसिक विक्षेप कम होते हैं, आपके अतीन्द्रिय, सूक्ष्म एवं प्राण शरीर एक-दूसरे से समस्वरित एवं संरेखित होते जाते हैं। जब यह संरेखण होता है, तब आप बाह्य अनुभवों से आन्तरिक अनुभवों में प्रवेश करने लगते हैं।

जब आप धारणा में स्थिर हो जाते हैं तब आप बाह्य अनुभवों की सीमा पार कर जाते हैं और इसी समय आपकी प्रगति में बाधा डालने अनेक व्यवधान उपस्थित होने लगते हैं। इनमें दृश्य, कुण्डलिनी जागरण, कामुकता, बीमारी, मोहभंग, अतिसंवेदनशीलता, और अत्यधिक अभ्यास सम्मिलित हैं। ये तो अन्दर से उत्पन्न होने वाले व्यवधान हैं। इनके अतिरिक्त अन्य व्यवधान भी हैं, जो बाहर से उत्पन्न होते हैं। इनमें आते हैं– अत्यधिक मेलजोल, जीवन पद्धति एवं साधना में अनियमितता, असन्तुलित आहार।

दृश्य पहली बाधा है, जिसका सामना आप धारणा के मार्ग में करेंगे। आप पर लोकों की सुन्दर देवी, देवता, अप्सराओं को देखेंगे जो आपको साधना से विचलित करने आती हैं। दृश्य तो साँपों, सिंहों, बाघों, राक्षसों, और भूतों के रूप में भी आ सकते हैं। यदि इन परिस्थितियों में आप केवल शान्त रह सकें, अप्रभावित रह सकें तो आपकी साधना अबाधित रूप से प्रगति करेगी।

ऐसे वर्णन मिलते हैं कि गहन साधना काल में विभिन्न संतों, रहस्यवादियों और पैगम्बरों को ऐसे दृश्यों का अनुभव हुआ है। जब ईसा मसीह मरुभूमि में चालीस दिनों तक वास कर रहे थे, तो उन्हें ऐसे दृश्यों का अनुभव हुआ था। उसी प्रकार महात्मा बुद्ध को भी बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त होने के पूर्व अनेक दृश्य दिखाई पड़े थे।

कुण्डलिनी जागरण दूसरी कठिनाई है, जो धारणा काल में उत्पन्न होती है। वस्तुत: आप धारणा की अवस्था में तब तक प्रवेश नहीं कर सकते जब तक कुण्डलिनी का जागरण एक सीमा तक नहीं होता। विभिन्न चक्रों पर धारणा की जाती है। अत: यह भी एक सीमा तक जागरण का संकेत है, जो तब तक नहीं होता जब तक कुण्डलिनी सुषुम्ना पथ में नहीं चढ़ती है। जैसे ही कुण्डलिनी ऊर्जा चक्रों का भेदन प्रारम्भ करती है, धारणा प्रारम्भ होती है। धारणा की साधना में यदि कुण्डलिनी का अनुभव तीव्र हो, तो आपको साधना जारी रखने हेतु समर्थ गुरु एवं अनुकूल परिवेश की आवश्यकता होगी।

कामुकता एक अन्य बाधा है जिसका अनुभव व्यक्ति को धारणा के मार्ग में होता है। जब धारणा होने लगती है तब निम्नस्थ केन्द्रों में स्वत: तीव्र काम भावना उत्पन्न होती है। कभी तो इसे सहन किया जा सकता है, पर धारणा में यह बार-बार उत्पन्न होने लगती है। जैसे-जैसे धारणा की साधना में प्रगति होती है, मन नियंत्रित होता जाता है, प्राण और चक्र शुद्ध होते जाते हैं। इस परिशुद्धि के कारण वीर्य अधिक उत्पन्न होता है। इसके कारण कामुकता बढ़ जाती है। जब धारणा की साधना में कामुकता उत्पन्न हो तो अपना मार्ग प्रशस्त करने हेतु आपको समर्थ गुरु के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होगी।

बीमारियों से सामना एक अन्य व्यवधान है, जो धारणा के मार्ग में आयेगा। प्राय: निम्न अवस्थाओं में शारीरिक विकार का व्यवधान उत्पन्न होता है। सामान्यत: जीवन की बहिर्मुखी अवस्था में रजोगुण प्रबल रहता है। धारणा की साधना से शारीरिक शुद्धि की प्रक्रिया तेजी से प्रारम्भ होती है। फलस्वरूप शीघ्रातिशीघ्र निष्कासित हो जाने के लिए अस्वास्थ्यकर तत्त्व उत्पन्न होने लगते हैं। वे जो पहले सुषुप्त थे, बीमारी का रूप ले सकते हैं।

जब बीमारी शरीर में प्रकट होती है तो यह शुद्धि की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप होती है। इसलिए आप चिन्ता न करें। ध्यान की प्रक्रिया के कारण बीमारियाँ स्वयं शान्त हो जायेंगी। अत: ऐसे समय में धारणा के अभ्यास को न छोड़ें, वरन् उन्हें जारी रखें। फिर भी इन परिस्थितियों में दवा से बचें क्योंकि यह शुद्धि-प्रक्रिया को बाधित कर देगी। गरिष्ठ और घी-तेल युक्त भोजन न करें, वरन् हल्का और सादा भोजन लें या केवल दूध और फल लें।

मोहभंग– धारणा के मार्ग में साधना से मोहभंग हो जाना भी एक अन्य बाधा है। इस अवस्था में आपकी प्रगति का सही-सही अनुमान करना कठिन

होगा। उत्साह के कारण, यह सोचकर कि धारणा शीघ्रता से सिद्ध की जा सकती है, आप अपनी उपलब्धि को अधिक ही मान ले सकते हैं। परन्तु आगे बढ़ने पर यह सोचकर आपको मोहभंग हो जायेगा कि धारणा की सिद्धि इतनी सरल नहीं है। मन को स्थिर करने और धारणा एवं मानस दर्शन को विकसित करने और बिम्बों पर नियंत्रण प्राप्त करने में समय लगता है।

जब अभ्यास ठीक से नहीं चलेगा, तब आप अपनी प्रगति के विषय में परेशान हो जा सकते हैं और संदेह करने लगेंगे कि कोई लाभ हो भी रहा है या नहीं। दूसरी ओर, जब कुछ सफलता मिलेगी तब आप अधिक प्रसन्न हो जायेंगे कि आप अब समाधि के निकट पहुँच गये हैं। साधना के क्रम में ऐसे उतार-चढ़ाव आयेंगे। साधना के सम्बन्ध में ऐसी भ्रान्तियों से आप न निराश हों ओर न अति उत्साहित हों। इन उतार-चढ़ावों के प्रति निरपेक्ष भाव रखकर धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहने से ही वास्तविक प्रगति होगी।

अति संवेदनशीलता– जब एकाग्रता का विकास होता है तो अति संवेदनशीलता में भी वृद्धि हो जाती है। एक पिन का गिरना आपके मस्तिष्क में बिजली की कड़क सा लगेगा। विशेष प्रकार की गंध, ध्वनि, दृश्य और भाव, जिन पर आप कभी पूर्व में ध्यान भी नहीं देते थे, आपको क्षुब्ध एवं उद्विग्न कर देंगे। ये अवस्थाएँ हैं जिन्हें आपको पार करना होगा, पर यदि आप में दृढ़ता है तो आपको सफलता अवश्य मिलेगी।

अनेक प्रकार के अभ्यास भी धारणा में एक बाधा है। एक अभ्यास करना, फिर उसे छोड़ कर अन्य नया अभ्यास करने में आपके बहुमूल्य समय और ऊर्जा के नष्ट होने का भी संकट है। कोई भी अभ्यास जब आप प्रारम्भ कर देते हैं, तब जब तक उसके अन्त तक न पहुँचें, उसे न छोड़ें। जब तक आप उसे पूरा न कर लें, उसे न छोड़ें और न नया अभ्यास प्रारम्भ करें। जब तक एक अभ्यास में सिद्धि न मिले, तब तक उसी में दृढ़ता से लगे रहना ही उत्तम है। थोड़ी देर एक अभ्यास, फिर थोड़ी देर दूसरा अभ्यास करने से आप ध्यान तक नहीं पहुँच पायेंगे। अलग-अलग और भिन्न-भिन्न अभ्यास आपको उद्दीपित भले कर दें, पर उनका अन्त भी वहीं हो जायेगा। यह वैसा ही होगा कि एक व्यक्ति सौ कुएँ खोदे और उसे जल कहीं न मिले। प्रत्येक बार वह एक स्थान पर कुछ फीट तक खोदने के उपरान्त, नयी जगह पर नयी खुदाई शुरू कर दे। इसलिए एक अभ्यास को ही पकड़िये और उसमें गहरे प्रवेश कीजिये, तभी आपको लक्ष्य प्राप्त होगा।

अत्यधिक सामाजीकरण या मेल-जोल भी धारणा के अभ्यास की एक बाधा है। यदि आप गहन साधना में जाना चाहते हैं तो आपको अपने सामाजिक सम्पर्क को कम करना पड़ेगा। विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ संगति मन को विक्षिप्त करती है। हर प्रकार का संवेदी विचलन, उत्तेजना और नशा धारणा के पथ को अवरुद्ध करता है।

जीवन प्रणाली एवं साधना में अनियमिता सबसे बड़ी बाधा है और अनेक व्यक्तियों के लिए इस पर विजय प्राप्त करना सबसे अधिक कठिन कार्य है। धारणा की सिद्धि के लिए मन और शरीर को संतुलित होना चाहिए, स्थिर होना चाहिए। अनियमितता, असंतुलन और बेचैनी उत्पन्न करती है। भोजन का समय, निद्रा का समय, काम का समय, मनोरंजन और ध्यान का समय, सबको नियमित रखना महत्त्वपूर्ण है।

एक बार आपने अपना कार्यक्रम नियमित बना लिया, फिर उससे विचलित न हों। नियमित जीवन प्रणाली और साधना आध्यात्मिक प्रगति और धारणा का आधार है।

असंतुलित भोजन भी एक बाधा है। पाचन प्रणाली अत्यन्त कोमल है। जब हम चेतना की गहन अवस्थाओं में जाते हैं, पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। अत: धारणा में प्रगति के लिए आप न अधिक खायें और न अधिक उपवास करें। नियमित सात्त्विक भोजन अत्यावश्यक है। जैसे-जैसे आपका शरीर साधना से परिशुद्ध होता जाता है, उस अवस्था में थोड़ी-सी भी अनियमितता आपका संतुलन बिगाड़ देगी। जब तक आपको पूर्ण नियंत्रण प्राप्त नहीं हो जाता, एक कौर ज्यादा या कम भोजन आपकी सारी व्यवस्था बिगाड़ देगा। पूर्ण नियंत्रण प्राप्ति के बाद आप चाहे जो कुछ खा सकते हैं।

तनाव भी धारणा की बाधाओं में एक है। यह सदा स्मरणीय है कि धारणा तनाव की अवस्था नहीं है। मन की सच्ची एकाग्रता विश्रान्त व्यक्तित्व में ही प्राप्त हो सकती है। तनावग्रस्त व्यक्ति एकाग्र नहीं हो सकता है। जब आप सहज और स्थिर भंगिमा में रहना एवं शरीर तंत्रिकाओं, मस्तिष्क और मन को विश्रान्त रखना सीख लेते हैं, तभी धारणा का अभ्यास प्रारम्भ करें।

वस्तुत: विश्रान्ति और धारणा परस्पर सम्बन्धित हैं। अपने शरीर के किसी अंग विशेष को तब तक आप विश्रान्त नहीं कर सकते जब तक उस पर अपना मानसिक अवधान संकेन्द्रित नहीं कर लेते। उसी प्रकार अपने मन को आप तब तक संकेन्द्रित नहीं कर सकते, जब तक आप पूर्ण विश्रान्त नहीं होते।

एक तनावग्रस्त मन को एकाग्र करना वैसा ही है, जैसे एक अत्यन्त तनी हुई डोरी को और अधिक तानना। इससे एकाग्रता के स्थान पर विखण्डन और मानसिक स्वास्थ्य विकार ही हाथ लगेगा। अत: क्रमबद्ध ध्यान-प्रक्रिया द्वारा ही एकाग्रता का धीरे-धीरे विकास करना चाहिए। जब आप थके या तनावग्रस्त हों, तब बलात् धारणा का अभ्यास न करें।

पेशीय और तन्त्रिका तनाव का धारणा से कोई लेना-देना नहीं है। अभ्यास में सफलता शारीरिक संवेदना या भावना से नहीं मापी जा सकती है। कुछ लोग जब भ्रू-मध्य में या उसके पीछे तनाव अनुभव करते हैं, तब सोचते हैं कि वे धारणा कर रहे हैं, पर वास्तव में वे तो अपने लिए सरदर्द या अन्य परेशानी उत्पन्न कर रहे हैं। तनाव रहित अवधान आवश्यक है। धारणा का अभ्यास सदा रंचमात्र भी तनाव के बिना होना चाहिए। मन पर नियंत्रण किसी प्रकार के जोशीले प्रयास से नहीं आ सकता, वरन् वह अविरल, शान्त, नीरव अभ्यास और उत्तेजना एवं अशान्ति से बचकर ही प्राप्त हो सकता है।

यदि आप धारणा की साधना में गम्भीर हैं, तो ये कुछ प्रमुख बिन्दु हैं, जिन्हें आपको देखना और जिनके प्रति आपको सजग रहना होगा। यदि आप इस साधना में काफी आगे तक नहीं भी जाना चाहते हों, फिर भी आपको इनसे अपार लाभ होगा। यह आपकी नाड़ियों को शान्त करेगा, मन को स्पष्टता प्रदान करेगा, आपके स्वभाव और स्वास्थ्य में सुधार लायेगा, आपकी आयु में वृद्धि करेगा तथा जीवन के प्रति आपको एक नयी दृष्टि प्रदान करेगा।

यौगिक, तान्त्रिक एवं औपनिषदिक धारणा

प्रस्तुत पुस्तक में यौगिक, तान्त्रिक और औपनिषदिक धारणा की अनेक संतुलित साधनायें दी जा रही हैं। ये साधनायें प्रशिक्षण के उच्चतर स्तर की हैं, जिन्हें आज तक सामान्य लोगों के समक्ष प्रकट नहीं किया गया है। अभी इन्हें यहाँ देने का एक कारण है कि अनेक उच्च एवं गम्भीर साधकों ने ध्यान के गहन आयामों में मार्ग-दर्शन की आवश्यकता प्रकट की है। आज अनेक संस्थाओं में जिन प्रारम्भिक विधियों की शिक्षा दी जा रही है तथा जिन उन्नत विधियों का गुरु-शिष्य परम्परा में सीधे सम्प्रेषण के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शिक्षण नहीं होता, उनके मध्य जो एक अन्तराल है उसमें एक सेतु निर्माण या सम्बन्ध स्थापित करने में साधकों को इन विधियों से सहायता मिलेगी।

यौगिक और तान्त्रिक धारणा

चक्र शुद्धि और अजपा धारणा के अभ्यासों को, जिनका यहाँ विस्तार से उल्लेख किया जा रहा है, मंत्र योग का अनिवार्य अंग होने के अतिरिक्त उपनिषदों में भी प्रमुखता प्राप्त है। एक सौ आठ उपनिषदों में पन्द्रहवें, 'हंस उपनिषद्' में दस अजपा धारणाओं का वर्णन है और इस प्रकार ये 'अथर्व वेद' का अंग हो जाती हैं।

अजपा जप साधनाओं के दो स्तर होते हैं। प्रत्याहार के स्तर पर चेतना को अन्तर्मुखी बनाने के लिए इस विधि में शारीरिक क्रियाओं, जैसे–श्वसन प्रक्रिया के समान स्थूल बाह्य पक्षों को सम्मिलित करते हैं। पुन: स्वप्रेरित मानसिक विक्षेपों को खत्म करने के लिए मंत्र जोड़े जाते हैं। परन्तु

धारणा स्तर पर इस साधना को अत्यधिक तीव्र किया जाता है। यहाँ पर गहरी एकाग्रता मंत्र, चक्र एवं नाड़ी पर रहती है जिसके कारण अतीन्द्रिय अभिव्यक्तियाँ, इन्द्रियों एवं जगत् की अन्तर्निहित अनुभूतियाँ क्रमश: समाप्त होने लगती हैं।

यहाँ जो दस साधनायें दी गई हैं वे धारणा समूह में अजपा-जप की उन्नत स्तर की साधनायें हैं। परन्तु, यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि जब तक प्रत्याहार समूह की साधनाओं को सिद्ध नहीं कर लिया जाता, तब तक धारणा समूह की इन साधनाओं के लिए प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। अजपा जप के इन अभ्यासों को इस प्रकार संगठित किया गया है कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना मार्गों में श्वास और मंत्र पर की गई एकाग्रता ही चक्रों को खोलती है, एवं मन को नीरव एवं नियंत्रित करने के कठिन प्रयासों के बिना ही सहज रूप से धारणा की अवस्था ला देती है।

त्राटक

अजपा धारणा के पश्चात् हम त्राटक पर आते हैं, जिसमें एक बिन्दु को अपलक लगातार देखते रहना होता है। अपनी क्षमता और प्रवृत्ति के अनुसार त्राटक के इन अभ्यासों को क्रमश: किया जा सकता है। तांत्रिक ही नहीं, औपनिषदिक परम्परा में भी त्राटक एक मौलिक धारणा तकनीक है। यहाँ पर इसे चार स्तरों में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो धारणा के समस्त विस्तार को– बाह्य एवं आन्तरिक से लेकर शून्य दृष्टि तक, जो कि ध्यान-साधना का चरम बिन्दु है, समाहित कर लेता है।

त्राटक के अभ्यास भी दो समूहों में आते हैं–प्रत्याहार और धारणा। प्रत्याहार त्राटक में दीप शिखा, प्रतीक, यन्त्र, मण्डल, जैसे बाह्य विषय पर लगातार देखना या योग ग्रन्थों में वर्णित अन्य त्राटक अभ्यास भी आते हैं। जब हम रूप के प्रति सजग होते हैं तो उस समय होने वाले मन के बिखराव को नियंत्रित करना त्राटक का लक्ष्य होता है। इस रूप की सजगता पर नियन्त्रण ही त्राटक का उद्देश्य है। धारणा के स्तर पर रूप को हम भीतर में देखते हैं। विधि समान ही है, परन्तु इसमें बाह्य रूप पर अपनी दृष्टि संकेन्द्रित करने के स्थान पर हम अपने आन्तरिक दृष्टि-बोध को जाग्रत करते हैं। इस विधि में, जो कुछ मन में दृश्य प्रभावों के रूप में संचित है, वह क्रमश: बाहर निकलता है, जब तक अन्तत: शून्य दृष्टि नहीं हो जाती।

औपनिषदिक धारणा

योग उपनिषदों में आकाश धारणा की अनेकानेक विधियाँ और स्तर वर्णित हैं। केवल मन को किसी वस्तु या बिन्दु पर स्थिर रखना ही औपनिषदिक धारणा नहीं है। यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है, जिसमें मन को विभिन्न आन्तरिक, मध्य, एवं बाह्य अनुभूतियों से ले जाया जाता है। इन विधियों में भिन्न-भिन्न मानस दर्शन तकनीकों का उपयोग होता है, जिन्हें आकाश के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है।

वैदिक परम्परा में आकाश, ध्यान का एक अत्यन्त प्रभावशाली आधार है, अवलम्बन है। आकाश के प्रतिबिम्ब पर स्थित रहने से, उसका चिन्तन करने से सहज ही मन का विस्तार हो जाता है। विस्तार का उलटा है संकुचन, जिससे असुविधा और घबराहट होती है। आकाशीय विशालता ऊर्जा और शक्ति का स्रोत है। असीम शून्य से ही कर्म के सभी संवेग उत्पन्न होते हैं।

मन में सामान्य रूप से विचार, भावनाएँ और कामनाएँ अनवरत उठती रहती हैं, जो कि सागर की सतह पर तैरती फेन राशि के समान हैं। हम फेन राशि को तो देख सकते हैं, पर सागर को नहीं देख पाते, यद्यपि वह वहाँ है ही। यह फेन और बुलबुले हमारी मानसिक सजगता के प्रतीक हैं। असीम आकाश पर चिन्तन करने से मन उस सागर के प्रति चैतन्य हो जाता है, जो कि अनन्त चेतना है।

योग उपनिषद् धारणा के तीन स्तरों की चर्चा करते हैं–(1) बहिर्लक्ष्य (2) मध्य लक्ष्य और (3) अन्त: लक्ष्य। इन्हीं तीन स्तरों के अनुसार ही औपनिषदिक धारणाओं के विभिन्न अभ्यास सिखाये गये हैं। कुछ अभ्यासों में तीनों स्तर एक साथ समाहित भी हैं। यद्यपि अभ्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है, तथापि अच्छा यही होगा कि अपनी व्यक्तिगत क्षमता और विकास स्तर के अनुसार प्रत्येक को क्रमश: सिद्ध किया जाय। आप एक अभ्यास प्रारम्भ कीजिये और दूसरे अभ्यास को शुरू करने के पूर्व उसे ही क्रमश:, प्रत्येक चरण का अभ्यास करते हुए सिद्ध कीजिए।

बाह्य स्तर

धारणा का प्रथम स्तर है बहिर्लक्ष्य। इसमें धारणा की अवस्था प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को बाह्य लक्ष्य पर संकेन्द्रण करना होता है। बहिर्लक्ष्य की पहली विधि है भूचरी मुद्रा, जिसका अर्थ है शून्य में एकटक देखना। पहले हथेली

को नाक के सामने क्षैतिज रूप में रखते हैं और अपनी कनिष्ठा के नाखून पर संकेन्द्रण करते हुए उसी पर आँखों को स्थिर कर तीव्रता से देखते हैं। फिर धीरे-धीरे हथेली को हटा लेते हैं और जितनी देर तक संभव हो सके आँखों की स्थिति वहीं बनाये रखते हैं।

भूचरी मुद्रा बहिर्लक्ष्य की साधना है। आँखों को शून्य में स्थिर रखना अत्यन्त कठिन है। संकेन्द्रण के लिए आँखों को कोई आधार चाहिए, शून्य में आँखों को संकेन्द्रित करना कठिन है। फिर भी, जितनी ही अधिक देर तक आप आँखें शून्य बिन्दु पर संकेन्द्रित रखते हैं, इन्द्रियजन्य निवेशों को नियंत्रित करना तथा मानसिक अवधान में विक्षेपों को भी रोकना उतना ही सरल हो जाता है। योग ग्रन्थों में उल्लेख है कि स्थिति में पूर्णता के उपरान्त आँखें बन्द करने पर नीला प्रकाश दिखाई पड़ता है।

प्रथम चरण में भूचरी मुद्रा में सन्मुख दृष्टि अभ्यास के अतिरिक्त आकाशी मुद्रा में उर्ध्व दृष्टि का अभ्यास है, जो कि दूसरा अभ्यास है। आकाशी मुद्रा में व्यक्ति सिर को थोड़ा पीछे झुका लेता है और ऊपर आकाश में खुली आँखों से एकटक देखता है। इस अभ्यास को शाम्भवी मुद्रा के साथ मिलाकर भी किया जा सकता है जिसमें आज्ञा चक्र के स्तर पर दोनों भौहों के मध्य एकटक देखते हैं।

यद्यपि ये सभी अभ्यास स्वभाव से दृष्टिगत लगते हैं, पर आँखों के गोलकों की स्थिति के अनुसार विभिन्न नाड़ियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरणस्वरूप, कुण्डलिनी योग में कहा गया है कि मूलाधार चक्र को जाग्रत करने के लिए नासिकाग्र पर दृष्टि केन्द्रित करने से नाड़ियों में भिन्न संवेदन उत्पन्न होते हैं। ये नाड़ियाँ ललाट के क्षेत्र में एक-दूसरे से, साथ ही साथ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों से मिली हैं। अन्तिम तीनों नाड़ियाँ आगे चलकर मूलाधार में विशेष उत्तेजना उत्पन्न करती हैं। ये बहिर्लक्ष्य की तकनीकें हैं, जो नाड़ियों को उत्तेजित करती हैं तथा विभिन्न चक्रों को जाग्रत करने में सहायता प्रदान करती हैं।

बहिर्लक्ष्य का उद्‌देश्य होता है विभिन्न नाड़ियों की जागृति। जिस प्रकार भूचरी मुद्रा, जो कि प्रथम अभ्यास है, सिद्ध हो जाने पर नीला प्रकाश दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार स्वर्णिम प्रकाश दिखने पर माना जाता है कि आकाशी मुद्रा सिद्ध हो गई। नीले एवं स्वर्णिम प्रकाश का तात्पर्य क्या है? यह इड़ा और पिंगला नाड़ियों की जागृति का प्रमाण है, नीला प्रकाश इड़ा का और स्वर्णिम प्रकाश पिंगला का प्रतीक है? इस प्रकार धारणा के बहिर्पक्ष में मन को

अन्तर्मुखी करने, मन को एक बिन्दु पर स्थिर करने, एकाग्रता की स्थिति को तीव्र करने एवं इड़ा और पिंगला नाड़ियों की जागृति का प्रयास किया जाता है।

मध्य स्तर– आकाश धारणा

धारणा का अगला चरण है मध्य लक्ष्य। इस चरण में आकाश की अनुभूति पर मन को संकेन्द्रित करने का प्रयास करते हैं। योग में सामान्यत: आकाश के तीन क्षेत्रों की चर्चा आती है, जो इस शरीर में हैं। ये तीन स्थूल आकाश हैं–

1. *चिदाकाश*– चित्त या चेतना का आकाश है जिसे मस्तिष्कीय क्षेत्र में, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार चक्रों के मध्य अनुभव किया जाता है।

2. *हृदयाकाश*– हृदय का आकाश है, जिसे विशुद्धि, अनाहत और मणिपुर चक्रों के मध्य वक्षीय प्रदेश में अनुभव किया जाता है।

3. *दहराकाश*– अधो क्षेत्र का आकाश है जिसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर चक्रों के मध्य अनुभव किया जाता है।

धारणा साधना की जिन विधियों का यहाँ सामान्य रूप में वर्णन किया गया है, वे इन्हीं तीनों क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं, जिनका इस शरीर में स्थूल रूप से अनुभव या दर्शन किया जाता है। इनके नाम हैं– चिदाकाश धारणा, हृदयाकाश धारणा और दहराकाश धारणा।

चिदाकाश धारणा– ध्यान की वह विधि जिसमें चिदाकाश में आकाश की सजगता उत्पन्न की जाती है, यथा– अभिव्यक्त होने वाले रंगों, आकृतियों और प्रतीकों को देखना, मानसिक बिम्बों को उत्पन्न एवं विलीन करना और बिम्बों को स्वत: उत्पन्न होने देना। मन जैसे-जैसे सूक्ष्म होता जाएगा, विभिन्न आकृतियों, ज्यामितीय आकाश, यन्त्रों एवं मण्डलों का दर्शन होगा। ये मन की प्रत्यक्ष बोध की स्थितियाँ हैं। कभी-कभी कुछ दिखाई नहीं देता है। कुएँ से जल निकालने के लिए आपको लम्बी रस्सी की आवश्यकता पड़ती है। अब यदि जल 10 मीटर गहराई में है और आपकी रस्सी 5 मीटर की ही है तो आप पानी नहीं निकाल सकेंगे। अत: यदि आपको चिदाकाश में कुछ दिखाई नहीं पड़ता है, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वहाँ कुछ नहीं है। सभी स्तरों पर कुछ न कुछ अनुभूतियाँ सदा होती हैं, कोई स्तर अनुभूति विहीन नहीं है। फिर भी यह समझ लेना है कि आपके प्रयास की तीव्रता ही यह सुनिश्चित करेगी कि आप कितनी दूर और कितनी गहराई तक जा सकते हैं। यह सिद्धान्त योग की सभी विधियों और पक्षों पर लागू होता है।

हृदयाकाश धारणा– ध्यान की एक वैदिक साधना है जिसमें प्रज्ञा, तेजस और वैश्वानर, तीन शरीरों का उपयोग होता है। इस प्रक्रिया में हृदय में प्रकाश की अनुभूति होती है। अनेक उपनिषदों में हृदयाकाश धारणा विधि का वर्णन मिलता है। यह विधि भावना एवं संवेग की तीव्रता, भावनाओं की उत्पत्ति, भावनाओं के रंग, भावनाओं में परिवर्तन तथा भावनाओं से भी परे के आयामों से सम्बन्ध रखती है। ये सजग भावनायें नहीं हैं, जिनका दैनिक जीवन में सामान्यत: अनुभव होता रहता है, वरन् गहरे अवचेतन भाव हैं, जो बहुत तीव्र होते हैं। मन के अनुकूलन को भंग करने के लिए इन भावनाओं का अनुभव करना है और अपने जीवन में उतारना है। ध्यान के मनोचिकित्सात्मक पक्ष का मूल इस हृदयाकाश धारणा में ही है।

दहराकाश धारणा– निम्न प्रदेशों के आकाश पर की गयी एकाग्रता है जो कुण्डलिनी साहित्य में वर्णित विधियों पर आधारित है। इस अभ्यास में मूलाधार, स्वाधिष्ठान या मणिपुर क्षेत्र में किसी विशेष बिम्ब पर एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है। व्यक्ति एक कमल, किसी एक रंग, एक प्रतीक, एक देवता, एक पशु या एक तत्त्व का दर्शन करता है। चक्रों की विस्तृत सजगता ही दहराकाश धारणा है।

व्योम पंचक धारणा– पाँच सूक्ष्म आकाश

चिदाकाश, हृदयाकाश और दहराकाश, तीन स्थूल आकाशों के पश्चात् हम व्योम पंचक, अर्थात् पाँच सूक्ष्म आकाशों पर आते हैं। इन पाँच सूक्ष्म आकाशों की अनुभूति अचेतन एवं उसके भी परे क्षेत्रों में होती है। दहराकाश, हृदयाकाश और चिदाकाश की अनुभूति चेतन और अवचेतन में होती है। व्योम पंचक इन पाँच आकाशों को कहते हैं– गुणरहित आकाश, परमाकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश।

गुणरहित आकाश– ऐसा आकाश है जिसमें गुणों का अभाव हो। शास्त्रों में जैसा वर्णन है, इस आकाश में अन्तिम अनुभव की अवस्था में प्रात:कालीन सूर्य या अग्नि की लपट दिखाई देती है, इससे गुणरहित आकाश क्या है इसका कुछ अनुमान होता है। ऐसा देखा जाता है कि तीनों आकाशों के अनुभवों के एवं जीवन के चेतन और अवचेतन धरातलों के परे जाने के बाद अचेतन धरातल पर प्रज्ञा पुरुष, या प्रज्ञा व्यक्तित्व का दर्शन प्रकाश पिण्ड के रूप में होता है।

अग्नि या सूर्य के प्रकाश का वलय, जो प्रकाश पिण्ड को प्रस्तुत करता है, अभिव्यक्त ज्ञात गुणों एवं शारीरिक तथा मानसिक आयामों के परे है। यह

शारीरिक एवं मानसिक गुणों के भी परे है। अधिक समय तक इस दर्शन या दृश्यानुभूति को बनाये रखना ही गुण-रहित आकाश का अनुभव है। प्रज्ञा का दर्शन अनैच्छिक नहीं, ऐच्छिक दर्शन है। जिस प्रकार हम गुलाब या अन्य किसी वस्तु की जब चाहे कल्पना कर सकते हैं, उसी प्रकार यह दर्शन भी ऐच्छिक दृश्यानुभूति बन जाता है।

परमाकाश– परमाकाश का वर्णन गहरे अन्धकारमय शून्य के रूप में किया जाता है, जिसमें टिमटिमाते सितारे के समान प्रकाश होता है। बोध की एक अवस्था होती है जिसे हम शून्य या शून्यता कहते हैं। यहाँ हम प्रकाश, बोध एवं ज्ञान के पूर्ण अभाव का अनुभव करते हैं, मात्र एक छोटे से तारे या प्रकाश बिन्दु के रूप में सजगता वर्तमान रहती है। यह सजगता स्वयं में पूर्ण होती है, छितरायी हुई या प्रसारित नहीं होती, अपितु सजगता का अटल ज्योतिर्मय बिन्दु होता है। इससे ध्यान की एक प्रक्रिया विकसित की गई है जिसे हम शून्य धारणा कहते हैं। इसके बाद एक ऐसा बिन्दु आता है जब बाह्य एवं आन्तरिक सजगता का पूर्ण लोप हो जाता है और मात्र अभिन्न सजगता वर्तमान रहती है। यह परमाकाश की अनुभूति की अवस्था है।

महाकाश– का स्वरूप दोपहर के चमकते सूर्य के मध्य भाग के समान होगा, जिस पर आँखें न टिक सकें। सूर्य के मध्य भाग में पहुँच कर उसकी चमक आप नहीं देख सकते हैं। शून्य की यह अवस्था विकसित हो रही है। प्रारम्भ में पूर्ण अंधकार था, जिसमें प्रकाश का एक कण था, जो सजगता का प्रतीक था। उस प्रकाश कण की पहचान ही सजगता को भी देखने वाला द्रष्टा है। परन्तु यहाँ द्रष्टा का सजगता में लय हो जाता है जिससे सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही सजगता में समाहित हो जाता है। यह सूर्य का केन्द्र हो जाने जैसा है, जो प्रकाश और चमक से घिरा है। यही है महाकाश।

तत्त्वाकाश– तत्त्वों का आकाश है। पर यहाँ तत्त्व का तात्पर्य पाँच स्थूल तत्त्वों– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से नहीं है। यहाँ तत्त्व है वह सार या बीज, जिससे ये तत्त्व उत्पन्न होते हैं। आकाश में भी ये तत्त्व सुषुप्तावस्था में रहते हैं, अत: वहाँ कोई क्रिया, कोई गति नहीं होती जिसका बाहरी विस्तार हो। वहाँ पूर्ण नीरवता, निस्तब्धता है, जहाँ प्रत्येक क्षमता अपने आप में केन्द्रित रहती है। इसलिए वहाँ कोई हलचल नहीं है, न वहाँ कोई ऐसा बीज ही है जिसमें कामना के रूप में कोई क्रिया उत्पन्न हो। इस आकाश में द्वैत

की अवधारणा समाप्त हो जाती है, नाम, रूप और भाव से सम्बन्धित समस्त अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं। बस परम नीरवता रहती है।

सूर्याकाश– आत्मा या सूर्य का प्रभासित आकाश है, जो शुद्ध एवं निरंजन है। सूर्य का अर्थ यहाँ पर आत्मा भी है, जो आन्तरिक, स्व-प्रकाशित तत्त्व एवं ज्योति है। सूर्य या आत्मा का आकाश प्रकाश का स्रोत है, जो सृष्टि की प्रत्येक दृश्य या अदृश्य वस्तु में अभिव्यक्त होता है। यह दृश्य और अदृश्य दोनों है। यह आकाश स्थायी सत्य है और यह तत्त्वों द्वारा प्रकाशित रहता है। यह सृष्टि काल के शुद्ध तत्त्वों को प्रस्तुत करता है।

ये ही व्योम-पंचक या पाँच सूक्ष्म आकाश हैं, जिनके प्रति हम लक्ष्य धारणा के मध्य स्तर में सजग बनते हैं।

धारणा का अन्तः स्तर

धारणा का अगला चरण है अन्तर्लक्ष्य। यहाँ धारणा में अन्तर्लक्ष्य की अभिलाषा होनी चाहिए। इस चरण को धारणा का प्रारम्भिक स्तर कह सकते हैं, क्योंकि इस अवस्था में मानसिक चेतना एवं एकाग्रता उन अनुभवों से परे चली गयी हैं, जो चेतन और अवचेतन बोध से उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति ने उन्हें स्वीकृत कर लिया है और धारणा के अन्य धरातल में प्रवेश कर गया है, जहाँ अतीन्द्रिय चेतना सक्रिय हो जाती है।

प्रारम्भ में मानसिक सजगता, ज्ञान और बोध चिदाकाश में उत्पन्न दृश्यों को पहचानते समय सक्रिय हुए थे। हृदयाकाश में उठते भावों को अनुभव करना एवं उनमें मन को विलीन करना तथा दहराकाश में व्यक्तित्व की अतीन्द्रिय संरचना को देखना मानसिक सजगता के गुण हैं। यहाँ तक तो मन अवधान की स्थिति में था। अवधान का अर्थ है सजग तनाव की स्थिति। प्रारम्भ में जो प्रयास किया गया उसने मानसिक सजगता और मानसिक क्षमताओं को एकदम शीर्ष पर रखा। मन की इस शीर्ष अनुभूति के साथ तीन आकाशों के गहन पक्षों में प्रवेश करते हुए अन्तिम आकाश में पहुँचकर व्योम पंचक की अनुभूतियों के समय चेतना सदा सतर्क अवस्था में रहती है।

धारणा में द्रष्टा भाव पर अधिक बल दिया जाता है, एवं यह द्रष्टा क्षमता क्रमश: सूक्ष्म होती जाती है। बाह्य वातावरण एवं इन्द्रियों की अन्योन्य अन्तर्क्रिया से जो विक्षेप उत्पन्न होते हैं, उन्हें द्रष्टा भाव द्वारा कम किया जाना संभव है। अत: मन को जब अवधान की अवस्था से हटाया जाता है तब अति

सहज एवं स्वाभाविक अतीन्द्रिय चेतना का अवतरण होता है। सजग होना एवं अतीन्द्रिय अनुभूतियों पर मन को संकेन्द्रित करना ही धारणा का अन्तिम चरण और ध्यान का प्रथम चरण है। इस चरण में तीन स्तर या सीमायें हैं, जिनकी चर्चा संतों एवं ऋषियों ने की है। प्रथम है सुषुम्ना दर्शन, द्वितीय है नाद-चेतना या अंतर्ध्वनि और तृतीय है नीले प्रकाश का दर्शन।

सुषुम्ना दर्शन– अन्तर्लक्ष्य धारणा का प्रारम्भ सुषुम्ना नाड़ी के दर्शन या अनुभव से होता है। मध्य लक्ष्य में हम इड़ा और पिंगला की चेतना तथा नीले स्वर्णिम प्रकाश का अनुभव विकसित करते हैं। इसके परे सुषुम्ना का क्षेत्र है। यद्यपि ऐसी सामान्य मान्यता है कि सुषुम्ना एक ही अतीन्द्रिय नाड़ी है, परन्तु वस्तुत: हैं दो। सुषुम्ना नाड़ी एक नली के समान है, जिसे ब्रह्म नाड़ी कहते हैं। ब्रह्म नाड़ी वह पथ है जिससे होकर कुण्डलिनी मूलाधार से सहस्त्रार की यात्रा करती है। इस ब्रह्म नाड़ी की सजगता या चेतना को तीव्र करना तथा इसे सुषुम्ना के मध्य में प्रकाशमान धागे के रूप में देखना अन्तर्लक्ष्य धारणा का प्रथम चरण है।

ब्रह्म नाड़ी को सुषुम्ना में एक आग्नेय ज्योतिर्मय धागे के रूप में देखा जाता है तथा इसी धागे में कुण्डलिनी आरोहण करती है। यह देखना कोई कल्पना नहीं है, यह दर्शन कहलाता है। कल्पना तो हम मानसिक चेतना से करते हैं। कल्पना एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने मन को एक प्रकार के अनुभव से दूसरे पर ले जाते हैं। यदि हम आँखें बन्द कर एक फूल का मानस दर्शन करना चाहें तो उसमें स्पष्टता नहीं रहती है। बिम्ब दिखाई नहीं पड़ता, मात्र एक मानसिक भाव रहता है कि मैं फूल देख रहा हूँ। संभव है कि जब विचार तीव्र हो जाय तब एक अस्पष्ट धुँधले रेखाचित्र के रूप में फूल को देखा भी जा सकता है। अत: कल्पना का उपयोग धारणा के प्रथम दो चरणों को पार करने के लिए किया जाता है। किन्तु जब अतीन्द्रिय चेतना का अवतरण होने लगता है तब देखने की वास्तविक प्रक्रिया ही दर्शन हो जाती है।

दर्शन का अर्थ है देखना। यह वास्तविक दर्शन है या एक प्रतीक या फूल जैसी किसी वस्तु की अभिव्यक्ति या झलक है, जो पूर्ण रंग और स्वरूप में प्रकट होती है। इसी प्रक्रिया को मानस दर्शन कहते हैं। यहाँ एक विभ्रमात्मक अनुभूति के समान वास्तविक अनुभूति होती है, जहाँ ध्यान की वस्तु, जो वस्तुत: वहाँ है नहीं, स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस प्रकार के अनुभव को योग में दर्शन या मानस दर्शन कहते हैं। इसलिए इस अवस्था में ब्रह्म नाड़ी की प्रदीप्त धागे के रूप में कल्पना नहीं होती है, यह सुषुम्ना के मध्य में मूलाधार

से सहस्रार तक दिखाई देती है। इसी ब्रह्म नाड़ी में एक प्रकाश कण के रूप में कुण्डलिनी की क्रियाशीलता भी ऊपर नीचे गतिमान रूप में दिखाई पड़ती है।

परम्परा में भी कहा गया है कि जब कुण्डलिनी का प्रकाश, जो ब्रह्म नाड़ी से अवरोहित होता है, सिर के क्षेत्र में दिखाई देता है तब चिदाकाश का रंग बदलता है। सामान्यत: जब हम आँखें बन्द करते हैं तब काला, धुँधला रंग दिखाई पड़ता है, परन्तु इस समय यह श्वेत होगा, मानो सम्पूर्ण सिर में प्रकाश भरा हो। कुछ शास्त्रों में ऐसा भी उल्लेख है कि ललाट के मध्य में इस प्रकाश को देखते ही साधक चेतन और अवचेतन आयामों के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

नाद (अन्तर्ध्वनि)– गहरी धारणा के समय कानों में सुनाई पड़ने वाली सिसकारी की आवाज एक दूसरा संकेत है। व्यक्ति इसे सुनता तो है, पर इसका कोई बाह्य स्रोत नहीं होता। यह भीतर से आता है। जब कुण्डलिनी आज्ञा चक्र तक पहुँच जाती है तब ऐसा होता है, क्योंकि नाद या ध्वनि-स्पन्द यहाँ पर ही सुनाई पड़ता है। व्यक्ति अनेक प्रकार की ध्वनियाँ अन्दर में सुन सकता है, जैसे– पत्तों और डालियों के मध्य से हवा के बहने की आवाज, झिंगुर की आवाज, मेंढक की आवाज, पशुओं और मनुष्यों की आवाज।

योग दस प्रकार की अन्तर्ध्वनियों को मानता है जो आज्ञा चक्र तक कुण्डलिनी जागरण के प्रमाण स्वरूप स्वीकार की जाती हैं। इनका क्रम इस प्रकार है– (1) बुदबुदाने की आवाज (2) दूरस्थ मुरली की आवाज (3) बड़े घण्टे की आवाज (4) शंख ध्वनि (5) सितार की आवाज (6) झाँझा की आवाज (7) वीणा की आवाज (8) वर्षा की ध्वनि (9) मृदंग की आवाज (10) मेघ गर्जन। वीणा की ध्वनि सुनते समय अनेक व्यक्तियों ने चिदाकाश के अंधेरे को विभिन्न तीव्र चमकीले रंगों में बदलते देखा है। ऐसे भी व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने इन रंगों को अपनी त्रिआयामी कला-कृतियों या मुरली की ध्वनि को अपने स्वर्गीय मोहक संगीत में प्रस्तुत किया है।

नीला प्रकाश– अनाहत चक्र और आज्ञा चक्र में नीला प्रकाश दिखाई पड़ना अन्तिम संकेत है। अतीन्द्रिय या कुण्डलिनी अनुभव में नीले प्रकाश का प्रकट होना आकाश अनुभूति की पूर्णता है। नीला प्रकाश देखने का तात्पर्य है कि आप वहाँ तक पहुँच गये हैं जहाँ तक यह विधि आपको ले जा सकती है, और अब आप अगले चरण में प्रवेश करने के लिए तैयार हैं। यही अन्तर्लक्ष्य धारणा की पूर्णता है, जो सूक्ष्म अतीन्द्रिय धारणा है, जो मन को आन्तरिक अनुभूति पर टिका रखती है और उसकी कल्पना नहीं, उसका दर्शन होता है।

यौगिक एवं तांत्रिक धारणा

काया स्थैर्यम्

धारणा श्रृंखला का प्रथम अभ्यास है काया स्थैर्यम्। यह शरीर की स्थिरता पर धारणा का मूल अभ्यास है। संस्कृत में काया का अर्थ है शरीर और स्थैर्यम् का अर्थ है निश्चलता। जब शरीर स्थिर और निश्चल हो जाता है तब शरीर और मन के आंतरिक सम्बन्ध के कारण मन भी उसका अनुसरण करता है। अत: प्रत्येक धारणा अभ्यास का प्रारम्भ पाँच से दस मिनटों के काया-स्थैर्यम् अभ्यास से होना चाहिए। जब शरीर पूर्ण रूप से स्थिर एवं निश्चल रहता है तब ही वास्तव में धारणा का अभ्यास आरम्भ होता है।

यह महत्त्वपूर्ण बात भी ध्यान में रखने की है कि मन तभी तक एकाग्र रहता है जब तक शरीर निश्चल रहता है। जैसे ही शरीर का कोई अंग हिलता है मन भी तत्क्षण चंचल हो जाता है। इस प्रकार एकाग्रता भंग हो जाती है और एक बार एकाग्रता भंग हो गई तो उसी बैठकी में उसे पुन: प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्रत्याहार के अभ्यास में आप शरीर को हिला सकते हैं, अपना आसन भी बदल सकते हैं, यहाँ तक कि आप आसन से उठकर पुन: अभ्यास में वापस आ सकते हैं। परन्तु धारणा में आप बिना एकाग्रता भंग किये अपनी ऊँगली भी हिला नहीं सकते, अपनी पलकें भी झपका नहीं सकते, थूक भी निगल नहीं सकते।

धारणा के अग्रलिखित अभ्यासों में उतरने के पूर्व काया स्थैर्यम् को सिद्ध करना अनिवार्य है। जब आप कम-से-कम आधे घण्टे तक शरीर के किसी भी अंग को हिलाये बिना बैठ सकते हैं, तभी आप धारणा का अभ्यास प्रारम्भ करने की स्थिति में आते हैं। काया स्थैर्यम् की प्रारम्भिक स्थिति में शरीर को ध्यान के आसन में विश्रान्त और सुख पूर्वक रहना चाहिए। बाद में जैसे-जैसे निश्चलता आती जाती है, स्थिरता की चेतना की वृद्धि के साथ-साथ शारीरिक चेतना धीरे-धीरे शान्त होने लगती है। इसी अवस्था में एकाग्रता को शरीर से

स्वाभाविक श्वास पर ले जाना चाहिए, जिससे मन का एक केन्द्र बिन्दु बना रहे। अन्ततः श्वास की चेतना भी शान्त हो जायेगी, जिससे केवल सजगता बची रहेगी। यही समय है जब आप धारणा प्रारम्भ करने को तैयार हैं।

उस सजगता के साथ जो स्थिर है, निश्चल है, और जो शरीर द्वारा अबाधित है, अपने ध्यान की वस्तु पर आपको धारणा प्रारम्भ करनी चाहिए। यदि धारणा अस्थिर शरीर और चंचल मन से की जायेगी तो उस अभ्यास से कोई लाभ नहीं होगा, भले ही आप सौ वर्षों तक भी अभ्यास करते रहें। एक ही परिणाम आपको मिलेगा– तनाव, निराशा और विक्षिप्त मन। इसलिए शुरू में आप प्रारम्भिक अभ्यासों पर पूरा ध्यान दें। काया स्थैर्यम् सिद्ध कीजिये, उसके बाद ही आप धारणा की साधना में बिना किसी बाधा के प्रगति कर सकते हैं।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन, विशेष रूप से सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जाइये। अपने शरीर को ठीक से व्यवस्थित कर लीजिये जिससे अभ्यास के क्रम में आपको शरीर का कोई अंग हिलाना न पड़े। मेरुदण्ड सीधा है यह सुनिश्चित कर लीजिये। सिर, गला और कन्धे थोड़ा पीछे की ओर रहें। दोनों हाथों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। पलकों को बन्द कर लीजिये। अपनी धीमी गहरी श्वास के प्रति सजग हो जाइये और मानसिक रूप से पाँच श्वासों की गिनती कीजिये।

द्वितीय चरण– शारीरिक भंगिमा

अपनी सजगता को शरीर पर ले चलिये। ध्यान के अपने आसन पर एकाग्र होइये। अनुभव कीजिये कि आपका मेरुदण्ड भूमि पर सीधा खड़ा है और ऊपर में सिर को धारण किये हुए है। अपने हाथों और पैरों की समान एवं संतुलित स्थिति के प्रति सजग हो जाइये। शरीर की पूर्ण सजगता हो।

तृतीय चरण– शरीर का मानस दर्शन

अपने शरीर के बाह्य रूप का मानस-दर्शन कीजिये, जैसे आप उसे एक पूरे आदमकद आईने में देख रहे हैं। अपने शरीर को ध्यान के आसन में आगे से, पीछे से, बायें और दायें से तथा ऊपर से देखिये। अपने शरीर को एक ही साथ सभी ओर से देखिये।

चतुर्थ चरण– शरीर वृक्ष

अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये। अनुभव कीजिये कि आपकी जड़ें भूमि में गड़ी हैं। कल्पना कीजिये कि आपका शरीर एक वृक्ष के समान पृथ्वी से उग रहा है। आपका धड़ उसका तना है, आपके हाथ एवं सिर उसकी शाखायें हैं और आपके पैर उसकी जड़ें हैं। आपका शरीर पृथ्वी से उगा है, अत: वह हिल-डुल नहीं सकता।

पंचम चरण– शरीर में सम्वेदनायें

किसी शारीरिक सम्वेदना– ठण्ढी, गर्मी, हवा, खुजली, पीड़ा, बेचैनी, तनाव, कड़ेपन के प्रति सजग होइये। अपनी चेतना को इनकी ओर ले जाइये। इन्हें अपने मन का केन्द्र बिन्दु बनने दीजिये। यदि आपका मन इधर-उधर भटकने लगे तो उसे पुन: शरीर की सम्वेदनाओं की ओर लाइये।

षष्ठ चरण– शरीर के अंग

अपनी सजगता को सिर में ले जाइये। केवल अपने सिर के प्रति सजग रहिये, अन्य किसी चीज के प्रति नहीं। सिर में यदि कोई संवेदना हो रही हो तो उसका अनुभव कीजिये। सिर का मानस-दर्शन कीजिये। अपनी सजगता को गर्दन पर लाइये। गर्दन में संवेदना का अनुभव कीजिये। सतत् सजग रहिये। इसी प्रक्रिया के अनुसार अपनी सजगता को कन्धों, दायें हाथ, बायें हाथ, पूरी पीठ, छाती, पेट, दायें पैर, बायें पैर और अन्ततोगत्वा पूरे शरीर में ले जाइये। एक साथ सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग होइये। शरीर के प्रति अपनी सजगता को अधिक गहरा कीजिये। सजगता बनाये रखते हुए इसे एक बार और कीजिये।

सप्तम् चरण– शरीर की निश्चलता

एक संकल्प कीजिये, "पूरे अभ्यास की अवधि में मैं अपना शरीर नहीं हिलाऊँगा, मेरा शरीर न चंचल होगा और न हिलेगा। मैं मूर्तिवत्, स्थिर एवं निश्चल रहूँगा।" यदि आपको अपने हाथ या पैर की ऊँगली हिलाने, वस्त्रों के ठीक करने या खुजलाने की भी इच्छा हो तो उस पर नियंत्रण रखें। यदि हिलने की इच्छा हो तो अपने आप से कहिये, "नहीं, मैं अभ्यास की समाप्ति तक अपने शरीर के किसी भी अंग को नहीं हिलाऊँगा।"

अष्टम् चरण– स्थैर्य और निश्चलता

अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग रहिये, अपने ध्यान के आसन के प्रति सजग रहिये, अन्य किसी चीज के प्रति नहीं। शरीर की पूर्ण, अबाधित

सजगता बनी रहे, शरीर पूर्णतया स्थिर और अचल है। निश्चलता की भावना विकसित कीजिये। अपने शरीर और उसकी स्थिरता के प्रति सजग होइये। अपने शरीर और उसकी निश्चलता के प्रति सजग होइए। आपका शरीर एकदम स्थिर और निश्चल है। स्थैर्य के प्रति सजग रहिये। अपने भौतिक शरीर के प्रति सजग रहिये। कोई गति नहीं है, कोई असुविधा नहीं है, केवल स्थैर्य और निश्चलता।

नवम् चरण– अतीन्द्रिय जड़ता

शरीर के स्थैर्य और निश्चलता का अनुभव कीजिये। धीरे-धीरे आपका मूर्तिवत् शरीर जड़ और कठोर हो जायेगा, मानो सारी पेशियाँ जम-सी गई हैं। शरीर इतना कड़ा हो जाता है कि यदि आप प्रयास भी करें तो उसे हिला नहीं सकते। शरीर की निश्चलता एवं अतीन्द्रिय कठोरता की पूर्ण सजगता रहे। शरीर की जकड़न का अनुभव कीजिये। शरीर और उसकी निश्चलता के प्रति सजग रहिये।

दशम् चरण– श्वास चेतना

जैसे-जैसे शरीर कड़ा और स्थिर होता है आप शारीरिक चेतना खोने लगते हैं। इस समय आप अपनी चेतना का ख्याल श्वास पर ले जाइये। अपनी स्वभाविक श्वास के प्रति सजग होइये, पर उसमें किसी प्रकार का अन्तर या परिवर्तन न लाइये। शरीर में आती और शरीर से बाहर जाती श्वास को केवल देखते जाइये। श्वास भीतर-बाहर एक लय पूर्ण प्रवाह में आती-जाती है। सजगतापूर्वक श्वास की प्रत्येक गति का अनुसरण कीजिये।

इसके साथ ही साथ अपने शरीर के प्रति सजग होइये। अपनी चेतना को बारी-बारी से शरीर से श्वास पर और श्वास से शरीर पर आने-जाने दीजिये। शरीर जैसे अधिक से अधिक कड़ा होता जायेगा चेतना सहज ही श्वास पर अधिक से अधिक जायेगी। किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं है। जब शरीर पूर्णरूपेण निश्चल और अटल हो जायेगा, तब श्वास अधिक से अधिक सूक्ष्म होती जायेगी और ऐसा लगेगा कि श्वास शायद चल ही नहीं रही है।

एकादश चरण– एकाग्रता की अवस्था

श्वास जैसे-जैसे अधिकाधिक अतीन्द्रिय होगी आप शुद्ध चेतना का अनुभव करेंगे, जो अचंचल मन के माध्यम से काम करती है। श्वास ही

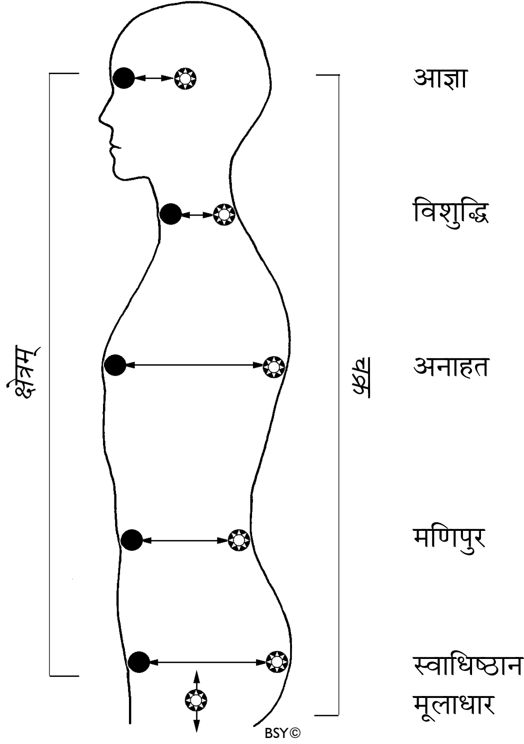
मन और शरीर की गतियों के लिए उत्तरदायी है। जब श्वास अति सूक्ष्म हो जायेगी, तब मन एकाग्र एवं नीरव हो जायेगा। यही वह अवस्था है जिसमें निश्चित रूप से धारणा का अभ्यास किया जाना चाहिए।

द्वादश चरण– अभ्यास का समापन

अभ्यास समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। धीरे-धीरे शरीर और अपने ध्यान के आसन के प्रति चैतन्य होइये। भूमि पर अपने शरीर के भार का अनुभव कीजिये। घुटनों पर स्थित अपने हाथों के प्रति सजग होइये। अपने सम्पूर्ण स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। श्वास के प्रति सजग होइये। बाहर-भीतर जाती-आती श्वास के प्रति सजग होइये। लम्बी गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' मंत्र का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

चक्र शुद्धि धारणा



चक्र शुद्धि

चक्र शुद्धि से तात्पर्य है अतीन्द्रिय केन्द्रों की शुद्धि। कुण्डलिनी योग में अतीन्द्रिय केन्द्रों की अवस्थिति जानने के लिए यह अभ्यास किया जाता है। जप योग में यह अभ्यास एक विशेष अनुष्ठान ही होता है, जो एक सप्ताह या एक माह तक अखण्ड रूप से यह अभ्यास कर सकने वाले नैष्ठिक साधक को अनेकानेक लाभ देता है।

कुण्डलिनी योग में कहा जाता है कि कुण्डलिनी जागरण के पूर्व चक्रों को परिशुद्ध, विकसित एवं जाग्रत कर लेना चाहिए। यह अभ्यास इस प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। पहले प्रत्येक अतीन्द्रिय केन्द्र को अलग-अलग चरणों में एक-एक कर लिया जाता है एवं अन्त में सभी अतीन्द्रिय केन्द्रों को क्रमानुसार लिया जाता है।

सर्वप्रथम प्रत्येक केन्द्र की अवस्थिति का पता किया जाता है। इसके पश्चात् शरीर के सम्मुख भाग में चक्र क्षेत्र या प्रेरक बिन्दुओं के मध्य और मेरुदण्ड में चक्र के वास्तविक-बिन्दुओं के मध्य अतीन्द्रिय पथ निर्मित करते हैं। अन्ततः मंत्र के योग के साथ चक्र को शुद्ध एवं विकसित करते हैं। जैसे ही अतीन्द्रिय पथ में मंत्र स्पन्दन की ध्वनि बढ़ती है अतीन्द्रिय चक्र का जागरण होता है।

चक्र स्थलों, श्वास और मन्त्र पर धारणा काल में एक उच्च विभव ऊर्जा मुक्त होती है और मस्तिष्क में परिसंचरित की जाती है। यह ऊर्जा मानसिक बिखराव को दूर करती और मन में स्थिरता लाती है, जिससे कुछ ही मिनटों के अभ्यास के बाद बिना प्रयास के ही मन एकाग्र और शान्त हो जाता है।

विधि

प्रथम चरण–मूलाधार शुद्धि

मूलाधार चक्र का क्षेत्र या प्रेरक बिन्दु नहीं होता है, अतः इसकी अवस्थिति का सीधे ही पता करते हैं। इस चक्र की अवस्थिति का पता करने में सरलता

के लिए सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठने की अनुशंसा की जाती है। इससे मूलाधार चक्र पर सजगता को केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञानमुद्रा में रखिये। आँखें बन्द कर पूरे शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। अपने ध्यान के आसन के प्रति सजग होइये। अपने शरीर के सभी अंगों को देखते जाइये कि किसी अंग में कहीं कोई तनाव या कड़ापन तो नहीं है। श्वास को धीमा और लयात्मक होने दीजिये।

अपनी सजगता अपनी निचली एड़ी पर ले जाइये, जो मूलाधार पिण्ड पर या योनि पर दबाव डाल रही है। उस बिन्दु पर पड़ रहे स्पष्ट दबाव के प्रति गहराई से सजग होइये। उस दबाव के बिन्दु पर अपनी समग्र चेतना को केन्द्रित कीजिये। जैसे-जैसे आप को मूलाधार चक्र की सही अवस्थिति का पता होता जाये, उस क्षेत्र में नाड़ी स्पन्द के प्रति सजग होते जाइये।

अब श्वास के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये या कल्पना कीजिये कि आप उस दबाव के बिन्दु से ही श्वास ले और छोड़ रहे हैं, अनुभव कीजिये कि श्वास मूलाधार पिण्ड से या योनि से गुजर रही है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जा रही है, जिससे वह उस बिन्दु का भेदन करती है जहाँ मूलाधार अवस्थित है। एक समान लय के साथ अपनी स्वाभाविक श्वास द्वारा अपनी चेतना को गतिमान रखिये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के साथ मूलाधार चक्र के भेदन का अनुभव कीजिये। चेतना को श्वास के साथ गतिमान कीजिये। अपने अवधान को बिखरने न दीजिये।

प्रत्येक श्वास के साथ ॐ मंत्र के मानसिक जप को मिलाते हुए अभ्यास चालू रखिये। श्वास लेते समय 'ॐ' का मानसिक उच्चारण कीजिये और अनुभव कीजिए कि श्वास के साथ मंत्र स्पन्द को ऊपर उठते हुए और मूलाधार चक्र बिन्दु का भेदन करते हुए अनुभव कीजिये। पुनः श्वास छोड़ते हुए 'ॐ' का उच्चारण कीजिये और अनुभव कीजिये कि श्वास के साथ मन्त्र स्पन्द नीचे उतर कर चक्र बिन्दु से बाहर निकल रहा है। मूलाधार चक्र से होकर भीतर एवं बाहर जाते हुए 'ॐ' मंत्र का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र एवं श्वास की गति के साथ आप मूलाधार चक्र को शुद्ध एवं विकसित कर रहे हैं। पाँच मिनटों तक इस अभ्यास को चलाइये।

द्वितीय चरण– स्वाधिष्ठान शुद्धि

सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में अपनी स्थिति के प्रति आश्वस्त हो जाइये और देख लीजिये कि आपका शरीर विश्रान्त है। अब अपनी

ऊपर वाली एड़ी के स्पर्श बिन्दु के प्रति सजग हो जाइये, जहाँ जघनास्थि (pubic bone) पर उससे दबाव पड़ रहा है। उस बिन्दु पर पड़ रहे स्पष्ट दबाव के प्रति गहन सजगता बनाये रखिये। अपनी सजगता को जघनास्थि पर केन्द्रित कीजिये, जिसे स्वाधिष्ठान क्षेत्र या स्वाधिष्ठान चक्र का प्रेरक बिन्दु माना जाता है। अपनी सजगता वहीं रखिये और वहाँ पर हो रहे नाड़ी स्पन्द के प्रति चैतन्य होइये। अब अपनी सजगता को सीधे पीछे मेरुदण्ड के मूल में स्थित त्रिकास्थि (coccyx bone) पर ले जाइये। यहीं स्वाधिष्ठान चक्र की अवस्थिति है। कुछ क्षणों के लिए अपनी सजगता को यहाँ रखिये और इस बिन्दु पर हो रहे नाड़ी स्पन्दों का अनुभव कीजिये। स्वाधिष्ठान चक्र की सजगता को और गहरा कीजिये।

अपनी श्वास के प्रति सजग होइये। अपनी श्वास चेतना को जघनास्थि प्रदेश में ले आइये। अनुभव कीजिये या कल्पना कीजिये कि आप जघनास्थि प्रदेश से ही श्वास ले रहे हैं। जब आप श्वास लेते हैं तो जघनास्थि प्रदेश यानी स्वाधिष्ठान क्षेत्र में श्वास प्रवेश करती है और सीधे पीछे की ओर मेरुदण्ड में त्रिक या स्वाधिष्ठान चक्र तक जाती है। जब आप श्वास छोड़ते हैं तब श्वास त्रिक या स्वाधिष्ठान चक्र से जघनास्थि या स्वाधिष्ठान क्षेत्र में आती है।

स्वाधिष्ठान क्षेत्र या जघनास्थि और मेरुदण्ड के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र के मध्य अपनी सजगता और श्वास के संचालन के द्वारा एक अतीन्द्रिय पथ का निर्माण कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप दोनों बिन्दुओं को अपनी श्वास और सजगता से जोड़ रहे हैं। प्रत्येक श्वास के साथ अनुभव करें कि जघनास्थि प्रदेश का विस्तार हो रहा है तथा सजगता और श्वास स्वाधिष्ठान क्षेत्र से सीधे पीछे स्वाधिष्ठान चक्र में जा रही हैं। प्रत्येक प्रश्वास में अनुभव कीजिये कि जघन प्रदेश संकुचित हो रहा है तथा सजगता और श्वास स्वाधिष्ठान चक्र से स्वाधिष्ठान क्षेत्र में जा रही हैं। अपनी श्वास को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता अनुभव कीजिये, जिससे वह स्वाधिष्ठान क्षेत्र और चक्र बिन्दु का भेदन करती हो। पाँच मिनटों तक इस सजगता को बनाये रखिये।

अब अभ्यास के साथ 'ॐ' मंत्र का जप भी जोड़ दीजिये। श्वास के साथ मानसिक रूप से'ॐ' का उच्चारण कीजिये तथा उसके स्पन्द को स्वाधिष्ठान क्षेत्र से स्वाधिष्ठान चक्र तक जाता हुआ अनुभव कीजिये। प्रश्वास के साथ 'ॐ' मंत्र दुहराइये और अनुभव कीजिये कि स्पन्द

स्वाधिष्ठान चक्र से स्वाधिष्ठान क्षेत्र तक जा रहा है। उस अतीन्द्रिय पथ में मंत्र और श्वास के संचरण का अनुभव कीजिये। इस अतीन्द्रिय पथ में संचरण की चेतना गहरी कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र और श्वास स्वाधिष्ठान चक्र को परिशुद्ध और विकसित कर रहे हैं। पाँच मिनटों तक यह अभ्यास कीजिये।

तृतीय चरण– मणिपुर शुद्धि

स्वाधिष्ठान चक्र की सजगता समाप्त कीजिये। पुनः सजगता को अपने ध्यान के आसन पर लाइये। अपनी स्थिति को आवश्यक हो तो पुनः व्यवस्थित कर लीजिये तथा शरीर की विश्रान्त एवं सुखद अवस्था के प्रति आश्वस्त हो जाइये। अपनी सजगता को नाभि पर ले जाइये। यह मणिपुर क्षेत्र या मणिपुर चक्र का प्रेरक बिन्दु है। नाभि की चेतना गहरी कीजिये। उस क्षेत्र में हो रहे नाड़ी स्पन्दन के प्रति चैतन्य होइये। अब अपनी सजगता को सीधे पीछे मेरुदण्ड में ले जाइये। यहीं मणिपुर चक्र की अवस्थिति है। इस स्थान पर कुछ क्षणों तक अपनी सजगता बनाये रखिये। नाभि के ठीक पीछे मेरुदण्ड में इसी बिन्दु पर नाड़ी स्पन्द का अनुभव करने का प्रयास कीजिये। मणिपुर चक्र में एक-समान और लयबद्ध नाड़ी स्पन्दन के प्रति सजग रहिये।

उदर प्रदेश में श्वास के प्रति सजग होइये। श्वास के साथ उदर प्रदेश के हल्के विस्तार और संकुचन को अनुभव कीजिये। कल्पना कीजिये कि आप इस क्षेत्र से श्वास ले और छोड़ रहे हैं। जब आप श्वास लेते हैं तब श्वास नाभि के माध्यम से भीतर आती है और सीधे पीछे मेरुदण्ड में मणिपुर चक्र तक जाती है। जब आप प्रश्वास करते हैं तब श्वास मेरुदण्ड के मणिपुर चक्र से आगे की ओर नाभि तक बढ़ती है। इसी प्रकार श्वास के साथ सजगता को इन दो बिन्दुओं के मध्य संचरित कीजिये। श्वास के साथ उदर प्रदेश का विस्तार एवं श्वास का नाभि से सीधे पीछे मणिपुर चक्र में जाना अनुभव कीजिये। प्रश्वास के साथ उदर प्रदेश का संकुचन और श्वास का मणिपुर चक्र से सीधे आगे मणिपुर क्षेत्र नाभि में आना अनुभव कीजिये।

श्वास के संचरण द्वारा इन दो बिन्दुओं के मध्य एक अतीन्द्रिय पथ का निर्माण कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप मणिपुर चक्र को मणिपुर क्षेत्र से जोड़ रहे हैं। अतीन्द्रिय पथ को स्पष्ट रूप से देखने का प्रयास कीजिये।

अपनी श्वास को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता अनुभव कीजिये जैसे वह मणिपुर चक्र एवं मणिपुर क्षेत्र का भेदन करती हो। इस सजगता को पाँच मिनट तक बनाये रखिये।

जब यह संचरण सहज और अनायास हो जाये, तब इसके साथ 'ॐ' मंत्र के मानसिक जप को भी जोड़ना प्रारम्भ कीजिये। श्वास के साथ मंत्र नाभि पर स्थित मणिपुर क्षेत्र से सीधे पीछे मेरुदण्ड में मणिपुर चक्र तक संचरित होता है। प्रश्वास के साथ मंत्र मणिपुर चक्र से आगे की ओर नाभि स्थित मणिपुर क्षेत्र में संचरित होता है। अतीन्द्रिय पथ में मंत्र और श्वास के साथ-साथ संचरण का अनुभव करने का प्रयास कीजिये। इन दो बिन्दुओं के मध्य संचरण करते हुए मंत्र के स्पन्दन के प्रति अपनी सजगता गहरी कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र और श्वास मणिपुर चक्र को क्रमश: परिशुद्ध एवं विकसित कर रहे हैं। इस अभ्यास को पाँच मिनटों तक चलाइये।

चतुर्थ चरण– अनाहत शुद्धि

मणिपुर चक्र की सजगता को छोड़ दीजिये। वक्ष प्रदेश में पसलियों के मध्य क्षेत्र पर अपनी सजगता को लाइये। हृदय के सामने उरोस्थि पर अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये। इस बिन्दु के प्रति अपनी सजगता को गहन बनाइये। हृदय-स्पन्द की लय में हो रहे नाड़ी स्पन्द को यहाँ पर अनुभव कीजिये। अपनी सजगता को इसी बिन्दु पर रखिये। यही अनाहत क्षेत्र या उसका प्रेरक बिन्दु है। अपनी सजगता को यहाँ से सीधे पीछे मेरुदण्ड में अनाहत चक्र पर ले जाइये। चक्र स्थल पर अपना अवधान केन्द्रित रखिये। हृदय-स्पन्द के साथ अनाहत चक्र के लयबद्ध स्पन्द को अनुभव कीजिये। अनाहत चक्र की पूर्ण सजगता बनाये रखिये।

अपना अवधान सहज श्वास पर ले जाइये। श्वसन के साथ वक्ष प्रदेश के विस्तार एवं संकुचन का अनुभव कीजिये। अब अनुभव कीजिये कि आप वक्ष प्रदेश के द्वारा श्वसन कर रहे हैं। श्वास लेने के साथ वक्ष प्रदेश स्थित अनाहत क्षेत्र में श्वास प्रवेश करती है और वहाँ से सीधे पीछे की ओर मेरुदण्ड में स्थित अनाहत चक्र में जाती है। जब श्वास छोड़ते हैं तब श्वास अनाहत चक्र से आगे की ओर उरोस्थि या अनाहत क्षेत्र तक आती है। श्वास के साथ वक्ष प्रदेश का विस्तार होता है और श्वास उरोस्थि से अनाहत चक्र तक संचरण करती है। प्रश्वास के साथ

वक्ष प्रदेश संकुचित होता है और श्वास अनाहत चक्र से अनाहत क्षेत्र या उरोस्थि तक संचरण करती है। पूर्ण सजगता के साथ श्वास के संचरण को अनुभव कीजिये।

दोनों बिन्दुओं के मध्य के अतीन्द्रिय पथ के प्रति सजग हो जाइये। अनुभव कीजिये कि आप अनाहत क्षेत्र को अनाहत चक्र से जोड़ रहे हैं। आप अब अतीन्द्रिय पथ की चेतना गहरी कीजिये। श्वास को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता हुआ अनुभव कीजिये जैसे वह अनाहत क्षेत्र और चक्र बिन्दु का भेदन करती है। अपनी सजगता को श्वास के और निकट लाइये तथा इन दोनों अतीन्द्रिय बिन्दुओं के प्रति सजग होइये। कुछ क्षणों तक इसे चालू रखिये।

अब श्वास की गति के साथ 'ॐ' मंत्र के मानसिक जप को भी जोड़ दीजिये। श्वास लेते समय 'ॐ' मंत्र का श्वास के साथ अनाहत क्षेत्र से मेरुदण्ड में अनाहत चक्र तक संचरण का अनुभव कीजिये। प्रश्वास के समय पुन: 'ॐ' मंत्र का श्वास के साथ अनाहत चक्र से उरोस्थि या अनाहत क्षेत्र तक संचरण का अनुभव कीजिये। इन दोनों बिन्दुओं के मध्य अतीन्द्रिय पथ में मंत्र स्पन्द के संचरण के प्रति पूर्ण रूप से सजग होइये। अनुभव कीजिये कि श्वास और मंत्र अनाहत चक्र को परिशुद्ध और विकसित कर रहे हैं। पाँच मिनटों तक यह अभ्यास चालू रखिये।

पंचम चरण– विशुद्धि शुद्धि

अनाहत चक्र की सजगता को छोड़ दीजिये। अपनी चेतना को कण्ठ क्षेत्र में लाइये। कण्ठ कूप में उस बिन्दु के प्रति सजग होइये जो विशुद्धि चक्र का क्षेत्र या प्रेरक बिन्दु है। कण्ठ में हो रहे नाड़ी स्पन्द के प्रति सजग होइये। विशुद्धि क्षेत्र में हो रहे नाड़ी-स्पन्द की पूर्ण सजगता रहे। अब अपनी चेतना को वहाँ से सीधा पीछे की ओर मेरुदण्ड में ले चलिये। यहीं विशुद्धि चक्र की अवस्थिति है। अपनी सजगता को यहाँ पर रखिये और यहाँ पर नाड़ी स्पन्द का अनुभव कीजिये। आपकी पूर्ण सजगता विशुद्धि चक्र पर ही रहे।

अपने सहज स्वाभाविक श्वसन के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये कि आप कण्ठ से ही श्वसन कर रहे हैं। श्वास लेने के समय महसूस कीजिये कि श्वास कण्ठ या विशुद्धि क्षेत्र के द्वारा शरीर में प्रवेश करती है और सीधे मेरुदण्ड में विशुद्धि चक्र तक जाती है। प्रश्वास में श्वास विशुद्धि चक्र से कण्ठ में या विशुद्धि क्षेत्र में आगे की ओर आती है। दोनों बिन्दुओं के मध्य

श्वास के साथ अपनी सजगता के संचरण का अनुभव करते जाइये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के साथ कण्ठ प्रदेश के क्रमश: विस्तार एवं संकुचन का अनुभव कीजिये। श्वास लेते समय कण्ठ क्षेत्र का विस्तार होता है और श्वास विशुद्धि क्षेत्र से विशुद्धि चक्र में जाती है। श्वास छोड़ते समय कण्ठ संकुचित होता है और श्वास विशुद्धि चक्र से विशुद्धि क्षेत्र में आती है।

इस अतीन्द्रिय पथ में श्वास के संचरण को अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप विशुद्धि चक्र को विशुद्धि क्षेत्र से जोड़ रहे हैं। इस अतीन्द्रिय पथ की तथा उसमें दोनों बिन्दुओं के मध्य संचरित हो रही श्वास की चेतना गहरी कीजिये। विशुद्धि चक्र और विशुद्धि क्षेत्र का श्वास द्वारा भेदन होता हुआ अनुभव कीजिये। अपनी समग्र चेतना को अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ संरचण करने दीजिये। कुछ देर तक इसे चलाइये।

अब अपने अभ्यास में 'ॐ' मंत्र को भी जोड़ लीजिये। श्वास के साथ मानसिक रूप से 'ॐ' मंत्र का उच्चारण कीजिये। श्वास लेते हुए मंत्र को श्वास के साथ विशुद्धि क्षेत्र से सीधे पीछे विशुद्धि चक्र तक संचरण करता हुआ अनुभव कीजिये। प्रश्वास में मानसिक रूप से 'ॐ' मंत्र का उच्चारण कीजिये। अब मंत्र को श्वास के साथ विशुद्धि चक्र से आगे की ओर विशुद्धि क्षेत्र में आता अनुभव कीजिये। अतीन्द्रिय पथ में मंत्र स्पन्द का अनुभव कीजिये। मंत्र और श्वास को साथ-साथ विशुद्धि क्षेत्र और विशुद्धि चक्र के माध्यम से संचरित होता हुआ अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र और श्वास विशुद्धि चक्र को परिशुद्ध एवं विकसित कर रहे है। एक समान और अविरल सजगता के साथ इस अभ्यास को पाँच मिनटों तक चलाते रहिये।

षष्ठ चरण– आज्ञा शुद्धि

विशुद्धि चक्र की सजगता का परित्याग कीजिये। सजगता को भ्रू-मध्य में ले आइये और उसी बिन्दु की सजगता बनाये रखिये। भ्रू-मध्य पर ही अपना अवधान रखिये। यही स्थान त्रिकुटी है। इसी बिन्दु पर अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये। भ्रू-मध्य पर लयबद्ध नाड़ी स्पन्द का अनुभव कीजिये। इस बिन्दु पर हो रहे नाड़ी स्पन्द की सजगता गहरी कीजिये। अब यहाँ से सीधे मेरुदण्ड के शीर्ष पर, जो मस्तक के मध्य में है, वहाँ अपनी सजगता को ले चलिये। यहीं आज्ञा चक्र की अवस्थिति है। अपनी सजगता को यहाँ रखिये और यहाँ पर नाड़ी स्पन्द का अनुभव कीजिये। आज्ञा चक्र के इसी बिन्दु पर अपनी सजगता गहरी कीजिये।

अपनी स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग होइये। कल्पना कीजिये कि आप इन्हीं दो बिन्दुओं के मध्य श्वास एवं प्रश्वास कर रहे हैं। अनुभव कीजिये कि श्वास लेने में श्वास भ्रू-मध्य से शरीर में प्रवेश करती है और वहाँ से सीधे मेरुदण्ड के शीर्ष पर आज्ञा चक्र में पहुँचती है। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो अनुभव कीजिये कि आप की श्वास आज्ञा चक्र से आगे की ओर भ्रू-मध्य या आज्ञा क्षेत्र में पहुँच रही है। श्वास के साथ अपनी सजगता को इन दो बिन्दुओं के मध्य संचरित कीजिये। श्वास लेते समय मस्तक फैलता है और श्वास भ्रू-मध्य से आज्ञा चक्र की ओर संचरित होती है, और श्वास छोड़ते समय मस्तक संकुचित होता है और श्वास आज्ञा चक्र से आगे की ओर भ्रू-मध्य की दिशा में संचरित होती है।

इस अतीन्द्रिय पथ की चेतना गहरी कीजिये। अनुभव कीजिये कि प्रत्येक श्वास के साथ आप आज्ञा चक्र और आज्ञा क्षेत्र (भ्रू-मध्य) को जोड़ रहे हैं। अनुभव कीजिये कि श्वास इन दोनों बिन्दुओं के मध्य संचरण कर रही है। अनुभव कीजिये कि श्वास द्वारा आज्ञा चक्र और आज्ञा क्षेत्र का भेदन हो रहा है। अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही श्वास पर अपना पूर्ण अवधान केन्द्रित कीजिये। कुछ क्षणों तक इसे चालू रखिये।

'ॐ' मंत्र को अभ्यास में सम्मिलित कीजिये। श्वास के साथ मानसिक रूप से 'ॐ' का उच्चारण कीजिये। श्वास और मंत्र को आज्ञा क्षेत्र से आज्ञा चक्र तक संचरित होता अनुभव कीजिये। प्रश्वास के साथ 'ॐ' मंत्र का मानसिक उच्चारण कीजिये। श्वास और मंत्र को आज्ञा चक्र से आगे आज्ञा क्षेत्र की ओर बढ़ता हुआ अनुभव कीजिये। आज्ञा क्षेत्र से आज्ञा चक्र तक अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रहे मंत्र के स्पन्द को अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र और श्वास आज्ञा चक्र को परिशुद्ध और विकसित कर रहे हैं। इस चेतना को गहरी कीजिये। एक पल के लिए भी अपनी सजगता को हटने न दीजिये। इस प्रकार पाँच मिनटों तक करते जाइये।

सप्तम् चरण– चक्र शुद्धि

अब अपनी चेतना को मूलाधार पिण्ड में स्थित मूलाधार पर लाइये। मूलाधार पर अपने अवधान केन्द्रित कीजिये। वहाँ पर 'ॐ' मंत्र को निश्चित रूप में मंद गति से, परन्तु गहराई से स्पन्दित होता हुआ अनुभव कीजिये। मूलाधार चक्र पर 'ॐ' को 21 बार स्पन्दन करते हुए महसूस कीजिये।

सजगता को त्रिक में स्वाधिष्ठान चक्र पर लाइये। इस स्थान पर 'ॐ' के स्पन्द को अनुभव कीजिये। स्वाधिष्ठान पर 'ॐ' के 21 स्पन्दों को अनुभव कीजिये। नाभि के पीछे मणिपुर चक्र पर आइये। मणिपुर पर भी 'ॐ' के 21 स्पन्दों को अनुभव कीजिये।

अब चेतना को हृदय के पीछे अनाहत चक्र पर लाइये और वहाँ पर 'ॐ' मंत्र के गहरे, परन्तु मंद स्पन्द का अनुभव कीजिये। 21 स्पन्दों तक गिनती कीजिये। मेरुदण्ड में कण्ठ के पीछे विशुद्धि चक्र पर आइये। अनुभव कीजिये कि 'ॐ' मंत्र वहाँ भीतर से विशुद्धि चक्र पर आघात कर रहा है और स्पन्दित हो रहा है। 21 स्पन्दों की गिनती कीजिये। मस्तक के मध्य मेरुदण्ड के शीर्ष पर आज्ञा चक्र में आइये। आज्ञा चक्र पर 'ॐ' मंत्र के 21 स्पन्दों की गिनती कीजिये। 'ॐ' मंत्र की अखण्ड सजगता बनी रहे।

अपनी सजगता को मस्तक के शीर्ष पृष्ठ भाग में बिन्दु चक्र पर ले आइये। 'ॐ' मंत्र का अनुभव इस स्थान पर कीजिये। जैसे-जैसे आप 21 स्पन्दों की गिनती करते जायें, उस बिन्दु पर 'ॐ' का स्पन्द अनुभव कीजिये। अब मस्तक के शीर्ष पर सहस्त्रार चक्र में आइये। सहस्त्रार चक्र पर भी 21 मंत्र स्पन्दों की गिनती कीजिये। यह अभ्यास का एक चक्र हुआ।

अब अपनी सजगता मूलाधार पिण्ड में अवस्थित मूलाधार चक्र पर लाइये, और अभ्यास का दूसरा चक्र प्रारम्भ कीजिये। मूलाधार से सहस्त्रार प्रत्येक चक्र बिन्दु से होते हुए उर्ध्वमुखी यात्रा कीजिये। प्रत्येक चक्र पर मंत्र स्पन्द का अनुभव कीजिये। प्रत्येक चक्र पर 21 स्पन्दों की गिनती करते जाइये। 'ॐ' मंत्र की अविराम अखण्ड सजगता बनी रहे।

अष्टम् चरण – अभ्यास का समापन

अब मंत्रों और चक्रों की सजगता का त्याग कीजिये। सहज नैसर्गिक श्वास के प्रति सजग होइये। मन्द एवं एक-समान, लयबद्ध श्वास का अनुभव कीजिये। अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। ध्यान के आसन के प्रति सजग होइये। अपने शरीर और भूमि के स्पर्श को अनुभव कीजिये। अपने चारों तरफ के परिवेश के प्रति चैतन्य हो जाइये। जिस कक्ष में अभ्यास कर रहे हैं उसके प्रति तथा बाहर में हो रही आवाजों के प्रति चैतन्य हो जाइये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा

जप का अर्थ है किसी एक मंत्र को लगातार दुहराते जाना। अब इसके पूर्व 'अ' उपसर्ग लगा देने से इसका अर्थ हो जाता है स्वतः चल रहा जप, स्वाभाविक जप। इसलिए अजपा का अर्थ हुआ अविरल, स्वाभाविक मंत्र दुहराना और धारणा का अर्थ है एकनिष्ठ एकाग्रता। अतः अजपा धारणा का तात्पर्य हुआ अविरल स्वाभाविक मंत्र जप पर एकनिष्ठ एकाग्रता। धारणा की एक अवस्था में जप ही अजपा में परिवर्तित हो जाता है, जहाँ मंत्र का बिना किसी प्रयास के ही स्वतः स्वाभाविक रूप से जप होता रहता है। चेतना जप पर अधिक से अधिक केन्द्रित होती जाती है, इसलिए व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व ही मंत्र के साथ-साथ स्पन्दित होने लगता है।

जप में मंत्र को दुहराने के लिए अविरल वाचिक या मानसिक सजग प्रयास करना पड़ता है, और माला के मनकों को भी सरकाते जाना पड़ता है, परन्तु अजपा में किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। कहा जाता है कि जप मुँह से होता है, जबकि अजपा श्वास से होता है, हृदय से होता है। मंत्र दुहराने की प्राथमिक प्रक्रिया है जप और अजपा उसकी सिद्धि है।

वैदिक साधना

अजपा साधना उपनिषदों के समान ही प्राचीन है। कतिपय योग उपनिषदों में, जैसे–योगशिक्षा उपनिषद् में ऐसे मंत्र हैं जिनमें उल्लेख है कि श्वास 'सो' ध्वनि के साथ भीतर आती है और 'हम्' ध्वनि के साथ बाहर जाती है। यह अजपा गायत्री है जिसे जीव सर्वदा जपता रहता है।

हकारेण न वहिर्याति सकारेण विशेत पुनः।
हंसहंसेति गायत्री जीवो जपति सर्वदा ॥

महर्षि नारद ने महर्षि बाल्मीकि को जो उल्टा-नाम की दीक्षा दी थी, वह यही अजपा साधना थी। आज भी जो लोग निर्गुण पंथ (सम्प्रदाय), जैसे, राधास्वामी पंथ, कबीर पंथ आदि की साधना करते हैं, वे यह अजपा साधना करते हैं। गाँधी जी ने भी लिखा है– नाम का जप हृदय से होना चाहिए, मुँह से नहीं। जब नाम मुँह से निकलता है तो वह जप कहलाता है, पर जब वह हृदय से निकलता है तब वह अजपा कहलाता है।

अजपा की चर्चा करते हुए एक मुसलमान संत ने कहा है– "मैं चेतना के चतुर्थ आयाम का अनुभव कर रहा हूँ।" फिर वे कहते हैं, "हम् की चेतना नाभि चक्र से प्रारम्भ होती है। जब यह ऊपर आती है तो उलट जाती है।" अत: आप नाभि चक्र से 'हम्' उत्पन्न करते हैं। जब यह पूर्ण हो जाता है तब उलट कर 'सो' हो जाता है। अब यह 'हंसो' हो जाता है। भगवद्गीता में भी अजपा जप का स्पष्ट उल्लेख है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा: ।।

"कुछ लोग प्राण को अपान में हवन करते हैं, अन्य लोग अपान को प्राण में हवन करते हैं। जो प्राणायाम में परायण हैं वे प्राण और अपान की गति को रोक देते हैं, अर्थात् कुम्भक करते हैं।"

प्राण अन्तर्गामी श्वास है और अपान बहिर्गामी है। 'सो' प्राण का प्रतीक है और 'हम्' अपान का। अत: कुछ साधक प्राण की अपान में आहुति देते हैं अर्थात वे 'सो' को 'हम्' से मिलाते हैं, जिससे 'सोऽहम्' बनता है। अन्य साधक अपान की प्राण में आहुति देते हैं, अर्थात् वे 'हम्' को 'सो' में मिलाते हैं जिससे 'हंसो' बनता है। कुछ साधक प्राण को प्राण से ही मिलाते हैं, जिसकी चर्चा बाद में की जायेगी।

अजपा धारणा का महत्त्व

गीता में अजपा का एक और उल्लेख है। यहाँ कहते हैं कि नासिका क्षेत्र में प्रवाहित प्राण और अपान के सम हो जाने के उपरान्त नासिका में अन्तर्गामी और बहिर्गामी श्वास प्रवाह को लम्बाई और काल में समान होने दो।

अपरे नियताहारा: प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषा: ।।

शास्त्रों में इस अजपा साधना को विलोम अजपा कहते हैं। यह अपने आप में एक पूर्ण साधना है और इसके माध्यम से बिना गुरु की सहायता के ही व्यक्ति आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रवेश कर सकता है। त्राटक के सफल प्रयास में व्यक्ति जिस वस्तु पर ध्यान करता है उसका आन्तरिक मानस दर्शन कर लेता है। परन्तु उसके बाद रास्ता बन्द मिलता है। इस प्रकार आप बिना अन्य यौगिक साधनाओं की सहायता के समाधि की अवस्था में नहीं पहुँच पायेंगे। अगली साधना क्या है यह बताने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। परन्तु अजपा में आप को गुरु की आवश्यकता नहीं पड़ती।

योग साधना में कुछ ऐसे भी अभ्यास हैं जो मन को अन्तर्मुखी करते और श्वास को अपने आप निलम्बित कर देते हैं। इसमें कठिनाई यही है कि साधक थोड़ी ही देर में बहिर्मुखी हो जाता है, क्योंकि उसके फुफ्फुसों का सामर्थ्य कम है। अनेक साधकों को इस अभ्यास में यह कठिनाई आती, किन्तु अजपाजप के अभ्यास में यह कठिनाई दूर हो जाती है, क्योंकि श्वास का अविरल परिभ्रमण चलता रहता है। दूसरी बात है कि अजपा धारणा शृंखला अपने आप में ही पूर्ण है, और इसके द्वारा व्यक्ति को सीधे समाधि का अनुभव हो सकता है। अन्य सभी योग साधनाओं में समाधि के लिए व्यक्ति को श्वास को नियंत्रित करना पड़ता है। जब भी श्वास स्तम्भित होती है, कुम्भक लग जाता है। परन्तु अजपा साधना में श्वसन अविरल रूप से चलती रहती है और समाधि तक में कोई परिवर्तन नहीं होता।

उपनिषदों में कहा गया है कि व्यक्ति को अनहद जप, ऐसा जप करना चाहिए जिसका अन्त न हो। ऐसा जप अनन्त के सह-व्यापक (co-existence with eternity) होना चाहिए। हमें ऐसे किसी मंत्र का पता नहीं है। अत: मंत्र जप की एक ऐसी विधि की आवश्यकता है जिसकी समाप्ति नहीं होती हो। इसकी उपलब्धि अजपा जप द्वारा हो जाती है जहाँ मंत्र श्वसन प्रक्रिया के साथ समायोजित हो जाता है और इस प्रकार मन्त्र की चेतना लगातार बनी रहती है।

स्वर और सुषुम्ना

उपनिषद् में दो पक्षियों की कथा आती है जिनमें एक काला है और दूसरा उजला। दोनों एक खूँटी से दो डोरियों में बँधे हैं। उन्होंने उड़ने का प्रयास अनेक बार किया। परन्तु प्रत्येक बार उन्हें वापस आना पड़ा, क्योंकि वे तो बंधे हुए थे। अन्तत: वे थक कर खूँटी के पास सो गये। यह दृष्टान्त इड़ा और

पिंगला को इंगित करता है। मानो वे दोनों ही वे पक्षी हैं। दायाँ नासिका प्रवाह पिंगला या सूर्य नाड़ी और बायाँ नासिका-प्रवाह इड़ा अथवा चन्द्र नाड़ी के सदृश हैं। इड़ा और पिंगला का एकान्तर कर्म ही व्यक्ति को अपनी अन्त: चेतना से पृथक् रखता है। जब तक वे एकान्तर रूप से कार्य करेंगे, समाधि लग नहीं सकती। जब ये दोनों पक्षी थक जाते हैं और मध्य में, अर्थात् हृदय या आत्मा में विश्राम करते हैं तब सुषुम्ना जाग्रत होती है और ध्यान की प्रक्रिया स्वचालित हो जाती है।

स्वर योग के अनुसार जब दोनों स्वर समान रूप से प्रवाहित होते हैं तो यह संकेत है कि सुषुम्ना प्रवाहित हो रही है। इस समय व्यक्ति को सभी सांसारिक कार्य छोड़ कर ध्यान करना चाहिए।

ईश्वरे चिन्तिते कार्यं योगाभ्यासादि कर्म च ।
अन्यतत्र न कर्त्तव्यं जय लाभ सुखेषिमि: ।।

"सफलता और सुख की प्राप्ति की इच्छा वाले को ईश्वर चिन्तन और योगाभ्यास आदि कर्मों के अलावा अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहिए।"

यह सामान्य अनुभव है कि कभी-कभी अद्‌भुत ध्यान लगता है, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण शरीर-तंत्र में समस्वरता रहती है। परन्तु जब सुषुम्ना क्रियाशील नहीं रहती है, आप प्रयास के बाद भी एकाग्र नहीं हो सकते हैं। अत: यह महत्त्वपूर्ण है कि इड़ा और पिंगला पर ध्यान के द्वारा उन्हें समस्वरित किया जाये और इस प्रकार ही सुषुम्ना को जाग्रत करना संभव होगा।

विचार शृंखला को स्थगित करने हेतु आपको अपनी श्वास का अवलोकन करना होगा। आपको सजगतापूर्वक श्वास के संचरण का अवलोकन करना होगा। अजपा जप के समय आप जो कर रहे हैं उसके प्रति निश्चित रूप से पूर्ण एवं अटूट सजगता रहनी चाहिए। आपकी सजगता तैलधारावत् अविरल रहनी चाहिए, जो मध्य में कहीं भी भंग नहीं होती है। इसे स्वाध्याय कहते हैं। यहाँ स्वाध्याय का मतलब शास्त्रों का अध्ययन नहीं होता, वरन् इसका अर्थ होता है आप जो भी कर रहे हैं उसकी अविरल सजगता।

श्वास चेतना

अजपा जप में पहला बिन्दु है अपनी सहज श्वास की सजगता। आप प्रति मिनट 15 बार, प्रति घण्टे 900 बार और प्रत्येक 24 घण्टों में 21,600 बार श्वास

लेते-छोड़ते हैं, पर आप उसके विषय में शायद ही कभी सजग रहते हैं। इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य सभी चीजों के प्रति हम सजग रहते हैं। जीवन का रहस्य है श्वसन, और यही धारणा एवं ध्यान का आधार है।

दूसरा बिन्दु है, श्वसन के विभिन्न चार आयामों की सजगता, जो इस प्रकार हैं–(1) स्वाभाविक (2) स्वाभाविक से गहरी (3) विश्रान्त एवं (4) स्तम्भित श्वसन की सजगता। जब आप सोने जाते हैं तब आप इन चारों आयामों का अवलोकन कर सकते हैं। जब आप बिस्तर पर लेट जाते हैं तब आपका श्वसन स्वाभाविक हो जाता है। तन्द्रा में आते ही स्वाभाविक श्वसन गहरा होने लगता है। निद्रा आ जाने पर श्वसन अधिक विश्रान्त हो जाता है और हल्के खर्राटे आते हैं। गहरी निद्रा में कभी-कभी श्वसन स्तम्भित हो जाता है जिसके कारण आप अचानक जग जाते हैं।

ध्यान में भी श्वसन के ये चारों आयाम प्रकट होते हैं। यदि आप आधे घण्टे या उससे भी अधिक देर तक बिना किसी प्रयास के अपनी श्वास पर एकाग्र हों तो आप पायेंगे कि श्वसन गहरा होता जा रहा है। अन्ततोगत्वा यह विश्रान्त हो जायेगा और हल्के खर्राटे की आवाज गले से आती सुनाई पड़ेगी। गहरे ध्यान की अवस्था में भी श्वास का स्तम्भन होता है। पूरक एवं रेचक के मध्य श्वास आधे या एक मिनट के लिए स्तम्भित हो जाती है।

श्वास का संचरण

तीसरा बिन्दु है, अजपा जप में शरीर में प्रवाहित होते श्वास के संचरण की सजगता या चेतना। उदाहरणार्थ, श्वास लेते समय नाभि से कण्ठ तक श्वास के संचरण के प्रति सजग होइये और प्रश्वास में कण्ठ से नाभि तक। एक-दो मिनट के पश्चात् आपको प्रतीत होगा कि श्वास का आयाम बदल गया है। आरोहण और अवरोहण में यह उत्तरोत्तर अधिक गहरा होता जा रहा है, जैसा कि आपको अनुभव होगा।

तत्पश्चात् आप श्वास को शरीर के सभी अंगों में घुमाने का अभ्यास कर सकते हैं–उदर, वक्ष प्रदेश, मस्तक का शीर्ष भाग, आदि। आप श्वास के संचरण को विभिन्न आकृतियों से भी मिलाते जा सकते हैं, जैसे त्रिकोण, वर्ग, षट्कोण, वृत। अनाहत के पास एक-दूसरे से गुथे हुए दो त्रिभुजों की कल्पना कर सकते हैं, जिनके शीर्ष एक-दूसरे के विपरीत हों, श्वास के संचरण के साथ आप उन्हें घुमाकर एक बनाने का प्रयास कर सकते हैं।

अतीन्द्रिय पथ

अतीन्द्रिय पथ अजपा जप में चौथा बिन्दु है। श्वास के संचरण का अभ्यास कितने ही प्रकार से किया जा सकता है, परन्तु इनमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है अतीन्द्रिय पथ में श्वास की चेतना। शरीर में असंख्य अतीन्द्रिय पथ हैं, परन्तु उनमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है सुषुम्ना नाड़ी, जो मेरुरज्जु में है। दूसरे प्रधान अतीन्द्रिय पथ हैं– सम्मुख पथ, तथा इड़ा और पिंगला पथ।

योग शरीर विज्ञान के अनुसार प्राण का प्रवाह 72000 नाड़ियों अथवा प्राण-वाहिकाओं में होता है। नाड़ी का अर्थ है प्रवाह या धारा। प्राण जिन 72000 नाड़ियों में प्रवाहित होता है उनमें से दस प्रमुख हैं। इन प्रमुख दस में भी तीन प्रधान हैं और तीन में एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वही कुंजी है। इसे सुषुम्ना कहते हैं, जो मेरुरज्जु की मध्यवाहिका में संचरित होती है। दो अन्य सुषुम्ना के बायें और दायें अवस्थित हैं। इन्हें क्रमशः इड़ा, अर्थात् मानसिक और पिंगला, अर्थात् प्राणिक कहते हैं। सुषुम्ना आध्यात्मिक चेतना के लिए उत्तरदायी है। इड़ा सभी मानसिक कार्यों का कारण है और पिंगला सभी जैव क्रियाओं का नियंत्रण करती है। इस प्रकार ये तीन नाड़ियाँ शरीर की सभी क्रियाओं को नियंत्रित करती हैं।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना, तीनों मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होती हैं। पुरुषों में मूलाधार चक्र गुदा एवं जननेन्द्रिय के मध्य और स्त्रियों में योनि ग्रीवा पर रहता है। मूलाधार से ये तीनों पुच्छास्थि की ओर प्रस्थान करती हैं, फिर सीधे मेरुरज्जु होते हुए आज्ञा चक्र तक पहुँचती हैं जो भ्रूमध्य के पीछे अवस्थित है। यहाँ आकर इड़ा और पिंगला समाप्त हो जाती हैं, परन्तु सुषुम्ना सहस्रार तक जाती है, जो मस्तक के शीर्ष पर अवस्थित सर्वोच्च चक्र है, जहाँ मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः सुषुम्ना वह वाहिका है जिसके माध्यम से आध्यात्मिक जागरण होता है। इसी कारण यह मुख्य अतीन्द्रिय पथ मानी जाती है।

अतीन्द्रिय ध्वनि

अजपा जप में पाँचवाँ बिन्दु है अतीन्द्रिय ध्वनि या मंत्र जो श्वास में समाहित रहता है। श्वास लेते समय श्वास स्वाभाविक रूप से 'सो' ध्वनि और प्रश्वास करते समय 'हम्' ध्वनि उत्पन्न करती है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यही है कि श्वास और मंत्र को एक हो जाना चाहिए। प्रारम्भ में तो आप श्वास के भीतर-बाहर प्रवाह के प्रति सजग रहते हैं। परन्तु बाद में जब आप श्वास और

मंत्र को समन्वित कर लेते हैं तो दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, 'सोऽहम्'। अतीन्द्रिय पथ के अन्दर श्वसन के समय आपको निश्चित रूप से श्वास के संचरण के साथ शक्तिशाली ध्वनि 'सोऽहम्' के संचरण-संयोग के प्रति सजग होना चाहिए।

यह प्रक्रिया नड़ियों को शुद्ध कर देती है। जब श्वास में मंत्र जागरण होता है तो सम्पूर्ण शरीर पुनराविष्ट हो जाता है। अतीन्द्रिय विकार एवं नाड़ियों के अवरोध समाप्त हो जाते हैं, जो शारीरिक और मानसिक बाधाओं के मूल स्रोत हैं। अतीन्द्रिय ध्वनि, 'सोऽहम्' मंत्र अतीन्द्रिय पथ को शुद्ध करता है और शरीर के कण-कण में प्रवेश कर जाता है। सुषुम्ना ही आत्मा अथवा परम चेतना है। जब सुषुम्ना स्पन्दित होने लगती है तो आत्म-चेतना सक्रिय हो जाती है। जब इड़ा स्पन्दित होती है, तब मानसिक शक्तियाँ सक्रिय होती हैं तथा पिंगला के स्पन्दित होते ही प्राण-शक्ति जाग्रत होती है और ऊर्जा व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर तंत्र में प्रवाहित होने लगती है, यहाँ तक कि स्थूल शरीर के बाहर भी व्याप्त होने लगती है।

सुषुम्ना जागरण

प्राण, श्वास और मंत्र का ऊपर-नीचे संचरण होने पर धारणा की सहायता से जब सुषुम्ना स्पन्दित होने लगती है तब चेतना के उच्चतर क्षेत्रों में जागरण होने लगता है। तब आन्तरिक या अतीन्द्रिय ध्वनि उत्पन्न होती है जिसे 'नाद' कहते हैं। आन्तरिक आयामों की नीरवता में व्यक्ति घण्टी, शंख, वीणा, मृदंग, लोकोत्तर संगीत, सागर का गर्जन, बिजली की कड़क सुनने लगता है। एक नहीं, अनेक ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। अन्य आन्तरिक अनुभूतियाँ भी नये और भिन्न-भिन्न आयामों में होने लगती हैं। वह संकेत है कि कर्म और संस्कार नष्ट हो रहे हैं, प्रतीकात्मक रूप से समाप्त हो रहे हैं।

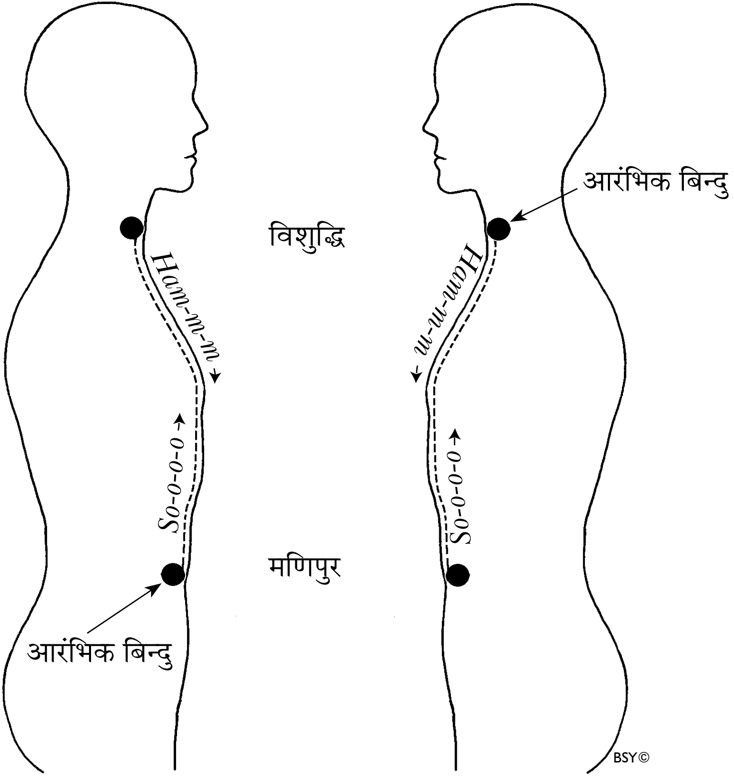
जब मंत्र शक्ति की सहायता से सुषुम्ना का जागरण होता है, तब प्रतीकात्मक रूप से कर्मों का क्षय होता है। इसके परिणामस्वरूप अन्तर्ध्वनि की उत्पत्ति एवं अपूर्व अनुभूतियाँ होती हैं। आपको संगीत सुनाई पड़ता है तथा रंग, पशु, प्रतीक आदि दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी तो आपको प्रतीत होगा कि क्षितिज आप से और अधिक दूर चला जा रहा है या आपका शरीर फट जाने की सीमा तक फैलता जा रहा है, मानो उसमें हवा भरती जा रही है।

ऐसी ही और इससे भी अधिक सार्थक, निरर्थक, सुसंगत या असंगत, एवं सामान्य अथवा असामान्य अनुभूतियाँ होती हैं। ये सब आपकी गहरी चेतना से उत्पन्न होती हैं। ये सभी आपकी ही हैं। आपने अपने जीवन काल में इन्हें प्राप्त किया है या अपने माता-पिता से डी. एन. ए. अणुओं के रूप में वंशगत रूप में पाया है।

अजपा धारणा कुण्डलिनी योग का आधार है। इस अभ्यास से वास्तविक ध्यान या धारणा प्रारम्भ होती है। जब अजपा धारणा पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाती है तब मन पूर्णतया एकाग्र हो जाता है। इस तरह से सहज ध्यान का अवतरण होता है।

अजपा धारणा एक

सम्मुख पथ: मणिपुर – विशुद्धि



सोऽहम्
श्वास – सो
प्रश्वास – हम्

हंसो
प्रश्वास – हम्
श्वास – सो

अजपा धारणा एक

सम्मुख पथ-परिभ्रमण

अजपा धारणा में चेतना, श्वास और मन्त्र के संचरण हेतु अनेक अतीन्द्रिय पथों का उपयोग किया गया है। उनमें से प्रथम, जिसकी चर्चा यहाँ की गई है, वह सम्मुख (शरीर के अग्र भाग में) अतीन्द्रिय पथ है जिसका विस्तार नाभि स्थित मणिपुर प्रेरक बिन्दु से कण्ठ स्थित विशुद्धि प्रेरक बिन्दु तक है। यह पथ अपने आप में अति शक्तिशाली है, क्योंकि चक्र क्षेत्र या चक्रों के प्रेरक बिन्दु इसी पथ पर अवस्थित हैं। ये सूक्ष्म केन्द्र हैं जिनके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में उपयोग के लिए मेरुदण्ड में अवस्थित चक्रों से संप्रेषित अतीन्द्रिय-ऊर्जा के उच्च विभव (वोल्टेज) का अवमन्दन होता है।

सर्वप्रथम सम्मुख पथ की चर्चा इसलिए की जा रही है कि यह सर्वाधिक सुविदित है और इसीलिए सहज भी है। नाभि और कण्ठ के मध्य के क्षेत्र का मानस दर्शन करने में कम प्रयास लगता है, क्योंकि हम इसके प्रति प्राय: हर समय चैतन्य रहते हैं। यहाँ श्वास का परिभ्रमण करना भी सरल है, क्योंकि सामान्य श्वसन क्रिया इसी क्षेत्र में होती है। सम्मुख-पथ-परिभ्रमण का प्रभाव हृदय और फेफड़ों के लिए अत्यन्त विश्रान्तिदायक होता है। साथ ही साथ यह इस क्षेत्र में प्राणिक अवरोधों को हटाता और प्राण का संचय करता है।

इस साधना के अनेक चरण हैं जो अतीन्द्रिय पथ में चेतना का विकास करते हैं। सर्वप्रथम श्वास को ऊपर-नीचे, नाभि से कण्ठ तक और कण्ठ से नाभि तक सीधी रेखा में भ्रमण कराया जाता है। तब सम्मुख अतीन्द्रिय पथ को एक प्रदीप्त पारदर्शक नली के रूप में देखा जाता है। इसके पश्चात् इसी अतीन्द्रिय पथ में श्वास को परिभ्रमित किया जाता है। जब इसमें पूर्णता आ जाती है तब इस सम्मुख पथ के अन्दर प्राण परिभ्रमण की कल्पना मानसिक

रूप से की जाती है। इसके उपरान्त 'सोऽहम्' और 'हंसो' मंत्रों का परिभ्रमण होता है। प्रत्येक चरण में सम्मुख पथ में ऊर्जा के बढ़ते संचय का अनुभव होता है तथा धारणा गहरी एवं अधिक एकाग्र होती जाती है। इस साधना में इसी सिद्धान्त का उपयोग होता है कि ऊर्जा के जागरण से चेतना की जागृति होती है जिसके कारण एकाग्र होना और मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित करना आसान हो जाता है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। सुनिश्चित कर लीजिये कि आपका मेरुदण्ड सीधा है। सिर, गर्दन और कन्धे थोड़े पीछे हों। चिन् या ज्ञानमुद्रा में हाथों को अपने घुटनों पर रखिये। अपने स्थूल शरीर और अपने ध्यान के आसन के विषय में सजग हो जाइये। सिर से पैर तक अपने शरीर की स्थिति का अनुभव कीजिये। शरीर की स्थिति का स्थिर एवं अचल होना अनुभव कीजिये। शरीर एवं उसकी निश्चलता की पूर्ण सजगता रहे।

द्वितीय चरण– श्वास-चेतना

अपनी सजगता को शरीर से हटाकर श्वास पर ले चलिये। श्वास को मन्द एवं गहरा करते जाइये। श्वास लेने में पाँच तक गिनती कीजिये, फिर प्रश्वास में भी पाँच तक गिनती कीजिये। कण्ठ में श्वसन की धारणा कीजिये। पूरक एवं रेचक के समय कण्ठ में श्वास की गति का अनुभव कीजिये। कण्ठ में लयबद्ध श्वास पर एकाग्र होते हुए आप मन एवं शरीर में क्रमशः स्थिरता एवं सन्तुलन का अनुभव करेंगे।

अब नाभि से कण्ठ तक संचरण कर रही श्वास के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता नाभि पर लाइये। एक सीधी रेखा में नाभि से कण्ठ तक श्वास लीजिये। पुनः कण्ठ से नाभि तक एक सीधी रेखा में प्रश्वास कीजिये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास में आप पाँच तक गिनती कीजिये। नाभि से कण्ठ और कण्ठ से नाभि तक तब तक ऊपर-नीचे श्वसन चालू रखिये जब तक बिना किसी सजग प्रयास के श्वास इस निश्चित पथ पर न चलने लगे। प्रत्येक श्वास की सजगता के साथ इस संचरण को सावधानी से देखते जाइये।

तृतीय चरण– सम्मुख पथ का मानस दर्शन

कुछ क्षणों के लिए श्वास की सजगता को छोड़ दीजिये और शरीर के सामने के भाग में नाभि से कण्ठ के मध्य अतीन्द्रिय पथ की कल्पना कीजिये। अतीन्द्रिय पथ को नाभि से कण्ठ को मिलाने वाली एक लम्बी पतली पारदर्शक नली के रूप में देखिये, जो भीतर में खोखली है और बाँसुरी की तरह दोनों छोरों पर खुली हुई है। इसमें आप ऊपर से नीचे की ओर या नीचे से ऊपर की ओर फूँक लगा सकते हैं। प्रदीप्त पारदर्शक नली की कल्पना कीजिये और अपनी चेतना को उसकी बाह्य सतह पर ऊपर-नीचे घुमाइये। पूरी नली को उसकी लम्बाई में स्पष्टता से देखिये। अब अपनी सजगता को नली के अन्दर ले चलिये। अपनी सजगता को नली के मध्य में ऊपर-नीचे घुमाइये और उसे मानसिक रूप से भीतर से देखिये।

चतुर्थ चरण– अतीन्द्रिय पथ में श्वास परिभ्रमण

अपनी सजगता को पुनः मन्द और गहरे श्वसन पर ले जाइये। नाभि और कण्ठ के मध्य सम्मुख पथ में अपनी श्वास को संचरण करता हुआ अनुभव कीजिये। पूरक में श्वास नाभि से कण्ठ की ओर आरोहण करती है। रेचक में श्वास कण्ठ से नाभि तक अवरोहण करती है। प्रत्येक श्वास के आरोहण एवं अवरोहण के समय अतीन्द्रिय पथ के अन्तः भाग को मानसिक रूप से देखिये। अनुभव कीजिये आपकी चेतना श्वास के ही साथ अतीन्द्रिय पथ में ऊपर नीचे परिभ्रमण कर रही है। जैसे श्वास उस पथ में परिभ्रमण करती है वैसे ही चेतना भी। इन दो भिन्न शक्तियों– श्वास और चेतना को एक साथ अतीन्द्रिय पथ में परिभ्रमण करते हुए देखिये।

पंचम चरण– प्राण का परिभ्रमण

अतीन्द्रिय पथ में साथ-साथ संचरण कर रही श्वास और चेतना की सजगता को तीव्र कीजिये। अतीन्द्रिय पथ में साथ-साथ आरोहण एवं अवरोहण करती हुई श्वास एवं चेतना के प्रवाह को अनुभव कीजिये। धीरे-धीरे तीसरी शक्ति, प्राण-शक्ति के प्रति, जो श्वास और चेतना के साथ संचरण कर रही है, सजग होइये। श्वास के साथ संचरण कर रहे प्राण के प्रवाह को देखने हेतु सूक्ष्म सजगता की आवश्यकता पड़ती है। श्वास तो हवा या वायु के रूप में चलती है, जबकि प्राण प्राण-ऊर्जा के रूप में संचरण करता है। श्वास के साथ संचरण करती हुई ऊर्जा या प्राण ही अतीन्द्रिय पथ का निर्माण करता है, जैसे बहता हुआ पानी नदी निर्मित करता है।

अतीन्द्रिय पथ के अन्दर श्वास के साथ प्राण के संचरण के प्रति सजग होइये। प्राण या ऊर्जा के चमकीले, पतले प्रवाह को मानसिक रूप से देखिये जो नाभि और कण्ठ के मध्य श्वास के साथ ऊपर और प्रश्वास के साथ नीचे की ओर प्रवाहित होता है। अतीन्द्रिय पथ में प्राण के संचरण का ध्यान पूर्वक अवलोकन कीजिये और उसे अनुभव करने का प्रयास कीजिये। प्रारम्भ में आपको अपनी कल्पना का उपयोग करना पड़ सकता है, परन्तु अभ्यास के द्वारा बाद में अतीन्द्रिय पथ में ऊपर-नीचे संचरण कर रहे शक्तिशाली ऊर्जा-प्रवाह को आप सहज रूप में अनुभव कर सकते हैं। प्रत्येक श्वास के साथ प्राण के संचरण के प्रति सजग रहिये।

षष्ठ चरण– सोऽहम् का परिभ्रमण

अब प्राण की सजगता को छोड़कर केवल श्वास की चेतना को तीव्र कीजिये। सम्मुख पथ में ऊपर-नीचे आ-जा रही प्रत्येक श्वास की ध्वनि सुनिये। 'सोऽहम्' मंत्र ही श्वास की अन्तर्निहित ध्वनि है। श्वास में 'सो' मंत्र एवं प्रश्वास में 'हम्' मंत्र को सुनिये। 'सोऽहम्' मंत्र श्वास से भिन्न नहीं है। आप इसका वाणी द्वारा जप नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक बार जब आप श्वास लेते हैं तो यह श्वास में ही चलता रहता है। आपको केवल उसके प्रति सजग होना है। बस इतना ही।

पूरक के समय ध्यानपूर्वक सो-ओ-ओ की ध्वनि सुनिये और रेचक में हम्-म्-म्-म् की ध्वनि। श्वास के मंत्र– सोऽहम् के साथ-साथ श्वास की प्रक्रिया पर धारणा कीजिये। जैसे श्वास संचरण करती है, ध्वनि उसी के साथ संचरण करती है। आप अतीन्द्रिय पथ में श्वास के संचरण और 'सोऽहम्' मंत्र के स्पन्दन के प्रति चैतन्य हैं, सजग हैं। अतीन्द्रिय पथ में अपनी पूर्ण सजगता को एकाग्र कीजिये। वहाँ न कोई अन्य विचार, न दृश्य, और न कोई अन्य अनुभूति रहे।

अनुभव करने का प्रयास कीजिये कि सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया केवल अतीन्द्रिय पथ में चल रही है। जैसे-जैसे श्वास सूक्ष्मतर होता जाता है मंत्र का स्पन्दन भी सूक्ष्मतर होता जाता है। सम्मुख पथ में इस प्रक्रिया को एक अतीन्द्रिय संचरण के रूप में आप क्रमश: अनुभव करेंगे। आपकी चेतना का आयाम बदल जायेगा, क्योंकि श्वास और मंत्र के संचरण में मन पूर्णतया लीन हो जायेगा। श्वास तथा मंत्र के अलावा अतीन्द्रिय पथ के परे कुछ भी विद्यमान नहीं रहेगा।

सप्तम् चरण– 'हंसो' का परिभ्रमण

अब आप अपनी मंत्र चेतना को 'सोऽहम्' से 'हम् सो' में परिवर्तित कीजिये। पूर्व अभ्यास की ही तरह श्वास चेतना अतीन्द्रिय पथ में ही रहेगी, परन्तु, मंत्र चेतना का उद्गम स्थान बदल जायेगा। मणिपुर से पूरक के साथ मंत्र प्रारम्भ करने के बदले विशुद्धि से प्रारम्भ कीजिये। रेचक में विशुद्धि से प्रारम्भ कर मणिपुर में जाइये।

अपनी चेतना को विशुद्धि में लाइये। अतीन्द्रिय पथ द्वारा विशुद्धि से मणिपुर की ओर रेचक कीजिये और हम्-म्-म्-म् मंत्र को सुनिये। फिर मणिपुर से विशुद्धि की ओर श्वास लीजिये और सो-ओ-ओ-ओ मंत्र को सुनिये। 'हम्' मंत्र प्रश्वास के साथ विशुद्धि से मणिपुर तक जायेगा और 'सो' मंत्र पूरक के साथ मणिपुर से विशुद्धि तक आयेगा। केवल प्रारम्भ करने का स्थान बदल गया। अब आप प्रत्येक चक्र का प्रारम्भ विशुद्धि से प्रश्वास एवं 'हम्' मंत्र के साथ कीजिये, जिसका अनुसरण मणिपुर से श्वास एवं 'सो' मंत्र करेंगे।

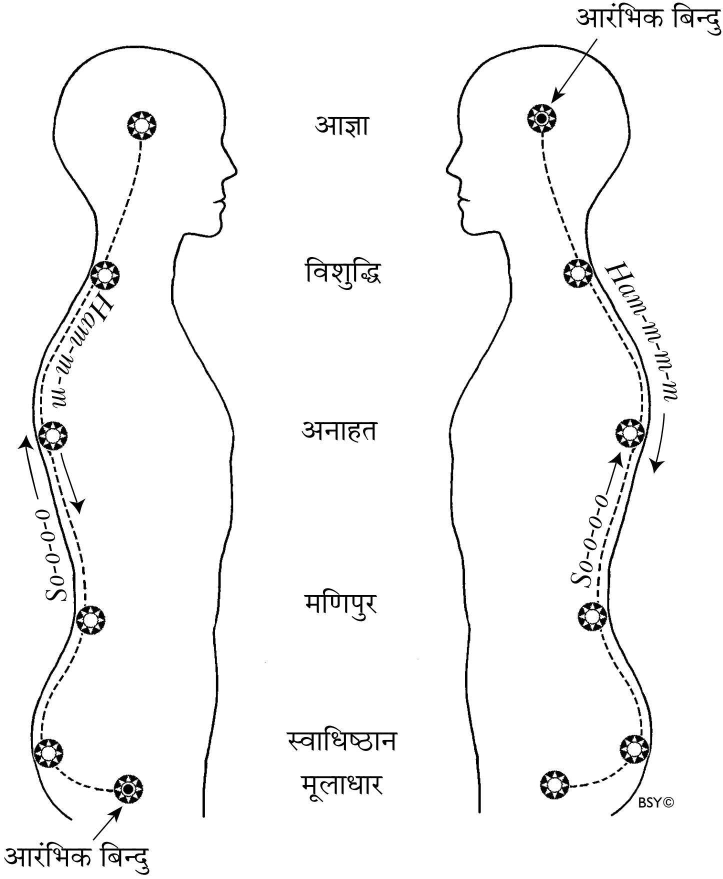
इस 'हंसो' चेतना को कुछ और देर तक बनाये रखिये। अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ समकालिक मंत्र के बोध को और तीव्र कीजिये। प्रश्वास एवं 'हम्' मंत्र पर बल देने से आपको अनुभव होगा कि चेतना और भी अधिक गहरी होती जा रही है। इस समय प्रयास कीजिए कि आप रंगों और दृश्यों की क्षणिक झलकों से आशान्त न हों। मन में जो कुछ भी आये उसे केवल अनासक्त भाव से, उदासीन भाव से देखिये और चेतना को पुनः अतीन्द्रिय पथ में चल रहे श्वास और मंत्र पर ले आइये।

अष्टम् चरण– साधना का विराम

अब अभ्यास को विराम देने हेतु तैयार हो जाइये। सम्मुख पथ एवं मंत्र से अपनी चेतना को हटाइये। सहज श्वास लेना प्रारम्भ कीजिये। पुनः अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये, जो ध्यान के आसन में बैठा है। अपने स्थूल शरीर को आपाद-मस्तक देखिये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार के प्रति सजग होइये। घुटनों पर रखे अपने हाथों को देखिये। धीरे-धीरे हाथ-पैर की उँगलियों को हिलाइये। लम्बी गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' मंत्र का उच्चारण कीजिये।

अजपा धारणा दो

मेरुदण्ड-पथ में परिभ्रमण



सोऽहम्

श्वास– सो

प्रश्वास– हम्

हंसो

प्रश्वास– हम्

श्वास– सो

अजपा धारणा दो

मेरुदण्ड-पथ में परिभ्रमण

इस साधना में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अतीन्द्रिय पथ का उपयोग किया जाता है, जो मेरुरज्जु के बिलकुल केन्द्र में अवस्थित है। इस पथ को सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं जो मेरुरज्जु के आधार में स्थित मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होती है। इसी मार्ग से आध्यात्मिक ऊर्जा या कुण्डलिनी को मस्तिष्क या शीर्ष चक्र तक की यात्रा करनी होती है, जहाँ वह प्रदीपन के लिए परम चेतना से मिलती है। इसी सुषुम्ना के पास में विलक्षण चक्र या अतीन्द्रिय स्विच अवस्थित हैं, जो प्रसुप्त अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्रदीप्त करते हैं। ये क्षमतायें सुषुप्त मस्तिष्क की अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अन्त: गुफाओं में छिपी बैठी हैं।

इस साधना का उद्देश्य इस वाहिका की चेतना को विकसित करना है जो हमारे आध्यात्मिक विकास एवं प्रगति के लिए अत्यन्त महत्त्व की है। शरीर का पृष्ठ प्रदेश ऐसा क्षेत्र है जिसके विषय में हम सामान्यत: अधिक सजग नहीं रहते, क्योंकि न तो हम उसे देख पाते हैं और न सरलता से उसका स्पर्श ही कर पाते हैं। इस पर भी वह पथ मेरुदण्ड के मध्य में अवस्थित है जो स्वयं एक ऐसी अस्थि संरचना है जिसमें प्रवेश भी कठिन है। इस क्षेत्र के प्रति हमारी सामान्य असजगता के कारण कहा जाता है कि सुषुम्ना पथ हमारे सजग बोध के परे तमस या जड़ता में पड़ा है। अपनी इस सुषुप्त आध्यात्मिक अन्त:शक्ति को जागृत करने एवं अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करने के लिए इस अतीन्द्रिय पथ का खुलना अनिवार्य है। जब तक सुषुम्ना बन्द है, आध्यात्मिक चेतना का विकास नहीं हो सकता।

इस साधना में अनेक चरण हैं, जो सुषुम्ना पथ को क्रमबद्ध ढंग से खोलते, परिशुद्ध करते, और जागृत करते हैं। सर्वप्रथम हम मेरुदण्ड में

मूलाधार से आज्ञा और आज्ञा से मूलाधार के मध्य सीधी रेखा में श्वास को ऊपर-नीचे निर्देशित करते हैं। इसके पश्चात् सुषुम्ना का मेरुदण्ड की संरचना में एक प्रदीप्त वाहिका या प्रकाश रेखा के रूप में मानस दर्शन किया जाता है। तदुपरान्त मानस दर्शन करते हुए श्वास को सुषुम्ना में परिभ्रमण कराया जाता है। इसके उपरान्त बारी-बारी से प्रत्येक चक्र का भेदन करते हुए प्राण के परिभ्रमण का अनुभव किया जाता है। अन्ततः सुषुम्ना की परिशुद्धि और उसका जागरण 'सोऽहम्' और 'हम् सो' मंत्रों के परिभ्रमण द्वारा होता है।

जैसे-जैसे यह साधना सिद्ध होती जाती है सुषुम्ना पथ में अतीन्द्रिय ऊर्जा के अपार भण्डार की अनुभूति होती है। यह ऊर्जा भण्डार प्राण, नाड़ियों, चक्रों एवं अन्ततः अन्तर्निहित आध्यात्मिक शक्ति, कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता है। जैसे-जैसे इस जागरण प्रक्रिया में संवेग आता है, धारणा और ध्यान की अवस्था में स्थिरता एवं एकाग्रता आने लगती है, क्योंकि चेतना हमारे अस्तित्व के सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय आयामों का भेदन करती है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये और सुनिश्चित कीजिये कि आपका मेरुदण्ड सीधा है। सिर, गर्दन और कन्धे थोड़ा पीछे रहेंगे। हाथों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। एक बार पुनः शरीर की जाँच कर लीजिये और उसे सुव्यवस्थित कर लीजिये। शरीर की विश्रान्त, स्थिर और संतुलित स्थिति का अनुभव कीजिये। शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता के प्रति एकाग्र हो जाइये।

द्वितीय चरण– श्वास चेतना

अपनी सजगता को शरीर से हटाकर श्वास पर लाइये। मन्द लयात्मक श्वसन कीजिये। जब आप श्वास लेते हैं तब धीरे-धीरे पाँच तक गिनती कीजिये और उसी तरह जब आप श्वास छोड़ते हैं तब भी धीरे-धीरे पाँच तक की गिनती कीजिये। श्वसन एवं गिनती के प्रति पूर्ण सजगता बनी रहे। अनुभव कीजिये कि श्वास मन्द और एक समान हो रही है। मन्द एवं लयात्मक श्वसन पर धारणा करते हुए शरीर और मन को भी उसके अनुकूल होता अनुभव कीजिये। शरीर और मन श्वास के साथ समस्वरित

हो रहे हैं जो नियमित एवं लयबद्ध है। अब मेरुदण्ड के निचले भाग में मूलाधार पिण्ड में अवस्थित मूलाधार चक्र पर अपनी चेतना ले आइये। धीरे-धीरे पूरक कीजिये और मेरुरज्जु के सहारे नीचे मूलाधार से ऊपर आज्ञा चक्र तक श्वास के साथ अपनी चेतना को ले आइये। जब आप मेरुरज्जु के शीर्ष पर आ जायें तब धीरे से श्वास छोड़ते हुए आज्ञा से मूलाधार तक नीचे आइये। मूलाधार से आज्ञा और आज्ञा से मूलाधार तक मेरुदण्ड में सीधी रेखा में ऊपर और नीचे श्वसन करते जाइये। पीठ के मध्य मेरुदण्ड में श्वास के संचरण को अनुभव कीजिये। यह चेतना लाना अधिक कठिन है, क्योंकि हम इस क्षेत्र के प्रति उतना चैतन्य नहीं रहते जितना शरीर के अग्र भागों के प्रति रहते हैं।

तृतीय चरण– सुषुम्ना का मानस दर्शन

थोड़ी देर के लिए श्वसन को छोड़िये। मेरुरज्जु के ठीक मध्य में जा रहे उस सूक्ष्म अतीन्द्रिय पथ की कल्पना करने का प्रयास कीजिये। यही पथ सुषुम्ना नाड़ी है। यही वह आध्यात्मिक वाहिका है जिससे होकर आध्यात्मिक शक्ति या कुण्डलिनी शक्ति प्रदीपन हेतु मूलाधार से ऊपर सहस्रार तक जाती है। सूक्ष्म अभौतिक पदार्थ से बने एक लम्बे, पतले प्रदीप्त मार्ग की कल्पना कीजिये। मेरुरज्जु के मध्य मूलाधार से आज्ञा तक सुषुम्ना पथ को देखिये। जब आप इस नली को देखते हैं तो प्रतीत होता है कि यह केवल प्रकाश से ही बनी और पारदर्शी है। श्वेत प्रकाश के कण, श्वेत प्रकाश के रेशे परस्पर मिश्रित एवं अन्तर्ग्रथित होकर इस पथ का निर्माण करते हैं।

सुषुम्ना पथ को मानसिक रूप से देखिये एवं उस की बाहरी सतह पर अपनी चेतना का ऊपर-नीचे संचरण कीजिये। इस सूक्ष्म वाहिका की दीप्ति का अनुभव कीजिये। सुषुम्ना वाहिका भी भीतर से खोखली है और दोनों छोरों पर खुली है। इस सुषुम्ना पथ के मध्य से अपनी चेतना को ऊपर-नीचे ले जाइये। इस वाहिका की पूरी लम्बाई का भीतर से पूरी स्पष्टता से मानस-दर्शन कीजिए। अपनी सजगता को तीव्र कीजिये और मेरुरज्जु के मध्य में सुषुम्ना पथ के दृश्य को जाग्रत कीजिये।

चतुर्थ चरण– सुषुम्ना में श्वसन

अब अपने मन्द एवं गहरे श्वसन पर सजगता वापस लाइये। सुषुम्ना पथ में चल रही अपने श्वास को अनुभव कीजिये। श्वास के साथ मूलाधार से

आज्ञा तक मेरु-पथ के मध्य में आरोहण कीजिये। प्रश्वास के समय आज्ञा से मूलाधार तक इसी मेरु-पथ में अवरोहण कीजिये। इस पथ के अन्दर श्वास के संचरण पर एकाग्रता लाइये। साथ ही साथ सुषुम्ना दर्शन को जाग्रत कीजिये, जिससे आप आरोहण और अवरोहण के समय इस पथ की पूरी लम्बाई को देख सकें।

आप की समग्र चेतना अतीन्द्रिय पथ के भीतर लगी हुई है। श्वास के आरोहण के साथ चेतना भी आरोहण करती है और पथ के प्रत्येक भाग का अवलोकन करती है। जब श्वास का अवरोहण होता है तब समग्र पथ को सूक्ष्म रूप से अवलोकन करती हुई चेतना भी अवरोहण करती है। श्वास और चेतना का दो भिन्न शक्तियों या प्रवाह के रूप में अनुभव कीजिए– एक वायु और दूसरी चेतना। मेरु पथ में ऊपर-नीचे एक साथ संचरण कर रही दोनों शक्तियों के प्रति सजग होइये।

पंचम चरण– प्राण की चेतना

अब मेरु पथ की संरचना के भीतर श्वास के साथ संचरण कर रही तीसरी शक्ति के प्रति सजग होइये। सुषुम्ना पथ में श्वास के साथ-साथ ऊपर-नीचे संचरण कर रही जैव ऊर्जा या प्राण का अनुभव करने का प्रयास कीजिये। प्राण का अनुभव एक प्रकाश-प्रवाह, ज्योति कणों की धारा या ज्योति कौंधों के प्रवाह के रूप में किया जा सकता है, जो मेरु-पथ में संचरण कर रहा है। इसका ताप-प्रवाह, शीत-प्रवाह या विद्युत-प्रवाह के रूप में भी अनुभव हो सकता है। सुषुम्ना पथ में श्वास के साथ संचरण कर रहे प्राण के अनुभव की समग्र चेतना पर एकाग्रता लाइये। श्वास के आरोहण के साथ प्राण का आरोहण होता है तथा जैसे श्वास का अवरोहण होता है, प्राण का भी अवरोहण होता है। मेरु-पथ में एक साथ संचरण कर रही तीनों शक्तियों– श्वास, प्राण, और चेतना का अनुभव कीजिये।

षष्ठ चरण– चक्र भेदन

जब प्राण का बोध इस सीमा तक विकसित हो जाता है कि आप श्वास के साथ इसके स्वाभाविक संचरण को अनुभव कर सकते हैं तब आप सुषुम्ना के साथ विभिन्न चक्र संगमों को मानसिक रूप से देखिये। चक्रों को प्रकाश कणों के समान अतीन्द्रिय पथ में माला के मनकों की तरह टँका हुआ मानसिक रूप से देखिये।

मेरुदण्ड के आधार मूलाधार पिण्ड में अपनी चेतना को ले जाइये, जहाँ अतीन्द्रिय पथ उद्‌गम है। यहाँ पर प्रकाश के प्रथम कण को देखिये जो मूलाधार का प्रतीक है। इस के उपरान्त त्रिक या मेरुदण्ड के निचले छोर पर अगले प्रकाश कण को देखिये जो द्वितीय चक्र स्वाधिष्ठान का प्रतीक है। तत्पश्चात् नाभि के ठीक पीछे मेरुदण्ड में एक प्रकाश-कण को देखिये, जो तीसरा चक्र मणिपुर है। इसके उपरान्त उरोस्थि के पीछे मेरुदण्ड में हृदय के स्तर पर एक प्रकाश बिन्दु की कल्पना कीजिये, जो चौथा चक्र अनाहत है। अब कण्ठ के पीछे मेरु-पथ में एक प्रकाश-कण की कल्पना कीजिये, जो पाँचवाँ चक्र विशुद्धि है। अन्त में मध्य मस्तिष्क में मेरु-पथ के शीर्ष पर एक प्रकाश-कण की कल्पना कीजिये, जो छठा चक्र आज्ञा है।

अब अतीन्द्रिय पथ में मूलाधार से आज्ञा और आज्ञा से मूलाधार के बीच श्वास के साथ प्राण के आरोहण-अवरोहण की चेतना को पुनः जागृत कीजिये। जब श्वास और प्राण अतीन्द्रिय पथ में आरोहण-अवरोहण करते हैं तो प्राण को एक तेज सुई के समान अनुभव कीजिये जो एक क्रम से सभी चक्रों का भेदन करती जा रही है। बिना किसी अन्तराल या व्यवधान के एक के बाद एक चक्रों का भेदन एवं प्रस्फुटन अनुभव कीजिये। किसी चक्र-विशेष पर न एकाग्र होने का प्रयास कीजिये और न उनका नाम लेने के लिए रुकिये। श्वास और प्राण, एक एक्सप्रेस गाड़ी की तरह, रास्ते के विभिन्न जंक्शन स्टेशनों पर बिना रुके सीधे गुजरते हुए सुषुम्ना में ऊपर-नीचे संचरण कर रहे हैं।

सप्तम् चरण– 'सोऽहम्' की चेतना

अब प्राण और चक्रों की सजगता छोड़ दीजिये। मेरु-पथ में ऊपर-नीचे संचरण कर रही श्वास की ध्वनि के प्रति सजग हो जाइये। सजगता को तीव्र कीजिये। सुषुम्ना पथ में ऊपर-नीचे संचरण कर रही प्रत्येक श्वास की सूक्ष्म ध्वनि को सावधानी से सुनिये। श्वास में ही अन्तर्निहित नाद या ध्वनि को ध्यान से सुनिये। जब आप श्वास लेते हैं तो सो-ओ-ओ मंत्र को और प्रश्वास में हम्-म्-म् मंत्र को सुनिये। अपनी सम्पूर्ण सजगता को श्वसन प्रक्रिया तथा श्वास के मंत्र सोऽहम् पर केन्द्रित कीजिये।

पूरक में जैसे श्वास मेरु-पथ में ऊपर चढ़ती है तो 'सो' मंत्र भी उसके साथ संचरण करता है। जब रेचक में श्वास मेरु-पथ में नीचे उतरती है तब 'हम्'

मंत्र उसके साथ संचरण करता है। ध्वनि और श्वास की दोनों शक्तियाँ एक साथ इस प्रकार संचरण करती हैं मानो वे एक समन्वित इकाई हों। दोनों में कोई विभेद ही नहीं रह जाता। सुषुम्ना पथ में ध्वनि एवं श्वास के एक संचरण पर धारणा कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र का स्पन्दन इस महत्त्वपूर्ण पथ को शुद्ध एवं प्रशस्त करता जा रहा है और इसकी दीप्ति को बढ़ाता जा रहा है। आपकी सजगता ध्वनि के साथ एक है, श्वास के साथ एक है, ज्योति के साथ एक है। 'सोऽहम्' मंत्र की इस सजगता को तीव्र कीजिये। 'सो' की ध्वनि श्वास में आरोहण करती है और प्रश्वास में अवरोहण करती है। प्रत्येक श्वास का ध्यान रखते हुए इस अभ्यास को करते जाइये।

अष्टम् चरण– 'हम् सो' की सजगता

इसमें श्वास और अतीन्द्रिय पथ की सजगता पूर्व चरण के ही समान है। केवल प्रारम्भ करने का स्थान बदल जाता है। मूलाधार से पूरक और 'सो' मंत्र प्रारम्भ करने के बदले प्रारम्भ स्थान 'आज्ञा' होता है, जहाँ से पूरक के साथ 'हम्' मंत्र चलता है।

अपनी चेतना आज्ञा पर लाइये। मेरु-पथ में आज्ञा से मूलाधार तक प्रश्वास कीजिये और 'हम्' मंत्र को सुनिये। तत्पश्चात् 'सो' मंत्र के साथ मूलाधार से आज्ञा तक पूरक कीजिये। अभी भी प्रश्वास में आज्ञा से मूलाधार तक 'हम्-म्-म्' मंत्र एवं श्वास में मूलाधार से आज्ञा तक 'सो-ओ-ओ' मंत्र सम्मिलित रहता है। श्वसन प्रक्रिया भी वही है, केवल प्रारम्भ करने का स्थान बदल गया है।

अब आप आज्ञा से प्रश्वास एवं 'हम्' मंत्र के साथ अभ्यास के प्रत्येक चरण को प्रारम्भ कीजिये, जिसके बाद मूलाधार से 'सो' मंत्र के साथ श्वास लेनी होती है। इस प्रकार मेरु पथ में 'सोऽहम्' मंत्र 'हंसो' में उलट जाता है।

इस 'हंसो' चेतना को कुछ देर तक सजग रखिये। मंत्र बोध को तीव्र कीजिये जो अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ समकालिक है। स्मरण रहे, आप को मंत्र को दुहराना नहीं है। यह तो श्वास की ध्वनि में स्वत: चल रहा है। आपको केवल उसे सुनना है। जब एक बार आप मंत्र को सुनने में समर्थ हो जाते हैं तब आप सब कुछ छोड़कर सुषुम्ना में संचरण कर रहे ध्वनि स्पन्द पर निश्चित रूप से धारणा कीजिये। आप आज्ञा से मूलाधार

तक प्रश्वास में केवल 'हम्' मंत्र के प्रति एवं मूलाधार से आज्ञा तक श्वास में केवल 'सो' मंत्र के प्रति चैतन्य हैं। एक भी श्वास को भूले बिना इस अभ्यास को चलाते रहिये। श्वास में मंत्र की पूर्ण चेतना रहे।

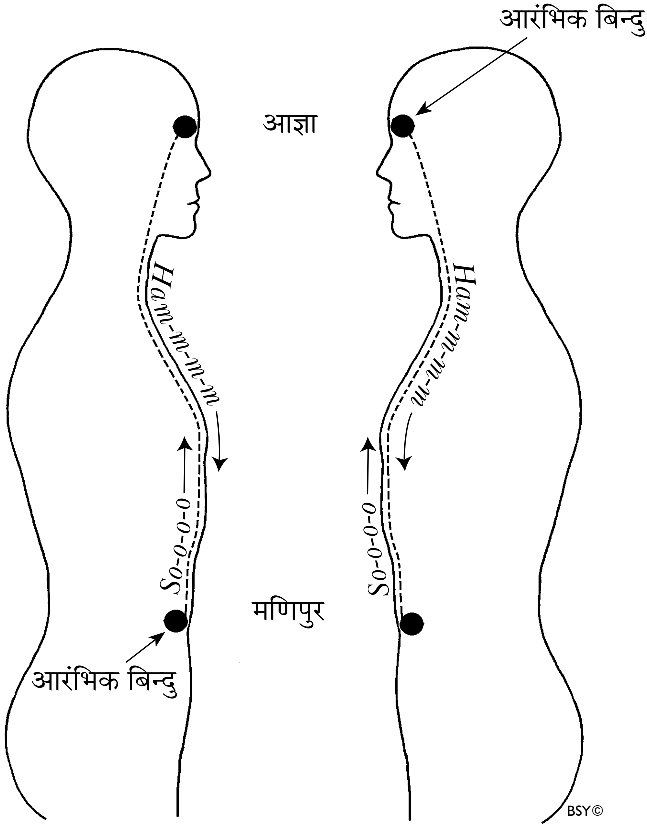
नवम् चरण– अभ्यास का विराम

अब अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। मंत्र से अपनी चेतना को हटाइये और सहज स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग हो जाइये। आपाद मस्तक अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। अपने ध्यान के आसन के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये कि आपके हाथ घुटनों पर रखे हैं। अपने परिवेश के प्रति सजग होइये। धीरे-धीरे मन को बहिर्मुखी कीजिये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा तीन

सम्मुख पथ: मणिपुर – आज्ञा



सोऽहम्	**हंसो**
श्वास – सो	प्रश्वास – हम्
प्रश्वास – हम्	श्वास – सो

अजपा धारणा तीन

उज्जायी और खेचरी सहित सम्मुख पथ-परिभ्रमण

इस अभ्यास में अजपा धारणा-सम्मुख-पथ-परिभ्रमण के सभी चरणों का अभ्यास उसी क्रम में होता है। परन्तु यहाँ अतीन्द्रिय पथ की अधिक सजगता विकसित करने के लिए गहरी श्वास के स्थान पर उज्जायी प्राणायाम और खेचरी मुद्रा का उपयोग होता है। उज्जायी को अतीन्द्रिय श्वसन कहते हैं, क्योंकि मन और इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने की क्षमता इसमें है। फिर उज्जायी और खेचरी का संयोग तो चेतना को और भी अधिक गहरा एवं अन्तर्मुखी कर देता है। इसमें सम्मुख पथ का विस्तार मणिपुर से आज्ञा चक्र तक रहता है। इसका अभ्यास तब तक करना चाहिए जब तक उज्जायी प्राणायाम और 'सोऽहम्' बिना प्रयास के एक शक्ति के समान सम्मुख पथ में एक साथ प्रवाहित होने न लगें।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। सुनिश्चित कर लीजिये कि आपका मेरुदण्ड सीधा है, कन्धे पीछे की ओर और सिर सीधा ऊपर है। अपनी हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें और ओठ हल्के से, परन्तु पूर्णतया बन्द रहें। अपने पूरे शरीर के प्रति सजग हो जाइये। शरीर के किसी भी भाग में कड़ापन या तनाव नहीं है इसे सुनिश्चित करने हेतु अपनी सजगता को पूरे शरीर में घुमा लीजिये। जिस समय आपकी चेतना पूरे शरीर में घूम रही है, आप अनुभव करते जाइये कि आपके ध्यान का आसन स्थिर और

अचल होता जा रहा है। शरीर अचल और अटल है। सम्पूर्ण शरीर की निश्चलता और स्थिरता की पूरी सजगता रहे।

द्वितीय चरण– श्वास चेतना

अपने शरीर की स्थिरता से अपनी चेतना को हटाकर अपनी सहज स्वाभाविक श्वास पर ले चलिये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के प्रति सजग रहिये। चेतना को सहज स्वाभाविक श्वास के साथ प्रवाहित होने दीजिये। अनुभव कीजिये कि श्वसन सम एवं लयबद्ध होता जा रहा है। जैसे-जैसे आप अपनी श्वास चेतना को तीव्र करते जायेंगे, श्वास क्रमश: गहरी और मन्द होती जायेगी। श्वास को उज्जायी श्वसन में गहराने दीजिये और जिह्वा को खेचरी मुद्रा में उलटने दीजिये। चेतना को श्वास के साथ प्रवाहित होने दीजिये। प्रत्येक श्वास के साथ मन और शरीर शान्त एवं अचल होते जाते हैं। केवल उज्जायी श्वास का कोमल एवं सूक्ष्म प्रवाह चल रहा है।

अब सजगता को नाभि में ले आइये। उज्जायी में पूरक के समय अनुभव कीजिये कि श्वास और चेतना नाभि से भ्रू-मध्य तक जा रही हैं और उज्जायी में ही रेचक के समय भ्रू-मध्य से नाभि की ओर जा रही हैं। श्वास लेते समय श्वास के साथ आपकी चेतना नाभि से भ्रू-मध्य तक सीधी रेखा में ऊपर जा रही है। श्वास छोड़ते समय श्वास के साथ आपकी चेतना नाभि से भ्रू-मध्य तक सीधी रेखा में नीचे जा रही है। प्रत्येक श्वास एवं प्रत्येक प्रश्वास के प्रति सजग रहिये। गति को सहज एवं निष्प्रयास होता अनुभव कीजिये। शेष अभ्यास में भी उज्जायी श्वसन एवं खेचरी मुद्रा बनाये रखें।

तृतीय चरण– सम्मुख पथ-दर्शन

नाभि और भ्रू-मध्य के बीच सम्मुख पथ की कल्पना करें। यह पथ नाभि और भ्रू-मध्य के बीच एक सीधी रेखा में है। इस पथ को एक लम्बी सीधी, पारदर्शक नली के रूप में देखिये, जो भीतर से खोखली है। नली को स्पष्टता से देखिये।

इस खोखली नली के भीतर अपनी सजगता को संचरण करने दीजिये। अपनी सजगता को नाभि से भ्रू-मध्य एवं भ्रू-मध्य से नाभि तक इस पारदर्शक नली में संचरण करते समय इस नली के प्रत्येक भाग को देखते जाइये। सम्मुख पथ के प्रति अपनी सजगता को और तीव्र कीजिये, जो

नाभि से भ्रू-मध्य को मिलाता है। इस पथ में अपनी सजगता को तब तक संचरण कराते रहिये जब तक यह आपको स्पष्ट रूप से न दिखने लगे।

चतुर्थ चरण– अतीन्द्रिय पथ में श्वसन

अब सम्मुख अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही उज्जायी श्वास के प्रति सजग होइये। श्वास लेते समय अनुभव कीजिये कि आपकी श्वास नाभि से भ्रू-मध्य तक सम्मुख पथ में आरोहण कर रही है और श्वास छोड़ते समय भ्रू-मध्य से नाभि तक अवरोहण कर रही है। इस आरोहण और अवरोहण कर रही श्वास के प्रति पूर्ण सजग रहिये।

अनुभव कीजिये कि सम्मुख पथ में श्वास और चेतना, दोनों साथ-साथ संचरण कर रही हैं। पूरक में चेतना और श्वास अतीन्द्रिय पथ में आरोहण करते हैं तथा रेचक में उसी अतीन्द्रिय पथ में अवरोहण करते हैं। अतीन्द्रिय पथ में श्वास निष्प्रयास चल रही है तथा आप श्वास के प्रति सजग हैं। सम्मुख पथ में इन दोनों शक्तियों को आरोहण, अवरोहण करते हुए अनुभव कीजिये।

पंचम चरण– प्राण चेतना

अतीन्द्रिय पथ में एक साथ गतिमान् अपनी श्वास और चेतना की सजगता को तीव्र बनाइये। श्वास एवं प्रश्वास के साथ आरोहण और अवरोहण करती हुई श्वास और चेतना के संचरण-प्रवाह के प्रति सजग हो जाइये। श्वास और चेतना के एक समान एवं लयबद्ध प्रवाह को अनुभव कीजिये।

अब अपनी सजगता को प्राण तक बढ़ाइये, वह भी अतीन्द्रिय पथ में प्रवाहित हो रहा है। प्राण श्वास और चेतना के साथ अतीन्द्रिय पथ में प्रवाहित होता है। जब आप श्वास लेते हैं तब प्राण, श्वास और चेतना एक साथ नाभि से भ्रू-मध्य तक प्रवाहित होते हैं। प्रश्वास में श्वास, प्राण और चेतना भ्रू-मध्य से नाभि तक प्रवाहित होते हैं। सम्मुख अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही इन तीन भिन्न शक्तियों के प्रति सजग हो जाइये।

अनुभव कीजिये कि श्वास वायु के रूप में संचरण कर रही है। प्राण का सफेद प्रकाश-कणों की धारा के रूप में दर्शन कीजिये, जो अतीन्द्रिय पथ में आरोहण-अवरोहण कर रही है। प्राण का स्पष्ट रूप से मानस-दर्शन कीजिये। अतीन्द्रिय पथ में उज्जायी श्वास के साथ चमकीले श्वेत प्रकाश के प्रवाह को देखिये। श्वास लेते समय श्वेत प्रकाश की धारा को नाभि से

भ्रू-मध्य तक आरोहण करते देखिये जबकि प्रश्वास में उसी श्वेत-प्रकाश की धारा को भ्रू-मध्य से नाभि तक अवरोहण करता देखिये। जैसे-जैसे आपकी सजगता अधिक एकाग्र होती जाती है अतीन्द्रिय पथ में प्राण की वृद्धि का अनुभव कीजिये।

षष्ठ चरण– 'सोऽहम्' चेतना

अब प्राण की सजगता छोड़िये और केवल श्वास के प्रति सजग रहिये। कोमल एवं सूक्ष्म उज्जायी श्वास की ध्वनि सुनिये। श्वास एवं श्वास की सूक्ष्म ध्वनि के प्रति सजग हो जाइये। अतीन्द्रिय पथ में आरोहण-अवरोहण करती श्वास में 'सोऽहम्' मंत्र की ध्वनि को अनुभव कीजिये। श्वास लेने पर जब श्वास आरोहित होती है तब 'सो-ओ-ओ-ओ' को सुनिये और उसका अनुगमन कीजिये। प्रश्वास के समय अवरोहित हो रही श्वास का अनुगमन कीजिये और 'हम्-म्-म्-म्' मंत्र की ध्वनि सुनिये।

आपकी समग्र सजगता उज्जायी श्वास और श्वास के मंत्र 'सोऽहम्' के प्रति है। मंत्र को दुहराने की जरूरत नहीं है, मात्र उस ध्वनि के प्रति सजग रहिये जो श्वास के साथ ही चल रही है। अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ श्वास के आरोहण का अनुगमन कीजिये और 'सो-ओ-ओ' सुनते जाइये। अतीन्द्रिय पथ में अवरोहण कर रही श्वास का अनुगमन कीजिये और 'हम-म्-म्-म्' सुनिये। अपनी चेतना को श्वास की ध्वनि एवं श्वास के अधिकाधिक समीप लाते जाइये। अतीन्द्रिय पथ में श्वास और मंत्र के अतिरिक्त अन्य कोई सजगता नहीं रहे।

जैसे-जैसे आपकी चेतना अधिकाधिक एकाग्र एवं स्थिर होती जायेगी, आप श्वास तथा मंत्र के सूक्ष्मतर स्तरों का अनुभव करेंगे। 'सोऽहम्' मंत्र की सजगता को तीव्र कीजिये। श्वास के साथ आरोहण एवं प्रश्वास के साथ अवरोहण के समय मंत्र द्वारा उत्पन्न हो रहे स्पन्दन के प्रति सजग होइये। अन्य किसी आने वाले विचार या अनुभव के द्वारा अपने अवधान को विक्षिप्त नहीं होने दीजिये। इन विचारों और भावों को एक किनारे डाल दीजिये तथा मंत्र और श्वास पर चित्त को एकाग्र कीजिये। श्वास और मंत्र के प्रति स्थिर एवं अनवरत सजगता बनाये रखिये।

सप्तम् चरण– 'हं सो' की सजगता

अभ्यास के अगले चरण के लिए सजगता वही रहेगी, पर प्रत्येक चक्र का आरम्भ बिन्दु भ्रू-मध्य होगा। अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में ले आइये।

श्वास छोड़ते हुए श्वास के साथ सजगता को भ्रू-मध्य से नाभि तक ले जाइये और 'हम्-म्-म्-म्' मंत्र सुनिये। श्वास लेते हुए चेतना को श्वास के साथ नाभि से भ्रू-मध्य तक ले जाइये और 'सो-ओ-ओ-ओ' मंत्र सुनिये। प्रारम्भ बिन्दु के इस परिवर्तन के साथ अब मंत्र 'सोऽहम्' से 'हं सो' हो जाता है।

इसी अभ्यास को करते जाइये और 'हं सो' मंत्र की सजगता को तीव्र कीजिये। अनुभव कीजिये कि उज्जाई श्वास अतीन्द्रिय पथ में चल रही है। प्रश्वास में 'हम्-म-म' मंत्र सुनिये और श्वास लेते हुए 'सो-ओ-ओ' मंत्र सुनिये। सम्मुख अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रहे 'हं सो' मंत्र के स्पन्दन को अनुभव कीजिये। अभी आपका संकेन्द्रण-बिन्दु केवल 'हम् सो' मंत्र होगा। प्रत्येक श्वास का अनुसरण कीजिये और प्रत्येक श्वास में मंत्र का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपकी चेतना क्रमशः गहरी हो रही है और श्वास एवं मंत्र के सूक्ष्मतर स्तरों में चली जा रही है।

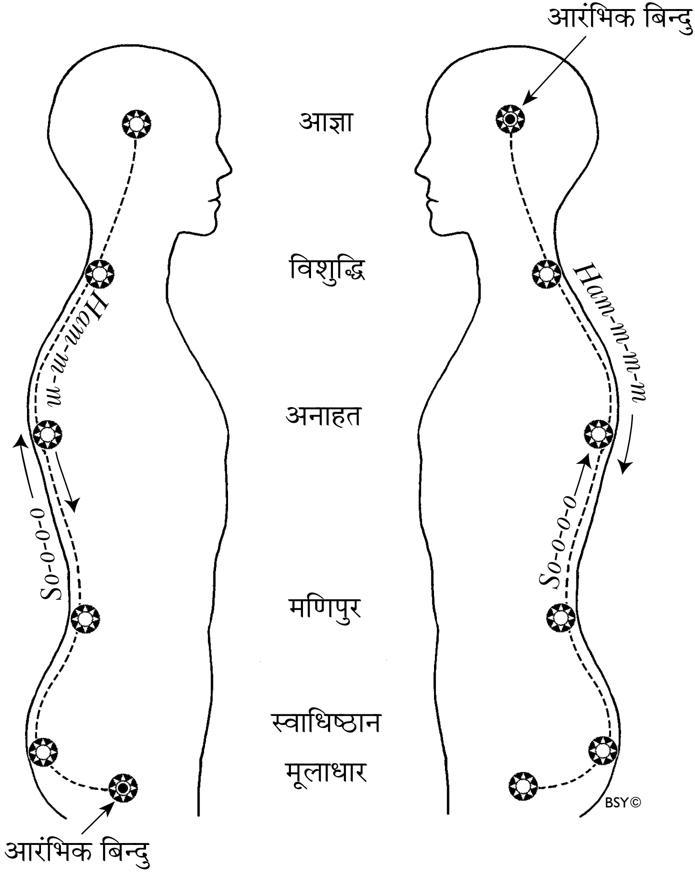
अष्टम् चरण – अभ्यास का समापन

कुछ क्षण और अभ्यास चलाइये। अभ्यास का समापन करने को तैयार हो जाइये। मंत्र से अपनी चेतना को हटाइये। खेचरी मुद्रा मुक्त कर उज्जायी श्वसन भी बन्द कीजिये। सहज, स्वाभाविक, मन्द एवं लयबद्ध प्रवाह के प्रति सजग होइये। अपने शरीर और आसन के प्रति सजग होइये। अपने सम्पूर्ण स्थूल शरीर के प्रति सजग बनिये। भूमि और शरीर के स्पर्श बिन्दुओं के प्रति सजग होइये। अपने परिवेश की सजगता लाइये। आस-पास की ध्वनियाँ सुनिये। मन को क्रमशः पूर्ण बहिर्मुखी कीजिये। लम्बी गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये। धीरे से शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा चार

उज्जायी और खेचरी के साथ मेरु-पथ-परिभ्रमण



सोऽहम्	**हंसो**
श्वास– सो	प्रश्वास– हम्
प्रश्वास– हम्	श्वास– सो

अजपा धारणा चार

उज्जायी और खेचरी के साथ मेरु-पथ-परिभ्रमण

इस अभ्यास में अजपा धारणा-दो के सभी चरणों अथवा मेरु-पथ में परिभ्रमण को उसी क्रम में किया जाता है। पर इसमें उज्जायी प्राणायाम और खेचरी मुद्रा को जोड़ लेते हैं। अभ्यास तब तक करते जाइये जब तक पूर्ण आराम से मेरुपथ में उज्जायी प्राणायाम की अनुभूति न होने लगे। जब उज्जायी श्वसन के साथ मंत्र समकालिक हो जाता है तब आपको अधिक शक्ति के साथ मेरु-पथ में इसका स्पन्दन मालूम पड़ना चाहिए। पूरे अभ्यास के क्रम में सतर्कता और एकाग्रता बनी रहे।

विधि

प्रथम चरण – तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये और अजपा धारणा के अभ्यास के लिए तैयार हो जाइये। आश्वस्त हो जाइये कि मेरुदण्ड, गरदन और सिर सीधे हैं। हथेलियाँ घुटनों पर ज्ञान अथवा चिन्मुद्रा में रख लें। सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये और देख लीजिये कि कहीं कड़ापन या तनाव तो नहीं है। आवश्यक हो तो शरीर को पुनर्व्यवस्थित कर लीजिये जिससे आप पूरे अभ्यास की अवधि में स्थिर रह सकें। शरीर आराम और सुविधापूर्ण स्थिति में रहे। शरीर के प्रति सजग होने के साथ-साथ उसे निश्चल बनाइये। पूरे स्थूल शरीर में अचलता का अनुभव कीजिये। पूरा शरीर नितान्त निश्चल, स्थिर और निश्चेष्ट है।

द्वितीय चरण– श्वास चेतना

जब शरीर अचल हो जाये तो अपनी चेतना श्वास पर ले जाइये। सहज स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग होइये। श्वास के मन्द लयबद्ध प्रवाह को अनुभव कीजिये। स्वाभाविक श्वास प्रवाह पर एकाग्र होइये। जैसे-जैसे आपकी एकाग्रता तीव्र होती जाती है श्वसन को उज्जायी श्वसन में परिवर्तित होता अनुभव कीजिये। उज्जायी श्वसन की कोमल, सूक्ष्म ध्वनि को सुनिये। खेचरी मुद्रा में जिह्वा को उलट लीजिये। पूरे अभ्यास की अवधि में उज्जायी श्वसन एवं खेचरी मुद्रा बनी रहे। यदि जिह्वा थक जाये तो थोड़ी देर के लिए उसे सीधा कर पुनः खेचरी मुद्रा लगा लीजिये। उज्जायी श्वसन की चेतना बनाये रखिये। श्वास के एक-सम एवं स्थिर प्रवाह को अनुभव कीजिये। श्वास के समीपतर आते जाइये और साथ ही साथ मन को शान्त एवं एकाग्र होता अनुभव कीजिये। उज्जायी का कोमल लयबद्ध प्रवाह मन को शान्त एवं स्थिर करने में सहायक होता है। यह आपकी पूर्ण सजगता को श्वास के साथ गतिमान करता है।

अब अपनी चेतना को मूलाधार पिण्ड/मूलाधार चक्र में ले आइये। उज्जायी श्वास लेते हुए अपनी चेतना को मेरुदण्ड में मूलाधार से ऊपर की ओर मेरुदण्ड के शीर्ष पर, आज्ञा चक्र तक ले जाइये। प्रश्वास में चेतना को आज्ञा चक्र से वापस मूलाधार में ले आइये। अपनी चेतना और श्वास को श्वास में ऊपर एवं प्रश्वास में नीचे मेरुदण्ड में संचरण कराते जाइये। श्वास एवं प्रश्वास के समय पूरे मेरुदण्ड के प्रति सजग रहने का प्रयास कीजिये। सम्पूर्ण मेरुदण्ड के प्रति इस सजगता को बढ़ाने के लिए श्वास का उपयोग कीजिये। मेरुदण्ड के प्रत्येक भाग में श्वास के संचरण का अनुभव कीजिये।

तृतीय चरण– सुषुम्ना का दर्शन

अपनी चेतना और अधिक गहरी कीजिये और मेरु रज्जु के ठीक मध्य में अतीन्द्रिय पथ के प्रति सजग होइये। अपनी चेतना को मेरु रज्जु के भीतर इस अतीन्द्रिय सुषुम्ना नाड़ी पथ के भीतर लाइये। मेरुदण्ड के ठीक नीचे मूलाधार से मेरुदण्ड के शीर्ष आज्ञा चक्र तक फैली सुषुम्ना नाड़ी के प्रति सजग बनिये। सुषुम्ना नाड़ी का लम्बी, पतली, प्रदीप्त नली के रूप में मानस दर्शन कीजिये। यह मेरु रज्जु के समान स्थूल नहीं है, यह अधिकाधिक सूक्ष्म है।

सुषुम्ना पथ को प्रकाश कणों से निर्मित पारदर्शक प्रदीप्त पथ के रूप में देखना चाहिए। यह पथ भीतर से खोखला है। सुषुम्ना नाड़ी की दीप्ति के प्रति सजग होइये और प्रकाश कणों के संचरण का अनुभव कीजिये। अतीन्द्रिय पथ मूलाधार से आज्ञा चक्र तक है। इसका मानस-दर्शन कीजिये और इसके प्रत्येक भाग के प्रति सजग बनिये। इस लम्बी प्रदीप्त नली के भीतर जाइये। इसमें मूलाधार से आज्ञा एवं आज्ञा से मूलाधार तक यात्रा कीजिये। अतीन्द्रिय पथ की सजगता को तीव्र कीजिये। कुण्डलिनी ऊर्जा को सहस्त्रार तक ले जाने वाले इस सूक्ष्म अतीन्द्रिय पथ का अवलोकन कीजिये।

चतुर्थ चरण– सुषुम्ना के अन्दर श्वसन

सुषुम्ना पथ की सजगता बनाये रखते हुए पुनः उज्जायी श्वसन के प्रति सजग होइये। सुषुम्ना पथ के भीतर संचरण कर रही श्वास को अनुभव कीजिये। श्वास लेने पर श्वास अतीन्द्रिय पथ में मूलाधार से आज्ञा तक आरोहण करती है। प्रश्वास में अतीन्द्रिय पथ में श्वास आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण करती है। सुषुम्ना नाड़ी में अपनी श्वास के साथ चेतना का भी संचार कीजिये। प्रत्येक श्वास की सजगता रहे।

सुषुम्ना में आरोहण एवं अवरोहण कर रही श्वास पर पूर्ण एकाग्रता रखिये। सुषुम्ना में आपकी सजगता, आपकी चेतना भी संचरण कर रही है। जैसे श्वास का संचरण होता है, वैसे ही सजगता का भी संचरण होता है। सुषुम्ना के लम्बे प्रदीप्त मार्ग में दोनों शक्तियों के साथ-साथ संचरण के प्रति सजग रहिये। सुषुम्ना पथ में संचरण कर रही श्वास पर अपनी सम्पूर्ण सजगता को केन्द्रित कीजिये। अन्य किसी भी वस्तु की चेतना न रहे। अतीन्द्रिय पथ में आरोहण एवं अवरोहण कर रही श्वास की पूर्ण एकाग्र चेतना बनी रहे।

पंचम चरण– प्राण का बोध

सुषुम्ना में संचरण कर रही श्वास की सजगता जैसे-जैसे प्रगाढ़ होती जाए, अतीन्द्रिय पथ के अन्दर प्राण के संचरण को भी अनुभव कीजिये। जैसे श्वास का आरोहण होता है, प्राण का भी आरोहण होता है। जैसे श्वास का अवरोहण होता है, वैसे ही प्राण का भी अवरोहण होता है। सुषुम्ना में आरोहण-अवरोहण कर रही श्वास, प्राण और चेतना के प्रति सजग होइये। प्राण को प्रदीप्त सुषुम्ना पथ में प्रकाश की तरह, प्रकाश कणों की

तरह, प्रकाश की धारा की तरह देखने का प्रयास कीजिये। श्वास के साथ संचरण कर रहे प्राण अथवा जैव ऊर्जा की सजगता को तीव्र कीजिये। आरोहण-अवरोहण करती श्वास के साथ अतीन्द्रिय पथ में प्राण शक्ति के संचय का अनुभव कीजिये। जैसे-जैसे आप स्थिर एकाग्र सजगता को बढ़ायेंगे आपकी साधना सहज एवं प्रयास रहित हो जायेगी।

षष्ठ चरण– चक्र भेदन

कुछ क्षणों के लिए प्राण और श्वास की सजगता को छोड़ दीजिये। सुषुम्ना पथ में विभिन्न चक्र बिन्दुओं का मानसिक दर्शन कीजिये। अतीन्द्रिय पथ में प्रत्येक चक्र को एक प्रकाश कण के रूप में देखिये।

अपनी चेतना को मूलाधार पिण्ड स्थित मूलाधार चक्र में ले आइये। इस प्रथम चक्र की कल्पना कीजिये, मानो यह एक छोटा प्रकाशित बिन्दु हो। अब आप त्रिक स्थित स्वाधिष्ठान चक्र की ओर चलिये। इस द्वितीय चक्र को प्रकाश के एक बिन्दु के रूप में देखिये। नाभि के ठीक पीछे मेरुदण्ड के भाग में चलिये जहाँ मणिपुर चक्र है। वहाँ एक प्रकाशित बिन्दु का दर्शन कीजिये। मेरुदण्ड में ऊपर हृदय की सीध में उरोस्थि के पीछे आइये। अनाहत चक्र पर एक प्रकाश बिन्दु को देखिये। अब आप मेरुदण्ड में ऊपर ठीक कण्ठकूप के पीछे विशुद्धि चक्र की ओर चलिये। विशुद्धि पर प्रकाश के एक बिन्दु को मानसिक रूप से देखिये। अब मेरुदण्ड के शीर्ष पर मस्तक के ठीक मध्य में चलिये एवं वहाँ पर आज्ञा चक्र को प्रकाश के एक बिन्दु के रूप में देखिये।

अब पुनः अपनी चेतना सुषुम्ना पथ में मूलाधार से आज्ञा और आज्ञा से मूलाधार क्रमशः आरोहण-अवरोहण करती अपनी उज्जायी श्वास और प्राण पर वापस ले जाइये। अतीन्द्रिय पथ में पूरक करते हुए अनुभव कीजिये कि प्राण प्रत्येक चक्र-बिन्दु का भेदन करता जा रहा है। चक्रों का नाम लेना आवश्यक नहीं है, केवल सजग होइये कि सुषुम्ना में आरोहण-अवरोहण करते समय प्राण प्रत्येक चक्र का भेदन कर रहा है।

प्राण और श्वास अतीन्द्रिय पथ में एक अभंग अविरल प्रवाह में गतिमान् हैं। आपकी चेतना भी इस पथ में उसी प्रकार प्रवाहमान बनी रहनी चाहिए जैसे प्राण प्रत्येक प्रकाश बिन्दु से होकर गुजरता है। आप प्रत्येक चक्र के प्रति सजग होते जाइये। अपनी श्वास के साथ अपनी चेतना को भी

सुषुम्ना पथ में ऊपर-नीचे प्रवाहमान रखिये। अभ्यास करते जाइये और अनुभव कीजिये कि चक्रों के मध्य प्राण की गति की चेतना अधिक पुष्ट होती जा रही है।

सप्तम् चरण– 'सो हम्' चेतना

प्राण और चक्र की चेतना को जाने दीजिये। अपनी चेतना को पुन: उज्जायी श्वसन में लाइये। उज्जायी श्वसन की ध्वनि सुनिये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास के साथ श्वास द्वारा उत्पन्न सूक्ष्म ध्वनि को सुनिये। अपना पूर्ण अवधान श्वास और श्वास की ध्वनि पर एकाग्र कीजिये।

श्वास में सूक्ष्म अन्तर्निहित ध्वनि को 'सोऽहम्' मंत्र के रूप में सुनिये। न आपको ध्वनि उत्पन्न करनी है और न मंत्र को दुहराना है, क्योंकि यह प्रत्येक श्वास में ही अन्तर्निहित है। आपको अपनी चेतना को केवल इतना स्पष्ट एवं एकाग्र बना देना है कि आप श्वास की ध्वनि में ही मंत्र का अनुभव करने लगें।

श्वास लेते समय श्वास सुषुम्ना पथ में 'सो ओ ओ ओ' मंत्र के साथ आरोहण करती है तथा प्रश्वास में सुषुम्ना पथ में 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ अवरोहण करती है। प्रदीप्त सुषुम्ना पथ में आरोहण-अवरोहण करती श्वास का अनुगमन कीजिये। चेतना और श्वास को एक करते जाइये। श्वास लीजिये और जैसे श्वास का आरोहण होता है, 'सो-ओ-ओ' मंत्र को सुनिये। प्रश्वास कीजिये और श्वास के अवरोहण के साथ 'हम्-म्-म्' मंत्र को सुनिये। एक क्षण के लिए भी अपना अवधान विचलित न होने दें। प्रत्येक श्वास के प्रति और अविरल 'सोऽहम्' मंत्र के प्रति चैतन्य रहिये। सुषुम्ना पथ में मंत्र के स्पन्दन का अनुभव कीजिये।

अष्टम् चरण– 'हम् सो' चेतना

अभ्यास के अगले चरण में सजगता को प्रारम्भ करने के स्थल में परिवर्तन होता है। शेष चीजें एक समान रहती हैं। उज्जायी श्वसन एवं खेचरी मुद्रा के साथ अभ्यास चलाते रहें एवं अपनी सजगता को आज्ञा चक्र में ले आयें। प्रश्वास के साथ श्वास आज्ञा से मूलाधार की ओर अवरोहण करती है। इसमें 'हम्-म्-म्' मंत्र सुने। श्वास लेने के साथ श्वास मूलाधार से आज्ञा की ओर आरोहण करती है। इसमें 'सो-ओ-ओ' मंत्र सुने। इस प्रकार 'सोऽहम्' मंत्र 'हम् सो' हो जाता है।

इसी प्रकार अभ्यास करते जाइये। 'हम् सो' मंत्र के प्रति सजग रहिये। प्रत्येक प्रश्वास के साथ 'हम्-म्-म्' मंत्र सुनिये और प्रत्येक श्वास के साथ 'सो-ओ-ओ' मंत्र सुनिये। उज्जायी श्वसन पर पूर्ण एकाग्रता रहे। श्वास के मंत्र को अनुभव करने का प्रयास कीजिये। 'हम् सो' की अविरल सजगता। सम्पूर्ण प्रदीप्त सुषुम्ना पथ में संचरण कर रहे 'हम् सो' मंत्र के स्पन्दन को अनुभव कीजिये। सुषुम्ना पथ में आरोहण-अवरोहण करते 'हम् सो' मंत्र के स्पन्दन की ध्वनि के अतिरिक्त आप अन्य किसी चीज के प्रति चैतन्य नहीं हैं। अपनी सजगता को स्थिर एवं एकाग्र रखिये।

नवम् चरण – अभ्यास का समापन

थोड़ी देर और अभ्यास करते रहिये। अब अभ्यास समाप्त करने को तैयार हो जाइये। मंत्र और उज्जायी श्वसन से चेतना को हटाइये। खेचरी मुद्रा खोल दीजिये। सहज श्वसन के प्रति सजग होइये। अपने शरीर और आसन के प्रति सजग होइये। आपादमस्तक पूरे शरीर की सजगता लाइये। भूमि से शरीर के स्पर्श बिन्दुओं को देखिये। बाह्य वातावरण में होने वाली किसी भी ध्वनि को सुनिये। परिवेश के प्रति सजग होइये। मन को पूर्णतया बहिर्मुखी बनाइये। गहरी श्वास लीजिये एवं तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये। अब अपने शरीर को थोड़ा हिलाइये और आँखें खोल दीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा पाँच

आरोहण-अवरोहण-परिभ्रमण

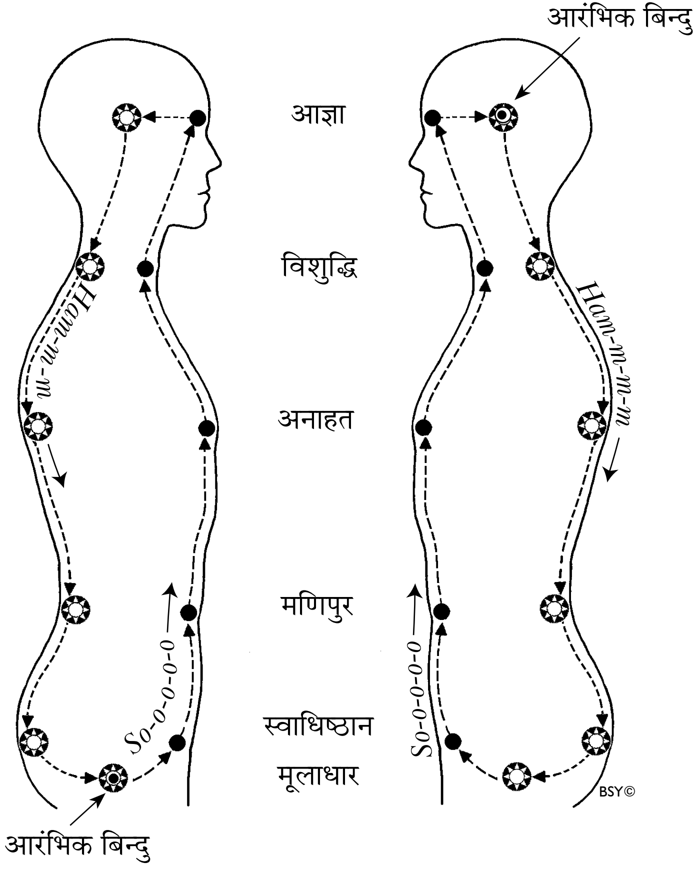
आरोहण का अर्थ है ऊपर चढ़ना और अवरोहण का अर्थ है नीचे उतरना। यहाँ आरोहण का तात्पर्य है सम्मुख पथ और अवरोहण का तात्पर्य है मेरु-पथ। इस अभ्यास में आपको क्रम से दोनों पथों में संचरण करना है। यहाँ पूरक में सम्मुख आरोहण पथ से ऊपर जाना है और रेचक में पीछे के अवरोहण पथ से नीचे जाना है।

इसके पूर्व सम्मुख पथ के एक अंश का उपयोग होता था– पहले मणिपुर से विशुद्धि और उसके बाद मणिपुर से आज्ञा तक। परन्तु अब सम्पूर्ण सम्मुख पथ, मूलाधार से आज्ञा तक का उपयोग आरोहण के लिए होगा, जिसे अब केवल आरोहण कहेंगे। आरोहण या सम्मुख पथ में चक्र क्षेत्र या प्रेरक बिन्दु हैं जो मेरुदण्ड में स्थित चक्रों के संगत हैं। मूलाधार का कोई क्षेत्र नहीं होता। स्वाधिष्ठान क्षेत्र जघनास्थि पर, मणिपुर क्षेत्र नाभि पर, अनाहत क्षेत्र उरोस्थि पर, विशुद्धि क्षेत्र कण्ठकूप में और आज्ञा क्षेत्र भ्रू-मध्य में होता है।

इस अभ्यास में हम चेतना, उज्जायी श्वसन, प्राण और मंत्र को आरोहण और अवरोहण पथों में परिभ्रमण करायेंगे। आरोहण-अवरोहण परिभ्रमण पर धारणा शरीर के दो महाशक्तिशाली अतीन्द्रिय पथों में ऊर्जा का एक बन्द परिपथ निर्मित करती है। आरोहण एवं अवरोहण, दोनों ही पथ अपने आप में शक्तिशाली ऊर्जा संवाहक हैं। इनमें चक्रों एवं प्रेरक बिन्दुओं की अवस्थिति इन्हें अन्य संवाहकों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती है। श्वास, मंत्र और प्राण का इन पथों में सजगतापूर्वक परिभ्रमण करा कर हम चक्रों को परिशुद्ध करने, उन्मुक्त करने एवं उनमें अन्तर्निहित आध्यात्मिक

अजपा धारणा पाँच

आरोहण-अवरोहण-परिभ्रमण



सोऽहम्

श्वास– सो

प्रश्वास– हम्

हंसो

प्रश्वास– हम्

श्वास– सो

ऊर्जा को जाग्रत करने में समर्थ हो सकते हैं। एक बार जब इसकी उपलब्धि हो जाती है तो फिर आध्यात्मिक शक्तियाँ स्वत: जग जाती हैं।

अत: इन पथों पर धारणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसे उच्चतर योग साधनाओं का आधार मानते हैं। इन पथों की जागृति के अभाव में ध्यान की प्रक्रिया मन्द गति से चलती है तथा व्यक्ति धारणा, ध्यान और समाधि के विभिन्न स्तरों को प्राप्त नहीं कर सकता है। परन्तु इन परिपथों के जाग्रत हो जाने के उपरान्त धारणा और ध्यान के विभिन्न स्तर मन पर बलात् नियंत्रण या दबाव के बिना ही स्वत: विकसित होने लगते हैं। जब ऊर्जा का जागरण होता है तब मन सहज ही शान्त हो जाता है। तब इसे दीर्घकाल तक एक बिन्दु पर या एक प्रक्रिया पर केन्द्रित करना सरल हो जाता है। एकाग्र हुए मन का अनुभव अपने आन्तरिक स्वभाव के अनिवार्य अंश के रूप में होने लगता है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। आश्वस्त हो लीजिये कि मेरुदण्ड सीधा है और सिर, गर्दन तथा कन्धे थोड़ा पीछे की ओर हैं। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लें। आँखें बन्द कर लीजिये और अपने शरीर को आपादमस्तक विश्रान्त कर लीजिये। असुविधा लगे तो पूरे शरीर को एक बार पुन: व्यवस्थित कर लीजिये। शारीरिक स्थिरता एवं निश्चलता का अनुभव विकसित कीजिये। अपने आसन और स्थिरता पर एकाग्रता कीजिये। अपने शरीर को एक प्रस्तर मूर्ति की भाँति अचल एवं स्थिर अनुभव कीजिये।

द्वितीय चरण– सजगता का परिभ्रमण

अभ्यास के इस पूरे चरण में सहज श्वसन चलेगा। अपनी सजगता को मूलाधार पर स्थिर कीजिये। प्रत्येक चक्र का आरम्भ यहाँ से ही होगा। अपनी चेतना को सम्मुख आरोहण पथ में जघनास्थि स्थित स्वाधिष्ठान क्षेत्र, नाभि स्थित मणिपुर क्षेत्र, उरोस्थि स्थित अनाहत क्षेत्र, कण्ठकूप स्थित विशुद्धि क्षेत्र होते हुए आरोहण कराइये जब तक आप भ्रू-मध्य स्थित आज्ञा क्षेत्र तक नहीं आ जाते। इस आरोहण परिपथ में आगे जाते समय चक्र क्षेत्रों को प्रकाश बिन्दुओं के रूप में देखिये और बारी-बारी से उनका नाम मानसिक रूप से दुहराते जाइये।

आज्ञा क्षेत्र में पहुँचते ही आप मेरुदण्ड के शीर्ष पर स्थित आज्ञा चक्र पर तत्काल चले जाइये। पुन: आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण पथ होते हुए नीचे आइये। चक्रों के स्थल को अवरोहण पथ में स्थित प्रकाश बिन्दुओं के रूप मे देखिये। आपकी चेतना जैसे ही किसी चक्र बिन्दु पर आती है, मानसिक रूप से उसका नाम लीजिये।

यह चेतना का एक चक्र पूरा हुआ। तत्काल दूसरा चक्र प्रारम्भ कीजिये और आरोहण पथ में चक्र क्षेत्रों का नाम मानसिक रूप से लेते हुए अपनी चेतना को ऊपर ले चलिये।

कल्पना कीजिए कि आपकी चेतना शरीर में एक क्षीण, प्रदीप्त दीर्घवृत्ताकार पथ में संचरण कर रही है। मूलाधार से आज्ञा तक आरोहण पथ में और आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण पथ में इस अण्डाकार पथ की कल्पना कीजिये। आरोहण-अवरोहण के साथ इस प्रदीप्त अण्डाकार परिपथ का मानस दर्शन कीजिये।

तृतीय चरण–श्वास परिभ्रमण

अपनी जिह्वा को खेचरी मुद्रा में उलट लें। शेष अभ्यास में खेचरी मुद्रा लगी रहेगी। वैसे असुविधा होने पर किसी समय एक-आध क्षण के लिए जिह्वा को विराम दे सकते हैं। प्रश्वास कीजिये और अपनी चेतना को मूलाधार में ले जाइये। प्रत्येक चक्र का यहीं से प्रारम्भ होगा। मूलाधार चक्र क्षेत्र को धीरे से संकुचित करें, जिससे इस बिन्दु का अनुभव हो सके।

उज्जायी के साथ श्वास लीजिये और इस पथ में आरोहण कीजिये। आरोहण के साथ-साथ प्रत्येक चक्र क्षेत्र की कल्पना कीजिये एवं क्रमानुसार उसका नाम मानसिक रूप से दुहराइये। एक क्षेत्र से अगले क्षेत्र तक चेतना का अविरल प्रवाह रहे। भ्रू-मध्य में आज्ञा क्षेत्र तक पहुँचने पर पूरक समाप्त होगा।

तत्काल मेरु-शीर्ष स्थित आज्ञा चक्र के बिन्दु पर चले जाइये और अवरोहण पथ में नीचे उतरना प्रारम्भ कीजिये। चेतना का अवरोहण उज्जायी प्रश्वास के साथ समकालित रहे। क्रमानुसार प्रत्येक चक्र का मानस दर्शन कीजिये एवं उनका नाम मानसिक रूप से दुहराते जाइये। मूलाधार में पहुँचकर पहला चक्र पूरा होता है। अब अगला चक्र प्रारम्भ कीजिये।

चतुर्थ चरण– प्राण का परिभ्रमण

अभ्यास को तब तक चलाइये जब तक आपको अनुभव न हो कि उज्जायी श्वास दीर्घ वृत्ताकार अतीन्द्रिय पथ में आसानी से संचरण कर रही है। आरोहण एवं अवरोहण पथ में एक साथ संचरण कर रही श्वास एवं चेतना का अनुभव कीजिये। कुछ ही देर में आप तीसरी शक्ति, प्राण या सूक्ष्म ऊर्जा का अनुभव करेंगे, जो श्वास और चेतना के साथ संचरण कर रही है। आप प्राण के संचरण को क्षण भर के लिए एक प्रकाश प्रवाह, प्रकाश कणों, या प्रकाश की चमक के रूप में अतीन्द्रिय पथ में श्वास और चेतना के साथ-साथ आरोहण-अवरोहण करता हुआ अनुभव कर सकते हैं।

अपनी एकाग्रता एवं सजगता को बनाये रखिये। मानसिक रूप से चक्रों का नाम लेना छोड़ दीजिये और मात्र अतीन्द्रिय पथ और उसमें अवस्थित चक्र स्थलों का मानस दर्शन कीजिये। आरोहण एवं अवरोहण करते समय, प्रत्येक श्वास के साथ अतीन्द्रिय पथ में प्राण के घनीभूत होने का तथा प्रत्येक चक्र क्षेत्र एवं चक्र बिन्दुओं के क्रमानुसार भेदन का अनुभव कीजिये।

अतीन्द्रिय पथ में प्राण की सजगता तीव्र कीजिये। प्रकाश के रूप में प्राण के संचरण का मानस दर्शन कीजिये। प्रत्येक चक्र क्षेत्र एवं चक्र बिन्दु का क्रमश: भेदन करते हुए प्राण को देखिये। अतीन्द्रिय पथ में ऊर्जा की वृद्धि एवं प्रदीप्ति का अनुभव कीजिये। जैसे-जैसे प्राण की अनुभूति तीव्रतर होगी, आपको गर्मी, ठण्ढक, हल्कापन या झुनझुनी महसूस होगी। पर इन अनुभूतियों से अपने को विचलित न होने दीजिये। पूर्ण एकाग्रता के साथ आरोहण एवं अवरोहण पथ में प्राण के परिभ्रमण का मानस दर्शन कीजिये।

पंचम चरण– 'सोऽहम्' परिभ्रमण

अब आप प्राण की सजगता को छोड़ दीजिये और ध्यानपूर्वक उस सूक्ष्म ध्वनि को सुनिये जो श्वास में हो रही है। श्वास की ध्वनि है 'सोऽहम्' मंत्र। मूलाधार चक्र के प्रति सजग हो जाइये। अग्रभाग में मूलाधार से आज्ञा तक आरोहण पथ में उज्जायी प्राणायाम के साथ श्वास लीजिये। 'सो-ओ-ओ-ओ' मंत्र ध्वनि सुनिये और अनुभव कीजिये कि वह क्रमानुसार प्रत्येक चक्र क्षेत्र का भेदन कर रहा है। आज्ञा क्षेत्र में पहुँचने पर 'सो' मंत्र तथा श्वास लेना समाप्त होता है। अब आज्ञा चक्र पर पहुँच जाइये और मेरुदण्ड में

स्थित अवरोहण पथ में उज्जायी प्राणायाम के साथ प्रश्वास कीजिये। 'हम्-म्-म्-म्' मंत्र ध्वनि सुनिये और अनुभव कीजिये कि वह क्रमानुसार प्रत्येक चक्र का भेदन करती जा रही है। मानसिक रूप से चक्रों का नाम लेना नहीं है, केवल एक सजगता बनी रहनी है। चेतना के मूलाधार पर पहुँचने पर प्रश्वास एवं 'हम्' मंत्र समाप्त हो जाता है।

अब अगला चक्र प्रारम्भ कीजिये। मूलाधार में अपनी चेतना को कुछ क्षणों तक टिकाइये। फिर आरोहण पथ में उज्जायी प्राणायाम के साथ श्वास लीजिये। 'सो' मंत्र जो प्रत्येक चक्र क्षेत्र का भेदन कर रहा है, इसका अनुभव कीजिये। जब तक मन एकाग्र एवं शान्त न हो जाये इस अभ्यास को चलाते रहिये। मंत्र का शक्तिशाली स्पन्दन अतीन्द्रिय पथ को परिशुद्ध एवं अतीन्द्रिय केन्द्रों को विकसित कर रहा है–ऐसा अनुभव कीजिये।

षष्ठ चरण– 'हम् सो' के साथ परिभ्रमण

इस चरण में 'सोऽहम्' 'हम् सो' में उलट जाता है। श्वसन प्रक्रिया वही रहती है, केवल प्रारम्भिक बिन्दु बदल जाता है। मूलाधार से अन्त: श्वसन प्रारम्भ करने के बदले आज्ञा से उच्छ्वासन प्रारम्भ करेंगे।

अपनी चेतना को आज्ञा पर लाइये और कुछ क्षणों के लिए उसे यहाँ केन्द्रित कीजिये। उज्जायी के साथ प्रश्वास कीजिये और अवरोहण पथ में उतरिये। 'हम्-म्-म्-म्' मंत्र सुनिये और अनुभव कीजिये कि यह प्रत्येक चक्र का भेदन कर रहा है। मूलाधार में पहुँचकर प्रश्वास एवं 'हम्' मंत्र समाप्त हो जाना चाहिए। शीघ्र ही आरोहण पथ में उज्जायी प्राणायाम के साथ पूरक प्रारम्भ कीजिये। 'सो-ओ-ओ' मंत्र सुनिये और अनुभव कीजिये कि वह क्रमानुसार प्रत्येक क्षेत्र का भेदन कर रहा है। आज्ञा पर पहुँचने के साथ ही पूरक एवं मंत्र समाप्त हो जाना चाहिए। यह एक चक्र पूरा हुआ।

अब दूसरा चक्र प्रारम्भ कीजिये। आज्ञा पर अपनी चेतना कुछ क्षणों तक रखिये। उज्जायी में अवरोहण पथ में रेचक कीजिये। जब तक श्वास और 'हं सो' मंत्र का प्रवाह निष्प्रयास सहज नहीं हो जाये तब तक अभ्यास चलाते जाइये। अभ्यास के इस चरण में एकाग्रता इतनी गहरी एवं स्थिर हो जाये, जिसे निष्कम्प कहते हैं। कोई भी चीज आपको विचलित या क्षुब्ध न कर पाये। पूरे अभ्यास की अवधि में अतीन्द्रिय पथ को और केन्द्रों को पूर्ण स्पष्टता से देखते रहिये।

सप्तम् चरण– समापन

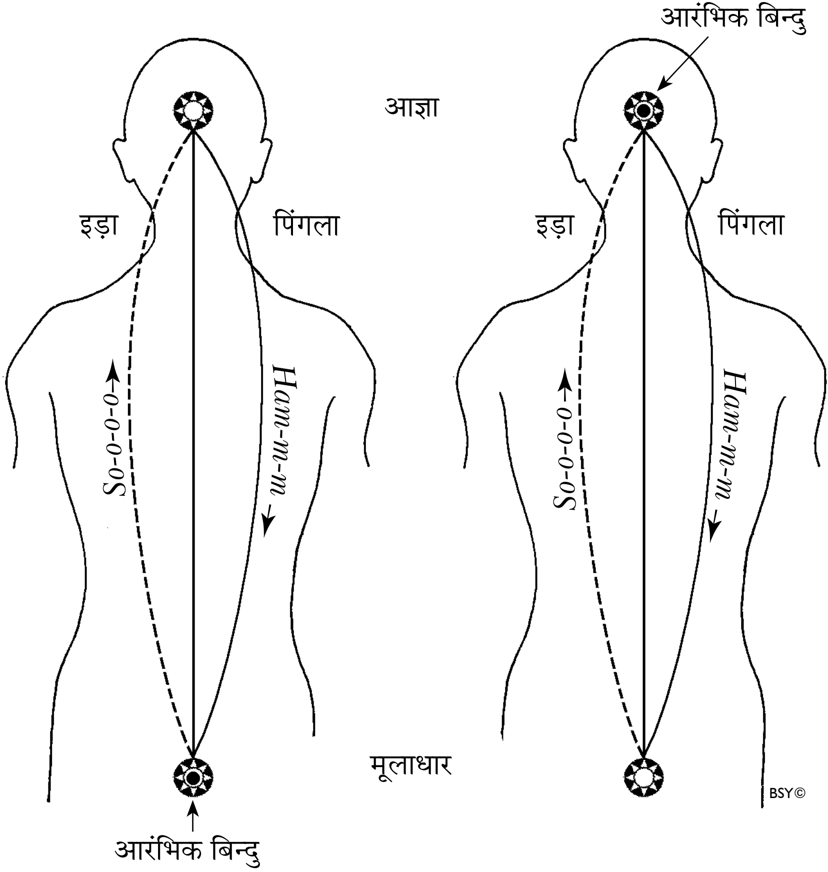
अब क्रमश: अतीन्द्रिय पथ से अपनी चेतना को हटाइये। जिह्वा को मुक्त कीजिये। सहज श्वास लेना शुरू कीजिये। अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। सिर से पैर तक अपने पूरे शरीर का अनुभव कीजिये। कमरे में अपने शरीर को आसन में बैठा हुआ देखिये। बाह्य वातावरण की ध्वनियाँ सुनिये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार का अनुभव कीजिये। धीरे-धीरे अपने हाथ और पैर की उँगलियों को हिलाइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा छः

दीर्घवृत्ताकार परिभ्रमण

(पृष्ठ दृश्य)



सोऽहम्
श्वास– सो (इड़ा)
प्रश्वास– हम् (पिंगला)

हंसो
प्रश्वास– हम् (पिंगला)
श्वास– सो (इड़ा)

अजपा धारणा छः

इड़ा-पिंगला का दीर्घवृत्ताकार परिभ्रमण

इस अभ्यास में इड़ा और पिंगला के दो अतीन्द्रिय पथों का उपयोग होता है, जो क्रमशः मानसिक एवं प्राण ऊर्जा को प्रस्तुत करते हैं। ये दोनों पथ मेरुदण्ड के आधार के पास मूलाधार से प्रकट होते हैं और मेरुदण्ड के शीर्ष पर मध्य मस्तिष्क में अवस्थित आज्ञा तक जाते हैं। पूर्व के अभ्यासों में हमने सुषुम्ना नाड़ी में परिभ्रमण का अभ्यास किया है, जो मेरुदण्ड के मध्य से सीधे ऊपर जाती है। इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ सुषुम्ना की अप्रधान नाड़ियाँ हैं।

इस अभ्यास में इड़ा मूलाधार से बायीं ओर मुड़ती हुई मूलाधार से आज्ञा तक और पिंगला मूलाधार से दायीं ओर मुड़ती हुई आज्ञा तक जाती हैं। इन दोनों नाड़ियों का सरल स्वरूप चित्र में एक ही मोड़ के साथ दिया गया है, जिससे इनके प्रति चेतना अधिक सहजता से विकसित हो सके।

जिस प्रकार सुषुम्ना आध्यात्मिक अन्तःशक्ति को प्रस्तुत करती है, उसी प्रकार इड़ा और पिंगला के दोनों पथ शरीर और मन की द्विविध-शक्तियों, प्राण और चेतना को प्रस्तुत करते हैं। इड़ा को चन्द्र या संग्राहक शक्ति और पिंगला को सौर या गत्यात्मक शक्ति कहते हैं।

इस परिवलयाकार परिभ्रमण में पूरक या उत्प्रेरक बल इड़ा पर रहता है और रेचक या निश्चेष्ट बल पिंगला पर रहता है। इसका तात्पर्य यही है कि अभ्यास के विभिन्न चरणों के साथ मानसिक शक्ति को उत्प्रेरित किया जायेगा और प्राण शक्ति को विश्रान्त या प्रशमित किया जायेगा।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। जाँच लीजिये कि आपका मेरुदण्ड सीधा है और कन्धे एवं सिर थोड़ा पीछे हैं। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें बन्द कर लीजिये। पूरे शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। अपनी चेतना को अन्तर्मुखी कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपका शरीर सीधा, स्थिर और निश्चल है। अपने शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता पर एकाग्र होइये।

द्वितीय चरण– चेतना परिभ्रमण

श्वसन सहज रहे। अपनी चेतना मेरुदण्ड के आधार में मूलाधार चक्र पर ले चलिये। कल्पना कीजिये कि इड़ा पथ मूलाधार की बायीं ओर से निकलकर शरीर के बायीं ओर से एक हल्का पर लम्बा मोड़ लेते हुए आज्ञा चक्र पर समाप्त हो जाता है। अपनी चेतना को इड़ा पथ के बाहर-बाहर ही ऊपर-नीचे घुमाइये, जो एक मन्द पारभासी प्रकाश में दमक रहा है। शरीर की बायीं ओर मूलाधार से आज्ञा तक धनुषाकार इड़ा नाड़ी का स्पष्ट मानस दर्शन करने का प्रयास कीजिये।

यह पथ भीतर से खोखला है और दोनों सिरों पर खुला हुआ है। अपनी चेतना को इस इड़ा पथ के भीतर में ऊपर की ओर ले जाइये, जो बायीं ओर मूलाधार से धुनाषाकार मोड़ लेता हुआ आज्ञा में समाप्त होता है। पुन: उसी बायीं ओर के धनुषाकार पथ के भीतर-भीतर ऊपर से नीचे आज्ञा से मूलाधार तक अपनी चेतना को वापस लाइये। इस इड़ा पथ की सजगता को तीव्र कीजिये, जो बायीं ओर धनुषाकृति में मुड़ा है और एक मन्द पारभासक प्रकाश से प्रदीप्त है।

अब पिंगला पथ की कल्पना कीजिये, जो मूलाधार के दायीं ओर से निकलता है और शरीर के दायीं ओर से एक हल्का, पर लम्बा धनुषाकार मोड़ लेता हुआ आज्ञा में समाप्त होता है। अपनी चेतना पिंगला पथ के बाहर-बाहर ऊपर-नीचे घुमाइये। इसे दायीं ओर स्पष्ट रूप से देखिये, जो मूलाधार से आज्ञा तक धनुषाकार मुड़ा है। अपनी चेतना इस पथ की ऊपरी सतह पर ऊपर-नीचे घुमाइये, जो चकाचौंधपूर्ण चमकीला प्रकाश दे रहा है। यह पथ भीतर से खोखला और दोनों सिरों पर खुला है। इस पिंगला पथ के मध्य अपनी चेतना को ऊपर ले जाइये, जो मूलाधार से आज्ञा

के मध्य धनुषाकार है। पुन: अपनी चेतना उसी धनुषाकार पथ के मध्य होकर आज्ञा से मूलाधार तक लाइये। पिंगला पथ की सजगता को तीव्र कीजिये जो दायीं ओर धनुषाकार मुड़ता है और चकाचौंध पूर्ण प्रकाश विकीर्ण करता है।

तृतीय चरण– श्वास परिभ्रमण

खेचरी मुद्रा लगाइये। इस पूरे अभ्यास की अवधि में खेचरी मुद्रा लगी रहेगी। परन्तु असुविधा लगने पर थोड़ी देर के लिए अपनी जिह्वा को सीधा कर सकते हैं। अपनी चेतना मूलाधार में ले जाइये। उज्जायी पूरक कीजिये एवं बायीं ओर मुड़े इड़ा पथ के माध्यम से मूलाधार से आज्ञा तक आरोहण कीजिये। श्वसन धीरे-धीरे हो तथा आप भीतर-भीतर ही सम्पूर्ण पथ की लम्बाई का मानस दर्शन कीजिये।

यह एक चक्र हुआ। अपने उज्जायी श्वसन को पूरक में इड़ा पथ में ऊपर की ओर और रेचक में पिंगला पथ में नीचे की ओर संचरण कराते जाइये, जब तक आपको अनुभव न हो जाये कि परिभ्रमण सहज एवं स्वाभाविक हो गया। दोनों दीर्घवृत्ताकार पथों का मानस दर्शन कीजिये जिसमें से एक बायीं ओर और दूसरा दायीं ओर मुड़ा है।

बायीं ओर इड़ा के मन्द प्रकाश और दायीं ओर पिंगला से निकल रहे चमकीले प्रकाश को देखिये। अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया इन दो प्रदीप्त दीर्घवृत्ताकार पथों में चल रही है।

चतुर्थ चरण– प्राण परिभ्रमण

जब आप इड़ा और पिंगला पथों में चेतना एवं उज्जायी श्वसन को परिभ्रमित कराते हैं तो क्रमश: एक तीसरी शक्ति के प्रति सजग होइये। श्वास और चेतना के अगल-बगल में संचरण कर रही सूक्ष्म ऊर्जा, प्राण के परिभ्रमण का अनुभव कीजिये। इड़ा और पिंगला पथों में उज्जायी प्राणायाम के साथ आरोहण-अवरोहण करते समय एक ऊर्जा प्रवाह का अनुभव कीजिये जो श्वास के साथ संचरण कर रहा है। बायीं ओर से ऊपर की ओर एवं दायीं ओर से नीचे की ओर एक दीर्घवृत्ताकार पथ में परिभ्रमण करते हुए एक उज्जवल प्रकाश-प्रवाह का मानस दर्शन कीजिये।

श्वास के साथ प्राण का परिभ्रमण कराते जाइये जब तक यह अनुभव स्थिर एवं शक्तिशाली न हो जाये। दीर्घवृत्ताकार पथ में परिभ्रमण कर रही ऊर्जा के अनुभव के साथ-साथ श्वेत प्रकाश के दर्शन की अनुभूति भी हो। इस

अनुभव को तथा इड़ा-पिंगला पथ में परिभ्रमण कर रहे प्राण के दर्शन को तीव्र कीजिये। प्राण और उज्जायी श्वसन को समकालित कीजिये।

पूरक के समय मूलाधार से आज्ञा तक आरोहण करते समय प्राण को बायीं ओर घनुषाकार मुड़ते देखिये। और फिर आज्ञा से मूलाधार में अवरोहण करते समय उसे दाहिनी ओर मुड़ते देखिये। इड़ा और पिंगला अतीन्द्रिय पथों में प्राण के परिक्रमण के प्रति एकनिष्ठ सजगता बनाये रखिये।

पंचम चरण– 'सोऽहम्' का परिभ्रमण

अब प्राण की सजगता को छोड़ दीजिये। उज्जायी श्वसन की ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनिये। 'सोऽहम्' मंत्र को सुनिये, जो कि हर बार श्वास लेते समय, प्रत्येक श्वास द्वारा ही उत्पन्न ध्वनि है। इड़ा पथ में आरोहण एवं पूरक के समय 'सो-ओ-ओ' मंत्र तथा पिंगला पथ में अवरोहण के साथ 'हम्-म्-म्' मंत्र को सुनिये।

दीर्घवृत्ताकार इड़ा-पिंगला पथ में श्वास के साथ संचरण कर रहे 'सोऽहम्' मंत्र का अनुभव कीजिये। उज्जायी प्राणायाम के साथ इड़ा में ऊपर की ओर और पिंगला में नीचे की ओर संचरण कर रहे ध्वनि स्पन्द पर पूर्ण सजगता के साथ एकाग्र होइये। अनुभव कीजिये कि 'सोऽहम्' मंत्र अतीन्द्रिय पथ को परिशुद्ध एवं उन्मुक्त करता जा रहा है। कोई भी चीज आपकी सजगता को विचलित न करने पाये। दीर्घवृत्ताकार इड़ा-पिंगला पथ में 'सोऽहम्' मंत्र के संचरण को एकाग्र अवधान के साथ अनुभव कीजिये।

षष्ठ चरण– 'हम् सो' का परिभ्रमण

अब हम प्रत्येक चक्र में आरम्भ बिन्दु को मूलाधार से आज्ञा में बदल कर 'सोऽहम्' मंत्र को 'हम् सो' मंत्र में उलट देंगे। अपनी चेतना आज्ञा में ले आइये। आज्ञा से मूलाधार तक दायीं ओर धनुषाकार मुड़े पिंगला पथ में अवरोहण करते समय हम्-म्-म् के साथ उज्जायी प्रश्वास कीजिए। फिर मूलाधार से आज्ञा तक बायीं ओर धनुषाकार मुड़े इड़ा पथ में उज्जायी श्वास एवं 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ अवरोहण कीजिये। आज्ञा से मूलाधार तक पिंगला में एवं मूलाधार से आज्ञा तक इड़ा में चेतना का संचरण जारी रखिये। सम्पूर्ण दीर्घवृत्ताकार पथ में व्याप्त हो रहे और उसका भेदन करते हुए 'हम् सो' मंत्र के स्पन्दन को अनुभव कीजिये।

अब रेचक एवं 'हम्' मंत्र पर बल देते हुए अपनी चेतना को गहराई में जाता हुआ अनुभव कीजिये। आपकी एकाग्रता एकदम स्थिर, अचंचल और निष्कम्प रहे। आपकी सजगता केवल एक चीज पर है– दीर्घवृत्ताकार पथ में 'हम्-सो' मंत्र के संचरण पर, अन्य किसी चीज पर नहीं। यदि आपके मन में कोई अन्य विचार, दृश्य, या अनुभव आते हैं तो उन्हें तत्काल दूर करते हुए अपना अभ्यास जारी रखिये।

सप्तम् चरण– अभ्यास का समापन

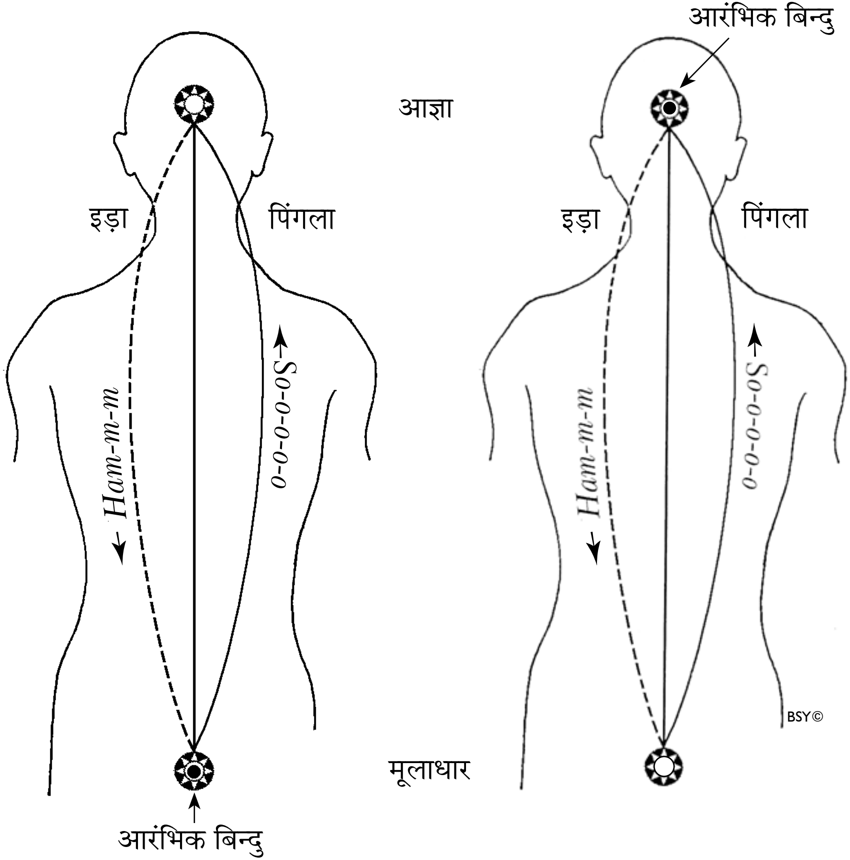
अब अभ्यास समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। अब अपनी चेतना एवं श्वास को इड़ा-पिंगला पथ से वापस लाइये। खेचरी मुद्रा खोलिये। सहज श्वसन प्रारम्भ कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। कमरे में बैठे अपने शरीर को देखिये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार को अनुभव कीजिये। धीरे से अपने हाथों एवं पैरों की ऊँगलियों को हिलाइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा सात

दीर्घवृत्ताकार परिभ्रमण

(पृष्ठ दृश्य)



सोऽहम्

श्वास– सो (पिंगला)

प्रश्वास– हम् (इड़ा)

हंसो

प्रश्वास– हम् (इड़ा)

श्वास– सो (पिंगला)

अजपा धारणा सात

पिंगला-इड़ा दीर्घवृत्ताकार परिभ्रमण

इस अभ्यास में आरोहण एवं अवरोहण के पथ में परिवर्तन किया जाता है, जिससे आरोहण पिंगला एवं अवरोहण इड़ा पथ से हो सके। इस परिभ्रमण के साथ पूरक या उत्प्रेरक जोर पिंगला पर तथा निष्क्रिय या विश्रान्त जोर इड़ा पर रहता है। इसका मतलब है कि जैसे-जैसे अभ्यास क्रमश: बढ़ता है, जीवन शक्तियाँ सक्रिय होती जायेंगी और मानसिक शक्तियाँ विश्रान्त एवं मंद होती जायेंगी।

अत: इड़ा एवं पिंगला को सम्मिलित करने वाले इन दोनों परिभ्रमणों का उपयोग अत्यन्त लाभपूर्वक व्यक्ति के शरीर, व्यक्तित्व एवं व्यवहार में कतिपय परिवर्तन लाने, उन्हें सन्तुलित बनाने के लिए किया जा सकता है। कुण्डलिनी जागरण के पूर्व आध्यात्मिक स्तर पर भी इन द्विविध ऊर्जा शक्तियों को सन्तुलित, नियमित एवं जाग्रत करना जरूरी है। अतएव व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए ये दोनों परिभ्रमण महत्त्वपूर्ण अधार निर्मित करते हैं।

योग में यह कहा जाता है कि सुषुम्ना तभी खुलती है जब इड़ा तथा पिंगला पूर्णत: संतुलित एवं जाग्रत होती हैं। यदि इन दोनों नाड़ियों में बिना किसी प्रकार का असंतुलन उत्पन्न किये ऊर्जा के परिमाण को उच्च स्तर तक बढ़ाया जाये तो अपनी धनात्मक एवं ऋणात्मक ध्रुवता द्वारा वे कुण्डलिनी जागरण का कारण बन सकती हैं। जब यह ओज मूलाधार से टकराता है तो कुण्डलिनी सुषुम्ना में ऊपर चढ़ती है एवं आध्यात्मिक जागरण होता है।

इसलिए योग में नाड़ियों का संतुलन पहली पूर्वापेक्षा है। जब नाड़ियाँ संतुलित होती हैं तब शरीर एवं मन स्थिर होते हैं एवं धारणा की उपलब्धि

होती है। जैसे-जैसे नाड़ियाँ अधिक संतुलित एवं नियमित होती हैं, सुषुम्ना खुलती है। जैसे-जैसे सजगता चेतना के गहरे आयामों में प्रवेश करती है, आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रवाह प्रारम्भ होता है। अन्ततोगत्वा, जब नाड़ियाँ पूर्णत: संतुलित एवं जाग्रत हो जाती हैं तो कुण्डलिनी सुषुम्ना में ऊपर चढ़ती है और प्रदीपन होता है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। मेरुदण्ड सीधा, सिर, गला तथा कन्धे थोड़े पीछे होने चाहिए। हाथों को घुटनों पर ज्ञान या चिन्मुद्रा में रखिये। आँखें बन्द कर लीजिये। अपनी सजगता को अन्दर ले जाइये। अपने शरीर की सीधी, सुविधापूर्ण तथा अचल अवस्था के प्रति सजग बनिये। शरीर की निश्चलता एवं स्थिरता पर एकाग्र होइये। अनुभव कीजिये कि आपकी शारीरिक स्थिति अधिकाधिक निश्चल तथा दृढ़ होती जा रही है।

द्वितीय चरण– श्वास की सजगता

अपनी सजगता को श्वास-प्रश्वास पर ले जाइये। धीमे गहरे श्वसन का अभ्यास कीजिये। भीतर जाती हुई श्वास की पाँच तक तथा बाहर आती श्वास की भी पाँच तक गिनती कीजिये। जैसे-जैसे श्वास अधिकाधिक सूक्ष्म होती जाये, धीरे-धीरे अनुभव कीजिये कि जीभ पीछे मुड़कर खेचरी मुद्रा में आ गयी है तथा श्वास उज्जायी श्वास में बदल गयी है। खेचरी के साथ धीमे, परन्तु लय पूर्ण उज्जायी श्वसन का अभ्यास कुछ समय तक जारी रखिये जब तक कि शरीर तथा मन निश्चित रूप से शान्त एवं स्थिर न हो जाएँ।

तृतीय चरण– श्वास का परिभ्रमण

अपनी सजगता को मूलाधार में ले जाइये। उज्जायी श्वास लीजिये तथा पिंगला पथ होकर, जो दायें घूमते हुए मूलाधार से आज्ञा तक जाता है, ऊपर जाइये। धीरे से आरोहण कीजिये तथा पिंगला पथ की पूरे लम्बाई का भीतर से अवलोकन कीजिये। जब आप आज्ञा पर पहुँचते हैं तो उज्जायी में प्रश्वास कीजिये तथा इड़ा पथ से, जो बाएँ घूमते हुए आज्ञा से मूलाधार तक जाता है, धीरे-धीरे अवरोहण कीजिये। इड़ा पथ के आन्तरिक आयामों का

ऊपर से नीचे तक अवलोकन करने की चेष्टा कीजिये। सम्पूर्ण परिभ्रमण की अवधि में सतर्क एवं सजग रहिये।

यह एक चक्र हुआ। उज्जायी श्वसन का परिभ्रमण पिंगला से ऊपर पूरक में तथा इड़ा से नीचे तक रेचक में कराइये जब तक कि आप यह न अनुभव करने लगें कि श्वास परिभ्रमण अपने आप सहज तथा स्वाभाविक तरीके से हो रहा है। अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया इन्हीं दोनों अतीन्द्रिय पथों के भीतर से हो रही है। दोनों दीर्घवृत्ताकार पथों का अवलोकन करने का प्रयास कीजिये, जिसमें एक दाहिने तथा दूसरा बाएँ घूमते हुए बन्द कुण्डलाकार रूप में नीचे मूलाधार में तथा ऊपर आज्ञा में जुड़ता है। दाहिनी ओर पिंगला से चकाचौंध करने वाला श्वेत प्रकाश तथा बायीं ओर इड़ा से मन्द पारभासक दीप्ति निकलते हुए देखिये।

चतुर्थ चरण– प्राण का परिभ्रमण

एक ही साथ पिंगला में ऊपर आती हुई तथा इड़ा से नीचे जाती हुई सजगता एवं श्वास का अनुभव कीजिये। धीरे-धीरे आप एक तीसरी शक्ति, प्राण या सूक्ष्म ऊर्जा को श्वास एवं सजगता के साथ परिभ्रमण करते हुए अनुभव करेंगे। जब आप दीर्घवृत्ताकार पिंगला-इड़ा पथ से उज्जायी प्राणायाम के साथ आरोहण एवं अवरोहण करें, तो अनुभव कीजिये एक ऊर्जा प्रवाह श्वास के साथ-साथ चल रहा है। देखिये कि श्वेत प्रकाश प्रवाह अर्धवृत्ताकार पथ से दाहिनी ओर में ऊपर तथा बायीं ओर में नीचे भ्रमण कर रहा है।

जब तक श्वास की गति सम एवं अनायास न हो जाये, श्वास के साथ प्राण का परिभ्रमण करते जाइये। दीर्घवृत्ताकार पथ में श्वेत प्रकाश दर्शन के साथ ही ऊर्जा परिभ्रमण का अनुभव होना चाहिए। पिंगला-इड़ा पथ में परिभ्रमण करते हुए प्राण के अनुभव एवं दर्शन को और तीव्र कीजिये। प्राण के परिभ्रमण को उज्जायी श्वसन के साथ समकालिक कीजिये, जो अब तक अधिक सूक्ष्म एवं अगोचर हो गया है।

पूरक में पिंगला पथ में प्राण को आरोहण करते, मूलाधार से आज्ञा तक दाहिनी ओर गोलाई लेते हुए एवं रेचक में प्राण को अवरोहण करते हुए, आज्ञा से मूलाधार तक बायीं ओर गोलाई लेते देखिये। पिंगला एवं इड़ा पथों में प्राण के परिभ्रमण पर एकचित्त धारणा कीजिये। कोई भी चीज आपके अवधान को विक्षिप्त न करे।

पंचम चरण– सोऽहम् का परिभ्रमण

अब आप प्राण के प्रति सजगता का त्याग कीजिये। उज्जायी श्वसन की ध्वनि को सावधानी से सुनिये। प्रत्येक बार श्वसन के साथ सहजता से उच्चारित हो रहे मंत्र 'सोऽहम्' को सुनने की चेष्टा कीजिये। पिंगला पथ में पूरक के साथ आरोहण करते समय 'सो-ओ-ओ-ओ' मंत्र को सुनिये। रेचक के साथ इड़ा पथ से अवरोहण करते हुए मंत्र 'ह-म्-म्-म्' को सुनिये। दीर्घवृत्ताकार पिंगला-इड़ा पथ से श्वास के साथ सोऽहं मंत्र को परिभ्रमण करते हुए अनुभव कीजिये। पिंगला में ऊपर की ओर और इड़ा में नीचे की ओर प्रवाहित हो रहे ध्वनि स्पन्दनों पर अपनी सम्पूर्ण सजगता केन्द्रित कीजिये। अनुभव कीजिये कि मंत्र परिभ्रमण से दीर्घवृत्ताकार पथ में अतीन्द्रिय ऊर्जा का संचय हो रहा है। सजगता को तीव्र कीजिये। पिंगला-इड़ा पथ में सोहम् मंत्र के परिभ्रमण के अनुभव पर एकाग्र धारणा कीजिये।

अगले चरण में हम आरम्भिक बिन्दु मूलाधार को आज्ञा से बदल कर सोऽहम् मंत्र को 'हम्-सो' मन्त्र में बदलेंगे। आज्ञा से मूलाधार की ओर बायाँ मोड़ ले इड़ा पथ में अवरोहण करते हुए हम्-म्-म् मंत्र के साथ उज्जायी में रेचक कीजिये। पुनः मूलाधार से आज्ञा की ओर पिंगला पथ में आरोहण करते हुए सो-ओ-ओ-ओ मंत्र के साथ पूरक कीजिये। इड़ा होते हुए आज्ञा से मूलाधार तथा पिंगला होते हुए मूलाधार से आज्ञा परिभ्रमण करते हुए श्वसन पर सजगता बनाये रखिये। सम्पूर्ण दीर्घवृत्ताकार पथ में 'हम्-सो' मंत्र के स्पन्दनों के प्रवेश करने एवं व्याप्त होने का अनुभव कीजिये।

रेचक एवं 'हम्' मंत्र पर ध्यान देते हुए अपनी सजगता को गहराता हुआ अनुभव कीजिये। दीर्घावृत्ताकार पथ में 'हम् सो' मंत्र के परिभ्रमण को ही केन्द्र बनाकर अपनी धारणा एक लेजर किरण की भाँति गहरी और शक्तिशाली बनाइये। यदि अन्य कोई विचार या अनुभूति मन में आ भी जाये तो उसे शीघ्र हटा डालिये और 'हम्-सो' के परिभ्रमण पर अपनी धारणा को केन्द्रित कीजिये। इड़ा पथ में नीचे की ओर एवं पिंगला पथ में ऊपर की ओर 'हम्-सो' की अनुगूँज पर अपनी समग्र सजगता को केन्द्रित कीजिये।

सप्तम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

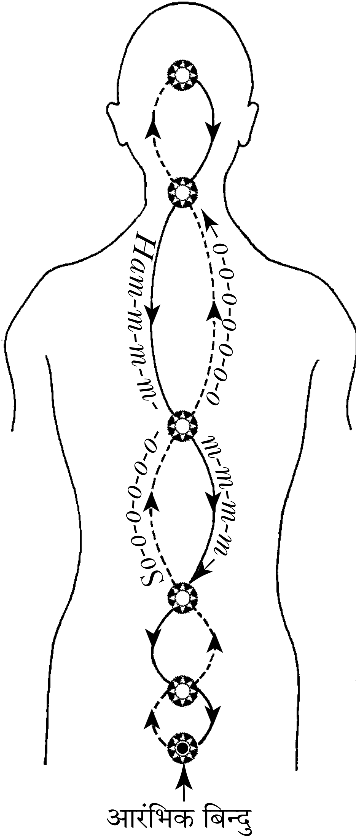
अब आप अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। अतीन्द्रिय पथ से अपनी सजगता एवं श्वास को वापस कीजिये। उलटी मुड़ी हुई जीभ को खोलकर सीधा कीजिये। सहज श्वसन पर वापस आइये। ध्यानावस्था में बैठे भौतिक शरीर के प्रति पुनः सजग होइये। बाहरी वातावरण के प्रति सजग बनिये। बाहरी स्पन्दनों को सुनिये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार का अनुभव कीजिये। धीरे से अपने हाथ-पैर की अँगुलियों को हिलाइये। गहरी श्वास लेते हुए तीन बार ॐ मंत्र का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा आठ

इड़ा-पिंगला सर्पिल परिभ्रमण

(पृष्ठ दृश्य)



आज्ञा

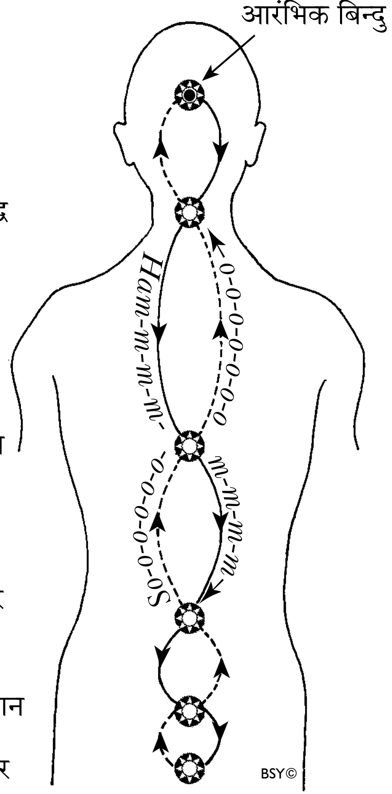
विशुद्धि

अनाहत

मणिपुर

स्वाधिष्ठान

मूलाधार



सोऽहम्

श्वास– सो (इड़ा)

प्रश्वास– हम् (पिंगला)

हंसो

प्रश्वास– हम् (पिंगला)

श्वास– सो (इड़ा)

अजपा धारणा आठ

इड़ा-पिंगला सर्पिल परिभ्रमण

इस अभ्यास में इड़ा और पिंगला का सर्पिल पथों के रूप में मानस दर्शन किया जाता है, जो प्रत्येक चक्र बिन्दु पर एक-दूसरे को पार करती चलती हैं। इड़ा और पिंगला मानसिक एवं प्राण ऊर्जा की वाहिकायें हैं, वे स्वयं ऊर्जा की प्रतीक नहीं हैं। जिस प्रकार सुषुम्ना कुण्डलिनी का मार्ग है और वह स्वयं कुण्डलिनी शक्ति नहीं है, उसी प्रकार इड़ा और पिंगला चेतना और प्राण की दोनों शक्तियों को ले जाने वाली दो सर्पिल वाहिकाएँ हैं, जिन्हें चित्र में देखा जा सकता है।

मूलाधार से पिंगला दायीं ओर घुमाव लेती हुई स्वाधिष्ठान को पार करती है। पुन: बायीं ओर घुमाव लेकर मणिपुर को, पुन: दायीं ओर घुमाव लेकर अनाहत को, फिर बायीं ओर घुमाव लेकर विशुद्धि को पार करती है और अन्तत: दायीं ओर मोड़ लेकर आज्ञा में आकर रुक जाती है। इड़ा भी ऊपर की ओर विपरीत दिशा में बढ़ती है। इड़ा मूलाधार से बायीं ओर घुमाव लेकर स्वाधिष्ठान को, पुन: दायीं ओर घुमाव लेकर मणिपुर को, पुन: बायीं ओर घुमाव लेकर अनाहत को, फिर दायीं ओर घुमाव लेकर विशुद्धि को पार करती है और अन्तत: बायीं ओर घुमाव लेकर आज्ञा में पहुँच कर रुक जाती है। जब इड़ा और पिंगला प्रत्येक चक्र केन्द्र पर एक-दूसरे को पार करती हैं तब ऊर्जा-विनिमय होता है। उसके उपरान्त ये चक्र शरीर के जिन विभिन्न अंगों से सम्बन्धित होते हैं, उनमें ऊर्जा का वितरण करते हैं। उदाहरण के लिए, स्वाधिष्ठान प्रजनन अंगों और मलोत्सर्जक अंगों को, मणिपुर पाचन अंगों को, अनाहत हृदय और फुफ्फुसों को, विशुद्धि कान और कण्ठ को तथा आज्ञा चक्र आँख, नाक और मस्तिष्क को ऊर्जा वितरित करता है। इसी प्रकार

हमारे शरीर और मन को सम्पोषित करने वाली ऊर्जा का सम्प्रेषण इड़ा और पिंगला करती हैं। यदि इस सम्प्रेषण के किसी स्तर पर कुछ गड़बड़ी होती है, यदि चक्रों में कहीं अवरोध होता है, या इन ऊर्जा प्रवाहों में कोई असंतुलन होता है तब विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इन दो मुख्य वाहिकाओं में ऊर्जा सम्प्रेषण में अवरोध या असंतुलन की प्रकृति के अनुसार ही ये रोग मानसिक या शारीरिक हो सकते हैं।

दूसरी ओर जब इड़ा एवं पिंगला मार्ग शुद्ध एवं सुव्यवस्थित रहते हैं और चक्रों में कोई अवरोध नहीं रहता है तब स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार का अनुभव होगा। इन दो मार्गों में ऊर्जा प्रवाहों को नियमित करने के पश्चात्, यदि ऊर्जा के परिमाण को बढ़ाया जा सके तब धारणा के अनेक स्तरों की उपलब्धि हो सकती है। इन दोनों वाहिकाओं में प्राण के स्तर को उठाये और संतुलित किये बिना हम सजगतापूर्वक अन्तर्मुखता का अनुभव नहीं कर सकते।

अन्तर्मुखी मन की सामान्य प्रवृत्ति होती है स्वप्न या निद्रा में जाना। बहिर्मुखी मन की सामान्य प्रवृत्ति होती है विक्षेप एवं बिखराव। एकचित्त धारणा के लिए सक्रिय अन्तर्मुखता या सजगता आवश्यक है, जो जाग्रत एवं सजग है। यह अवस्था तभी उत्पन्न होगी जब मानसिक एवं प्राणिक ऊर्जाओं में संतुलन होगा।

इस विधि में हम इड़ा और पिंगला पथों में श्वास, प्राण एवं मंत्र का परिभ्रमण चालू रखते हैं। परन्तु अब हम इसमें एक और नया आयाम जोड़ रहे हैं। नाड़ियों को एक सर्पिल पथ के रूप में देखा जाता है, जो प्रत्येक चक्र-संगम पर एक-दूसरे को पार करती हैं। नाड़ियों और चक्रों में ऊर्जा-सम्प्रेषण के अवरोधों को साफ करने में यह परिभ्रमण सहायता देता है। इस प्रकार यह शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिरता को बढ़ाते हुए प्राण के समस्त क्षेत्र को विनियमित एवं विस्तृत करता है।

यहाँ उत्प्रेरक बल इड़ा वाहिका या मानसिक ऊर्जा पर होता है जब कि निश्चेष्टन अथवा अवमन्दन बल पिंगला वाहिका या प्राण ऊर्जा पर होता है। मानसिक क्रिया की सकारात्मक अवस्था को बढ़ाने में या गहरी अन्तर्मुखता की अवस्था विकसित करने में, जिसमें मन जड़ नहीं, सजग रहता है, यह अत्यन्त उपयोगी है। जो स्वभाव से ही बहिर्मुखी और सक्रिय होते हैं तथा आसानी से बेचैन और उद्विग्न हो जाते हैं, उनके लिए यह साधना अति लाभप्रद है। यह परिभ्रमण प्राणिक पक्ष को अवमन्दित और मानसिक पक्ष को सक्रिय कर देता है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। मेरुदण्ड सीधा रहे और सिर थोड़ा पीछे की ओर। अपनी हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें धीरे से बन्द कर लीजिये। पूरे शरीर को आपाद मस्तक विश्रान्त कर लीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने स्थूल शरीर की सजगता विकसित कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपका आसन स्थिर और निश्चल होता जा रहा है। शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता पर धारणा कीजिये। अपने आप से मानसिक रूप से कहिये, "मेरा शरीर स्थिर है और एक पत्थर की मूर्त्ति के समान अचल है।"

द्वितीय चरण– सुषुम्ना में श्वास की चेतना

जैसे ही शरीर स्थिर और अचल होता है अपना अवधान श्वास पर ले जाइये। मन्द एवं लयबद्ध श्वसन कीजिये तथा प्रत्येक पूरक एवं रेचक में पाँच तक गिनती कीजिये। इसे एक या दो मिनट तक करते जाइये। अपनी सजगता मेरुदण्ड के नीचे मूलाधार में लाइये। मेरु-पथ में मूलाधार से आज्ञा तक धीरे-धीरे पूरक कीजिये। आज्ञा में पहुँच जाने के बाद पुनः मूलाधार तक रेचक कीजिये। इस प्रकार सुषुम्ना पथ में ऊपर-नीचे श्वास का परिभ्रमण करते समय क्रमानुसार चक्र संगमों के प्रति भी सजग रहिये।

तृतीय चरण– इड़ा परिभ्रमण

अब सुषुम्ना और श्वास की सजगता को छोड़ दीजिये। सहज श्वास लीजिये और अपना अवधान मूलाधार पर केन्द्रित कीजिये। कल्पना कीजिये कि इड़ा-पथ मूलाधार से बायीं ओर घुमाव लेता हुआ स्वाधिष्ठान को पार करता है। स्वाधिष्ठान से दायीं ओर घुमाव लेता हुआ मणिपुर को पार करता है। मणिपुर से बायीं ओर घुमाव लेता हुआ अनाहत को पार करता है। अनाहत से दायीं ओर घुमाव लेता हुआ विशुद्धि को पार करता है। अन्त में विशुद्धि से बायीं ओर मुड़ता हुआ आज्ञा में रुक जाता है।

पुनः अपनी चेतना को इड़ा पथ से नीचे लाइये। आज्ञा से इड़ा बायीं ओर मुड़कर विशुद्धि को पार करती है, विशुद्धि से दायीं ओर मुड़कर अनाहत को पार करती है। फिर अनाहत से बायीं ओर मुड़कर मणिपुर को पार करती है। मणिपुर से दायीं ओर मुड़कर स्वाधिष्ठान को पार करती है और

अन्ततः स्वाधिष्ठान से बायीं ओर मुड़कर मूलाधार में, जहाँ से प्रारम्भ किया था, आकर रुक जाती है।

सम्पूर्ण इड़ा-पथ का मानस-दर्शन कीजिये, जो सर्पिल रूप से मेरुदण्ड के बायें से दायें, फिर बायें, फिर दायें, पुनः बायें जाते हुए अन्त में आज्ञा में रुक जाता है। पुनः उसी सर्पिल पथ का मानस-दर्शन कीजिये जो ऊपर से नीचे की ओर बायें से दायें, फिर बायें, फिर दायें और अन्त में बायें मुड़ता हुआ मूलाधार में रुक जाता है। इस इड़ा पथ की चेतना को तीव्र कीजिये।

जब इड़ा-पथ घुमाव लेकर आरोहण करता हुआ प्रत्येक चक्र बिन्दु को पार करता है तब उन बिन्दुओं के प्रति सजग होते जाइये: मूलाधार– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, मणिपुर– बायें, अनाहत– दायें, विशुद्धि– बायें, और आज्ञा में समाप्त। फिर अवरोहण में आज्ञा से बायें, विशुद्धि– दायें, अनाहत– बायें, मणिपुर– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें, और मूलाधार में वापस। इसे तब तक दुहराते जाइये जब तक यह बिना प्रयास के ही होने न लगे।

चतुर्थ चरण– पिंगला परिभ्रमण

अब इड़ा पथ से अपनी चेतना हटा लीजिये। सहज श्वास लेना शुरू कीजिये, और अपनी चेतना मूलाधार चक्र पर केन्द्रित कीजिये। पिंगला पथ की कल्पना कीजिये, जो मूलाधार से दायीं ओर मुड़ता हुआ स्वाधिष्ठान को पार करता है, फिर बायीं ओर घुमाव लेकर मणिपुर को पार करता है। मणिपुर से दायीं ओर मुड़कर अनाहत को पार करता है। अनाहत से बायीं ओर मुड़कर विशुद्धि को पार करता है। फिर विशुद्धि से दायीं ओर मुड़कर आज्ञा में आकर रुक जाता है।

अब अपनी चेतना को पिंगला पथ से होकर नीचे लाइये। आज्ञा से पिंगला दायीं ओर मुड़ती है और विशुद्धि को पार करती है। फिर वहाँ से बायीं ओर मुड़ती है और अनाहत को पार करती है। अनाहत से दायीं ओर मुड़ती है और मणिपुर को पार कर बायीं ओर मुड़ जाती है, फिर स्वाधिष्ठान को पार कर दायीं ओर मुड़ते हुए मूलाधार में वापस आ जाती है। इस परिभ्रमण को तब तक जारी रखिये जब तक यह निष्प्रयास न होने लगे।

समस्त पिंगला-पथ का मानस दर्शन कीजिये जो मेरुदण्ड में सर्पिल गति से ऊपर जाता है– दायें से बायें, फिर दायें, फिर बायें, फिर दायें और अन्त

में आज्ञा में रुक जाना। फिर उसी पिंगला पथ को सर्पिल गति से नीचे आते देखिये। दायें से बायें, फिर दायें, फिर बायें, फिर दायें और पुन: मूलाधार चक्र में वापस। पिंगला पथ की चेतना को तीव्र कीजिये।

जैसे-जैसे पिंगला पथ मोड़ लेते हुए चक्रों को पार करता है, आप चक्रों के प्रति सजग होते जाइये– मूलाधार से दाहिने, स्वाधिष्ठान– बायें, मणिपुर– दायें, अनाहत– बायें, विशुद्धि– दायें, आज्ञा में रुक जाइये। अब आरोहण कीजिये आज्ञा से दायें, विशुद्धि– बायें, अनाहत– दायें, मणिपुर– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें और मूलाधार में वापस। अभ्यास को दुहराते जाइये जब तक आप बिना प्रयास के न करने लगें।

पंचम चरण– इड़ा-पिंगला परिभ्रमण

सहज श्वास लेते रहिये और अपनी चेतना मूलाधार में केन्द्रित कीजिये। अब इड़ा पथ से आरोहण प्रारम्भ कीजिये– मूलाधार से बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, मणिपुर– बायें, अनाहत– दायें, विशुद्धि– बायें, और आज्ञा में आकर रुक जाइये। अब पिंगला पथ में अवरोहण कीजिये: आज्ञा– दाहिने, विशुद्धि– बायें, अनाहत– दायें, मणिपुर– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, और मूलाधार में वापस। यह एक चक्र हुआ।

इसी प्रकार इड़ा से आरोहण एवं पिंगला से अवरोहण करते जाइये। जिस भी चक्र को आप पार करें, उस समय मानसिक रूप से उसका नाम लेते जाइये। इड़ा-पिंगला ऊर्जा-पथ की सजगता को तीव्र करते जाइये। आरोहण एवं अवरोहण के समय दोनों पथों का मानस दर्शन करते जाइये। पिंगला चकाचौंधपूर्ण चमकीले और इड़ा मन्द पारभासक प्रकाश के रूप में हैं।

षष्ठ चरण– इड़ा-पिंगला में श्वास का परिभ्रमण

कुछ क्षण के लिए इड़ा-पिंगला परिभ्रमण छोड़ दीजिए और कण्ठ में मन्द एवं गहरे श्वसन पर एकाग्रता लाइये। अनुभव कीजिये कि श्वास क्रमश: उज्जायी प्राणायाम में बदलती जा रही है और जिह्वा उलट कर खेचरी मुद्रा में आ गयी है।

अपनी चेतना पुन: नीचे मूलाधार में ले आइये। मूलाधार से क्रमश: बायीं और दायीं ओर से निकलते इड़ा और पिंगला अतीन्द्रिय पथों का मानस दर्शन कीजिये। ये पथ भीतर में नलिका के समान खोखले हैं, और आप उनके माध्यम से श्वास ले सकते हैं।

अपनी उज्जायी श्वास को इड़ा पथ में ले चलिये। मन्द श्वास लेने के साथ धीरे-धीरे आरोहण कीजिये और जैसे-जैसे मोड़ लेते हुए प्रत्येक चक्र को पार करते हैं उस चक्र का नाम मानसिक रूप से दुहराते जाइये: मूलाधार– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, मणिपुर– बायें, अनाहत– दायें, विशुद्धि बायें, और आज्ञा में पहुँचकर रेचक समाप्त करें। तत्पश्चात् उज्जायी में ही प्रश्वास कीजिये और पिंगला पथ से अवरोहण कीजिये। मोड़ लेकर चक्रों को पार करते समय प्रत्येक चक्र का नाम मानसिक रूप से दुहराते जाइये: आज्ञा– दायें, विशुद्धि– बायें, अनाहत– दायें, मणिपुर– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें और मूलाधार में पहुँचकर प्रश्वास समाप्त हो जायेगी। इड़ा-पिंगला ऊर्जा पथ में उज्जायी श्वास का परिभ्रमण करते जाइये। अनुभव कीजिये कि समग्र श्वसन प्रक्रिया इन अतीन्द्रिय पथों के अन्दर में ही चल रही है। अपनी सजगता को विचलित होने या बिखरने न दीजिये। प्रश्वास कर अपनी सजगता मूलाधार में लाइये। पाँच सेकेण्ड तक मूलाधार पर एकाग्रता रखते हुए श्वास को रोकिये। उज्जायी में पूरक करते हुए इड़ा पथ में आरोहण कीजिये और सभी चक्रों के नाम दुहराते जाइये: मूलाधार– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, मणिपुर– बायें, अनाहत– दायें, विशुद्धि– बायें, आज्ञा में रेचक समाप्त कीजिये।

अब आज्ञा पर एकाग्रता करते हुए पाँच सेकेण्ड अन्तर्कुम्भक कीजिये। फिर धीरे-धीरे उज्जायी में रेचक कीजिये तथा प्रत्येक चक्र का नाम मानसिक रूप से लेते हुए पिंगला में अवरोहण कीजिये: आज्ञा– दायें, विशुद्धि– बायें, अनाहत– दायें, मणिपुर– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें और मूलाधार में पहुँचकर प्रश्वास समाप्त। यह पहली आवृत्ति हुई।

शीघ्र दूसरी आवृत्ति प्रारम्भ कीजिये। पाँच सेकेण्ड के लिए बहिर्कुम्भक कीजिये और मूलाधार पर मन को एकाग्र कीजिये। तत्पश्चात् चक्रों के नाम मानसिक रूप से लेते हुए इड़ा पथ में धीरे-धीरे उज्जायी श्वास लीजिये। मानसिक रूप से चक्रों के नाम लेते हुए श्वास का परिभ्रमण करते जाइये जब तक आप इड़ा-पिंगला परिपथ में बिना प्रयास, भ्रम या दम फूलने के आरोहण-अवरोहण करने में सक्षम न हो जायें।

सप्तम् चरण– इड़ा-पिंगला में प्राण का परिभ्रमण

अब इड़ा-पिंगला श्वास परिभ्रमण की सजगता को तीव्र कीजिये। इन अतीन्द्रिय पथों में श्वास और चेतना, दोनों शक्तियों के साथ-साथ

परिभ्रमण के प्रति सजग हो जाइये। जैसे-जैसे श्वास संचरण करती है, चेतना भी उसी पथ में साथ-साथ संचरण करती है। धीरे-धीरे एक तीसरी शक्ति, प्राण शक्ति या सूक्ष्म ऊर्जा शक्ति के संचरण को भी अनुभव कीजिये, जो श्वास के ही साथ इड़ा-पिंगला परिपथ में संचरण कर रही है।

इस चरण में चक्रों का नाम दुहराना नहीं है, केवल उनकी सजगता बनाये रखिये। श्वास लीजिये और सजगता को मूलाधार में लाइये। मूलाधार पर एकाग्र होते हुए पाँच सेकेण्ड के लिए बहिर्कुम्भक कीजिये। अब उज्जायी में धीरे-धीरे श्वास के साथ इड़ा पथ में आरोहण प्रारम्भ कीजिये। चक्रों को पार करते समय उनकी स्थिति के प्रति चैतन्य होते जाइये। प्राण को एक उज्जवल प्रकाश प्रवाह के रूप में देखिये, जो श्वास के साथ इड़ा पथ में सर्पिल गति से ऊपर जा रहा है।

आज्ञा में पहुँचने पर श्वास समाप्त होती है। अब आज्ञा पर एकाग्र होते हुए पाँच सेकेण्ड के लिए अन्तर्कुम्भक कीजिये। फिर उज्जायी में मन्द प्रश्वास करते हुए पिंगला पथ में अवरोहण कीजिये तथा प्रत्येक चक्र की सजगता के साथ उनको पार करते जाइये। पिंगला पथ में प्राण की कल्पना श्वास के साथ उज्वल प्रकाश के रूप में सर्पिल गति से संचरण करते हुए कीजिये। यह अनुभव करने का प्रयास कीजिए कि प्राण शक्ति नाड़ियों में संचरण करते हुए उन्हें फैलाती एवं उनमें उपस्थित बाधाओं और अवरोधों को दूर करती जा रही है।

जब तक प्राण शक्ति का स्पष्ट दर्शन न हो जाये और केवल उस पर ही एकाग्र होने में समर्थ न हो जायें तब तक परिभ्रमण करते जाइये। इड़ा-पिंगला परिपथ में प्राण शक्ति की वृद्धि का अनुभव कीजिये।

अष्टम् चरण – इडा-पिंगला में 'सोऽहम्' का परिभ्रमण

अब प्राण का दर्शन छोड़ दीजिये और श्वास में अन्तर्निहित ध्वनि को ध्यान से सुनिये, जो 'सोऽहम्' मंत्र है। प्रश्वास कीजिये और अपनी चेतना को मूलाधार में ले जाइये। मूलाधार पर एकाग्र होते हुए पाँच सेकेण्ड के लिए बहिर्कुम्भक कीजिये। उज्जायी पूरक में 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ इड़ा पथ में आरोहण कीजिये। प्रत्येक चक्र संगम को पार करते समय उसके प्रति सजग होइये। आज्ञा में पहुँचने के पश्चात् पूरक पूरा हो जाता है। आज्ञा पर एकाग्र होते हुए पाँच सेकेण्ड तक अन्तर्कुम्भक कीजिये।

तत्पश्चात् उज्जायी में प्रश्वास करते हुए पिंगला-पथ में मंत्र 'हम्-म्-म्-म्' के साथ अवरोहण कीजिये। प्रत्येक चक्र संगम को पार करते समय उसके प्रति सजग होते जाइये।

जैसे ही आप मूलाधार में पहुँचते हैं, शीघ्र ही दूसरी आवृत्ति प्रारम्भ कर दीजिये। पाँच सेकेण्ड के लिए बहिर्कुम्भक करते हुए मूलाधार पर एकाग्रता कीजिये। उज्जायी में पूरक कीजिये और 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ इड़ा पथ में आरोहण कीजिये। इस अभ्यास को तब तक करते जाइये जब तक इड़ा-पिंगला परिपथ में श्वास के साथ 'सोऽहम्' मंत्र के निष्प्रयास संचरण का अनुभव न होने लगे। अनुभव कीजिये कि मंत्रों के स्पन्दन इन अतिन्द्रिय पथों को परिशुद्ध एवं जाग्रत करते जा रहे हैं। अपनी समग्र चेतना को मंत्रों के परिभ्रमण पर एकाग्र कीजिये। किसी अन्य विचार या दृश्य से आपका चित्त-विक्षेप न होने पाये। 'सोऽहम्' मंत्र की सजगता को तीव्र कीजिये। आपकी सजगता लेजर-किरण के समान इड़ा-पिंगला पथ में श्वास के साथ परिभ्रमण करते मंत्र पर एकाग्र रहे।

नवम् चरण – इड़ा-पिंगला में 'हम् सो' का परिभ्रमण

इसके पश्चात् हम लोग परिभ्रमण के आरम्भ बिन्दु को बदल कर 'सोऽहम्' को 'हम् सो' मंत्र में उलट देंगे। इसके पूर्व के चरण में परिभ्रमण का आरम्भ बिन्दु था मूलाधार। अब आरम्भ करने का बिन्दु होगा आज्ञा। श्वास लीजिये और अपनी चेतना को आज्ञा में ले आइये। पाँच सेकेण्ड के लिए अन्तर्कुम्भक करते हुए आज्ञा में एकाग्रता कीजिये। उज्जायी प्राणायाम में धीरे-धीरे प्रश्वास कीजिये और पिंगला पथ में 'हम्-म्-म्-म्' के साथ अवरोहण कीजिये। प्रत्येक चक्र संगम को पार करते समय उसके प्रति सजग होते जाइये। मूलाधार में पहुँच कर प्रश्वास पूरी हो जाती है। मूलाधार पर एकाग्रता करते हुए पाँच सेकेण्ड तक बहिर्कुम्भक कीजिये। तत्पश्चात् उज्जायी में पूरक करते हुए 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ इड़ा पथ में आरोहण कीजिये। प्रत्येक चक्र संगम को पार करते हुए उसके प्रति सजग होते जाइये। आज्ञा में पहुँचने पर पूरक पूरा होता है। यह एक आवृत्ति हुई।

तत्काल ही अगली आवृत्ति शुरू कर दीजिये। आज्ञा पर एकाग्रता के साथ पाँच सेकेण्ड तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। तत्पश्चात् उज्जायी में रेचक कीजिये और पिंगला पथ में 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ अवरोहण कीजिये।

'हम् सो' का परिभ्रमण तब तक चालू रखिये जब तक अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ मंत्र का संचरण स्वाभाविक न हो जाये। अनुभव कीजिए कि 'हम् सो' मंत्र का स्पन्दन इड़ा-पिंगला परिपथ को अनुप्राणित, परिशुद्ध एवं जाग्रत करता जा रहा है। जैसे-जैसे मंत्र परिभ्रमण पर आपकी एकाग्रता तीव्र होती जाए, अतीन्द्रिय पथ में अतीन्द्रिय ऊर्जा की वृद्धि को भी अनुभव कीजिये।

दशम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

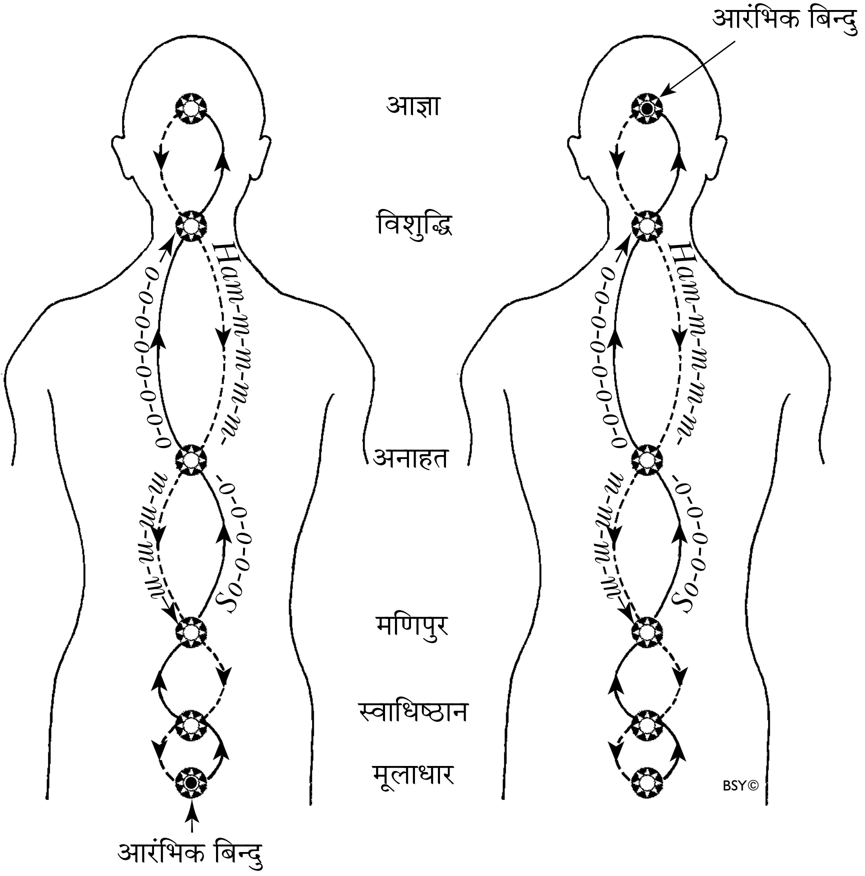
अब मंत्र की सजगता छोड़ दीजिये। अतीन्द्रिय पथ से अपनी सजगता हटा लीजिये। खेचरी मुद्रा छोड़ दीजिये। सहज श्वसन कीजिये। अब अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग हो जाइये, जो ध्यान के आसन में बैठा है। आपादमस्तक अपने शरीर का अनुभव कीजिये। जिस कमरे में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। बाह्य परिवेश से आ रही ध्वनियों के प्रति सजग होइये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार को अनुभव कीजिये। धीरे से अपने हाथों और पैरों की अंगुलियों को हिलाइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा नौ

पिंगला-इड़ा सर्पिल परिभ्रमण

(पृष्ठ दृश्य)



सोऽहम्

श्वास– सो (पिंगला)

प्रश्वास– हम् (इड़ा)

हंसो

श्वास– हम् (इड़ा)

प्रश्वास– सो (पिंगला)

अजपा जप धारणा नौ

पिंगला-इड़ा सर्पिल परिभ्रमण

यहाँ हम नाड़ियों की सर्पिल पथों के रूप में कल्पना करेंगे, जो प्रत्येक चक्र बिन्दु पर एक-दूसरे को काटती हैं। परन्तु यहाँ परिभ्रमण उलटा है। इस अभ्यास में आरोहण पिंगला से होता है और अवरोहण इड़ा से होता है। इसका तात्पर्य यह कि उत्प्रेरक बल अब पिंगला पर है, जो हमारी प्रकृति का सक्रिय या जैविक पक्ष है, और निष्क्रिय एवं मन्द बल इड़ा पर है, जो हमारा मानसिक पक्ष है। अत: यह परिभ्रमण पूर्व अभ्यास का प्रति-संतुलन है।

यह उनके लिए महत्त्वपूर्ण अभ्यास है जो अपनी ओजस्विता और व्यक्तित्व के चुम्बकत्व को सबल बनाना चाहते हैं। यह उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है जो मानसिक विषाद, उदासी और अन्तर्मुखता की ओर उन्मुख हो जाते हैं या जो जीर्ण, दुर्बल करने वाले रोगों से पीड़ित हैं।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये, मेरुदण्ड सीधा हो और सिर थोड़ा पीछे की ओर हो। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें धीरे से बन्द कर लीजिये। अपने सम्पूर्ण स्थूल शरीर के प्रति सजग हो जाइये। अपने पूरे शरीर की जाँच कर लीजिये कि कहीं पर कोई तनाव तो नहीं है। पूरा शरीर सुविधापूर्ण एवं आरामदेह स्थिति में हो। जैसे-जैसे आप अपनी सजगता पूरे शरीर में ले जाते हैं, अनुभव करते जाइये कि आपका आसन स्थिर एवं निश्चल होता जा रहा है। शरीर की इस निश्चलता एवं स्थिरता के प्रति सजग होते जाइये।

द्वितीय चरण– सुषुम्ना में श्वास-चेतना

अब अपनी चेतना सहज श्वास पर ले चलिये। श्वास एवं प्रश्वास के समय अपनी श्वास की एक-समान, लयात्मक गति का अनुभव कीजिये। चेतना को श्वास के साथ संचरण करने दीजिये।

चेतना को मेरुदण्ड के आधार मूलाधार चक्र में ले आइये। अब अपने मेरु-पथ में मूलाधार से आज्ञा तक पूरक प्रारम्भ कीजिये। आज्ञा में पहुँचने पर मेरु-पथ में रेचक करते हुए मूलाधार तक वापस आइये। मेरु-पथ में श्वास और चेतना का संचरण कराते जाइये। श्वास जैसे-जैसे सुषुम्ना में ऊपर या नीचे आती-जाती है, आप प्रत्येक चक्र बिन्दु के प्रति सजग होते जाइये। श्वसन को सम एवं लयात्मक रखिये।

तृतीय चरण– पिंगला परिभ्रमण

सुषुम्ना में श्वास की सजगता का त्याग कीजिए। कुछ क्षण के लिए अपनी सहज श्वास के प्रति सजग होइये। फिर अपनी सजगता को मूलाधार चक्र में लाइये। पिंगला-पथ का मानस दर्शन मूलाधार से आज्ञा तक सर्पिल गति से ऊपर जाते हुए कीजिये। देखिये कि पिंगला-पथ मूलाधार से दाहिनी ओर मोड़ लेते हुए स्वाधिष्ठान को पार कर, बायाँ मोड़ लेकर मणिपुर को पार करता है। पुनः दायाँ मोड़ लेकर अनाहत को पार कर बायाँ मोड़ लेता है और विशुद्धि को पार करता है, तत्पश्चात् पुनः दायाँ मोड़ लेता हुआ आज्ञा में पहुँचकर रुकता है।

जब आप आज्ञा पर पहुँच जाते हैं तब चेतना को पिंगला-पथ में ही नीचे अवरोहण कराइये। आज्ञा से देखिये कि पिंगला पथ दायाँ मोड़ लेकर विशुद्धि को पार करता हुआ, बायाँ मोड़ लेता है और अनाहत को पार करता हुआ दायाँ मोड़ लेता है। फिर मणिपुर को पार कर बायाँ मोड़ लेता है और स्वाधिष्ठान को पार कर दायाँ मोड़ लेते हुए मूलाधार में वापस आ जाता है।

सम्पूर्ण पिंगला पथ का मानस दर्शन कीजिये। पिंगला को मेरुदण्ड पर सर्पिल गति से ऊपर बढ़ते एवं सभी चक्रों को पार करते हुए देखिये। मूलाधार से प्रारम्भ कीजिये, वहाँ से दायाँ घुमाव लेकर यह स्वाधिष्ठान को पार करती है। फिर बायाँ घुमाव लेकर मणिपुर को पार करती है। उसके पश्चात् दायाँ घुमाव लेकर अनाहत को पार करती है। तत्पश्चात् बायाँ मोड़ लेती है और विशुद्धि को पार कर दायाँ मोड़ लेती है तथा आज्ञा में पहुँचकर

रुक जाती है। अब आज्ञा से अवरोहण कीजिये, देखिये कि पिंगला दायीं ओर मोड़ लेती हुई विशुद्धि को पार करती है। फिर बायें मुड़कर अनाहत को पार करती है। दायें मुड़कर मणिपुर को और उसके बाद बायें मुड़कर स्वाधिष्ठान को पार करती है। अन्त में दायाँ मोड़ लेकर मूलाधार में वापस आ जाती है।

पिंगला-पथ की चेतना को तीव्र कीजिये और जैसे-जैसे पिंगला पथ चक्रों को पार करता है उन चक्रों के प्रति सजग होते जाइये। आपकी चेतना को पिंगला पथ में ऊपर-नीचे सम-गति से संचरण करना चाहिए। सर्पिल गति और चक्रों के प्रति सजग होइये। इस परिभ्रमण को सहज एवं प्रयास रहित होता अनुभव कीजिये।

चतुर्थ चरण– इड़ा परिभ्रमण

अब पिंगला पथ की सजगता छोड़ दीजिये और सहज श्वास के स्थिर प्रवाह के प्रति सजग हो जाइये। चेतना को मूलाधार में ले आइये और इड़ा पथ को मानसिक रूप से देखना शुरू कीजिये। इस पथ का स्पष्टता से मानस दर्शन कीजिये। इड़ा पथ को मूलाधार से बायीं ओर घुमाव लेकर स्वाधिष्ठान को पार करते देखिये। पुन: वहाँ से दायीं ओर घुमाव लेकर मणिपुर को पार करते, फिर बायीं ओर घुमाव लेकर अनाहत को पार करते तथा पुन: दायीं ओर मोड़ लेते हुए विशुद्धि को पार कर बायाँ मोड़ लेकर आज्ञा में पहुँचकर रुकते देखिये।

आज्ञा में पहुँचने के पश्चात् अपनी सजगता को इड़ा पथ से ही नीचे की ओर लाइये। देखिये– आज्ञा से बायाँ मोड़कर विशुद्धि को पार करना, फिर दायाँ मोड़ लेकर अनाहत को पार करना, वहाँ से बायाँ मोड़ लेकर मणिपुर को पार करना और फिर दायाँ मोड़ लेकर स्वाधिष्ठान को पार कर बायाँ मोड़ लेना और मूलाधार में वापस।

सम्पूर्ण इड़ा पथ का मानस दर्शन कीजिये। सर्पिल गति से मूलाधार से आज्ञा की ओर बढ़ते और सभी चक्रों को पार करते हुए इड़ा के प्रति सजग होइये। मूलाधार से आरम्भ हो कर और बायीं ओर मोड़ लेते हुए यह स्वाधिष्ठान को पार करती है। दाहिने मुड़कर मणिपुर को पार करती है। बायें मुड़कर अनाहत को और वहाँ पर दायें मुड़कर विशुद्धि को पार करती है। फिर बायें मुड़कर आज्ञा में समाप्त होती है। आज्ञा से अवरोहण करते हुए इड़ा बायें मुड़कर विशुद्धि को पार करती है, दायें मुड़कर यह अनाहत

को, तत्पश्चात् बायें मुड़कर मणिपुर को, फिर दायें मुड़कर स्वाधिष्ठान को एवं अन्त में बायें मुड़कर मूलाधार में वापस आती है।

अभ्यास को चलाते जाइये और उसी के साथ इड़ा पथ की चेतना को और तीव्र कीजिये। अपनी चेतना को इड़ा-पथ में ऊपर-नीचे संचरण कराइये तथा प्रत्येक चक्र के प्रति सजग होते जाइये, जैसे ही इड़ा उसको पार करती है। प्रत्येक आवृत्ति के बाद अनुभव कीजिये कि अभ्यास अधिकाधिक सहज, स्व-स्फूर्त्त एवं अनायास ही होता जा रहा है।

पंचम चरण– पिंगला-इड़ा परिभ्रमण

अब इड़ा नाड़ी की सजगता का त्याग कीजिये। अपनी चेतना को वापस मूलाधार में लाइये। पिंगला पथ में आरोहण प्रारम्भ कीजिये– मूलाधार– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें, मणिपुर– दायें, अनाहत– बायें, विशुद्धि– दायें, और आज्ञा चक्र में समाप्त। तत्पश्चात् इड़ा पथ में अवरोहण शुरू कीजिये: आज्ञा– बायें, विशुद्धि– दायें, अनाहत– बायें, मणिपुर– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें और मूलाधार में वापस। यह एक पूरी आवृत्ति हुई।

पिंगला पथ में आरोहण एवं इड़ा पथ में अवरोहण, इस परिभ्रमण को चलाते जाइये। चक्रों को पार करते समय मानसिक रूप से चक्रों के नाम स्मरण करते जाइये। प्रत्येक आवृत्ति के पश्चात् अनुभव कीजिये कि आपकी चेतना अधिक स्थिर एवं तीव्र होती जा रही है। दोनों पथों का बिना किसी भ्रान्ति के सुस्पष्ट एवं जीवन्त रूप में मानस दर्शन कीजिये।

षष्ठ चरण– पिंगला इड़ा श्वास-परिभ्रमण

अब परिभ्रमण की सजगता को त्याग कर अपनी चेतना को कण्ठ में चल रही श्वास पर लाइये। गहरे, मन्द और स्थिर श्वसन का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि श्वसन उज्जायी में बदलता जा रहा है। खेचरी मुद्रा भी लग जाने दीजिये। कुछ क्षणों तक उज्जायी श्वसन के प्रति सजग बने रहिए। शेष अभ्यास में खेचरी मुद्रा एवं उज्जायी श्वसन को चालू रखिये।

अपनी चेतना को मूलाधार में लाइये। यहाँ से ही इड़ा-पिंगला पथ का मानस दर्शन कीजिये। मूलाधार से आज्ञा तक उनकी सर्पिल गति को देखिये। पिंगला पथ के प्रति सजग होइये और अनुभव कीजिये कि उज्जायी श्वास अतीन्द्रिय पथ के भीतर-भीतर चल रही है। पूरक के समय अनुभव कीजिये कि श्वास पिंगला पथ में आरोहण करती है। पिंगला पथ में श्वास के आरोहण एवं प्रत्येक चक्र को पार करते समय उनका

नाम मानसिक रूप से लेते जाइये– मूलाधार– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें, मणिपुर– दायें, अनाहत– बायें, विशुद्धि– दायें और आज्ञा में समाप्त। आज्ञा में पहुँचते ही पूरक समाप्त। रेचक के समय अनुभव कीजिये कि श्वास इड़ा पथ में अवरोहण कर रही है। प्रत्येक चक्र को पार करते समय उसका नाम मानसिक रूप से दुहराइये: आज्ञा– बायें, विशुद्धि– दायें, अनाहत– बायें, मणिपुर– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें, और मूलाधार में वापस। मूलाधार में पहुँचकर रेचक समाप्त। यह एक पूर्ण आवृत्ति हुई।

इस अभ्यास को चलाते जाइये– इड़ा-पिंगला पथ में उज्जायी श्वास का परिभ्रमण कराते जाइये। अनुभव कीजिये कि स्थूल रूप से उज्जायी श्वास अतीन्द्रिय पथ के भीतर संचरण कर रही है। प्रत्येक अर्द्धवृत्त और चक्र से होकर संचरण कर रही श्वास की चेतना को तीव्र करते जाइये। किसी भी ध्वनि या विचार पर अपनी चेतना को भटकने नहीं दीजिये। आपकी चेतना केवल उज्जायी श्वास के साथ संचरण कर रही है।

प्रत्येक आवृत्ति को प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये और अपनी चेतना को मूलाधार पर एकाग्र कीजिये। फिर मन्द उज्जायी श्वसन में पूरक प्रारम्भ कीजिये। पिंगला पथ में आरोहण करते हुए प्रत्येक चक्र को पार करते समय चक्रों के नाम मानसिक रूप से स्मरण कीजिये: मूलाधार– बायें, स्वाधिष्ठान– दायें, मणिपुर– बायें, अनाहत– दायें, विशुद्धि– बायें, आज्ञा में समाप्त। कुछ क्षण अन्तर्कुम्भक करें। आज्ञा पर चेतना को टिकाये रखिये। फिर उज्जायी रेचक में इड़ा पथ में अवरोहण: आज्ञा– बायें, विशुद्धि– दायें, अनाहत– बायें, मणिपुर– दायें, स्वाधिष्ठान– बायें, मूलाधार में वापस।

जब अगली आवृत्ति शुरू करें तो पुन: कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक करते हुए सजगता मूलाधार में रखिये। तत्पश्चात् पिंगला में पूरक के साथ आरोहण कीजिये एवं चक्रों के नाम मन ही मन दुहराते जाइये। इड़ा-पिंगला पथ की विक्षेप रहित पूर्ण सजगता के साथ इस अभ्यास को चलाते जाइये। जब सजगता एकदम स्थिर एवं एकाग्र हो जाती है तब अभ्यास निष्प्रयास चलता रहता है।

सप्तम् चरण– पिंगला-इड़ा प्राण परिभ्रमण

जब अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही चेतना एवं श्वास की सजगता बनी रहे, प्राण के प्रति क्रमश: सजग होइये। प्राण या ओजस्वी ऊर्जा अतीन्द्रिय

पथ में संचरण कर रही है। प्राण श्वास और चेतना के साथ संचरण करता है। प्राण, श्वास और चेतना साथ-साथ सर्पिल अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही हैं, इन तीनों शक्तियों के प्रति सजग होइये।

इस चरण का अभ्यास भी पूर्व चरण के अभ्यास के समान ही है, केवल अतीन्द्रिय पथ में संचरण करते समय चक्रों के नाम नहीं लेना है। सजगता को मूलाधार में लाइये और कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। मूलाधार चक्र के प्रति सजग होइये। अब मन्द उज्जायी श्वसन में पिंगला पथ में आरोहण प्रारम्भ कीजिये। चक्रों को पार करते समय उनके प्रति सजग होते जाइये। अनुभव कीजिये कि प्राण, श्वास और चेतना पिंगला पथ में प्रत्येक चक्र को स्पर्श करती हुईं सर्पिल गति से ऊपर जा रही हैं। आज्ञा में पहुँचकर पूरक समाप्त कीजिये।

रेचक प्रारम्भ करने के पूर्व आज्ञा के प्रति सजग रहते हुए कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। तत्पश्चात् मन्द उज्जायी रेचक कीजिये। अनुभव कीजिये कि इड़ा पथ में प्राण, श्वास और चेतना अवरोहण कर रही हैं। स्पष्ट, जीवन्त रूप से देखिये कि प्राण, श्वास और चेतना अतीन्द्रिय सर्पिल इड़ा पथ से अवरोहण कर रही हैं।

प्राण को उज्जवल प्रकाश, उज्जवल प्रकाश की धारा के समान देखिये। देखिये कि प्रकाश पिंगला पथ में ऊपर की ओर और इड़ा पथ में नीचे की ओर अबाध गति से संचरण कर रहा है। अपनी समग्र चेतना को प्राण के इस संचरण पर केन्द्रित कीजिये। अनुभव कीजिये कि प्राण का उज्जवल प्रकाश बिना किसी अवरोध के पिंगला और इड़ा नाड़ियों में प्रवाहित हो रहा है। प्राण ने अतीन्द्रिय पथ के समस्त अवरोधों को साफ कर दिया है। प्राण के उन्मुक्त प्रवाह की चेतना को तीव्र कीजिये। प्रत्येक आवृत्ति के बाद पिंगला-इड़ा पथ में प्राण की वृद्धि होती जा रही है ऐसा अनुभव कीजिये।

अष्टम् चरण– सोऽहम् का पिंगला-इड़ा परिभ्रमण

अब प्राण की सजगता छोड़िये। श्वास के प्रति, उज्जायी श्वसन के प्रति सजग होइये। उज्जायी श्वास के मन्द, लयबद्ध प्रवाह के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को श्वास के अधिकाधिक निकट ले आइये और उसकी सूक्ष्म ध्वनि को सुनिये। 'सोऽहम्' मंत्र को सुनने की कोशिश कीजिये जो श्वास में ही अन्तर्निहित है। मंत्र को जपने की आवश्यकता

नहीं है। मंत्र तो उसमें पहले से ही चल रहा है। आप केवल उसके प्रति सजग हो जाइये।

श्वास छोड़िये और सजगता को मूलाधार में लाइये। कुछ क्षणों के लिए बहिर्कुम्भक करते हुए मूलाधार पर एकाग्र होइये। उज्जायी श्वास लेते हुए पिंगला पथ में आरोहण कीजिये। श्वास लेने के समय 'सो-ओ-ओ-ओ' मंत्र को ध्यान से सुनिये। जैसे-जैसे श्वास प्रत्येक चक्र को पार करती है, उस चक्र के प्रति सजग होते जाइये। आज्ञा में पहुँच कर श्वास खींचना समाप्त कीजिये। थोड़ी देर के लिए अन्तर्कुम्भक कीजिये और आज्ञा पर एकाग्रता लाइये। तत्पश्चात् उज्जायी में प्रश्वास के साथ इड़ा पथ में धीरे-धीरे अवरोहण कीजिये।

श्वास जैसे-जैसे प्रत्येक चक्र को पार करे आप उनके प्रति सजग होते जाइये। जब आप मूलाधार में पहुँचते हैं तो प्रश्वास समाप्त होती है। यह हुई एक आवृत्ति।

अभ्यास करते जाइये। मूलाधार पर एकाग्रता रखते हुए थोड़ी देर तक बहिर्कुम्भक कीजिये। तत्पश्चात् पुन: उज्जायी पूरक के समय पिंगला पथ में आरोहण कीजिये। श्वास लेने में 'सो-ओ-ओ-ओ' मंत्र के प्रति सजग बनें। इड़ा पथ में अवरोहण करते समय 'हम्-म्-म्-म्' मंत्र के प्रति सजग रहें। पिंगला और इड़ा नाड़ियों में आरोहण और अवरोहण करते समय 'सोऽहम्' मंत्र की सजगता को तीव्र कीजिये। अनुभव कीजिये की मंत्र प्रत्येक चक्र स्थल को स्पर्श कर रहा है। अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही श्वास को अनुभव कीजिये। श्वास में 'सोऽहम्' मंत्र के प्रति सजग बनिये।

नवम् चरण– 'हं सो' का पिंगला-इड़ा परिभ्रमण

इस अगले चरण में श्वास और मंत्र चेतना प्रारम्भ करने का बिन्दु बदल जाता है। मूलाधार से प्रारम्भ करने के स्थान पर धारणा का बिन्दु हो जाता है आज्ञा। इस प्रकार 'सोऽहम्' मंत्र 'हम् सो' बन जाता है। शेष अभ्यास एक ही समान है।

श्वास लीजिये और सजगता आज्ञा चक्र में लाइये। आज्ञा पर ही धारणा करते हुए कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। तत्पश्चात् मन्द उज्जायी में रेचक कीजिये और 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ इड़ा पथ में अवरोहण कीजिये। अनुभव कीजिये कि चक्रों को पार करते समय प्रत्येक चक्र स्थल को मंत्र स्पर्श करता जा रहा है। मूलाधार में पहुँचकर प्रश्वास समाप्त

होती है। मूलाधार चक्र पर एकाग्रता करते हुए कुछ देर तक बहिर्कुम्भक कीजिये। उज्जायी में पूरक कीजिये और मंत्र 'सो-ओ-ओ-ओ' के साथ पिंगला पथ में आरोहण कीजिये। अनुभव कीजिये कि प्रत्येक चक्र स्थल को पार करते समय मंत्र उन चक्र स्थलों को स्पर्श करता जाता है। यह एक पूरी आवृत्ति हुई।

कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक के साथ पुन: दूसरी आवृत्ति प्रारम्भ कीजिये। आज्ञा पर एकाग्रता कीजिये। फिर श्वास छोड़िये और 'हम् म्-म्' मंत्र के साथ इड़ा पथ में अवरोहण कीजिये। अभ्यास ऐसे ही चलाते जाइये। पिंगला-इड़ा पथ में संचरण कर रहे 'हम् सो' मंत्र के प्रति सजग बनिये। अपनी सजगता को श्वास के निकट से निकटतर लाते जाइये। आप की सजगता केवल अतीन्द्रिय पथ में संचरण कर रही श्वास और मंत्र पर रहे। अनुभव कीजिये कि प्रत्येक आवृत्ति में मंत्र का स्पन्दन अधिक प्रबल एवं तीव्रतर होता जा रहा है।

दशम् चरण – अभ्यास का समापन

कुछ और देर तक अभ्यास को चलाते जाइये। तत्पश्चात् अभ्यास समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। अतीन्द्रिय पथ में बनी मंत्र चेतना को छोड़ दीजिये। खेचरी मुद्रा छोड़ कर उज्जायी भी छोड़ दीजिये। सहज स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग होइये। मंद, स्थिर, एवं लयबद्ध श्वास के प्रति सजग होइये। अपने परिवेश के प्रति सजग होइये। बाह्य वातावरण में हो रही ध्वनियों को सुनिये। धीरे-धीरे मन को पूर्णतया बहिर्मुखी बनाइये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये। अब धीरे-धीरे शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अजपा धारणा दस

ग्रन्थि-उन्मोचन

ग्रन्थि हमारे व्यक्तित्व की सूक्ष्म गाँठें या अवरोध हैं, जहाँ ऊर्जा और चेतना परस्परिक क्रिया करती हैं और एक विशेष रूप में अभिव्यक्त होती हैं। योग शास्त्रों के अनुसार ग्रन्थियाँ तीन हैं– 1. ब्रह्म ग्रन्थि, 2. विष्णु ग्रन्थि एवं 3. रूद्र ग्रन्थि।

ब्रह्म ग्रन्थि प्रथम अतीन्द्रिय ग्रन्थि है। यह सबसे निम्नस्थ ग्रन्थि मानी जाती है, जिसका सम्बन्ध मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के क्षेत्रों से है। इसे मूल ग्रन्थि भी कहते हैं।

विष्णु ग्रन्थि दूसरी ग्रन्थि है, जिसका सम्बन्ध मणिपुर, अनाहत और विशुद्धि चक्रों के क्षेत्रों से है। इसे नाभि ग्रन्थि भी कहते हैं।

रूद्र ग्रन्थि तीसरी ग्रन्थि है, जिसका सम्बन्ध आज्ञा और सहस्त्रार चक्रों के क्षेत्रों से है। इसे ललाट ग्रन्थि भी कहते हैं।

ये ग्रन्थियाँ सुषुम्ना नाड़ी में प्राण के उन्मुक्त प्रवाह को बाधित करती हैं और इस प्रकार चक्रों के जागरण में बाधा डालती हैं एवं कुण्डलिनी के उत्थान को रोकती हैं।

उच्च विधियों के उन्नत साधकों ने ऐसा पाया है कि प्राण और सुषुम्ना के जाग्रत होने पर मेरुदण्ड में इन तीन बिन्दुओं या स्थलों पर संकुचन का अनुभव हो सकता है। शरीर की विभिन्न भंगिमाओं जैसे– पीछे झुकने या संतुलन खोने से नाड़ियों पर जो खिंचाव आता है, वह इसलिए हो सकता है कि प्राण जागरण के समय ब्रह्म, विष्णु, और रूद्र ग्रन्थियों में अवरोध का अनुभव हो रहा होता है।

ब्रह्मा की ग्रन्थि

ब्रह्म ग्रन्थि ब्रह्मा की ग्रन्थि है, जो जीवन एवं सृष्टि की प्रकट शक्ति है। जिस जगत् में हम रहते हैं उसके अनुसार या तंत्र अथवा योनियों या विभिन्न प्राणियों के

अजपा धारणा दस

ग्रन्थि-उन्मोचन

रुद्र

(इतराख्य लिंगम्)



(आज्ञा)

विष्णु

(बाण लिंगम्)



(अनाहत)

ब्रह्म

(धूम्र लिंगम्)



(मूलाधार)

अनुसार ब्रह्म ग्रन्थि मूलाधार और स्वाधिष्ठान की ऊर्जाओं को नियंत्रित करती है। यह प्रजनन की प्रवृत्ति एवं बद्धमूल सहज ज्ञान, चेतना एवं कामना से जुड़ी है।

इसे ब्रह्म ग्रन्थि इसलिए कहते हैं कि यह चेतना को एक ऐसे स्तर पर रोके रखती है जो शारीरिक आयामों, जैसे कामनाओं, कामुकता, प्रजनन एवं जीवित रहने की सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित है, और जिसे यह पार नहीं कर पाती है।

एक बार जब चेतना और ऊर्जा के आयामों, बद्धमूल कर्मों, संस्कारों या कामनाओं के क्षेत्र से यह अवरोध समाप्त हो जाता है, तब चेतना एवं ऊर्जा के अन्य प्रतिरूप उन्मुक्त होते हैं। इसके बाद कुण्डलिनी या आधार शक्ति उन आकर्षणों में बिना उलझे, जिनमें हमारी चेतना फँसी हुई है, मूलाधार और स्वाधिष्ठान के परे उदित होती है।

विष्णु की ग्रन्थि

विष्णु ग्रन्थि वह क्षेत्र है जहाँ शरीर एवं व्यक्तित्व का सम्पोषण होता है। मणिपुर व्यावहारिक रूप से स्थूल शरीर का सम्पोषण करता है। जो आहार हम लेते हैं, वह ऊर्जा में बदल जाता है और सम्पूर्ण शरीर में वितरित होता है। पदार्थ को ऊर्जा में बदलने की प्रक्रिया मणिपुर का कार्य है। इस ऊर्जा का रूप ऐसा होता है जिस रूप में यह शरीर के सम्पोषण एवं विकास के लिए उपयोग में लायी जा सके।

इसी प्रकार अनाहत भी भावनाओं के रूप में मानसिक संरचनाओं का सम्पोषण करता है। ये भावनायें सूक्ष्म ऊर्जा की मूल, अपरिष्कृत, तीव्र अभिव्यक्तियाँ हैं, जो क्रोध, करुणा, आनन्द आदि के रूप में प्रकट होती हैं। यह ऊर्जा वह शक्ति है, जो मनोमय कोश (मानसिक काया) और प्राणमय कोश (प्राणिक काया) को सम्पोषित करती है। विशुद्धि, जो सर्वव्यापी आकाशीय ऊर्जा है, विज्ञानमय कोश (आत्मिक काया) और आनन्दमय कोश (आध्यात्मिक काया) का सम्पोषण करती है।

इस प्रकार हमारे मानवीय आयामों के सभी पक्षों का नियंत्रण इन तीन चक्रों के द्वारा होता है, जो सूक्ष्म शरीरों को ओजस्विता, आहार, परिपोषण और संतुलन प्रदान करते हैं। यह कार्य विष्णु ग्रन्थि का है। एक बार जब विष्णु ग्रन्थि का अवरोध समाप्त हो जाता है, तब हम अपने सम्पोषण के लिए ऊर्जा ब्रह्माण्ड से लेते हैं, किसी सीमित केन्द्र से नहीं। शरीर की ऊर्जाओं और ब्रह्माण्डीय ऊर्जाओं में ताल-मेल हो जाता है। व्यक्तित्व विशेष और ब्रह्माण्ड में पारस्परिक क्रिया स्वाभाविक एवं सहज रूप से होने लगती है।

रुद्र ग्रन्थि

रुद्र ग्रन्थि आज्ञा और सहस्रार चक्रों को नियंत्रित करती है और विद्यमान रूप, भाव या धारणा के ब्रह्माण्डीय धारणा में रूपान्तरण को प्रस्तुत करती है। यहाँ पर आकर पुरानी अहंकार चेतना, अहम् चेतना, मानसिक चेतना, शारीरिक चेतना से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, और छठी इन्द्रिय या अन्त: प्रज्ञा या अन्तश्चक्षु का विकास होता है।

यह छठी इन्द्रिय और इसके परे वह अवस्था है, जहाँ व्यक्ति को चेतना की सर्वज्ञ प्रकृति का अनुभव होता है, जहाँ भूत, वर्त्तमान और भविष्य जाने हुए हो जाते हैं। इस सर्वज्ञ चेतना के साथ हम सहस्रार की ओर बढ़ते हैं, जहाँ जीवात्मा या आत्मा का ब्रह्माण्डीय आत्मा, परमात्मा में विलय हो जाता है।

ग्रन्थि-उन्मोचन

इस साधना में ये तीन आध्यात्मिक ग्रन्थियाँ, जो प्राण और कुण्डलिनी की जागृति को बाधित तथा हमारी चेतना की सीमाओं को परिसीमित किये रहती हैं, सुव्यवस्थित रूप से खुलने लगती हैं। ये तीन अवरोध पहले इन्द्रियों, फिर भावनाओं और अन्त में अभिव्यक्तियों से आसक्ति का रूप लेते हैं। इसीलिए इस साधना के प्रारम्भिक चरणों में ही इन तीन अवरोधों की वैचारिक समझ विकसित कर ग्रन्थि उन्मोचन किया जाता है।

तीन लिङ्गों के रूप में इन आध्यात्मिक ग्रन्थियों के प्रतीकात्मक निरूपण की ओर यह साधना निम्नांकित चरणों में आगे बढ़ती है– 1. धूम्र लिङ्गम्– मूलाधार चक्र पर अवस्थित यह लिङ्ग ब्रह्म ग्रन्थि का प्रतिनिधित्व करता है, 2. बाण लिङ्गम्– अनाहत चक्र पर अवस्थित यह लिङ्ग विष्णु ग्रन्थि का प्रतिनिधित्व करता है, 3. ज्ञातव्य लिङ्गम्– आज्ञा चक्र पर अवस्थित यह लिङ्ग रूद्र ग्रन्थि का प्रतिनिधित्व करता है।

इन प्रतीकों के चहुं ओर श्वास, प्राण और मंत्र द्वारा कतिपय परिभ्रमण करने से तीनों आध्यात्मिक ग्रन्थियाँ, जिनका आद्य रूप हमारी चेतना के गहरे स्तरों में रहता है, क्रमबद्ध तरीके से उन्मूलित और दूर हो जाती हैं। इससे साधक की उच्चतर साधना में प्रगति होती है तथा साधना में निहित बाधाओं और कठिनाइयों के बिना ही आध्यात्मिक जागृति की अनुभूति होती है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। मेरुदण्ड सीधा रहे और सिर थोड़ा पीछे की ओर हो। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रखिये। आँखें हल्के से बन्द कर लीजिये। पूरे शरीर को आपादमस्तक विश्रान्त कर लीजिये। अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग बनिये और ध्यान के आसन में ही बैठे-बैठे विश्रान्त कर लीजिये। आप विश्रान्त, आरामदेह, स्थिर आसन में बैठे हैं। अपनी मानसिक एवं शारीरिक अवस्था को देखिये। अनुभव कीजिये कि आपका शरीर और मन स्थिर एवं निश्चल होता जा रहा है। स्थिरता एवं निश्चलता के प्रति एकाग्र होइये।

द्वितीय चरण– ब्रह्म ग्रन्थि की सजगता

मूलाधार पर अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये। यह केन्द्र पाशविक विकास का उच्चतम स्तर है और मानवीय विकास का निम्नतम स्तर है। अभी भी मूलाधार में चेतना सुरक्षा की धारणा की मूल प्रवृत्ति से दृढ़तापूर्वक बँधी है। धन, घर-सम्पत्ति, अधिकार जैसी वस्तुओं के प्रति प्रबल आसक्ति रहती है, क्योंकि ऐसा विश्वास है कि ये वस्तुएँ सुरक्षा प्रदान करती हैं।

भौतिक जगत् से आसक्ति ही ब्रह्म ग्रन्थि है, जो हमको इन्द्रिय-जगत् से बाँधती है। जब तक इस आसक्ति की गाँठ खुलती नहीं है हम इन्द्रिय बोध के परे नहीं जा सकते। इस ग्रन्थि को खोलने के लिए आप यह विचार करना प्रारम्भ कर दें कि आप वास्तव में कौन हैं, वास्तव में आपकी सही प्रकृति क्या है।

अनुभव कीजिए, "मैं यह पार्थिव शरीर नहीं हूँ।" अपने निश्चल शरीर के प्रति सजग होइये और पूर्ण रूप से समझिये कि "मैं इस शरीर में अस्थायी रूप से निवास करने वाला हूँ।" यह शरीर मेरी सही प्रकृति नहीं है। इस अनुभूति पर चिन्तन करते हुए बाह्य संसार और उसकी भौतिक वस्तुओं के प्रति अपनी आसक्ति पर पुन: विचार कीजिये।

तृतीय चरण– विष्णु ग्रन्थि की सजगता

अपनी सजगता को अनाहत पर केन्द्रित कीजिये। हृदय केन्द्र से उत्पन्न हो रहे स्पन्दन का अनुभव कीजिये। यहाँ चेतना का केन्द्र बदल गया है। अब पार्थिव वस्तुयें न कोई सुरक्षा प्रदान करती हैं और न ही उनमें कोई विशेष रुचि रहती है। पर अभी भी भावनात्मक आसक्ति है, जो विष्णु

ग्रन्थि है। यहाँ पर आसक्ति होगी परिवार से, मित्रों से, शिक्षक या गुरु से। इन सम्बन्धों पर आपकी सुरक्षा निर्भर है, जो सभी प्रकार की पार्थिव सुरक्षाओं के ऊपर है।

आध्यात्मिक खोज के प्रकाश में जीने के बदले भावनात्मक आसक्तियों के बन्धनों तथा अपनी भावनाओं और मनोभावों के अनुसार जीवन यापन की प्रवृत्ति के प्रति सजग होइये। अपनी भावनाओं और मनोभावों को अनुभव कीजिये। समझिये कि 'मैं' ये मनोभाव नहीं हूँ। सृष्टि के मूल से अपने तादात्म्य के प्रति सजग होइये। समझिये कि समस्त प्राणी सृष्टि के उसी मूल की अभिव्यक्तियाँ हैं। समस्त व्यक्त जगत् में अन्तर्निहित उस ऐक्य के अनुभव में गहराई तक उतरिये। ब्रह्माण्डीय सृष्टि के अंश, प्राणी मात्र से एकात्मकता का अनुभव कीजिये। आप एक पृथक् व्यक्ति नहीं हैं, वरन् आप अखण्ड पूर्ण के ही एक अनिवार्य अंग हैं। अद्वितीय, ब्रह्माण्डीय ऐक्य की अनुभूति विकसित कीजिये।

चतुर्थ चरण– रुद्र ग्रन्थि की सजगता

आज्ञा चक्र में, जहाँ रुद्र ग्रन्थि अवस्थित है, अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये। जीवन की व्यक्त अनुभूतियों से अन्तिम विच्छेद यहीं होता है। इस ग्रन्थि को खोलने के पश्चात् व्यक्ति अनुभवातीत अनुभूति में स्थापित हो जाता है। रुद्र शब्द की व्युत्पत्ति 'रुद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है अश्रु विमोचन, रोना, विलाप करना आदि। जब इस व्यक्त जगत् से हमारा सम्बन्ध विच्छेद होता है तो हम रोते हैं। अव्यक्त सत्य में, अनुभवातीत चेतना में स्थापित हो जाना ही रुद्र ग्रन्थि का विमोचन है।

अपनी उच्चतर आत्मा, अपनी वास्तविक प्रकृति के प्रति सजग होइये। पूर्ण-रूपेण समझिये कि "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ। मैं आत्मा हूँ, शुद्ध चेतना हूँ। शेष जो भी है वह नश्वर है, माया है।"

पंचम चरण– ब्रह्मा/विष्णु ग्रन्थि परिभ्रमण

क) अपनी जिह्वा को उलट कर खेचरी मुद्रा लगाइये। रेचक कीजिये और अपनी चेतना को मूलाधार में ले जाइये। कुछ क्षण तक बहिर्कुम्भक कीजिये और ब्रह्म ग्रन्थि पर चित्त को एकाग्र कीजिये, जो यहाँ धूम्र लिङ्ग के रूप में धूमवत है। उज्जायी में पूरक कीजिये। उस धूमवत धूम्र लिङ्ग के चारों ओर तीन बार अपनी चेतना और श्वास को दक्षिणावर्त्त दिशा में घुमाइये।

धूमवत धूम्र लिङ्ग के चारों ओर अपनी चेतना और श्वास को घुमाते समय एक तीसरी शक्ति, प्राण के विषय में भी सजग होइये, जो श्वास के ही साथ-साथ घूम रही है। अनुभव कीजिये कि श्वास और प्राण की शक्ति ब्रह्म ग्रन्थि को मुक्त कर रही है तथा खोल रही है।

धीरे-धीरे उज्जायी में रेचक कीजिये। अपनी चेतना और श्वास को उस धूमवत धूम्र लिङ्ग के चारों ओर तीन बार वामावर्त्त दिशा में घुमाइये। जैसे-जैसे आप अपनी श्वास और चेतना को उस धूम्र लिङ्ग की चारों ओर घुमाते हैं, श्वास के साथ प्रकाश के रूप में प्राण की गति के प्रति भी चैतन्य होते जाइये। अनुभव कीजिये कि ये तीनों शक्तियाँ शक्तिशाली किरण पुंज की तरह साथ-साथ परिभ्रमण कर रही हैं और ब्रह्म ग्रन्थि को ढीला और विघटित कर रही हैं। इसकी पाँच आवृत्तियाँ कीजिये।

ख) उज्जायी श्वास लीजिये और मूलाधार से अनाहत तक सुषुम्ना पथ में आरोहण कीजिये। प्रश्वास कीजिये और कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। विष्णु ग्रन्थि पर ध्यान कीजिए, जो विष्णु की प्रतीक है और जिसका प्रतिनिधित्व रक्त बाण लिङ्ग द्वारा किया जाता है। उज्जायी में पूरक कीजिये तथा अपनी चेतना को उस रक्त बाण लिङ्ग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में घुमाइये। श्वास के साथ-साथ प्राण की गति के प्रति भी सजग होइये।

धीरे-धीरे उज्जायी में प्रश्वास कीजिये। अपनी चेतना को वामावर्त्त दिशा में उस लाल बाण लिङ्ग के चारों ओर घुमाइये। उसी समय प्रकाश के प्रवाह के रूप में प्राण को भी श्वास के साथ घूमते देखिये। अनुभव कीजिये की प्राण और श्वास का प्रवाह विष्णु ग्रन्थि को ढीला कर रहा है, खोल रहा है। इसकी पाँच आवृत्ति कीजिये।

श्वास लीजिये और थोड़ी देर तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। रक्त बाण लिङ्ग पर चित्त को एकाग्र कीजिये। तत्पश्चात् प्रश्वास करते हुए सुषुम्ना पथ द्वारा अवरोहण कीजिये। यह एक आवृत्ति हुई। जब आप मूलाधार में पहुँचें, अगली आवृत्ति तत्काल प्रारम्भ कर दीजिये। थोड़ी देर बहिर्कुम्भक कीजिये। घूमवत धूम्र लिङ्ग के रूप में प्रस्तुत ब्रह्म ग्रन्थि पर चित्त को एकाग्र कीजिये। जब तक आपको ब्रह्म ग्रन्थि और विष्णु ग्रन्थि, इन दोनों आध्यात्मिक ग्रन्थियों का खुलना अनुभव न हो तब तक इस अभ्यास को दुहराते जाइये।

षष्ठ चरण– विष्णु/रुद्र ग्रन्थि परिभ्रमण

क) प्रश्वास कर अपनी चेतना अनाहत में लाइये। कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। रक्त बाण लिङ्ग के रूप में विष्णु ग्रन्थि पर ध्यान एकाग्र कीजिये। उज्जायी श्वास लीजिये और लाल बाण लिङ्ग के चारों ओर दक्षिणावर्त्त दिशा में तीन बार अपनी चेतना को परिभ्रमण कराइये। श्वास के साथ ही परिभ्रमण करते प्राण का भी अनुभव कीजिये।

तत्पश्चात् प्रश्वास कीजिये और रक्त बाण लिङ्ग के चारों ओर वामावर्त दिशा में तीन बार अपनी चेतना को परिभ्रमण कराइये। मानसिक रूप से देखिये कि श्वास के साथ-साथ प्राण शक्ति विष्णु ग्रन्थि के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है और ग्रन्थि खुल रही है। इसकी पाँच आवृत्ति कीजिये।

ख) उज्जायी में पूरक कीजिये तथा अपनी चेतना को अनाहत से आज्ञा तक सुषुम्ना पथ में आरोहण कराइये। रेचक कीजिये और कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। रुद्र ग्रन्थि पर एकाग्रता लाइये, जिसका प्रतीक कृष्णवर्ण इताख्य लिङ्ग है।

उज्जायी में श्वास लीजिये और अपनी चेतना को कृष्णवर्ण इताख्य लिंग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में घुमाइये, परिभ्रमण कराइये। श्वास के साथ घूम रहे प्राण को घूमते एवं ग्रन्थि को खुलते हुए अनुभव कीजिये।

तत्पश्चात् उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और अपनी चेतना को कृष्णवर्ण इताख्य लिङ्ग के चारों ओर तीन बार वामावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। श्वास के साथ परिभ्रमण कर रहे प्राण के प्रवाह को तथा रूद्र ग्रन्थि को खुलते हुए अनुभव कीजिये। इसकी पाँच आवृत्तियाँ कीजिये।

उज्जायी में श्वास लीजिये तथा कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। कृष्ण वर्ण इताख्य लिङ्ग और ग्रन्थि उन्मोचन पर अपने चित्त को एकाग्र कीजिये, उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और आज्ञा से अनाहत तक सुषुम्ना पथ में अवरोहण कीजिये। यह हुई एक आवृत्ति।

जब आप अनाहत में पहुँच जायें, तुरंत अगली आवृत्ति प्रारम्भ कर दीजिये। थोड़ी देर तक बहिर्कुम्भक कीजिये। यहाँ पर लाल बाण लिङ्ग के रूप में विष्णुग्रन्थि पर एकाग्रता लाइये। जब तक आप तीनों आध्यात्मिक ग्रन्थियों को खुलता अनुभव न करें तब तक विष्णु/रुद्र ग्रन्थि परिभ्रमण करते जाइये।

सप्तम चरण– सोऽहम् के साथ ग्रन्थि परिभ्रमण

क) श्वास के साथ परिभ्रमण कर रहे प्राण की चेतना को त्याग दीजिये और 'सोऽहम्' मंत्र के प्रति सजग हो जाइये। प्रश्वास कर अपनी चेतना मूलाधार में लाइये। कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। धूमवत धूम्र लिङ्ग के रूप में ब्रह्म ग्रन्थि पर ध्यान कीजिये।

उज्जायी में श्वास लीजिये और अपनी चेतना और श्वास को 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ, जो श्वास में सुनाई पड़ता है, धूम्र लिङ्ग के चारों ओर दक्षिणावर्त्त दिशा में तीन बार परिभ्रमण कराइये। एक ही श्वास और एक ही मंत्र में लिङ्ग के चारों ओर तीन परिभ्रमण होने चाहिए।

उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और धूम्रवर्णी धूम्र लिङ्ग के चारों ओर अपनी चेतना और श्वास को 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ तीन बार वामावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र का स्पन्दन और श्वास ब्रह्म ग्रन्थि को परिशुद्ध कर रहे हैं, ढीला कर रहे हैं। इस की पाँच से दस आवृत्तियाँ कीजिये।

ख) सुषुम्ना पथ में उज्जायी में मूलाधार से अनाहत तक पूरक कीजिये। उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। लाल बाण लिङ्ग के रूप में विष्णु ग्रन्थि पर एकाग्रता लाइये।

उज्जायी में श्वास लीजिये और 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ अपनी चेतना और श्वास को लाल बाण लिङ्ग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ अपनी चेतना और श्वास को लाल बाण लिङ्ग के चारों ओर तीन बार वामावर्त्त दिशा में घुमाइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र का स्पन्दन और श्वास इस क्षेत्र को परिशुद्ध कर रहे हैं एवं विष्णु ग्रन्थि को खोल रहे हैं। इसकी पाँच से दस आवृत्ति कीजिये।

ग) उज्जायी में श्वास लीजिये और सुषुम्ना पथ में अनाहत से आज्ञा तक आरोहण कीजिये। प्रश्वास कर बहिर्कुम्भक कीजिये। कृष्ण वर्ण इताख्य लिङ्ग के रूप में रूद्र ग्रन्थि पर ध्यान एकाग्र कीजिये।

उज्जायी में श्वास लीजिये तथा 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ अपनी चेतना और श्वास को कृष्णवर्णी इताख्य लिङ्ग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। तत्पश्चात् उज्जायी में रेचक कीजिये एवं 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ अपनी चेतना और श्वास

को कृष्णावर्णी इताख्य लिङ्ग के चारों ओर तीन बार वामावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र-स्पन्द और श्वास आध्यात्मिक ग्रन्थि को परिशुद्ध कर रहा है और खोल रहा है। इसकी पाँच से दस आवृत्तियाँ कीजिये।

उज्जायी में श्वास लीजिये। कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। कृष्णा-वर्णी इताख्य लिङ्ग तथा रुद्र ग्रन्थि की हो रही मुक्ति पर एकाग्र होइये। उज्जायी रेचक के साथ सुषुम्ना पथ में आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण कीजिये। यह एक आवृत्ति हुई। शीघ्र अगली आवृत्ति प्रारम्भ कीजिये। 'सोऽहम्' मंत्र के साथ तब तक आप ब्रह्म-विष्णु-रूद्र ग्रन्थि परिभ्रमण कराते जाइये जब तक आपको अनुभव न हो जाये कि तीनों आध्यात्मिक ग्रन्थियाँ शुद्ध एवं मुक्त नहीं हो गयी हैं।

अष्टम् चरण– 'हम् सो' के साथ ग्रन्थि परिभ्रमण

क) उज्जायी में श्वास लीजिये और अपनी चेतना को मूलाधार में ले चलिये। थोड़ी देर के लिए अन्तर्कुम्भक करते हुए ब्रह्म ग्रन्थि पर चित्त को एकाग्र कीजिये, जिसका प्रतीक धूमवर्णी धूम्र लिङ्ग है।

उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ अपनी चेतना और श्वास को उस धूमवर्णी धूम्र लिङ्ग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। उज्जायी ही में श्वास लीजिये तथा अपनी चेतना और श्वास को तीन बार उस धूमवर्णी धूम्र लिङ्ग के चारों ओर दक्षिणावर्त्त दिशा में ही 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ परिभ्रमण कराइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र स्पन्द और श्वास से ब्रह्म ग्रन्थि खुलती जा रही है। पाँच से दस आवृत्तियाँ कीजिये।

ख) उज्जायी में प्रश्वास कीजिये। कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये और धूमवर्णी धूम्र लिङ्ग पर चित्त एकाग्र कीजिये। उज्जायी में श्वास लेते हुए सुषुम्ना पथ में मूलाधार से अनाहत तक आरोहण कीजिये। यहाँ कुछ क्षणों तक अन्तर्कुम्भक कीजिये। यहाँ रक्तवर्णी बाण लिङ्ग पर धारणा कीजिये, जो विष्णु ग्रन्थि का प्रतीक है।

उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और रक्तवर्णी बाण लिङ्ग के चारों ओर 'हम्-म्-म्' मंत्र सहित अपनी चेतना और श्वास को वामावर्त्त दिशा में तीन बार परिभ्रमण कराइये। श्वास लीजिये और 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ अपनी चेतना को रक्त-वर्णी बाण लिङ्ग के चारों ओर तीन बार

दक्षिणावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र स्पन्द और श्वास विष्णु ग्रन्थि को खोल रहे हैं, उन्मोचित कर रहे हैं।

ग) उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और कुछ क्षणों तक बहिर्कुम्भक कीजिये। रक्तवर्णी बाण लिङ्ग पर और विष्णु ग्रन्थि के उन्मोचन पर धारणा कीजिये। उज्जायी में पूरक कीजिये और अपनी चेतना को सुषुम्ना पथ में अनाहत से आज्ञा तक आरोहण कराइये। अन्तर्कुम्भक कीजिये और कृष्णवर्णी इताख्य लिङ्ग के रूप में रूद्र ग्रन्थि पर धारणा कीजिये। उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और अपनी श्वास और चेतना को 'हम्-म्-म्' मंत्र के साथ कृष्णवर्णी इताख्य लिङ्ग के चारों ओर तीन बार वामावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। पुन: उज्जायी में पूरक कीजिये और अपनी चेतना और श्वास का 'सो-ओ-ओ' मंत्र के साथ कृष्णवर्णी इताख्य लिङ्ग के चारों ओर तीन बार दक्षिणावर्त्त दिशा में परिभ्रमण कराइये। अनुभव कीजिये कि मंत्र स्पन्द और श्वास रूद्र ग्रन्थि को परिशुद्ध एवं उन्मोचित कर रहे हैं। इसे पाँच से दस बार दुहराइये। उज्जायी में प्रश्वास कीजिये और सुषुम्ना पथ में आज्ञा से मूलाधार तक अवरोहण कीजिये। यह एक आवृत्ति हुई। शीघ्र ही दूसरी आवृत्ति प्रारम्भ कर दीजिये। उज्जायी में पूरक कीजिये और कुछ क्षणों तक मूलाधार में अपनी श्वास को रोके रखिये। ब्रह्म ग्रन्थि पर धूमवर्णी धूम्र लिङ्ग पर थोड़ी देर धारणा कीजिये। ब्रह्मा, विष्णु, और रूद्र ग्रन्थियों पर 'हं सो' मंत्र के साथ श्वास और चेतना का परिभ्रमण कराते जाइये जब तक आपको यह अनुभव न हो कि तीनों आध्यात्मिक ग्रन्थियाँ परिशुद्ध और उन्मोचित हो गई हैं।

नवम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब अभ्यास समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। ग्रन्थियों से अपनी चेतना को वापस लाइये। खेचरी मुद्रा छोड़िये और सहज श्वास प्रारम्भ कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। अपने आपादमस्तक स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। जिस कमरे में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। बाहरी आवाजों को सुनिये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार 'ॐ' मंत्र का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

त्राटक

मन को एकाग्र करने के लिए त्राटक एक अत्यन्त सीधी, सरल और प्रभावी विधि है। इसका अभ्यास कोई भी कर सकता है तथा इसके लाभ भी वृहत् हैं। त्राटक का शाब्दिक अर्थ है, स्थिर दृष्टि से एकटक देखना। त्राटक के अभ्यास में बिना पलकों को गिराये, या झपकाये किसी बिन्दु या वस्तु पर एकटक देखना होता है। यह किसी एक बिन्दु पर अनन्य भाव से आँखों को और बाद में मन को संकेन्द्रित करने की विधि है। वस्तु बाह्य या आन्तरिक हो सकती है। वस्तु बाह्य होने पर अभ्यास को बाह्य त्राटक कहेंगे और यदि वस्तु आन्तरिक हुई तो अन्तर्त्राटक कहेंगे। इस विधि के द्वारा सम्पूर्ण अवधान और मन: शक्ति एक अविरल प्रवाह में प्रवाहित होती हैं, जिससे अप्रकट अन्त:शक्ति का सहज रूप में जागरण होता है।

प्राय: सभी धर्मों और आध्यात्मिक दर्शनों में त्राटक की साधना का उपयोग किसी न किसी रूप में हुआ है। हिन्दू धर्म में यह धार्मिक साधना का एक आवश्यक अंग है कि किसी प्रतिमा या देव मूर्ति के समक्ष बैठ कर उस पर मन को एकाग्र किया जाये, ध्यान किया जाये। यद्यपि इसे उपासना का एक स्वरूप मानते हैं, पर वस्तुत: यह है तो त्राटक ही, क्योंकि इसका उद्देश्य है बाह्य देवमूर्ति पर ध्यान करना। इस साधना से साधक को मानसिक शान्ति उपलब्ध होती है, वह ध्यान की अवस्था को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त स्वेच्छा से अन्तर्दर्शन की क्षमता का भी विकास होता है।

ईसाई धर्म में भी यही होता है, पर थोड़ा कम स्पष्ट रूप में। प्रत्येक चर्च में ईसा मसीह की प्रतिमा, मोमबत्तियाँ और क्रास के प्रतीक होते हैं। ये ही त्राटक के लिए संकेन्द्रण बिन्दु या वस्तुएँ होती हैं। तिब्बत के बौद्ध विभिन्न देव मूर्त्तियों, यंत्रों और मण्डलों पर त्राटक करते हैं। यहाँ तक कि जैन बौद्ध खाली दिवाल पर एकटक देखने के रूप में त्राटक का उपयोग करते हैं। इस प्रकार त्राटक की साधना सार्वभौम है तथा सदियों से सामान्य अनुभूतियों के परे जाने

की विधि के रूप में उपयुक्त होती आई है। यह है तो अति सरल, पर अत्यन्त शक्तिशाली है। इसीलिए विभिन्न दर्शनों द्वारा आध्यात्मिक उत्थान के साधन के रूप में इसका उपयोग होता आया है।

दृष्टि विक्षेप का न्यूनीकरण

हठयोग की प्राचीन पुस्तकों में त्राटक को षट् कर्मों या शुद्धि प्रक्रियाओं में एक मानते हैं। यहाँ वह उच्च चेतना की ओर ले जाने वाली शरीरोन्मुख और मानोन्मुख प्रक्रियाओं के मध्य एक आधारशिला का काम करता है। इस दृष्टि से त्राटक हठयोग और राजयोग का अंश है।

इस व्यक्त जगत् में दृष्टि बोध सर्वाधिक शक्तिशाली इन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रिय है। दृष्टि का परास क्षेत्र सभी भौतिक आयामों के पार तक फैला है। व्यक्ति मीलों-मील तक देख सकता है। व्यक्ति मीलों दूर हो रही घटनाओं को बिना वहाँ उपस्थित रहे भी देख सकता है। त्राटक की साधना में दृष्टि को ही संकेन्द्रित किया जाता है। हमारी एकाग्रता एवं सजगता को भंग करने वाले दृष्टि विक्षेपों को निश्चित रूप से कम किया जाना चाहिए, और इन्हें त्राटक के द्वारा कम किया जा सकता है।

त्राटक की साधना के द्वारा व्यक्ति मन को किसी भी समय केन्द्रित करने की क्षमता का विकास कर सकता है। योग की उच्चतर साधनाओं में यह आवश्यक है। त्राटक की साधना के पीछे एक बड़ा गूढ़ अर्थ भी है। पातंजल योग सूत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि समाधि या ध्यान की उच्च अवस्था में भी कतिपय विचार, भाव या अनुभूतियाँ चेतना में रहती हैं। इन भावों, विचारों का अनुभव समाधि की अवस्था में भी हो सकता है, और इस प्रकार ये मन की एकाग्रता को भंग करते हैं। इन गूढ़ विचारों या भावों को प्रत्यय के रूप में जाना जाता है।

जब मन को एकाग्र होने के लिए प्रशिक्षित नहीं किया गया हो और हमने सतही तौर पर ध्यान का अभ्यास किया हो, तब ध्यान की गहरी स्थिति में जब प्रत्यय उपस्थित होते हैं, तो उनका आकर्षण अत्यन्त शक्तिशाली होता है, क्योंकि उन्हें संतुलित करने के लिए कुछ नहीं रहता है। इसलिए त्राटक के माध्यम से जो क्षमता प्राप्त होती है, वही ऐसी स्थिति में उपयोगी होती है। जब दृष्टि विक्षेप समाप्त हो जाता है तब हम मन के ऐसे स्वरूप का अनुभव कर पाते हैं, जो शान्त झील या जलाशय के समान निस्तब्ध रहता है। त्राटक के विभिन्न अभ्यास प्राण ऊर्जा को संकेन्द्रित या दिशा विशेष में प्रवाहित करने में सहायक होते हैं।

शारीरिक एवं मानसिक कार्य

शारीरिक दृष्टि से त्राटक नेत्र दोषों को दूर करता है, जैसे– आँखों का तनाव और सिरदर्द, निकट दृष्टि दोष, दृष्टि वैषम्य दोष और यहाँ तक कि मोतियाबिन्द की प्रारम्भिक अवस्था में भी लाभ होता है। आँखें स्वच्छ और द्युतिमान हो जाती हैं तथा वस्तुओं के मात्र आभास को ही नहीं, उनकी वास्तविकता को भी देखने की क्षमता आ जाती है। त्राटक न केवल आँखों को लाभ पहुँचाता है, वरन् शारीरिक एवं मानसिक कार्यों के सम्पूर्ण क्षेत्र में भी लाभ देता है। विषाद, अनिद्रा, एलर्जी, चिन्ता, शारीरिक भंगिमा जन्य दोषों, अल्प एकाग्रता एवं क्षीण स्मृति में इसका उपचारात्मक उपयोग है। आज्ञा चक्र और मस्तिष्क पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। त्राटक मन की अन्तर्निहित शक्ति को उन्मुक्त करता तथा इसे चेतना के सुप्त क्षेत्रों की ओर प्रवाहित करता है। मन की एकाग्रता के और भी परिणाम हैं, जैसे– दृढ़ संकल्प शक्ति, परिवर्द्धित स्मृति और एकाग्रता।

त्राटक मन को केन्द्रित करने और उसकी दोलायमान वृत्तियों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। इसका प्रयोजन है मन को पूर्णतया एकाग्र करना और अन्तर्दृष्टि को जाग्रत करना। मन को विक्षिप्त या उद्विग्न करने वाले अनेक कारक हैं जो एकाग्रता को बाधित करते हैं। वस्तुत: विक्षेप या उद्विग्नता तो तभी आती है जब मन बहिर्मुखी होता है, जिस का मतलब है कि ऊर्जा का कहीं रिसाव हो रहा है। इस रिसाव के कारणों में प्रधान है आँखों या दृष्टि द्वारा सम्पर्क और तादात्म्य।

इसके अतिरिक्त आँखें सदैव गतिमान रहती हैं– चाहे वृहत् संचलन थैली में या कम्पन अथवा अक्षि दोलन में। यहाँ तक कि जब आँखें किसी बाह्य वस्तु पर संकेन्द्रित रहती हैं तब भी अनुभूत दृश्य इन स्वैच्छिक गतियों के कारण बराबर विचल रहता है। जब एक ही वस्तु को लगातार देखा जाता है तब मस्तिष्क अभ्यस्त हो जाता है और शीघ्र ही दृष्ट वस्तु को मन में अंकित करना बन्द कर देता है। यह अभ्यास अल्फा तरंग-वृद्धि से मेल खाता है, जो बाह्य जगत् के प्रति कम हो गये दृष्टि अवधान को प्रकट करती है। जब अल्फा तरंगें उत्पन्न होती हैं, मस्तिष्क का क्षेत्र विशेष काम करना बन्द कर देता है।

दृष्टि केवल आँखों पर नहीं, वरन् सम्पूर्ण दृक् क्षेत्रों पर निर्भर रहती है। आँखों के लेंस तो मात्र बाह्य चाक्षुष ज्ञान के वाहक हैं। लेंसों के द्वारा वस्तु का बिम्ब दृष्टि-पटल (रेटिना) पर पड़ता है, प्रक्षेपित होता है। यह एक उद्दीपन का काम करता है जिसके कारण दृष्टि पटल उत्तेजित होता है और मस्तिष्क के

दृष्टि प्रान्तस्था (visual cortex) को आवेग प्रेषित करता है, जहाँ आन्तरिक बिम्ब का चित्रण होता है।

यदि आप आँखें बन्द कर लें और उन्हें हल्के से दबायें और छोड़ें तब आपको प्रकाश की झलकें दिखाई पड़ेंगी। ऐसा इसलिए नहीं होता कि आँखों में प्रकाश है, वरन् दृक्-तन्त्रिकायें उद्दीप्त हो रही हैं। जब बाह्य वस्तु का बिम्ब दृष्टि पटल पर स्थिर हो जाता है, तब कुछ समय बाद बिम्ब का बोध पूर्णतया विलुप्त हो जायेगा और मानसिक प्रक्रिया का निलम्बन होगा।

वस्तुत: यदि दृक्-उद्दीपक का सर्वथा अभाव हो, उदाहरण के लिए, यदि आप एक घुप अन्धेरे कमरे में बैठते हैं अथवा अपनी आँखों को किसी अपार दर्शी कटोरी से ढक लेते हैं तो कुछ समय के उपरान्त मन निलम्बित हो जाता है, जैसा कि निद्रा में होता है। अत: त्राटक के अभ्यास में आन्तरिक सजगता का बने रहना आवश्यक है जिससे मन के निलम्बित हो जाने पर केवल सजगता बची रहे। यह केवल त्राटक के सम्बन्ध में नहीं, वरन् धारणा के सभी अभ्यासों के सम्बन्ध में भी लागू होता है। जब चेतना एक अपरिवर्तनीय इन्द्रिय उद्दीपन, जैसे स्पर्श, या ध्वनि तक सीमित हो तब मन निलम्बित हो जाता है। किसी एक प्रत्यक्ष ज्ञान में पूर्ण संलग्नता बाह्य जगत् से सम्पर्क का निवर्तन कर देती है।

त्राटक में, दृष्टि बोध की शून्यता आती है, और इस निलम्बन की अवस्था में केन्द्रीय तंत्रिका तन्त्र पृथक् रूप से कार्य करने लगता है। योगी इस अनुभव को सुषुम्ना जागरण कहते हैं। इन विचार प्रभावों से प्रेरित हो जब मस्तिष्क इन्द्रिय विकारों से और सम्बद्ध मानसिक प्रक्रियाओं, भावों, स्मृतियों आदि से पृथक् हो जाता है, तब आध्यात्मिक चेतना का उदय होता है, देश-काल से मुक्त उच्चतर मन की अनुभूति होती है। सुषुम्ना जाग्रत होती है।

अभ्यास की विधियाँ

त्राटक की पाँच विधियाँ हैं–

1. बाह्य दृष्टि (बाह्य त्राटक)
2. बाह्यान्तर दृष्टि (बाह्य और अन्तर्त्राटक संयुक्त)
3. अन्तर्दृष्टि (अन्तर्त्राटक)
4. शून्य दृष्टि (शून्य में एकटक देखना)
5. निरन्तर दृष्टि (लगातार देखना)

बाह्य त्राटक में आँखें खुली और किसी स्थिर वस्तु पर संकेन्द्रित रहती हैं। बाह्य त्राटक में अगोचरी मुद्रा और शाम्भवी मुद्रा, दोनों सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार के त्राटक का अभ्यास मोमबत्ती की लौ, एक धब्बे, उदित होते सूर्य जैसी किसी वस्तु पर दृष्टि को संकेन्द्रित कर भी किया जा सकता है। इस प्रकार आँखों को स्थिर करने से आप अपने मन को अपने आप एकाग्र करते हैं।

जब बाह्य और अन्त:, दोनों त्राटकों को मिलाते हैं, तो पहले आप कुछ देर के लिए बाह्य वस्तु या बिन्दु पर एकटक देखते हैं, फिर आँखें बन्द कर लेते हैं और उसी वस्तु के आन्तरिक बिम्ब या प्रतिबिम्ब पर एकटक देखते हैं। नये साधक द्वारा प्राय: मोमबत्ती की लौ जैसी दीप्त वस्तु का उपयोग किया जाता है, क्योंकि वस्तु की चमक आँखों को आकृष्ट करती है और दृष्टि को स्थिर रखती है। यह आँखों के दृष्टि पटल पर स्पष्ट बिम्ब बना देती है जिसे आँखें बन्द कर भी देखा जा सकता है। अन्तर्त्राटक में यही आन्तरिक बिम्ब एकाग्रता की वस्तु का काम करता है। यदि यह पर्याप्त स्पष्ट और चमकीला होता है तो यह अन्तर्दृष्टि की एकाग्रता को बनाये रखेगा जिसके कारण आप अन्य किसी वस्तु के प्रति सजग नहीं होंगे। इससे मन: शक्ति का संकेन्द्रण होगा।

जो व्यक्ति किसी बाह्य वस्तु के अभाव में आन्तरिक बिम्ब विकसित नहीं कर सकते, उनके लिए अन्त: और बाह्य त्राटक का सम्मिलित अभ्यास उपयोगी होता है। जो व्यक्ति बिना किसी बाह्य वस्तु की सहायता के स्पष्ट आन्तरिक बिम्ब को विकसित कर सकते हैं, वे केवल अन्तर्त्राटक का अभ्यास कर सकते हैं। अन्तर्त्राटक में चेतना को केवल आन्तरिक बिम्ब पर संकेन्द्रित किया जाता है। अत: यह विधि बाह्य त्राटक, या बाह्यान्तर त्राटक, दोनों से कठिन है।

अन्तर्त्राटक धारणा के लिए अत्यन्त सहायक हैं, क्योंकि कोई बाह्य इन्द्रिय सम्पर्क नहीं रहता, जैसा अन्य दोनों में होता है। आप अन्तर्त्राटक का अभ्यास तभी कर सकते हैं जब स्पष्ट आन्तरिक बिम्ब उत्पन्न कर सकें तथा आपका मन अपेक्षाकृत नीरव एवं स्थिर हो। यदि आन्तरिक बिम्ब अस्पष्ट हो या बिल्कुल नहीं हो और आप अन्तर्त्राटक का अभ्यास करते हैं तब या तो आप निद्रा में चले जायेंगे या सामान्य विचारों में अपनी चेतना खो देंगे।

जब अन्तर्त्राटक में सिद्धि प्राप्त हो जाये तब शून्य में त्राटक किया जा सकता है। शून्य आकार या रूप रहित अवस्था है। यह चिदाकाश नहीं है। शून्य दृष्टि में सजगता की कोई वस्तु नहीं रहती। इस प्रकार के त्राटक में आँखें खोलकर शून्य में एकटक देखना होता है। इस अवस्था तक आने में बहुत

समय लगता है। आपकी आँखें खुली रहती हैं, पर आप कुछ भी देखने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि मन अन्तर्मुखी हो गया होता है। कुछ देर के पश्चात् आँखें धुँधली हो जाती हैं। वे आधी खुली रहती हैं और आप कुछ भी देख नहीं सकते। एकटक देखने का तात्पर्य है घण्टों तक आँखों की पलकें बिना झपकाये किसी एक बिन्दु पर देखते जाना है। रमण महर्षि इसकी साधना करते थे, प्रतिदिन दस, ग्यारह, बारह घण्टे बैठकर, बिना आँखें झपकाये।

सजगता की वस्तु

सजगता की वस्तु कुछ भी हो सकती है, परन्तु वह ऐसी वस्तु हो जो आपके अवधान को आकृष्ट कर सके और आपकी एकटक दृष्टि को बनाये रखे। आप को निर्णय करना है कि आपके लिए कौन-सी वस्तु अनुकूल है। आपकी सुविधा के लिए सामान्यत: उपयोग में लायी जाने वाली कुछ वस्तुओं की सूची दी जा रही है– मोमबत्ती की लौ, शिवलिङ्ग, इष्ट देवता, ॐ, भ्रू-मध्य, तारा, आकाश, अन्य व्यक्ति की आँखें, क्रॉस, जिङ्-आङ् प्रतीक, जल, यंत्र या मण्डल, अपनी छाया, फूल, अन्धकार, काला धब्बा, दर्पण में छवि, उगता सूर्य, स्फटिक, चन्द्रमा, शून्य, नासिकाग्र, स्वच्छ जल में सूर्य या चन्द्रमा का बिम्ब।

इनमें से आप किसी भी वस्तु को अपने लिए चुन सकते हैं, परन्तु जब एक बार चुन लिया तो उसे बदलिये नहीं, क्योंकि इससे अभ्यास का प्रभाव कम हो जायेगा। यदि आपने एक वस्तु की सजगता विकसित कर ली और उसको अचानक बदल देते हैं, तब उस नयी वस्तु को आत्मसात् करने के लिए पुन: एकदम आरम्भ से शुरू करना पड़ेगा। मन को किसी वस्तु विशेष के लिए अपने को ढालना पड़ता है, जिससे वह सहज ही उसकी ओर आकृष्ट हो। इसमें समय लगता है, अत: अपने त्राटक की वस्तु का चुनाव सावधानी से कीजिये और फिर उसके प्रति दृढ़ रहिये।

बहु-उद्देशीय अभ्यास

त्राटक से एकाग्रता शक्ति का विकास होता है, क्योंकि चेतन ऊर्जा एक अवधान बिन्दु की ओर निदेशित की जाती है। यह अभ्यास स्वत: ही ध्यान की अवस्था में ले जाता है। यहाँ तक कि प्रारम्भिक अभ्यासियों को भी थोड़े समय के अभ्यास के बाद इसका अनुभव होगा। त्राटक के अनेक अभ्यास हैं, जिन्हें विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि आप

दूर-संचरण के लिए त्राटक का अभ्यास करना चाहते हैं, तो इसकी एक विधि है। यदि आप इसका अभ्यास दूसरों के मन को प्रभावित करने के लिए करना चाहते हैं तो इसके लिए अन्य विधि है। यदि आप अपनी आँखों की रोशनी बढ़ाने के लिए इसका अभ्यास करना चाहते हैं, तो भी अभ्यास की विधि दूसरी होगी। अलग-अलग परिणाम प्राप्त करने के लिए अलग-अलग विधियों का उपयोग किया जाता है।

एक विशेष साधना है जिसे छाया-उपासना कहते हैं। यह प्रभा मण्डल के अध्ययन से तथा मृत्यु के ठीक समय के ज्ञान से सम्बन्धित है। किसी आसन्न संकट की भी काफी पूर्व में जानकारी हो सकती है। इस साधना का प्रधान अंग त्राटक है। त्राटक से अतीन्द्रिय दृष्टि, दूर संवेदन और दूर गति क्रम की क्षमता भी जाग्रत होती है। अतीन्द्रिय आँख पर त्राटक की विधि से किसी व्यक्ति को बुलाया जा सकता है। आँखों द्वारा जो आध्यात्मिक भाषा बोली जाती है, वह दूसरे व्यक्ति को आने के लिए बाध्य करती है। खोई या चोरी हुई वस्तुओं की जानकारी के लिए तथा चोरी करने वाले का पता करने के लिए विशेष प्रकार के त्राटक का उपयोग होता है। त्राटक द्वारा रोगोपचार भी किया जा सकता है।

मार्ग-दर्शन

त्राटक किसी भी समय किया जा सकता है, पर खाली पेट करने पर अधिक प्रभावशाली होता है। सर्वाधिक उपयुक्त समय प्रात: 4 से 6 बजे का होता है। यह पूर्ण शान्ति में होना चाहिए तथा पंखा नहीं चलाना चाहिए। यदि आप मन की गहन खोज में जाना चाहते हैं तो रात्रि में सोने के पूर्व और ध्यान या जप के पूर्व त्राटक करना चाहिए। यदि त्राटक के अभ्यास के समय विचारों का प्रवाह नियंत्रित न हो पाये तो साथ ही साथ मंत्र जप का अभ्यास भी जोड़ देना चाहिए।

त्राटक ताप उत्पन्न करने वाला अभ्यास है। अत: इसका अभ्यास स्नान के बाद जब आप ताजा अनुभव करें, तब करना चाहिए। यदि आप त्राटक के पूर्व सूर्य नमस्कार करेंगे तो शरीर में गर्मी आ जायेगी, फिर उस समय त्राटक में आपको परेशानी का अनुभव होगा। अत: त्राटक के पूर्व शरीर को ठण्ढा रखने का प्रयास कीजिये। त्राटक के पश्चात् आप यदि ध्यान करते हैं तो शरीर पुन: शीतल एवं ताजा हो जायेगा।

यदि आप उदित हो रहे सूर्य पर त्राटक करते हैं, तो आप सूर्य को सीधे नहीं देखिये। यह आँखों के लिए हानिप्रद है और मोतियाबिन्द हो जाने की

संभावना होगी। स्वच्छ जल में सूर्य के बिम्ब को देखिये। जब जल तेज हवा या आँधी-तूफान से अस्थिर हो जाये तब आपको इस त्राटक का अभ्यास नहीं करना चाहिए। त्राटक का अभ्यास स्थिर वस्तु पर करना चाहिए, चंचल वस्तु पर नहीं। किसी धातु पर त्राटक करते समय सावधान रहें, क्योंकि त्राटक करते समय धातु पर से यदि सूर्य की किरणें परावर्तित होंगी तो आँखों पर उसकी प्रतिक्रिया हो सकती है।

त्राटक का अभ्यास अत्यन्त स्थिर आसन में किया जाना चाहिए। यद्यपि यह सुखासन या कुर्सी पर भी बैठकर किया जा सकता है, पर सिद्धासन या पद्मासन में अभ्यास करना ही उत्तम है। एक बार जब अभ्यास प्रारम्भ हो जाये तब शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं होनी चाहिए।

बहिर्त्राटक या अन्तर्त्राटक, दोनों में किसी भी तरह से न पलकें झपकें, न आँखों में कोई गति हो। आन्तरिक बिम्ब में स्पष्टता के लिए अक्षि-गोलकों और पलकों का स्थिर रहना अत्यन्त आवश्यक है। यदि आँखों में तनाव लगे तो कल्पना कीजिये कि आप भ्रू-मध्य केन्द्र होते हुए आज्ञा चक्र तक श्वास ले और छोड़ रहे हैं। जब आप आँखें बन्द कर लेते हैं और आन्तरिक बिम्ब को एकटक देखते हैं उस समय भी श्वास की वही चेतना बनाये रखिये– भ्रू-मध्य केन्द्र से बिम्ब तक श्वास ले और छोड़ रहे हैं। मन बिम्ब या वस्तु पर संकेन्द्रित रहना चाहिए, अन्य किसी चीज पर नहीं। यदि मन भटकने लगे या अन्य वस्तुओं के विषय में सोचना प्रारम्भ कर दे तो आप उसे संकेन्द्रण की वस्तु पर पुनः वापस लाइये।

यदि आप मोमबत्ती की लौ का उपयोग कर रहे हैं तो कमरे में प्रकाश नहीं होना चाहिए। पर यदि आप काले धब्बे या अन्य वस्तु का उपयोग कर रहे हैं तब कमरे में पर्याप्त प्रकाश होना चाहिए। स्फटिक पर अभ्यास के समय प्रकाश मन्द रहना चाहिए। मोमबत्ती की लौ पर त्राटक कमरे में बिना पंखा चलाये करना चाहिए, जहाँ हवा नहीं बह रही हो। मोमबत्ती की लौ में कम्पन नहीं होना चाहिए। मोमबत्ती किसी दृढ़ आधार पर आँखों की सीध में लगभग $2^{1/2}$ फीट की दूरी पर हो, अर्थात् पूरा हाथ लम्बा करने पर ही स्पर्श हो सके। त्राटक का अभ्यास चश्मा या कॉन्टेक्ट लेंस लगाये बिना करना चाहिए। यदि आपको दृष्टि दोष है तो वस्तु को इतनी दूरी पर रखिये कि वह आपको दो नहीं दिखे, या धुँधली नहीं दिखे।

हरि ॐ तत्सत्

त्राटक एक

बाह्य दृष्टि

विधि 1– अगोचरी मुद्रा या नासिकाग्र दृष्टि

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कर आँखें बन्द कर लीजिये। शरीर में स्थिरता एवं निस्पन्दता का अनुभव कीजिये। अब आँखें खोल लीजिये और नासिकाग्र पर उन्हें संकेन्द्रित कीजिये। आँखों पर जोर नहीं डालिये, पर दोनों आँखों की दृष्टि नासिकाग्र पर बनाये रखिये, यदि दोनों आँखों का अवधान वास्तविक रूप से नासिकाग्र पर है तो आपको नासिका की दो बाह्य रेखायें दिख पड़ेंगी। ये दोनों रेखाएँ जब एकाकार हो एक-दूसरे में विलीन होती हैं, तब ये दोनों एक होकर ठोस हो जायेंगी। ये दोनों रेखायें नासिकाग्र पर एक-दूसरे को काटती हैं और 'V' का आकार बनाती हैं।

यदि आपको यह 'V' आकृति दिखाई नहीं पड़ती है तो इसका तात्पर्य है कि आपकी दोनों आँखें नासिकाग्र पर स्थिर नहीं हैं। ऐसी स्थिति में अच्छा होगा कि आप आँखों के सामने 45 से. मी. की दूरी पर अपनी एक ऊँगली को रखिये। धीरे-धीरे ऊँगली को नासिका से समीप एवं समीपतर लाते जाइये, पर आँखों को ऊँगली पर ही टिकाये रखिये। ऊँगली को नासिका के समीपतम लाइये, जिससे वह नासिका को स्पर्श करने लगे। आँखें अभी भी ऊँगली पर संकेन्द्रित रहें। अब केवल आँखों का अवधान नासिका पर ले आइये और हाथ को नीचे कर लीजिये। अब आपकी आँखें सही बिन्दु पर संकेन्द्रित रहेंगी।

प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होगा कि आप अपना अवधान नासिकाग्र पर कुछ ही क्षण रख सकते हैं। परन्तु अभ्यास से आप इस समय को बढ़ा सकेंगे।

जब आपको लगे कि आँखें कष्टकर हो रही हैं या उनमें तनाव का अनुभव होने लगे, तब कुछ क्षणों के लिए आँखों को आराम दे दीजिये। जब थोड़ा विश्राम हो जाये तो पुन: आँखों को खोलकर अभ्यास दुहराइये। इस प्रकार जैसे-जैसे आँखें अभ्यस्त होती जायेंगी, वास्तविक नासिकाग्र दृष्टि का समय बढ़ता जायेगा। कुछ सप्ताहों के अभ्यास से साधना में दक्षता आनी चाहिए। जब आप रंचमात्र भी कठिनाई के बिना एक मिनट तक नासिकाग्र दृष्टि बनाये रख सकते हैं तब आप अपने नासिकाग्र के साथ-साथ अपनी श्वास के प्रति भी सजग होना शुरू कीजिये। नासिका में आती-जाती श्वास का अनुभव कीजिये। साथ ही साथ श्वास की गति के साथ आपको एक हल्की ध्वनि सुनाई पड़ेगी। उस ध्वनि के प्रति भी सजग होइये।

अन्य विचारों को छोड़ केवल इस अभ्यास में पूर्णतया अन्तर्लीन होने का प्रयास कीजिये। नासिकाग्र, श्वास की गति एवं साथ-साथ हो रही ध्वनि की सजगता बनाये रखिये। कुछ समय तक इसे चलाते रहिये।

विधि 2 – शाम्भवी मुद्रा

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हाथों को घुटनों पर रखकर आँखें बन्द कर लीजिये। सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। शरीर स्थिर एवं निस्पन्द हो। अब आँखों को खोल लीजिये और उन्हें भ्रू-मध्य में संकेन्द्रित करने का प्रयत्न कीजिये। वास्तविक रूप में आँखों को भ्रूमध्य पर स्थिर करना कठिन है, क्योंकि यह सामान्य रूप से दृष्टि क्षेत्र में नहीं आता है। फिर भी आप आँखों को ऊपर एवं भीतर की ओर करने का प्रयास कीजिये, जिससे यथासंभव वे भ्रू-मध्य की ओर निर्दिष्ट हो सकें। यदि यह सही ढंग से हो पाता है तो आप अपनी भौंहों के दो वक्र बिम्ब देख सकते हैं जो आपस में मिल जाते हैं। वे नासिका के ऊपर मिलकर एक ठोस 'V' आकृति का बिन्दु बनाते हैं।

आपको इस आकृति के बिन्दु के प्रति सजग होना है। यही भ्रू-मध्य की निकटतम स्थिति है। यदि यह 'V' आकृति नहीं बनती है तो इसका अर्थ है कि आपकी दोनों आँखें एक बिन्दु की ओर अभिमुख नहीं हो पा रही हैं, जैसा होना चाहिए। ऐसी स्थिति में अपनी एक उँगली नासिकाग्र पर रखिये। दोनों आँखों को उसके छोर पर संकेन्द्रित कीजिये। फिर धीरे-धीरे उस ऊँगली को ऊपर उठाते जाइये, पर आँखों को उँगली के छोर पर ही

संकेन्द्रित रखिये। यदि यह ठीक से हो जाता है तब आँखें ऊपर की ओर खिंचेंगी जिससे वे भ्रू-मध्य पर केन्द्रित हो जायें।

निश्चित रूप से आँखों पर जोर नहीं डालना है। जब भी आपको थोड़ी भी असुविधा लगे तब कुछ क्षणों के लिए आँखों को विश्राम दे दीजिये। जब आँखें विश्रान्त हो जायें तो पुन: उन्हें खोलिये एवं भ्रूमध्य पर केन्द्रित कीजिये। अभ्यास इसी प्रकार चलाते जाइये। इस तरह से आप भ्रू-मध्य दृष्टि की अवधि धीरे-धीरे बढ़ाते जायेंगे। कुछ देर इस अभ्यास को चलाइये।

विधि 3– मोमबत्ती की लौ पर त्राटक

मोमबत्ती को अपने सामने सही स्थिति में रखकर जला दीजिये। ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये। शरीर की स्थिरता पर चित्त को एकाग्र कीजिये। अनुभव कीजिये कि आपका सम्पूर्ण शरीर मूर्तिवत् शान्त एवं निश्चल हो गया है। अपने शरीर की पूर्ण स्थिरता और निश्चलता के विषय में सजग होइये। संकल्प कीजिये कि अभ्यास की अवधि में आप एकदम हिलेंगे नहीं। यदि आप थोड़ा भी हिले तो आपकी एकाग्रता भंग हो जायेगी।

आँखें खोल लीजिये और मोमबत्ती की लौ पर एकटक देखिये। अपनी आँखों पर बिना जोर डाले उन्हें जल रही बत्ती के शीर्ष पर केन्द्रित कीजिये। आपकी आँखें पूर्णतया विश्रान्त रहें। यदि आप लौ पर संकेन्द्रण के लिए अधिक कठिन प्रयास करेंगे तो आँखों में अधिक तनाव होगा और उनमें गति भी होगी। सजगता पूर्वक आँखों की पेशियों को विश्रान्त ही रखिये। प्रयास कीजिये कि न तो पलकें झपकें और न आँखों में कोई गति हो। मोमबत्ती की लौ की बत्ती पर एकटक दृष्टि रखते समय अपना संकेन्द्रण स्थिर रखिये।

आपकी पूरी सजगता मोमबत्ती की लौ और बत्ती पर रहे। यदि विचार आते हैं तो आने दीजिये। उनके विषय में सजग होइये और पुन: अपनी सजगता को लौ पर लाइये। लौ को स्पष्ट रूप से देखिये। यद्यपि आपकी दृष्टि एक बिन्दु पर संकेन्द्रित है, फिर भी आप पूरी मोमबत्ती को देख सकते हैं। मोमबत्ती की लौ के रंग और रूप के प्रति सजग होइये। अपने पूरे अवधान को पूर्णतया लौ में ही अन्तर्लीन होने दीजिये। वहाँ मात्र लौ ही है।

यदि आपको आँखें बन्द करने की आवश्यकता लगे तो कुछ क्षणों के लिए बन्द कर लीजिये। अभ्यास के क्रम में आँसू नहीं गिरना चाहिए। अत: जब आपको ऐसा प्रतीत हो तो उसके पूर्व ही आँखें बन्द कर लीजिये। जब वे विश्रान्त हो जायें तब पुन: आँखें खोलिये और मोमबत्ती की जलती हुई बत्ती के शीर्ष पर दृष्टि संकेन्द्रित कीजिये। इस तरह अभ्यास करते जाइये।

विधि 4– श्वास की सजगता के साथ त्राटक

मोमबत्ती की लौ पर एकटक देखते समय अपनी श्वास के प्रति सजग होइये। उज्जायी प्राणायाम प्रारम्भ कीजिये। खेचरी मुद्रा में जिह्वा को पीछे मुड़ने दीजिये। अब कल्पना कीजिये कि आप मोमबत्ती की लौ से भ्रू-मध्य तक श्वास खींच रहे हैं और फिर उसे सिर के मध्य भाग में अवस्थित आज्ञा चक्र पर ले जा रहे हैं। जब श्वास छोड़ते हैं तो कल्पना कीजिये कि श्वास आज्ञा चक्र से भ्रू-मध्य को भेदती हुई मोमबत्ती की लौ तक जाती है। आप अपनी सजगता का ऐसा विभाजन कर लीजिये कि एक साथ ही मोमबत्ती की लौ तथा श्वास की गति, दोनों के प्रति सजग हो सकें। आँखें इस बीच स्थिर और विश्रान्त रहनी चाहिए।

इस प्रकार यह अनुभव या कल्पना करते हुए कि श्वास मोमबत्ती की लौ से भ्रू-मध्य होते हुए आज्ञा चक्र तक जाती है और पुन: लौ तक वापस आती है, श्वास लेते और छोड़ते जाइये। मोमबत्ती की लौ, श्वास और उज्जायी श्वास की सूक्ष्म ध्वनि, तीनों के प्रति सजग होइये। आज्ञा चक्र से मोमबत्ती की लौ तक के मार्ग की सजगता गहरी करते जाइये। अनुभव कीजिये कि आप लौ, भ्रू-मध्य और आज्ञा चक्र, तीनों बिन्दुओं को सम्बद्ध कर रहे हैं। अपनी श्वास के प्रति सजग होइये। थोड़ी देर तक ऐसा करते जाइये।

विधि 5– सूर्य तथा चन्द्रमा पर त्राटक

सूर्य या चन्द्रमा पर त्राटक का अभ्यास करते समय आप उनकी ओर सीधे नहीं देखिये। सूर्य की किरणें दृष्टि-पटल को क्षति पहुँचा सकती हैं तथा उससे मोतियाबिन्द भी हो सकता है। चन्द्रमा पर सीधा त्राटक करने से मानसिक असंतुलन हो सकता है तथा व्यक्ति चन्द्र-रोग से पीड़ित या विक्षिप्त हो सकता है। इसलिए मानसिक उपद्रवों से ग्रस्त या विषादग्रस्त व्यक्ति को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए। सूर्य या चन्द्रमा पर सीधे

त्राटक अत्यन्त शक्तिशाली होता है, शरीर और मन की इड़ा और पिंगला ऊर्जाओं पर उनका सीधा प्रभाव पड़ता है। अत: ऐसी साधना करने में सावधानी की जरूरत है। सूर्य पिंगला नाड़ी में ऊर्जा के प्रवाह में वृद्धि करता है जिससे व्यक्तित्व में गत्यात्मकता आती है। चन्द्रमा इड़ा नाड़ी को प्रभावित करता है जिससे मन:शक्ति बढ़ती है। जो अपनी गत्यात्मकता, प्राण शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं वे उदय या अस्त होते सूर्य पर त्राटक कर सकते हैं। जो अपनी मानसिक संभावनाओं में गहरे उतरना चाहते हैं वे उदय या अस्त होते चन्द्रमा पर त्राटक कर सकते हैं।

सूर्य या चन्द्रमा पर त्राटक करने के लिए एक बड़े से वर्गाकार काले कपड़े में मटर के दाने जितना छेद कर लें। इस कपड़े को सूर्य की ओर वाली खिड़की में लगा दीजिये अथवा एक लकड़ी के चौखटे में इसे मढ़ कर बाहर में भी उपयोग कर सकते हैं। इसी छिद्र से होकर सूर्य या चन्द्रमा पर एकटक देखकर त्राटक किया जा सकता है।

यह अभ्यास भी पूर्व अभ्यासों की तरह किया जा सकता है, बाह्य वस्तु और आन्तरिक बिम्ब पर एकटक देखते हुए। प्राण, शरीर और मन पर सूर्य या चन्द्रमा के विशुद्ध एवं सूक्ष्मतर प्रभाव को अनुभव करने का प्रयास कीजिये। प्राण ऊर्जा के प्रवाह में या मनोदशा में किसी भी परिवर्तन के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को और अधिक गहरी और सूक्ष्म होने दीजिये।

विधि 6 – एक गतिशील दृश्य पर त्राटक (यात्रा करते समय)

रेलगाड़ी या कार में यात्रा करते समय यह अभ्यास किया जा सकता है। खुली खिड़की के पास बैठिये और पूरे शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। अपने पूरे शरीर के प्रति सजग होइये और शरीर के किसी अंग में कोई तनाव या कड़ापन हो तो चैतन्य रूप से उसे समाप्त कर लीजिये। कुछ क्षणों के लिए अपनी सहज श्वास की ओर अपनी चेतना को लाइये। श्वास के स्थिर, लयबद्ध प्रवाह को अनुभव कीजिये। अन्य यात्रियों की ध्वनि और रेलगाड़ी के शोर को धीरे-धीरे विलीन होने दीजिये।

अब खुली आँखों से दूर के दृश्य को एकटक देखिये। प्रारम्भ में यह अभ्यास कठिन होगा, क्योंकि आँखें सहज रूप में गतिमान दृश्यों का अनुसरण करेंगी। आँखों को एक बिन्दु पर स्थिर होने के लिए थोड़ा समय दीजिये। तत्पश्चात् आँखों को स्थिर रखिये, पर जोर नहीं डालिये। यद्यपि

दृश्य निरन्तर बदल रहे हैं। फिर भी आपकी पलकें झपकें नहीं और न अक्षगोलकों में कोई गति हो। अपने सामने के दृश्य के मध्य में अपनी आँखें स्थिर रखिये।

दूर के दृश्यों को एकटक देखते समय कोई विचार या भावना न आये। मन पूर्णतया स्थिर और भावनाशून्य रहे। लगातार परिवर्तित हो रहे दृश्य के प्रति आप सजग हैं, पर न आप उनकी समीक्षा कर रहे हैं और न उनमें संलग्न हो रहे हैं, आपकी आँखें केवल एक बिन्दु पर केन्द्रित हैं।

दूरस्थ दृश्य के केन्द्रीय भाग पर पूर्णतया एकाग्र होइये। यदि आँखें थक जाती हैं तो उन्हें कुछ क्षणों के लिए बन्द कर लीजिये और उन्हें पूर्णतया विश्रान्त कर लीजिये। जब आँखें बन्द रहती हैं तब अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में लाइये। आस-पास में हो रही ध्वनियों और गतियों से आप अपने को उद्विग्न नहीं होने दीजिये। चेतना को पुन: अभ्यास की ओर वापस लाइये। जब आँखें विश्रान्त हो जायें तो उन्हें खोलिये और दूरस्थ दृश्य को एकटक देखिये।

इस प्रकार अभ्यास करते जाइये। जब अभ्यास समाप्त हो जाये तब आँखें बन्द कर उन्हें पूर्णत: विश्रान्त कीजिये।

चेतावनी– वाहन चलाते समय यह अभ्यास कभी नहीं कीजिये।

विधि 7– सुई पर त्राटक

सुई पर त्राटक के अभ्यास के लिए सुई को आँखों के तल पर दिवाल के पास लटका दीजिये। दिवाल समतल एवं रंगीन हो। दिवाल पर अन्य कोई चीज लटकी न हो, क्योंकि उससे अभ्यास के क्रम में ध्यान का विक्षेप होगा।

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हाथों को घुटनों पर या गोद में रख लीजिये। आँखें बन्द कर लीजिये। पूरे शरीर के प्रति सजग हो जाइये और सुनिश्चित कर लीजिये कि किसी अंग में कोई तनाव नहीं है।

अपनी सजगता को नासिका में चल रही श्वास पर ले आइये। प्रत्येक पूरक और रेचक के प्रति सजग बनिये। श्वास में कोई परिवर्तन नहीं कीजिये, केवल स्वाभाविक श्वास प्रवाह के प्रति सजग होइये।

अब आँखें खोल लीजिये और अपनी दृष्टि को सुई पर केन्द्रित कीजिये। सुई को स्पष्ट रूप से देखिये, पर आँखों को विश्रान्त रखिये। सुई पर एकटक देखने के लिए आपको अधिक प्रयास नहीं करना है, इससे केवल

तनाव उत्पन्न होगा जो आपकी दृष्टि को विकृत करेगा। दिवाल पर लटक रही सुई को केवल स्वाभाविक और विश्रान्त भाव से एकटक देखिये।

सुई को स्पष्ट रूप से देखिये। सुई के छेद के आकार के प्रति सजग होइये, उसकी चमक के प्रति भी सजग होइये, जो उस पर प्रकाश के परावर्तन के कारण है। उसकी लम्बाई के प्रति भी सजग होइये। सुई पर पूर्णरूपेण एकाग्र होइये। यदि विचार आते हैं तो उनमें नहीं उलझिये। उन्हें एक ओर हटाकर पुन: अपना अवधान सुई पर लाइये।

इसी प्रकार अभ्यास करते जाइये। सुनिश्चित कीजिये कि पूरे समय सुई पर आपका दृष्टि-बोध बराबर बना हुआ है। यदि सुई का बिम्ब धुँधला हो जाये तो विचार मण्डराने लगेंगे और एकाग्रता बिखर जायेगी। इसलिए सुनिश्चित कीजिये कि पूरे अभ्यास की अवधि में सुई पर स्पष्ट एकाग्रता रहे। आपकी सजगता सुई के छेद पर केन्द्रित है, परन्तु आप पूरी सुई को देख सकते हैं। आराम से जब तक हो सके अभ्यास करते जाइये। फिर आँखें बन्द कर लीजिये और उन्हें पूर्णत: विश्रान्त कीजिये।

विधि 8 – जल के प्रवाह पर त्राटक

प्रवाहशील जल पर त्राटक के लिए नदी के किनारे या नदी के पास किसी ऊँची जगह पर बैठिये, जहाँ से आप जल के प्रवाह को काफी दूर तक देख सकते हों। स्थिर एवं सुविधाजनक आसन में बैठिये जिससे अभ्यास के क्रम में आपका शरीर हिले नहीं। जल पर त्राटक करने के समय आप सदा सतर्क रहिये। किसी एक बिन्दु पर दृष्टि स्थिर कर त्राटक का अभ्यास कीजिये। आपकी दृष्टि स्थिर रहनी चाहिए। जल के सतत् प्रवाह के प्रति सजग रहिये, परन्तु आपकी आँखें लहरों के साथ गतिमान न हों। यदि ऐसा होता है तो अपनी एकटक दृष्टि को पुन: कोमलता पूर्वक ध्यान के मध्य बिन्दु पर लाइये। आपकी एकाग्रता पूर्ण रूप से एक बिन्दु पर रहनी चाहिए। अपनी आँखों पर बिना जोर डाले जब तक संभव हो जल के प्रवाह को एकटक देखते जाइये। फिर आँखें बन्द कर उन्हें पूर्णरूपेण विश्रान्त कीजिये। अपनी चेतना को भ्रूमध्य में लाइये। इस अभ्यास के भौतिक से सूक्ष्म तक विभिन्न स्तरों पर हो रहे प्रभाव के प्रति सजग बनिये।

हरि ॐ तत्सत्

त्राटक दो

बाह्यान्तर दृष्टि

विधि 1– मोमबत्ती की लौ पर त्राटक

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हाथों को घुटनों पर रखकर आँखें बन्द कर लीजिये। शरीर को पूर्ण विश्रान्त कर लीजिये। अपनी चेतना को पूरे शरीर में घुमाइये और सुनिश्चित कर लीजिये कि किसी भी अंग में कोई तनाव या कड़ापन नहीं है। सम्पूर्ण शरीर को स्थिर एवं निश्चल होता अनुभव कीजिये। हाथों और पैरों की स्थिति के प्रति सजग होइये एवं अनुभव कीजिये कि पैर आराम में और हाथ विश्रान्त हैं। अपनी पूरी बाँह और हाथ के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये कि पूरी बाँह विश्रान्त एवं निश्चल है। अपनी पूरी पीठ के प्रति सजग होइये और अनुभव कीजिये कि पीठ सीधी है और उसमें कोई तनाव नहीं है। अब शरीर के सम्मुख भाग में अपनी चेतना को लाइये। देख लीजिये कि छाती एवं उदर में कोई तनाव तो नहीं है। सिर के प्रति सजग होइये। आँखों की भौंहों और जबड़ों में कोई तनाव नहीं होना चाहिए।

पुनः एक साथ सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग होइये। शरीर के प्रत्येक भाग के प्रति सजग होइये। शरीर की स्थिरता को अनुभव कीजिये। शरीर के किसी भाग में कोई गति नहीं है। पूरा शरीर आराम में और स्थिर है। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त निश्चलता की चेतना को और गहरा कीजिये। पूर्ण निश्चलता और नीरवता का अनुभव कीजिये।

अब आँखें खोल लीजिये और मोमबत्ती की लौ को एकाग्रता के साथ एकटक देखिये। पलकों को झपकाने या गिराने का प्रयत्न नहीं कीजिये। तीन मिनटों तक स्थिर रूप से एकटक देखते जाइये। तत्पश्चात् आँखें बन्द

कर लीजिये और भ्रू-मध्य में मोमबत्ती की लौ के प्रतिबिम्ब को मानसिक रूप से देखने का प्रयास कीजिये। उस बिम्ब को उसी प्रकार एकटक देखते जाइये जैसे आपने बाहर में मोमबत्ती की लौ को एकटक देखा है। यही बाह्य एवं अन्तर्बिन्दु पर त्राटक का सम्मिलित रूप है।

चिदाकाश में कहीं पर एक लघु रंगीन, दीप्त बिन्दु को देखिये। उस बिन्दु को स्थिर दृष्टि से एकटक देखिये। इस बिन्दु का आकार एक गेहूँ या चावल के छोटे दाने के समान होगा। परन्तु उसका रंग हर क्षण बदलता रहता है। आपने मोमबत्ती की लौ को कितनी देर तक देखा इस पर उसका रंग निर्भर करता है। एक मिनट के बाद उसका रंग काला, उजला या हल्का भूरा हो जायेगा। लगभग पाँच मिनट के बाद उस बिन्दु का रंग चटक लाल हो जायेगा।

यदि प्रारम्भ में बिम्ब स्पष्ट नहीं है तो जो भी रहे उसे ही देख सकते हैं। पूरे अभ्यास की अवधि में आँखों की पेशियों पर जोर नहीं डालिये। इससे आन्तरिक बिम्ब के स्पष्ट होने में सहायता मिलेगी। यदि बिम्ब गतिशील हो तो उसका अनुसरण कीजिये और फिर कोमलता से उसे भ्रू-मध्य में ले आइये। बिम्ब को स्थिर करने में थोड़ा समय दीजिये। यदि बिम्ब हल्का हो जाता है या समाप्त हो जाता है तो उसे पुनः उत्पन्न करने का प्रयास कीजिये। जब आँखें विश्रान्त और स्थिर हो जायेंगी तो बिम्ब स्पष्ट एवं जीवन्त हो जायेगा।

धीरे-धीरे वह बिन्दु धुँधला होता जायेगा और अचानक विलीन हो जायेगा। ऐसा कुछ ही क्षणों में हो जाता है, पर आप आँखें नहीं खोलने के प्रति सतर्क रहिये। यदि वह अतीन्द्रिय बिन्दु विलीन हो भी जाये, फिर भी आप आँखें नहीं खोलिये। फिर अतीन्द्रिय चेतना को एकत्र तथा पुनर्गठित कीजिये। कुछ ही क्षणों में वह आन्तरिक वस्तु पुनः प्रकट होगी और पुनः प्रकट होने पर उसका रंग बिल्कुल भिन्न होगा।

अपनी आन्तरिक दृष्टि की सहायता से उस आन्तरिक बिन्दु पर एकटक देखते जाइये। वह हल्का और अधिक हल्का होता जायेगा और फिर विलीन हो जायेगा। पुनः अपनी चेतना को समेटिये। उस आन्तरिक बिन्दु का स्मरण कीजिये और देखिये वह एक बार पुनः आपकी आन्तरिक दृष्टि के समक्ष प्रकट हो गया। इसी प्रकार यह आन्तरिक बिन्दु प्रकट होगा, विलीन होगा और पुनः प्रकट होगा, पुनः विलीन होगा, पुनः प्रकट

होगा, धुँधला होगा, विलीन होगा, प्रकट होगा और पुनः धुँधला होता चला जायेगा। अन्ततोगत्वा वह बिल्कुल काला हो जायेगा और अतीन्द्रिय पृष्ठभूमि में विलीन हो जायेगा।

प्रारम्भ में तो एक चक्र में मुश्किल से पाँच मिनट लगेंगे, पर कुछ दिनों के अभ्यास के उपरान्त एक ही चक्र में आधा घण्टा लग जायेगा, तीन मिनट बाहर मोमबत्ती की लौ पर एकटक देखना और सत्ताइस मिनटों तक भीतर में अतीन्द्रिय बिन्दु को देखते रहना, प्रकट होना, विलीन होना, पुनः प्रकट होना और विलीन होना।

कहते हैं कि त्राटक के ग्यारह चक्र एक धारणा के समान होते हैं, जिसका अर्थ हुआ कि तब मानसिक बिम्ब या छवि बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। जब आप किसी वस्तु का चिन्तन करते हैं तब उसे मन में स्पष्ट रूप से देखते भी हैं– इसे कहते हैं धारणा। जब आप केवल उसका चिन्तन करते हैं और उसे देखते नहीं हैं तब वह मात्र कल्पना है। यह धारणा का निम्न स्तर है। धारणा कल्पना का उच्चतर स्तर है– स्पष्ट प्रत्यक्ष बोध के साथ कल्पना।

अपने सामने रखी मोमबत्ती की लौ पर ग्यारह चक्र त्राटक का अभ्यास कर लेने के पश्चात्, यह निश्चित है कि आप मानसिक रूप से पूर्णरूपेण मोमबत्ती का सर्वांग रंग, बत्ती तथा प्रकाश स्पष्टता से देख सकते हैं। आप देख सकते हैं कि मोम गलकर टपकता जा रहा है। आपके अतीन्द्रिय संवेदन में इतनी गहरायी होनी चाहिए। जब यह अवस्था आ जाती है तब धारणा प्रारम्भ होती है।

विधि 2– काले धब्बे पर त्राटक

किसी धब्बे पर त्राटक दो प्रकार से किया जा सकता है। एक सफेद पृष्ठभूमि पर एक काला गोल धब्बा बनाकर आँखों के स्तर पर सादी दिवाल पर लटकाया जा सकता है। धब्बा बनाने की दूसरी विधि है कि एक पान का पत्ता लेकर अण्डी के तेल से तैयार काजल से उस पर गोल काला धब्बा बना लेते हैं। इसे फिर एक तख्ती पर जमा लेते हैं। काले धब्बे पर त्राटक का अभ्यास करते समय प्रकाश पर्याप्त होना चाहिए। जिससे आप धब्बे को पूर्ण स्पष्टता से देख सकें। प्रकाश आपके पीछे से आना चाहिए।

इस अभ्यास में धब्बे की आकृति कितनी बड़ी या छोटी हो यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर रहता है। यदि आप धब्बे को देख नहीं पाते हैं तो थोड़ा

और बड़ा धब्बा चाहिए। परन्तु यदि आप बड़े धब्बे पर अपनी आँखों को केन्द्रित नहीं कर पाते तो आपको अपेक्षाकृत छोटे धब्बे की आवश्यकता है। अत: अपनी दृष्टि के अनुसार ही आपको धब्बे का आकार निर्धारित करना चाहिए। महत्त्वपूर्ण तथ्य यही है कि आपको आँखों पर जोर नहीं डालना है। यदि आपको दो धब्बे दिखाई देते हैं तो इसका अर्थ है कि आपको उससे छोटा या बड़ा धब्बा चाहिए। यही सिद्धान्त गुरु, शिष्य, कृष्ण, यन्त्र, मण्डल, ॐ या अन्य छपे हुए चित्रों पर भी लागू होता है। यह तथ्य तीन मिनटों की बहिर्दृष्टि के समय आँखों के दृष्टि पटल को प्रतिकूल प्रभाव से सुरक्षित रखेगा।

अत: उचित आकार का धब्बा समुचित दूरी पर रखना चाहिए। उस पर तीन मिनटों तक एकटक देखने के उपरान्त अपनी आँखें बन्द कर भीतर की ओर देखिये। आपको उसी आकार की एक छाया सी दिखाई पड़ेगी। यदि यह क्रास है तो क्रास के समान छाया दिखाई पड़ेगी। यदि ॐ प्रतीक है तो ॐ के समान छाया सामने आयेगी। यदि वह अर्द्ध चन्द्र है तो उसके समान छाया होगी। यदि मानवाकृति है तो मानव छाया आप देखेंगे।

जिस प्रकार आपने मोमबत्ती की लौ पर त्राटक किया है ठीक उसी प्रकार इस छाया पर भी एकाग्रता लाइये। दृष्टि पटल पर इसका प्रभाव भिन्न होगा, क्योंकि अभी आप प्रदीप्त वस्तु को नहीं देख रहे हैं। जब आप धब्बे की छाया पर एकटक देखते हैं तो वह काला, नीला, सफेद या किसी अन्य रंग का दिखाई पड़ेगा। ऐसी ग्यारह आवृत्तियों से एक धारणा पूरी होती है।

विधि 3 – फूल पर त्राटक

इस अभ्यास के लिए किसी फूल का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु गहरे एवं तेज रंग का फूल अच्छा होता है। यदि यह लाल गुलाब है तो त्राटक पूर्ण प्रकाशित स्थान में करना चाहिए। यदि फूल उजला, पीला या गुलाबी है तो आप दो फीट चौड़ा और तीन फीट लम्बा काला या गहरे हरे रंग का कपड़ा लीजिये। फूल को इस कपड़े के केन्द्र में टांक दीजिये। अब त्राटक हल्के प्रकाश वाली जगह पर करना चाहिए।

ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइये। मेरुदण्ड सीधा एवं लम्बवत् रहे। आश्वस्त हो जाइये कि आपका सिर भी सीधा है। हाथों को घुटनों पर या गोद में रख लीजिये। आँखें बन्द कर लीजिये। अपने पूरे शरीर के प्रति

सजग हो जाइये। समस्त आन्तरिक तनावों को समाप्त कर लीजिये, चाहे वे पेशीय हों, मानसिक हों या भावनात्मक हों। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये। शरीर को मूर्त्तिवत् स्थिर और निश्चल होता अनुभव कीजिये। पूर्ण निश्चलता के प्रति सजग बन जाइये।

अब आँखों को खोलकर फूल को एकटक देखिये। अपनी दृष्टि को फूल के ठीक केन्द्र में संकेन्द्रित कीजिये। आँखों को स्थिर होने दीजिये और संकेन्द्रण को सुस्पष्ट। फूल को स्पष्ट रूप से देखिये। फूल की प्रत्येक पँखुड़ी के प्रति सजग बनिये। पँखुड़ियों के मसृण, मखमली स्पर्श के प्रति भी सजग होइये। फूल के कम्पायमान चटकीले रंग के प्रति सजग होइये। अपनी दृष्टि स्थिर रखिये और फूल पर पूर्ण सजगता बनाये रखिये। फूल के प्रत्येक भाग का सूक्ष्मतम निरीक्षण करते-करते अपनी चेतना को उसी में विलीन हो जाने दीजिये। फूल को उस समय तक एकटक देखते जाइये जब तक आपकी आँखों के लिए खुला रहना असंभव न हो जाय। अब आँखें बन्द कर लीजिये।

अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में लाइये और फूल की प्रतिछवि के प्रति सजग हो जाइये। प्रारम्भ में वह रंगीन वृत्त के रूप में उभरेगा और फूल के वास्तविक रंग के ठीक विपरीत रंग का होगा। विश्रान्त होकर आराम से इस प्रतिछवि पर एकाग्र होइये। इस छवि को स्पष्ट करने के लिए कोई तनाव उत्पन्न करने या अधिक प्रयास करने की जरूरत नहीं है। आँखें जैसे-जैसे स्थिर और विश्रान्त होती जायेंगी, छवि अपने आप स्पष्ट होती जायेगी।

पूर्व अभ्यासों के समान ही इसमें भी प्रतिछवि बार-बार विलीन एवं प्रकट होगी। प्रत्येक बार जब छवि विलीन हो तब भ्रू-मध्य में अपना अवधान स्थिर रखिये। फिर कुछ क्षणों में ही छवि प्रकट हो जायेगी। छवि पर एकटक देखते जाइये। अभ्यास करते-करते प्रतिछवि अधिकाधिक स्पष्ट होती जायेगी और अधिक से अधिक बाह्य फूल के समान दिखाई पड़ने लगेगी।

जब छवि अन्ततोगत्वा विलीन हो जाये तब आँखें खोल लीजिये और बाह्य फूल पर पूर्ण एकाग्रता के साथ एकटक देखना शुरू कर दीजिये। इस प्रकार अभ्यास करते जाइये। जब अभ्यास समाप्त हो तब हथेलियों को आपस में रगड़ कर उन्हें आँखों पर रखिये।

विधि 4 – इष्ट देवता पर त्राटक

अपने इष्ट देव की एक छोटी तस्वीर इस अभ्यास हेतु ले लीजिये। लगभग एक वर्ग फुट का काला कागज ले लीजिये और उसके मध्य में दो इंच व्यास का एक गोल छिद्र कर लीजिये। उस छिद्र के पीछे कागज पर अपने इष्ट देवता के चित्र को इस प्रकार चिपका दीजिये कि छिद्र में से चेहरा दिखाई पड़े। चित्र को आँखों की ऊँचाई पर आँखों से एक हाथ की दूरी पर टांग दीजिये। अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व थोड़ी देर काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये, जब तक शरीर पूर्णत: स्थिर एवं निश्चल न हो जाये। अब आँखें खोलकर इष्ट के चित्र पर एकटक देखिये। किसी भी प्रकार आँखें न झपकें न मुँदें। चित्र को देखते समय अपनी दृष्टि को उस वृत्त पर ही केन्द्रित रखिये। अपना अवधान इष्ट के चित्र से इधर-उधर भटकने न दीजिये। इष्ट देवता के चित्र पर पूर्ण एकाग्रता से देखिये। मानो आप उसमें कुछ खोज रहे हों। आपकी दृष्टि स्थिर हो, पर उसमें कोई तनाव न हो। साथ ही आप की एकटक दृष्टि सोद्देश्य हो।

जब तक संभव हो आँखों को खोले रखिये। फिर आँखों को बन्द कर भ्रू-मध्य में उसकी प्रतिछवि को देखिये। पूर्व के अभ्यासों के समान ही भ्रू-मध्य में चेतना रखते हुए प्रतिछवि को विलीन एवं पुन: प्रकट होते रहने दीजिये। जब छवि अन्तत: विलीन हो जाये, तब आँखें खोलकर पुन: उस बाह्य चित्र को एकटक देखिये।

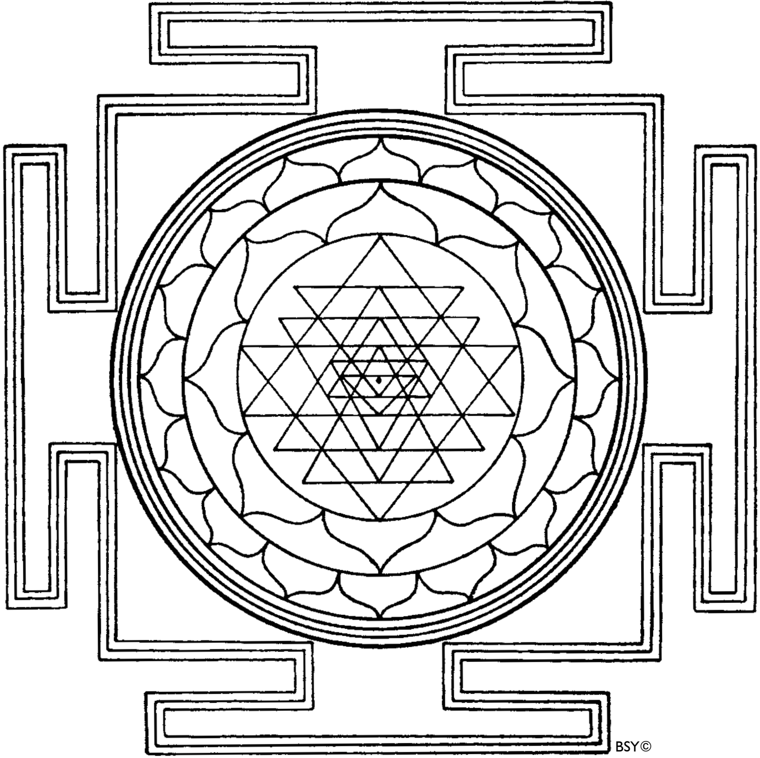
देवता के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सजगता न रहे। देवता के चित्र को एकटक देखते समय अपनी सजगता गहरी होने दीजिये। देवता में चित्रित गहरे अर्थों को समझने का प्रयास कीजिये। अन्त: या बाह्य छवियों को एकटक देखते समय अपनी चेतना को स्थिर एवं एकाग्र रखिये। छवि में अपने को विलीन कर दीजिये। इस अभ्यास को करते जाइये।

विधि 5 – यंत्र पर त्राटक

एक समुचित यन्त्र का चुनाव कर लीजिये, उदाहरणार्थ श्री यन्त्र। उसे किसी आधार पर इस प्रकार रखिये कि वह आँखों के तल पर सीधा खड़ा हो। सम्पूर्ण रेखा चित्र आपको स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ना चाहिए। प्रारम्भ में यंत्र श्वेत-श्याम में बना हो या तामपत्र पर खुदा होना चाहिए। श्री यंत्र में सबसे भीतर वाले लघु त्रिभुज के मध्य में केन्द्रित बिन्दु होता है।

त्राटक

श्री यन्त्र



यदि आप चित्र को समीप से देखेंगे तो आपको सबसे भीतर एक उलटा त्रिभुज दिखाई पड़ेगा। उस त्रिभुज के मध्य में एक छोटा बिन्दु होता है। उसी बिन्दु पर तीन से पाँच मिनटों तक चित्त एकाग्र कीजिये। फिर आँखें बन्द कर मानसिक रूप से उस बिन्दु को देखिये। सम्पूर्ण यंत्र का पुनर्निर्माण मत कीजिये। जब वह दृश्य विलीन हो जाये तो पुन: आँखें खोल कर एकटक देखना प्रारम्भ कीजिये।

एक-दो सप्ताह के पश्चात् जब आप उस बिन्दु को स्पष्टता से देखने में समर्थ हो जायें, तब यंत्र के मध्य में स्थित बिन्दु को घेरने वाले प्रथम सीधे त्रिभुज को एकटक देखिये। त्रिभुज पर पाँच मिनटों तक एकटक देखिये और फिर आँखें बन्द कर लीजिये। उस मध्य स्थित त्रिभुज को मानसिक रूप से देखने का प्रयास कीजिये।

जब आपका यह अभ्यास सिद्ध हो जाये तब प्रथम तीन उलटे त्रिभुजों पर ध्यान केन्द्रित कीजिये और प्रत्येक सप्ताह उसके साथ-साथ एक-एक त्रिभुज को बढ़ाते जाइये जब तक आप सभी उल्टे त्रिभुजों को एक ही बार में स्पष्टता से बाहर और आन्तरिक रूप से न देखने लग जायें।

इसके उपरान्त आप सीधे त्रिभुजों को लीजिये। एक-एक कर इन त्रिभुजों का भी दर्शन विकसित कीजिये, जब तक आप एक ही समय सभी का बाह्य और अन्तर दर्शन न करने लग जायें।

अब एक सीधे और एक उल्टे त्रिभुज को, फिर दो उलटे और दो सीधे त्रिभुजों को संयुक्त करना प्रारम्भ कीजिये। प्रत्येक सप्ताह एक या दो और त्रिभुजों को जोड़ते जाइये जब तक आप सम्पूर्ण आन्तरिक रेखांकन का एक ही बार में बाह्य और अन्त: दर्शन न करने लग जायें।

फिर क्रम-क्रम से वृत्तों को, कमल दलों को, और भूपूरों को इसी प्रकार जोड़े जाइये, जब तक आप सम्पूर्ण चक्र के रेखांकन को एक साथ ही न देखने लग जायें। जब आप आँखें बन्द करें तो मानसिक रूप से बिना प्रयास सम्पूर्ण चक्र का पुनर्निर्माण कर लेने में आपको सक्षम हो जाना चाहिए। अब इस समय आप रंगीन यंत्रों और मंडलों के साथ अभ्यास कर सकते हैं।

विधि 6– त्रिआयामी आकृति पर त्राटक

जब भी आप त्रिआयामी आकृति वाली वस्तुओं पर त्राटक करते हैं तो आपको विशेष रूप से आयामों के प्रति सजग रहना होगा। यहाँ केवल

वस्तु की सजगता महत्त्वपूर्ण नहीं है, वरन् आयामों की सजगता महत्त्वपूर्ण है। पूर्व के अभ्यासों में भी जब आप आँखें बन्द कर लेते हैं और आपकी चेतना में अतीन्द्रिय प्रतिरूप प्रकट होता है तो आपको उन आयामों के प्रति सजग होना होता है, जो वस्तु में हैं। यदि प्रतिरूप में आयाम नहीं हैं तो उन्हें निर्मित कीजिये।

धारणायें दो प्रकार की हैं– 1. आयाम रहित वस्तु पर धारणा और 2. आयाम सहित वस्तु पर धारणा। दूसरे प्रकार की धारणा के साथ ध्यान प्रारम्भ होता है। आयाम सहित वस्तु पर ग्यारह चक्र त्राटक करने से एक ध्यान बनता है। मोमबत्ती की लौ पर त्राटक की स्थिति में जब धारणा स्थिर हो जाती है, तब वहाँ से ध्यान की स्थिति प्रारम्भ होती है और तब मोमबत्ती की लौ आयामों के साथ प्रकट होगी।

कुछ व्यक्ति होते हैं जो तीन आयामों में स्वप्न नहीं देखते, पर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो तीन आयामों में स्वप्न या झांकी ऐसे देखते हैं जैसे बाह्य वास्तविकता में देखते हैं। ऐसा होने का कारण है कि उनकी अतीन्द्रिय क्षमता विशेष रूप से विकसित होती है। इस दूसरे प्रकार की आयाम सहित वस्तु पर धारणा के साथ ध्यान प्रारम्भ होता है, क्योंकि तब जो ध्यान में आन्तरिक रूप से देखा जाता है या जो बाह्य जीवन में देखा जाता है उनमें कोई भिन्नता नहीं रहती। यदि आप किसी वस्तु को ध्यान में देखते हैं तो वह त्रिआयामी सजगता के कारण उतनी ही वास्तविक होती है जितनी वह वास्तविक जीवन में रहती है। इस अभ्यास में वैसी ही जीवन्त सजगता का विकास करना है।

इस अभ्यास को करते समय कोई एक प्रीतिकर वस्तु का चयन कर लीजिये और उस पर धारणा कीजिये। उदाहरणार्थ, आपने एक कुत्ते का चयन किया है। अपने मन को पूर्णतया कुत्ते में तल्लीन मत रखिये, वरन् उसे कुत्ते से सम्बन्धित संगत वस्तुओं और विचारों से सम्बद्ध करने का प्रयास कीजिये। फिर भी, बराबर कुत्ते को ही अपना केन्द्रीय विषय बनाये रखिये। अपने मन को नितान्त असम्बद्ध विचारधारा में बहने मत दीजिये। कुत्ते की आकृति के विषय में सोचिये, विभिन्न प्रकार के कुत्तों के विषय में सोचिये। अपने मन को केन्द्रीय वस्तु कुत्ते पर ही वापस लाइये। कुत्ता जो भोजन करता है उस पर सोचिये। आदमी और कुत्ते में जो सम्बन्ध है उस पर सोचिये। केन्द्रीय वस्तु पर लौटिये। इस प्रकार

अभ्यास करते जाइये। जितने अधिक सम्बद्ध विषय संभव हों, उन्हें लाते जाइये। परन्तु अपने मन को किसी असम्बद्ध वस्तु का विचार मत करने दीजिये।

जब आप एक वस्तु की गवेषणा समाप्त कर लेते हैं तो अन्य वस्तुओं का चयन किया जाता है। स्वेच्छानुसार भावों एवं विचारों की नियंत्रण शक्ति के विकास के लिए यह उत्तम विधि है। पूर्णतया असम्बद्ध विषयों पर उछल-कूद करने के स्थान पर निश्चित साहचर्य-पथ का अनुसरण करने हेतु मन को प्रशिक्षित करने की यह एक अमूल्य विधि है। ध्यान करने एवं साथ ही साथ दैनिक क्रिया-कलापों के लिए मन को प्रशिक्षित करने में भी यह विधि उपयोगी है।

विधि 7 – बाह्य दृश्य पर त्राटक

अपने परिवेश की गहन सजगता विकसित करने हेतु यह अभ्यास उपयोगी है। हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान, अवलोकन, आन्तरिक मानस-दर्शन और स्मृति के विकास में भी यह सहायक है। किसी परिवेश और प्राय: किसी भी स्थिति में इसका अभ्यास किया जा सकता है। इस अभ्यास में एक केन्द्रीय बिन्दु पर एकटक दृष्टि रखते हुए आप अपने सम्पूर्ण दृष्टि क्षेत्र के प्रत्येक विवरण का अवलोकन करने का प्रयास करते हैं। तत्पश्चात् आप आँखें बन्द कर लेते हैं और अन्दर में उसी दृश्य को पुन: उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं। आन्तरिक प्रतिबिम्ब ठीक उतना ही स्पष्ट और विस्तृत विवरण युक्त होना चाहिए जितना बाहरी दृश्य था। अभ्यास प्रारम्भ करते समय एक ऐसा स्थान चयन करना आसान है जहाँ बहुत अधिक चीजें देखने को नहीं हैं। जब आप अपेक्षाकृत सामान्य दृश्यों का स्पष्टता एवं जीवन्तता के साथ मानस दर्शन कर सकते हैं तब ऐसे स्थानों का चयन करें जिनमें अधिक विविधता हो।

आश्वस्त हो जाइये कि आपका शरीर अभ्यास की अवधि में पूरे विश्राम में है। आपकी दृष्टि स्थिर हो और आपकी सजगता आपके सामने के दृश्य की प्रत्येक वस्तु पर जानी चाहिए। दृश्य के प्रत्येक अंश का यथासंभव अधिक से अधिक विस्तार से सभी विवरणों के साथ अवलोकन करने का प्रयास कीजिये। सभी वस्तुओं के रंगों, आकृतियों, संरचना और आयामों को देखिये। जब आपको लगे कि आपने सम्पूर्ण दृश्य अच्छी तरह देख

लिया है तब आँखें बन्द कीजिये। अब उस दृश्य को अपने अन्दर पुन: उत्पन्न कीजिये। अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में रखिये और अपने भीतर प्रतिबिम्ब निर्मित होने दीजिये जैसा कि बाहर देखते समय निर्मित हुआ था। पूरे दृश्य को त्रि-आयामी रूप में देखने का प्रयास करना है।

जब बिम्ब अस्पष्ट हो जाये तब आँखें खोल लीजिये। अब दृश्य को स्थिरता से एकटक देखिये और उस दृश्य के सूक्ष्मतर विवरणों को भी देखिये। इस प्रकार अभ्यास करते जाइये।

इसका एक वैकल्पिक अभ्यास हो सकता है– ऐसे दृश्य को देखना जिसमें कोई एक केन्द्रीय आकृति हो। उस केन्द्रीय आकृति पर एकटक देखिये और सम्पूर्ण दृश्य को कुछ देर तक देखिये। फिर आँखें बन्द कर लीजिये और उसी दृश्य को आन्तरिक रूप से देखिये। एक स्पष्ट आन्तरिक चित्र को देखने का प्रयास कीजिये। तत्पश्चात् धीरे-धीरे दृश्य से उसकी पृष्ठभूमि को मिटाते जाइये। उदाहरणार्थ– पहले आकाश को मिटाइये फिर पृष्ठभूमि से वृक्षों को मिटाइये, फिर केन्द्रीय आकृति के चारों ओर जो कुछ भी है उसे मिटाइये। अन्ततोगत्वा केवल केन्द्रीय विषय को ही देखिये। जो संभवत: एक गाय या एक मानवाकृति हो सकती है। थोड़ी देर तक इस वस्तु पर अपनी सजगता को लगाये रखिये। इसके उपरान्त पुन: धीरे-धीरे पूरे चित्र को उत्पन्न कीजिये, परन्तु विपरीत क्रम में। जिसको अन्त में मिटाया था उसे पहले और जिसे प्रारम्भ में मिटाया था उसे अन्त में उत्पन्न कीजिये। अन्त में आपको सम्पूर्ण दृश्य को पुन: देखना चाहिए।

विधि 8– अपनी छाया पर त्राटक

इस अभ्यास को छाया उपासना कहते हैं। सूर्य की ओर पीठ करके खड़े हो जाइये। अपनी आँखें खोल लीजिये और भूमि पर पड़ रही अपनी छाया को एकटक देखिये। छाया में विशुद्धि चक्र के स्थान पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कीजिये। वहाँ कोई विशेष चिह्न नहीं है, आपको मानसिक रूप से वह बिन्दु उत्पन्न करना होगा। पाँच मिनटों तक या जितनी देर संभव हो, छाया में विशुद्धि चक्र के स्थान पर स्थिर दृष्टि से एकटक देखते रहिये।

जब छाया पर अब एक सेकेण्ड भी और देखना असम्भव लगे तब सीधे आकाश में देखिये। ऊपर की ओर देखते समय आपको आकाशीय

पृष्ठभूमि में एक विशाल छाया उभरती दिखेगी। इसका रंग रूपहला होगा जो कुछ-कुछ अस्पष्ट-सा लगेगा। जब तक यह छाया विलीन न हो जाये इसे एकटक देखते रहिये। फिर इसे पुनः उत्पन्न कीजिये। जैसा पहले अभ्यासों में किया था। प्रारम्भ में इसे पुनः उत्पन्न करना कठिन होगा, परन्तु एक-दो बार के बाद तो आप कर ही सकते हैं।

अब आँखें बन्द कर लीजिये और उन्हें पूर्ण विश्रान्त कर लीजिये। जब वे विश्राम कर लें तब अपनी छाया पर विशुद्धि चक्र के स्थान पर पुनः एकटक देखना प्रारम्भ कीजिये। कुछ मिनटों के पश्चात् अविलम्ब शीघ्रता से ऊपर देखिये और आकाश में स्थिरतापूर्वक एकटक देखिये। ऐसा तब तक करते जाइये जब तक आकाश में दिखती छाया आपकी अपनी छाया का रूप न ले ले।

विधि 9 – अपने ही प्रतिबिम्ब पर त्राटक

आप एक दर्पण या स्थिर जलाशय, तालाब या झील में दिख रहे अपने प्रतिबिम्ब पर भी त्राटक का अभ्यास कर सकते हैं। इस अभ्यास को करने का सुन्दर समय है जब आकाश में सूर्य शीर्ष पर हो। रात या मेघाच्छन्न आकाश या फिर वर्षा के दिनों में नहीं। यदि बाहर में अन्धेरा है तो कमरे में पर्याप्त प्रकाश होना चाहिए जिससे आँखों पर जोर न पड़े।

जब आप अपने प्रतिबिम्ब पर त्राटक का अभ्यास करते हैं तब इतना स्मरण रखिये कि आप जो भी देख रहे हैं वह आपकी ही अभिव्यक्ति या प्रक्षेपण है। बाहर से कुछ भी नहीं आ रहा है। इस प्रकार के त्राटक का अभ्यास करते समय यदि आप किसी अतीन्द्रिय आविर्भाव के प्राकट्य का अनुभव करते हैं तब अच्छा होगा कि आप यह अभ्यास छोड़ दें।

दोपहर में किसी जलाशय, तालाब या झील के किनारे बैठ जाइये। यदि आप दर्पण का प्रयोग कर रहे हैं तब टेबुल पर एक काला कपड़ा बिछा लीजिये तथा आदमकद शीशे के सामने खड़े होकर या बैठ कर अभ्यास कीजिये।

अपनी स्थिति व्यवस्थित कर लीजिये और अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिये। अपने शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता पर एकाग्र होइये। आँखें खोल लीजिये और दर्पण या जल में पड़ रहे प्रतिबिम्ब को एकटक देखिये। प्रतिबिम्ब के भ्रूमध्य पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कीजिये। इस बिन्दु

पर लगभग पाँच मिनट स्थिर दृष्टि से देखते रहिये या जब तक और एक भी क्षण दृष्टि स्थिर रखना असंभव हो जाये।

इस स्थल पर आँखें बन्द कर लीजिये और भीतर में अपने प्रतिबिम्ब की कल्पना कीजिये। प्रारम्भ में आपको अस्पष्ट धुँधला रेखाचित्र दिखाई पड़ेगा। क्रमशः अभ्यास करते-करते रेखा चित्र स्पष्टतर हो जायेगा। अन्ततोगत्वा आप अपना पूर्ण प्रतिबिम्ब स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ हो जायेंगे। तब आप आन्तरिक प्रतिबिम्ब की भ्रू-मध्य पर धारणा कीजिये।

पूर्व के अभ्यासों के समान ही आन्तरिक प्रतिबिम्ब हल्का दिखाई पड़ेगा, लुप्त होगा और पुनः प्रकट होगा। जब तक संभव हो सके तब तक आप उसे पुनः प्रकट करने का प्रयास कीजिये। तत्पश्चात् आँखें खोल लीजिये और जल या दर्पण में दिख रहे बाह्य प्रतिबिम्ब पर एकटक देखना शुरू कर दीजिये।

विधि 10 – स्फटिक पर त्राटक

जब धारणा की वस्तु के लिए स्फटिक का उपयोग किया जाता है तब आपको अभ्यास मन्द प्रकाश में करना चाहिए, एक ऐसे कमरे में जहाँ प्रकाश न तो अत्यधिक हो और न ही अँधेरा। पहले टेबुल पर एक काला कपड़ा बिछा लीजिये। फिर उस पर एक आधार रखकर उसके ऊपर स्फटिक को रख लीजिये।

बैठ जाइये और अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिये। अपने शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता पर एकाग्र होइये। आँखें खोल लीजिये और स्फटिक पर एकटक देखिये। आपको स्फटिक के अन्दर देखना चाहिए, उसकी बाह्य सतह को नहीं। आपकी चेतना और दृष्टि स्फटिक के केन्द्र तक प्रवेश कर जानी चाहिए।

जब आप स्फटिक के केन्द्र में एकटक देखेंगे, आपको कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। यहाँ एक बाह्य वस्तु पर त्राटक और शून्य पर त्राटक, दोनों को संयुक्त किया जाता है। जब आप काफी देर तक स्फटिक में एकटक देखते हैं तब मन रिक्त हो जाता है और झाँकियाँ आने लगती हैं, आप आँख खोले रखें तब भी।

सामान्य रूप से बाह्य वस्तुओं पर एकटक दृष्टि तीन से पाँच मिनटों तक स्थिर रखी जाती है। पर इस अभ्यास में अपवाद है। स्फटिक पर त्राटक

में आप धारणा 10 मिनटों तक भी कर सकते हैं, परन्तु न अश्रुपात हो, न आँखों पर जोर पड़े।

आँखों को बिना झपकाये आप को स्फटिक को तब तक देखना है जब तक संभव हो। आँखों की पेशियाँ पूर्णतया विश्रान्त रहें। पलकें भी न गिरें। जिस क्षण आपको तनाव लगे, आँखें बन्द कर लीजिये और उन्हें आराम दीजिये। जब आँखें बन्द रहें तब आपको स्फटिक के विषय में सोचना भी नहीं है।

स्फटिक पर धारणा करते समय एकाग्रता अतिशीघ्र आ जाती है। यह अभ्यास दूर संवेदन की क्षमता विकसित करता है, क्योंकि स्फटिक में ध्वनि तरंगों को आकृष्ट करने का गुण है। रेडियो सेटों में भी ध्वनि तरंगों को आकृष्ट करने हेतु स्फटिक लगे रहते हैं। पर वे कृत्रिम होते हैं। शुद्ध स्फटिक अधिक सूक्ष्म एवं शक्तिशाली होते हैं।

विधि 11– ज्योतिर्लिंग पर त्राटक

ज्योतिर्लिंग पर एकटक देखना त्राटक का सर्वोत्तम प्रकार है। यह एक प्रदीप्त अण्डवक्र आकृति का स्फटिक होता है, जो भारत में नर्मदा के तट पर मिलता है। यदि आप दिन में किसी समय ज्योतिर्लिंग को जल के प्रवाह में रख दें तो यह विभिन्न प्रकार के रंग, दृश्य और चित्र उत्पन्न करता है। आप बिना जोर डाले इस पर केवल एकटक देखते जाइये। इसमें सर्पों, हाथियों, वनों, नदियों, भू-दृश्य का जगत् उत्पन्न एवं नष्ट होता दिखाई पड़ सकता है।

भारत में बारह स्थान हैं जहाँ ज्योतिर्लिंगों की स्थापना है। सोमनाथेश्वर, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, ओंकारेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, केदारेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर नागेश्वर, घृष्णेश्वर, और रामेश्वर।

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्री शैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ।।
परत्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
सेतु बन्धे तु रामेशं नागेशं दारूकवने ।।
वाराणस्यांतु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे ।
हिमालयेतु केदारं धुरामेसं च शिवालये ।।

ये ज्योतिर्लिंग हैं जिन पर त्राटक किया जा सकता है। इस भौतिक जगत् में जो कुछ है वह आन्तरिक सत्य के आधार पर ही निर्मित है। महान् ऋषियों ने अपने अन्तसतम में लिंगम् का दर्शन किया और उसी दृश्य से बाह्य प्रतीक बने। उपनिषदों में यह कहा गया है कि बाह्य शिवलिंगम् पर त्राटक आन्तरिक सूक्ष्म शरीर पर धारणा का समानार्थ है। जो अण्डवक्र आकृति बाहर में दिखाई पड़ती है, अपने अन्दर दिखाई पड़ने वाले सूक्ष्म शरीर की भी वही आकृति है।

ज्योतिर्लिंग पर त्राटक का अभ्यास करने से साधक को आत्म-साक्षात्कार होता है और उसे जन्म-मृत्यु के रहस्यों का ज्ञान होता है। वह अपनी आध्यात्मिक कामना पूर्ण करने में समर्थ होता है। अन्ततोगत्वा वह अपने अन्दर शाश्वत जीवन का दर्शन करता है। ज्योतिर्लिंग स्वयम्भू है। किसी ने उसे बनाया नहीं है। यह आपके जन्म के पूर्व से ही विद्यमान था, क्योंकि भौतिक शरीर के पूर्व सूक्ष्म शरीर विद्यमान था।

यह ज्योतिर्लिंग विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है। स्थूल जगत् में यह मन्दिरों में दिखाई पड़ता है। चेतना के उच्चतर धरातल पर यह प्रकाश के रूप में दिखाई पड़ता है। इस ज्योतिर्लिंग की उपासना के लिए आपको प्रार्थना, मंत्र या पुष्पार्पण की आवश्यकता नहीं है। आपको केवल ज्योतिर्लिंग के समक्ष बैठ जाना है और एक बिल्वपत्र उसके सामने रखकर उस पर जल गिराना है और उस पर एकटक ध्यान लगाना है, स्थूल रूप को अपने में आत्मसात् करने का प्रयास करना है। और कुछ नहीं करना है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आप की उसमें आस्था है या नहीं है। यह एक सार्वभौम प्रतीक है।

हरि ॐ तत्सत्

त्राटक तीन

अन्तर्दृष्टि

विधि 1– एक मोमबत्ती की लौ पर अन्तर्त्राटक

स्थिर सुखद आसन में बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये और अभ्यास की पूरी अवधि में आँखें बन्द ही रखिये। काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये। अपने सम्पूर्ण शरीर की स्थिरता के प्रति सजग होइये। शरीर निश्चल है इसका अनुभव कीजिये। यह शरीर भूमि में जड़ा है, मानो यह भूमि का ही हिस्सा हो। कुछ मिनटों तक काया स्थैर्यम् का अभ्यास करते जाइये जब तक आपको यह अनुभव न हो कि शरीर एक मूर्ति के समान कठोर और कड़ा हो गया है।

अपनी सजगता भ्रू-मध्य में ले आइये। बिना किसी तनाव के दोनों भौहों के मध्य में हो रही संवेदना पर अपने अवधान को केन्द्रित कीजिये। भ्रूमध्य के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर नहीं सोचिये। उस समय तक ऐसा करते जाइये जब तक इस बिन्दु पर एक निश्चित उत्तेजना का अनुभव न हो।

अब भ्रूमध्य में एक मोमबत्ती की लौ की कल्पना कीजिये। बिम्ब को स्थिरतापूर्वक धारण किये रहिये। यह आप देख न सकें तो कल्पना करें। यदि बिम्ब मन्द पड़ जाये या विलीन हो जाये तो उसे पुनः उत्पन्न कीजिये। मोमबत्ती की लौ के आन्तरिक दृश्य को देखते रहिये। उसे देखते जाइये। वह लुप्त हो सकता है और पुनः प्रकट हो सकता है। भ्रू-मध्य में बिम्ब को उत्पन्न करते जाइये। अभ्यास के द्वारा बिम्ब इतना स्पष्ट एवं जीवन्त हो जाना चाहिए मानो आप उसे खुली आँखों से देख रहे हैं। मोमबत्ती की लौ के बिम्ब को स्थिरतापूर्वक भ्रू-मध्य में धारण किये रहें, उसमें कम्पन न हो।

मोमबत्ती की लौ की लगातार अखण्ड सजगता रहे। क्रमश: सभी चीजों को विलीन हो जाने दें, केवल मोमबत्ती की लौ की सजगता रह जाये। आपके मन का बिम्ब से पूर्णतया तादात्म्य हो जाये, मन उसमें विलीन हो जाये। जितनी देर संभव हो, ऐसा करते जाइये।

तत्पश्चात् धीरे-धीरे बिम्ब को जाने दें। स्वाभाविक सहज श्वास की सजगता लाइये। अपने श्वास के मन्द एवं सम प्रवाह के प्रति सजग बन जाइये। अपने शरीर और ध्यान के आसन के प्रति सजग बनिये। कमरे के भीतर एवं बाहर होने वाली आवाजों के प्रति सजग हो जाइये। गहरी श्वास लीजिये और तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये। अब धीरे-धीरे शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 2– बिम्ब में देखना

इस अभ्यास के लिए आपको एक ऐसे प्रतीक या वस्तु का चयन करना चाहिए जिसका आपके लिए कोई अर्थ या महत्त्व हो। उस वस्तु या प्रतीक में आपकी रुचि या आकर्षण होना चाहिए। इस प्रकार उसका मानस दर्शन करना, उस प्रतीक या वस्तु पर लम्बे समय तक अवधान बनाये रखना, तथा उसमें निहित अर्थ की गहराई में खोज करना सरल होगा।

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये। शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक, जो भी तनाव हो उसे भूल जाइये। कुछ देर के लिए काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये। शरीर और भी निश्चल एवं स्थिर हो रहा है, ऐसा अनुभव कीजिये।

अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में ले आइये। इस बिन्दु पर हो रही संवेदना के प्रति सजग होइये। कोई जोर न पड़े, न तनाव हो, भ्रू-मध्य में हो रही संवेदना के प्रति एक विश्रान्त सजगता रहे। अन्य सभी चीजों का ख्याल समाप्त होने दीजिये जब तक कि केवल भ्रू-मध्य केन्द्र की सजगता न बच जाये।

अब चयन किये गये प्रतीक या वस्तु का बिम्ब धीरे-धीरे उत्पन्न करने का प्रयास कीजिये। उस वस्तु के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंशों को भी उत्पन्न कीजिये। प्रत्येक रेखा और गोलाइयों को देखिये। वस्तु के रंग और आयामों को देखिये। वस्तु का पूर्ण स्पष्टता एवं जीवन्तता के साथ मानसिक दर्शन कीजिये, मानो आप उसे खुली आँखों से देख रहे हैं। यदि आपने 'ॐ' का चुनाव किया है तो भ्रू-मध्य में रूपहले एवं चमकीले 'ॐ' को देखिये।

उसके प्रत्येक वक्र रेखांकन को देखिये। इसके बिन्दु को देखिये। चमकीले एवं स्पन्दित ॐ के प्रतीक को देखिये। प्रतीक पर सजगता को प्रगाढ़ कीजिये। अन्य कोई सजगता न रहे, केवल ॐ की सजगता रहे। अभ्यास की पूरी अवधि में भ्रू-मध्य में प्रतीक स्पष्ट एवं जीवन्त बना रहे।

जैसे-जैसे आपकी सजगता गहरी होती जाये, आप अनुभव कीजिये कि आप प्रतीक को देख रहे हैं और उसकी परत दर-परत छीलते जा रहे हैं। अनुभव कीजिये कि आप प्रतीक में और अधिक गहराई तक जा रहे हैं तथा उसमें निहित सार एवं स्वभाव को समझते जा रहे हैं। अपनी सजगता और गहरी कीजिये। प्रतीक में अधिक गहराई से देखिये। कोई प्रयास नहीं, मात्र पूर्ण सजगता। प्रतीक में निहित सूक्ष्म अर्थों के प्रति अपने को ग्रहणशील बनाते जाइये। अभ्यास चलता रहे। अब धीरे-धीरे बिम्ब को विलीन हो जाने दीजिये। स्वाभाविक श्वास की ओर अपनी सजगता को ले आइये। कुछ क्षणों तक अपनी श्वास के मन्द एवं सम प्रवाह का अनुसरण कीजिये। अपने पूरे शरीर के प्रति सजग होइये। ध्यान के जिस आसन में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। भूमि एवं अपने शरीर के स्पर्श बिन्दुओं के प्रति सजग होइये। बाह्य वातावरण में जो भी ध्वनियाँ हो रही हैं उनके प्रति सजग बनिये। अपने को पूर्णरूपेण बहिर्मुखी बनाइये। आँखें खोलिये और शरीर को हिलाइये।

विधि 3– तारे पर अन्तर्त्राटक

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठिये, मेरुदण्ड सीधा हो, सिर उन्नत हो और आँखें बन्द हों। हथेलियों को घुटनों पर ज्ञान या चिन्मुद्रा में रखिये। सम्पूर्ण शरीर की सजगता विकसित कीजिये। क्रमानुसार शरीर के सभी अंगों में चेतना को घुमाइये और सजगतापूर्वक उन्हें विश्रान्त करते जाइये। अनुभव कीजिये कि शरीर निश्चल एवं स्थिर हो रहा है। भूमि और शरीर के सम्पर्क का अनुभव कीजिये। भूमि और शरीर के सम्पर्क की सजगता को गहरा करते जाइये। अनुभव कीजिये कि शरीर भूमि का ही एक भाग है, मानो भूमि से उगा हुआ एक वृक्ष हो। अनुभव कीजिये कि शरीर भूमि में ही बद्धमूल है। निश्चल और गतिहीन शरीर की सजगता रहे।

श्वास की मन्द एवं लयबद्ध गति के प्रति सजग होइये। प्रत्येक श्वास एवं प्रश्वास को देखिये। अब अपनी सजगता को भ्रू-मध्य में ले आइये। भ्रू-मध्य की सजगता को तीव्र कीजिये। इस बिन्दु पर हो रही संवेदना के प्रति

सजग होने का प्रयास कीजिये। केवल भ्रू-मध्य की सजगता रखिये, अन्य किसी चीज की नहीं। कुछ क्षणों तक अपनी सजगता को भ्रू-मध्य में रखिये और तेज होती जा रही संवेदना का अनुभव कीजिये।

अब भ्रू-मध्य में इस बिन्दु पर एक लघु चमकीले तारे को मानसिक रूप से देखिये। भ्रूमध्य में तारे के स्पष्ट एवं जीवन्त बिम्ब को उत्पन्न करने का प्रयास कीजिये। तारे को देखते जाइये। अनन्त आकाश में एक मात्र लघु तारे को देखिये। कभी-कभी तारा जगमगाता है।

यदि आपको लगे कि बिम्ब अस्पष्ट हो रहा है या हट रहा है तब पुन: अपनी सजगता को भ्रूमध्य में केन्द्रित कीजिये। निस्सीम आकाश के मध्य में छोटे से जगमगाते तारे को देखिये। उसे पूर्ण स्पष्टता से देखिये, पर बिना प्रयास और तनाव के। बिम्ब पर विश्रान्त दृष्टि बिम्ब स्पष्ट रखने में तथा भ्रूमध्य से विचलित न होने देने में सहायता देगी। यदि आप तारे का स्पष्ट रूप से मानस दर्शन कर सकते हैं तो यह इस बात का संकेत है कि आप का तीसरा नेत्र, परम चेतना का प्रतीक, जाग्रत हो रहा है। उस छोटे तारे पर स्थिर दृष्टि से देखते जाइये।

अब चिदाकाश के शून्य में बिम्ब को विलीन हो जाने दीजिये। अब आपके आन्तरिक आकाश में जो भी बिम्ब, विचार या भावना प्रकट होती है उसके प्रति सजग होइये। पर उनमें से किसी पर न विचार कीजिये, न उसका दमन कीजिये और न उनमें उलझिये। आकाश में जो प्रकट हो रहा है उसके मात्र साक्षी या द्रष्टा रहिये। प्रत्येक विचार या बिम्ब को देखिये, उन्हें विलीन होने दीजिये और अगले पर बढ़ते जाइये। कोई बिम्ब या विचार नहीं भी हो, तब भी उसी स्थिति के प्रति सजग होइये। पूर्ण सजगता के साथ कुछ क्षणों तक ऐसा करते जाइये। तत्पश्चात् अपनी सजगता अपने स्थूल शरीर में वापस लाइये। शरीर और भूमि के सम्पर्क को अनुभव कीजिये। परिवेश के प्रति सजग होइये। जब आप तैयार हो जायें तब शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 4– शिवलिंगम् पर अन्तर्त्राटक

पूर्व अभ्यास के समान ही शिवलिंगम् पर त्राटक करते हैं। अन्तर्त्राटक के लिए स्थिर शरीर एवं मन आवश्यक है। अतएव कोई भी अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ देर तक काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये और इस

प्रकार शारीरिक स्थिरता विकसित कीजिये। मन के साथ-साथ शरीर को शान्त करने हेतु काया स्थैर्यम् एक शक्तिशाली अभ्यास है। जब शरीर और मन दोनों शान्त एवं नीरव हो जायें तब अपनी सजगता भ्रू-मध्य में ले आइये। एक काले शिवलिंगम् की कल्पना कीजिये। शिवलिंग के स्याह, काले अण्डवक्र स्वरूप को देखिये। कल्पना कीजिये कि शिवलिंगम् पर जल गिराया जा रहा है। भ्रू-मध्य में इस शिवलिंग की सजगता को तीव्र कीजिये। जैसा पूर्व अभ्यास में बताया गया है, यदि बिम्ब अस्पष्ट हो या अस्थिर हो तब पुन: भ्रूमध्य में बिम्ब को स्पष्ट एवं जीवन्त रूप में उत्पन्न कीजिये। आपकी सजगता पूर्णतया स्थिर एवं एकाग्र हो। अपने अवधान को प्रकट होने वाले अन्य किसी विचार या बिम्ब में न उलझने दीजिये। उस श्याम शिवलिंगम् पर पूर्ण रूपेण धारणा कीजिये। उस बिम्ब पर आप अपनी सजगता को इतना गहरा कीजिये कि आपके लिए वह पूर्ण स्पष्ट एवं जीवन्त हो जाये। शिवलिंगम् आपकी कारण चेतना का प्रतीक है। जितनी भी देर संभव हो सके बिम्ब की चेतना बनाये रखिये। तत्पश्चात् उसे पृष्ठभूमि में विलीन हो जाने दीजिये। चिदाकाश में देखिये। जो भी वहाँ प्रकट हो उसे देखिये। कुछ देर बाद अपनी सजगता अपने शरीर और उसके परिवेश में ले आइये। जब आप स्थिर हो जायें तब शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 5– अन्तश्चक्षु पर त्राटक

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ कर कुछ देर तक काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये। अभ्यास की पूरी अवधि में शरीर पूर्णतया अचल रहे। सूक्ष्म श्वसन के प्रति सजग होइये। कण्ठ क्षेत्र से आने-जाने वाली प्रत्येक सूक्ष्म श्वास को देखिये। श्वास मन्द और गहरी है।

अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में ले आइये। भ्रू-मध्य में धारणा कीजिये और वहाँ दबाव बिन्दु की स्थिति का पता कीजिये। एक मानव नेत्र की कल्पना कीजिये। एक बन्द मानव नेत्र की कल्पना कीजिये। स्पष्टतया उसको पूर्ण विस्तार से देखिये। आँख की बरौनियों, भौंह, तथा आँख की वक्रता एवं आकृति को देखिये। बिम्ब कुछ देर के लिए आकर विलीन हो जा सकता है, इसकी चिन्ता न कीजिये। बिम्ब को पुन: उत्पन्न कीजिये। भ्रू-मध्य में इस बन्द मानव नेत्र को देखते जाइये।

अब इस आँख को खोलने का उपक्रम कीजिये। यह शारीरिक नहीं, वरन् अतीन्द्रिय प्रयास है। इस नेत्र को खोलने के लिए आप अतीन्द्रिय प्रयास अवश्य कीजिये। तीसरा नेत्र अन्त: प्रज्ञा नेत्र का प्रतीक है। अपनी सम्पूर्ण चेतना इसी नेत्र पर केन्द्रित कीजिये। शरीर और मन में तनाव या कड़ापन न आये, वरन् पूरी अवधि में वे विश्रान्त रहें। आप जो प्रयास कर रहे हैं, वह आन्तरिक है। तीसरे नेत्र को खोलने के प्रयास करते जाइये।

जैसे-जैसे आप इस नेत्र पर तीव्रतापूर्वक एकटक देखते हैं, यह धीरे-धीरे खुलना शुरू हो जाता है। इसी प्रकार करते जाइये। जैसे ही तृतीय नेत्र सक्रिय होता है, एक नये प्रकार का दृश्य उभरता है तथा अन्त: प्रज्ञा शक्ति जाग्रत होती है।

अब इस प्रज्ञा नेत्र के बिम्ब को विलीन हो जाने दीजिये। अपनी चेतना को स्थूल शरीर में तथा बाह्य परिवेश में ले आइये। जब आप तैयार हो जायें तब शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 6– द्रष्टा की चेतना

ध्यान के किसी सुखद आसन में शरीर को सुखपूर्वक समायोजित होने दीजिये। मेरुदण्ड उन्नत हो, आँखें बन्द रहें तथा हथेलियाँ घुटनों पर या गोद में रहें। सम्पूर्ण शरीर के प्रति चैतन्य होकर थोड़ी देर के लिए काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये। पूर्ण निश्चलता विकसित कीजिये। मन और शरीर नीरव एवं निश्चल हों।

चेतना को आन्तरिक आकाश में लाइये। अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के प्रति सजग होइये। शरीर और विचार ही नहीं, वरन् पूर्ण अस्तित्व के प्रति सजग होइये। मैं के प्रति सजग होइये, जो आपका सम्पूर्ण अस्तित्व है। इस 'मैं' पर धारणा कीजिये जो अपरिवर्तनशील है, शरीर में, भावनाओं में या वातावरण में भी परिवर्तन होने पर जो परिवर्तित नहीं होता है। शरीर के द्रष्टा, विचारों के द्रष्टा, अन्दर और बाहर सभी चीजों के साक्षी 'मैं' पर धारणा कीजिये। 'मैं' की समरस सजगता। आपके लिए जैसे भी ठीक हो वैसे ही इसे कीजिये।

जब आप 'मैं' की समरस सजगता विकसित कर लेते हैं तो सभी चीजें उसमें समाहित हो जाती हैं। उससे भिन्न कुछ भी नहीं रह जाता है। सब उसी में, सम्मिलित हो जाते हैं। स्वचेतना का विकास कीजिये, सभी चीजों

में 'मैं हूँ'। समस्त चेतना को इस अहम्-चेतना में सम्मिलित कीजिये। अपने समस्त व्यक्तित्व के प्रति सजग होइये। अपने सजग होने के प्रति भी सजग होइये।

अब अपने से पूछिये, 'मैं कौन हूँ?' 'मैं' की चेतना वह है जिसके द्वारा अपने सहित सभी चीजों का ज्ञान होता है। मैं मात्र विद्यमान ही नहीं हूँ, वरन् मैं जानता भी हूँ कि मैं विद्यमान हूँ। मैं अपने समस्त विचारों का द्रष्टा हूँ। मैं अपना भी द्रष्टा हूँ। अब इस द्रष्टा भाव को सभी चीजों की सजगता पर धारणा कीजिये। यह द्रष्टा और दृश्य दोनों की सजगता है। द्रष्टा और दृश्य दोनों की द्विविध सजगता को विकसित कीजिये। द्रष्टा अमूर्त्त है, पर दृश्य भौतिक या स्थूल धरातल पर है। शरीर को देखिये। देखने की प्रक्रिया के प्रति, शरीर के प्रति, सजगता की क्षमता के प्रति सजग होइये। और गहरे उतरिये और सजग होइये कि कौन इस शरीर को देख रहा है, कौन इसका साक्षी है। अपने अन्दर और गहरे उतरिये। द्रष्टा और द्रष्टा के भी द्रष्टा के प्रति सजग बनिये। पूछिये, 'मैं कौन हूँ?'

अब अभ्यास समाप्त करने की तैयारी कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने शरीर में अपनी सजगता वापस लाइये। अपने शरीर के भार और भूमि के प्रति सजग होइये। अपने आस-पास की ध्वनियों को सुनिये। अपने को पूर्णत: बहिर्मुखी बनाइये। जब आपको लगे कि आप तैयार हैं तब शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

त्राटक चार

शून्य दृष्टि

त्राटक का यह चरण, जिसे शून्य दृष्टि कहते हैं, पूर्व के चरणों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें अवधान को केन्द्रित करने हेतु कोई वस्तु नहीं होती है। प्रस्तुत अभ्यास में दृष्टि शून्य या आकाश में केन्द्रित की जाती है और अभ्यास की पूरी अवधि में चेतना स्थिर और एकाग्र रहनी चाहिए। ऐसा करना कठिन है, क्योंकि मन या तो भटकने लगता है या नींद आ जाती है। अत: शून्य दृष्टि का अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व अन्तर्त्राटक सिद्ध हो जाना चाहिए, जिससे साधक को साधना का पूरा लाभ प्राप्त हो सके।

विधि 1– भूचरी मुद्रा

भूचरी मुद्रा अगोचरी एवं शाम्भवी मुद्राओं की समवर्गी तकनीक है और ये तीनों ही त्राटक के उत्तम रूप हैं। अगोचरी और शाम्भवी मुद्राओं को प्राय: अन्य योग तकनीकों के साथ किया जाता है या ये व्यक्ति के अपने योगाभ्यास कार्यक्रम में भी विशेष रूप से की जाती हैं। दूसरी ओर भूचरी मुद्रा है, जिसका अभ्यास दैनिक कार्यक्रमों में जोड़ा जा सकता है। दूसरों को इसका आभास न होते हुए भी कि आप एक यौगिक अभ्यास कर रहे हैं, दैनिक जीवन में इसका अभ्यास किया जा सकता है। यदि सजगता के साथ इसका अभ्यास पर्याप्त समय तक किया जाये तो मानसिक शान्ति एवं एकाग्रता की प्राप्ति हेतु यह उत्तम, सरल, पर प्रभावशाली अभ्यास है।

'भू' का अर्थ है भूमि, और 'चरी' का अर्थ है जो 'गतिशील' है, पर इस साधना को सामान्यत: शून्य दृष्टि कहा जाता है। यह साधना कहीं भी और किसी भी स्थिति में की जा सकती है। आप इसे खड़े होकर, बैठ या

लेटकर, जैसे भी आप चाहें, कर सकते हैं, आप इसे अपने घर में एकान्त में कर सकते हैं, काम के समय, खेल के समय या सुविधानुसार कभी भी कर सकते हैं। फिर भी यदि आप घर में बैठकर कर रहे हैं तो एक सपाट दिवाल के सामने बैठें। यह सुनिश्चित कर लें कि आपकी दृष्टि में कोई चीज बाधक नहीं है जो अभ्यास के समय आपके अवधान में विक्षेप डाले। यह आवश्यक नहीं है, पर उचित है।

अभ्यास प्रारम्भ करते समय शुरू में निम्नांकित विधि का पालन करना ठीक रहेगा, जब तक आँखें शून्य पर केन्द्रित होने की अभ्यस्त न हो जायें। जब साधक को इसमें निपुणता प्राप्त हो जाये तब भूचरी मुद्रा का अभ्यास किया जा सकता है।

शरीर को स्थिर एवं सुखद स्थिति में रखिये। अभ्यास की पूरी अवधि में आँखें खुली रहें। अपना दाहिना हाथ उठाकर चेहरे के सामने लाइये। हथेली को खोलकर क्षैतिज रूप में इस प्रकार रखिये कि उसका मुख धरती की ओर रहे और अँगूठा बगल से ऊपरी होठ का स्पर्श करता रहे और सभी ऊँगलियाँ आपस में सटी रहें। हाथ की कुहनी शरीर की बगल में रहे। अपनी आँखों को कनिष्ठा ऊँगली के अन्तिम छोर पर केन्द्रित कीजिये जो आपकी आँखों से आपके हाथ का अधिकतम दूरस्थ बिन्दु होगा।

कुछ देर तक, यदि संभव हो तो, बिना पलक गिराये या झपकाये कनिष्ठा ऊँगली के छोर पर तीव्र दृष्टि से एकटक देखिये। यदि इस बीच कोई अन्य विचार आये तो आने दीजिये, पर ऊँगली के छोर की अनवरत सजगता बनाये रखने का प्रयास कीजिये। तत्पश्चात् एक-आध मिनट के बाद हाथ हटा लीजिये, पर जहाँ कनिष्ठा ऊँगली थी उसी बिन्दु पर एकटक दृष्टि लगी रहे।

चेहरे के सामने जहाँ कनिष्ठा ऊँगली की स्थिति थी, वहीं शून्य में अपनी एकटक दृष्टि को तीव्रता के साथ लगाये रहिये। शून्यता में, शून्य आकाश में पूर्णतया लीन हो जाइये। कोई विचार आये तो उसके प्रति सजग होइये, पर साथ ही साथ अपनी सजगता को शून्य में ही टिकाये रखिये। यदि कोई चीज आँखों के सामने आ भी रही है तो उसे अस्पष्ट, धुँधला रहना चाहिए। वस्तुतः यदि आप पूर्णतया शून्य के प्रति सजगता बनाये हुए हैं तब अन्य किसी चीज का आपको आभास नहीं होना चाहिए। यदि आपकी आँखें किसी बाह्य घटना को देखती भी हैं तो भी आपके चेतन बोध के क्षेत्र में उस

तथ्य को आना नहीं चाहिए। जो कुछ भी आप देख सकते हैं या जिसके प्रति सजग हो सकते हैं, वह केवल शून्य है। यही लक्ष्य है। इस अभ्यास से मन में शान्ति, अन्तर्दर्शन और एकाग्रता आयेगी। आपको जितना समय उपलब्ध हो उतनी देर तक या सुविधानुसार अभ्यास करते जाइये।

भूचरी मुद्रा का अभ्यास किसी भी समय और कहीं पर भी किया जा सकता है। प्रारम्भ में यह अभ्यास काफी कठिन लगता है, क्योंकि असंख्य बाह्य विक्षेप हैं जो व्यक्ति के अवधान को लगातार अन्य दिशाओं में खींचते रहते हैं। अन्य योग तकनीकों के समान ही यहाँ भी अभ्यास से ही सिद्धि मिलती है।

विधि 2– उन्मनी मुद्रा

उन्मनी का शाब्दिक अर्थ है, अ-मन या विचार शून्यता। इसलिए इस मुद्रा को विचार शून्यता की स्थिति या ध्यान की स्थिति भी कह सकते हैं। यद्यपि व्यक्ति संसार में कार्य करता है, पर एक विचार शून्यता की स्थिति रहती है। इस अवस्था को उन्मनी अवस्था या विचार शून्यता की अवस्था कहते हैं। मन सक्रिय रहता है, पर वैचारिक एवं विश्लेषणात्मक द्वन्द्व की बाधाओं के बिना। व्यक्ति चैतन्य रहता है और मन सक्रिय रहता है पर लगता है जैसे कहीं नहीं हों। इस अवस्था में आँखें देखती हैं, पर व्यक्ति नहीं देखता। यही है उन्मनी।

पारम्परिक योग शास्त्र में उन्मनी का उल्लेख प्रचुर मात्रा में है। हठयोग प्रदीपिका में यह इस प्रकार है–

निरालम्बं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ।
सबाह्याभ्यंतरे व्योम्नि घटवत्तिष्ठति ध्रुवम् ।।

मन को आलम्ब रहित कर, विचार-शून्य बना कर व्यक्ति, व्यक्ति न रह कर आकाश के सदृश हो जाता है, जो घट के अन्दर और बाहर समान रूप से व्याप्त होता है।

आगे कहा है–

मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किंचित्सराचरम् ।
मनसो ह्युन्मनीभावाद् द्वैतं नैवोपलभ्यते ।।

संसार में जो भी चर या अचर है वह मन का ही आविर्भाव है, आभास है। जब मन को उन्मनी अवस्था प्राप्त हो जाती है तब अज्ञान और द्वैत समाप्त हो जाता है।

उन्मनी वह अवस्था है जो चिन्तन-ध्यान से परे है। उन्मनी मुद्रा सरल तकनीक है जो ध्यान की अनुभूति उत्पन्न करने में सहायक है। जब उन्मनी मुद्रा का अभ्यास करना हो तो ध्यान के किसी स्थिर एवं सुखद आसन में बैठ जाइये। अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये। शरीर के प्रत्येक अंग की मानसिक यात्रा कीजिये, उनके तनावों को विश्रान्त करते जाइये। शरीर के एक अंग से दूसरे अंग की ओर चेतना को क्रम से ले जाते हुए थोड़ी देर तक काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये। शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि शरीर पृथ्वी में ही बद्धमूल है, वरन् पृथ्वी का ही एक भाग है जो पूर्णतया स्पन्दन रहित है।

अपना अवधान चिदाकाश के शून्य में भ्रू-मध्य में लाइये। वहाँ मन के कार्य कलापों के प्रति सजग होइये। ठीक इसी समय जो भी अनुभव आप को हो रहा है उसके प्रति सजग होइये। विचारों को उत्पन्न होते एवं विकसित होते देखिये। उनके प्रति सजग होइये और मन की सक्रियता को कम करने का प्रयास कीजिये। जिस प्रकार स्थूल शरीर स्थिर एवं शान्त है, उसी प्रकार मन को निश्चल एवं नीरव करने का प्रयास कीजिये।

अब आँखें खोलिये, पर बिना उन पर जोर दिये। अपनी चेतना को आज्ञा चक्र में लाइये। चेतना को आज्ञा चक्र में रखते हुए मन्द और गहरी श्वास लीजिये। फिर धीरे-धीरे प्रश्वास करते हुए अपनी चेतना को मेरुदण्ड से होकर नीचे लाइये ओर साथ-साथ धीरे-धीरे आँखें बन्द करते जाइये। चेतना का मेरुदण्ड में अवरोहण और आँखों की पलकों का बन्द होना प्रश्वास के साथ समकालिक रहे। जब प्रश्वास समाप्त हो, तब आपकी चेतना मूलाधार में रहे और आँखें हल्के से बन्द। अब अपनी चेतना को आज्ञा चक्र में लाइये और आँखें खोल लीजिये। आज्ञा चक्र में चेतना को रखते हुए मन्द और गहरा पूरक कीजिये। चेतना को मेरुदण्ड में अवरोहण कराते एवं धीरे-धीरे आँखों की पलकों को बन्द करते हुए प्रश्वास कीजिये।

यद्यपि आपकी आँखें खुली रहती हैं, आपका अवधान चक्रों पर एवं अतीन्द्रिय पथ में हो रहे अवरोहण पर रहना चाहिए। आपकी आँखें खुली रहती हैं, पर आपको भीतर ही देखना है। इस अभ्यास पर अधिक जोर मत

लगाइये। इसको सहज एवं स्वाभाविक ढंग से होने दीजिये। यह अभ्यास शारीरिक की अपेक्षा मानसिक अधिक है। यद्यपि आँखें खुली रहती हैं और फिर धीरे-धीरे बन्द होती जाती हैं, पर उन्हें बाहर की किसी वस्तु का बोध नहीं होना चाहिए। आपकी सजगता भीतर में चल रही प्रक्रिया पर है। कुछ देर ऐसा चलने दीजिये। अनुभव कीजिए कि आपकी सजगता अधिकाधिक गहरी होती जा रही है। आपकी सम्पूर्ण सजगता अन्दर में है और चेतना की गहराइयों में उतर रही है।

अब अभ्यास समाप्त करने की तैयारी कीजिये। श्वास की सजगता त्याग दीजिये और आँखें बन्द कर लीजिये। कुछ क्षणों के लिए शान्त हो जाइये और अन्दर में जो भी भाव आ रहे हों उन्हें अनुभव कीजिये। मन और शरीर की अवस्था और स्थिति का अवलोकन कीजिये। अब धीरे-धीरे मन को बहिर्मुखी करना प्रारम्भ कीजिये। बाह्य वातावरण, शारीरिक अनुभूतियों, आराम या कष्ट सम्बन्धी ऐन्द्रिक अनुभूतियों के प्रति सजग होइये। कमरे में या बाहर हो रही आवाजों के प्रति सजग होइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये। धीरे-धीरे शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 3– सांध्य आकाश पर त्राटक

आकाश पर त्राटक करने के लिए खुले स्थान या छज्जे पर बैठिये जहाँ कुछ भी आपकी दृष्टि की बाधा नहीं बनता। ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये और सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। कुछ देर काया स्थैर्यम् का अभ्यास कीजिये जब तक शरीर स्थिर एवं शान्त न हो जाये। अपनी चेतना चिदाकाश में लाइये और किसी विचार या बिम्ब को देखिये। क्रमश: मानसिक सक्रियता को कम कीजिये और मन को नीरव हो जाने दीजिये।

अब आँखें खोलकर नीले आकाश में एकटक स्थिर दृष्टि से देखिये। आँखों की पलकें झपकें नहीं। धीरे-धीरे आस-पास की सजगता को भी लुप्त हो जाने दीजिये। केवल विस्तृत नीले आकाश के प्रति सजग रहिये। आकाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आकाश को एकटक देखते समय अनुभव कीजिये कि आकाश आपके समीपतर आता जा रहा है। आकाश को सभी दिशाओं में गतिमान अनुभव कीजिये। अपने को आकाश की विशालता से आच्छादित होता अनुभव कीजिये। अपने चारों ओर आकाश का अनुभव कीजिये।

आकाश की अपनी सजगता को और तीव्र कीजिये। जैसे-जैसे आप की यह सजगता गहरी और तीव्र होती जाती है अपने को आकाश का ही अंश बनता अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप में और आकाश में कोई अन्तर नहीं है। आप स्वयं आकाश हैं। अनन्त आकाश का अनुभव कीजिये, आकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आकाश के प्रति आप सजग हैं, उसे अनुभव कर रहे हैं। आकाश की स्थिर एवं अखण्ड सजगता। अब धीरे से अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। आँखें बन्द कर आकाश की सजगता का परित्याग कर दीजिये। तत्काल आप जो अनुभव कर रहे हैं उसके प्रति सजग बनिये। आपके शरीर और मन में जो अभी हो रहा है उसकी पूर्ण सजगता हो। अब अपनी सजगता को स्थूल शरीर में वापस लाइये। जिस आसन में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग रहिये। धीरे-धीरे मन को बहिर्मुखी कीजिये। आस-पास की आवाजें सुनिये। गहरी श्वास लीजिये ओर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये। धीरे-धीरे शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

विधि 4– अंधकार पर त्राटक

यह अभ्यास पूर्व के आकाश पर त्राटक के समान है। अंधकार पर त्राटक ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ पूर्ण अंधकार हो, जहाँ कुछ भी न दिखे, अपना हाथ तक न दिखे। वहाँ आँखें खोलकर बैठ जाइये और अंधकार में एकटक दृष्टि से देखिये। दृष्टि स्थिर और निश्चल हो। आँखों पर जोर डाले बिना जितनी देर भी संभव हो एकटक देखते जाइये। यदि विचार या भावनायें आयें तो आने दीजिये पर अपना अवधान अंधकार पर ही रखिये। अंधकार में प्रवेश करने का प्रयास कीजिये।

कुछ देर बाद अंधकार समाप्त हो जायेगा और दृश्य तैरने लगेंगे। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जिन्होंने त्राटक की इस विधि पर प्रयोग किया है, यह ऐसा अभ्यास है जिसमें आपका अवचेतन मन और आचरण, आप की दमित भावनायें, भय, दुर्भीतियाँ, सभी दृश्यों के रूप में ऊपर आती हैं और अंधेरे में तैरती हैं। आप इन बिम्बों और दृश्यों में न उलझें और न ही घबरायें। आप उनके प्रति सजग बने, पर उनसे परेशान न हों।

यह एक ऐसा शक्तिशाली अभ्यास है कि इसका अभ्यास उनके लिए उचित नहीं है, जिनका मन अपवित्र, परेशान, या असामान्य है। जब

अवचेतन मन अभिव्यक्त होने लगता है ऐसे व्यक्ति समझ नहीं पायेंगे कि क्या हो रहा है और उनका भय और बढ़ जायेगा। अत: अंधकार पर त्राटक का अभ्यास उन्हीं को करना चाहिए जिन्हें पर्याप्त मानसिक संयम और अनासक्ति हो तथा जिनका आन्तरिक जीवन पवित्र एवं अनुशासित हो। ऐसी स्थिति में वे उच्चतर अतीन्द्रिय धरातल को देखेंगे।

विधि 5– हवन पर त्राटक

हवन करते समय आहुति में सुगंधित पदार्थ मिला दीजिये। हवन के सामने आराम से बैठ जाइये। सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कर लीजिये, शरीर को स्थिर एवं निश्चल बना लीजिये। जब तक अग्नि जलती रहे, अग्नि के मध्य अपनी दृष्टि संकेन्द्रित कीजिये। अग्नि के केन्द्रीय बिन्दु पर अपनी दृष्टि स्थिर रखिये। आँखों को किसी भी हालत में वहाँ से हटाइये नहीं।

अग्नि में गहराई से देखिये। अपने बाह्य वातावरण को भूल जाइये। कोई विचार भी आये तो उसे गुजर जाने दीजिये, केवल अग्नि पर ही अपना पूरा अवधान केन्द्रित कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप अग्नि के निकट होते जा रहे हैं, अग्नि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अग्नि को ऐसे अनुभव कीजिये मानो वह आपका ही अंग हो। अग्नि के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास कीजिये। अग्नि में दिव्यता के प्रति सजग होइये।

अपनी सजगता को तीव्र कीजिये। अभ्यास में कठिन प्रयास न कीजिये या उसको बौद्धिक स्वरूप न दीजिये। अपने को मात्र अग्नि के प्रति उन्मुक्त कीजिये। अग्नि को उसकी वास्तविकता में देखिये। अपनी चेतना को अग्नि की गहराई में उतरने दीजिये। जब तक तनाव या असुविधा न हो करते जाइये।

तत्पश्चात् आँखें बन्द कर लीजिये। आन्तरिक सजगता के साथ कुछ क्षणों के लिए शान्त हो जाइये। अन्दर में जो हो रहा है उसको अनुभव कीजिये। अपने स्थूल शरीर और ध्यान के जिस आसन में आप बैठे हैं, अपनी चेतना को उनमें वापस लाइये। आस-पास की ध्वनियाँ सुनिये। मन को पूर्णतया बहिर्मुखी कीजिये। गहरी श्वास लीजिये और तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये। अब शरीर को हिलाइये और आँखें खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

औपनिषदिक धारणा

बाह्याकाश धारणा

हमारे चतुर्दिक जो भौतिक जगत् फैला पड़ा है, उसे संस्कृत में बाह्याकाश कहते हैं। बाह्याकाश धारणा इसी बहिर्व्योम का अन्वेषण है, पर रॉकेट यान में सवार होकर नहीं, ध्यान के माध्यम से। इसमें जहाँ शरीर पृथ्वी पर ही रहता है, वहीं चेतना बाह्य अन्तरिक्ष में अनन्त ऊँचाइयों पर ग्रह-नक्षत्रों एवं तारिकाओं का दर्शन करती है। इस साधना में हम अपने को उस बाह्य अन्तरिक्ष के विशाल विस्तार के एक अंश के रूप में अनुभव करते हैं जिससे हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व, अन्य वस्तुओं, चेतन और अचेतन, सब की उत्पत्ति हुई है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। अपने शरीर को इस प्रकार सुव्यवस्थित कर लीजिये जिससे साधना की अवधि में शरीर के किसी अंग को हिलाना न पड़े। अपने शरीर के आसन पर चित्त को एकाग्र कीजिये। अपने शरीर को स्थिर और निश्चल होता अनुभव कीजिये। शारीरिक स्थैर्य एवं निश्चलता की भावना का विकास कीजिये। साथ ही साथ श्वास के प्रति भी सजग होते जाइये। जब तक शरीर पूर्णतः स्थिर एवं अचल न हो जाये अभ्यास करते जाइये।

द्वितीय चरण– शरीर का मानस दर्शन

इस अभ्यास में हम सजगता को बहिर्मुखी करने एवं बाह्य अन्तरिक्ष की यात्रा पर निकलने जा रहे हैं। सर्वप्रथम अपनी सजगता अपने सिर के शीर्ष पर ले चलिये और वहाँ से नीचे देखिये। ध्यान के आसन में अचल रूप से बैठे अपने पूरे शरीर का पर्यवेक्षण कीजिये। शरीर को चारों ओर से देखिये, जैसे आप सिर के ऊपर से नीचे देख रहे हों। शरीर के सामने

का भाग देखिये, पीछे का भाग देखिये, दाहिनी ओर, बायीं ओर देखिये। सम्पूर्ण शरीर को एक साथ देखिये। अपने चेहरे के भाव को देखिये, जो कपड़े आपने पहन रखे हैं, उन्हें देखिये। सभी चीजों को विस्तार से देखिये।

तृतीय चरण– कक्ष

जिस कक्ष में आपका शरीर बैठा है, अपनी सजगता को उसकी छत तक उठायें। इस स्थान से आप कमरे की सभी चीजों को आसानी से देख सकते हैं। कमरे के एक विशेष भाग में ध्यान में बैठे अपने शरीर को देखिये। कमरे की सतह, छत एवं चारों दिवालों को देखिये। दरवाजे एवं खिड़कियों को देखिये। उपस्करों को देखिये। कमरे में यदि दूसरा कोई और है तो उसे देखिये। एक झलक में पूरे कमरे को देखिये। कमरे में विद्यमान सभी चीजों को एक बार में देखिये।

चतुर्थ चरण– भवन

अपनी सजगता को भवन के ऊपर ले चलिये। नीचे भवन के अन्दर देखिये। भवन के भीतर कमरे में स्थित अपने स्थूल शरीर को देखिये। भवन की विभिन्न मंजिलों को देखिये। निचली मंजिल से लेकर ऊपर की मंजिल तक सभी मंजिलों को क्रमश: देखते जाइये। प्रत्येक मंजिल के प्रत्येक कमरे को देखिये। प्रत्येक कमरे में रखे सामानों, प्रत्येक कमरे में विद्यमान लोगों और प्रत्येक कमरे के रंग को देखिये। गलियारों, प्रतीक्षा कक्ष, बरामदों एवं सीढ़ियों को देखिये। एक मंजिल से दूसरी मंजिल में उस समय तक चलते जाइये जब तक पूरे भवन को देखना पूरा न हो जाये।

पंचम चरण– इलाका (मुहल्ला)

अपने भवन के 50 मीटर ऊपर अपनी चेतना को उठायें। नीचे देखिये उसी भवन के एक कमरे में आपका शरीर बैठा है। अपना भवन देखिये तथा उसके आस-पास के अन्य भवनों को देखिये, विभिन्न भवनों के आकार, प्रकार और रंगों को देखिये। अपने पड़ोस, शहर या गाँव के सम्पूर्ण क्षेत्र को देखिये। गलियों में चल रहे लोगों और गाड़ियों को देखिये। खेल रहे बच्चों को देखिये। विभिन्न भवनों के आस-पास के वृक्षों और घास भरे मैदानों को देखिये। सारे इलाके को एक ही बार में देखिये।

षष्ठ चरण– जिला (मण्डल)

अपनी सजगता को और 100 मीटर ऊपर ले चलिये, जिस स्तर पर बादल हैं। नीचे अपने पूरे जिले को देखिये। दूर तक फैले खेतों, पहाड़ियों और

जलाशयों को देखिये। गाँवों और नगरों को देखिये। पूरे जिले में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली सड़कों और रेल लाइनों को देखिये। अपने नगर को देखिये और उस नगर में अपने भवन को देखिये। भवन के एक कमरे में बैठे अपने भौतिक शरीर को देखिये। भवन, नगर और पूरे जिले को एक ही झलक, एक ही दृष्टि में देखिये।

सप्तम् चरण– देश, महादेश, भूमण्डल

अपनी सजगता को कई हजार मीटर ऊपर ले चलिये, जिससे आप पूरे राज्य को देख सकें। ऊपर उठते जाइये और अपने पूरे देश को देखिये। सम्पूर्ण महादेश को देखिये। आप और भी ऊपर जाते हैं और पृथ्वी के वायुमण्डल को भी छोड़ देते हैं, वहाँ से पूरे भूमण्डल एवं सम्पूर्ण पृथ्वी को अन्तरिक्ष में टंगा हुआ देखिये। नीचे देखिये, जैसे पृथ्वी छोटी और छोटी होती जा रही है और अन्त में एक छोटे से आकाशीय पिण्ड के रूप में दिखाई पड़ती है।

अष्टम् चरण– बाह्य अन्तरिक्ष

बाह्याकाश, बाह्य अन्तरिक्ष में प्रकाश के वेग से भी अधिक वेग में अपनी सजगता को गतिमान होता अनुभव कीजिये। स्याह काले अन्तरिक्ष को देखिये जो केवल तारों-तारिकाओं और धूमकेतुओं से प्रकाशित है। अपने चतुर्दिक अन्तरिक्ष को देखिये, अनन्त, असीम आकाश, सौर मण्डल एवं विभिन्न ग्रहों को देखिये जिनसे सौर मण्डल बना है। और ऊपर जाइये और आकाशगंगा को देखिये। आकाशगंगाओं से निर्मित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखिये। अपनी सजगता को असीम अनन्त अन्तरिक्ष में विलीन कर दीजिये। आपके ऊपर, आपके नीचे, सभी ओर आकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है। शाश्वत अन्तरिक्ष। इस बाह्याकाश का अनुभव कीजिये। इस अनन्त अन्तरिक्ष में अपने को तैर रहे चेतन अस्तित्व के रूप में अनुभव कीजिये। सभी दिशाओं में जिधर भी आप देख रहे हैं, अन्तरिक्ष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आप इस असीम अन्तरिक्ष के ही एक अंश हैं और इससे भिन्न भी हैं।

नवम् चरण– पृथ्वी पर वापसी

अपने भौतिक शरीर का स्मरण कीजिये, जिससे आपकी चेतना एक प्रकाश के सूक्ष्म तार से अभी भी जुड़ी है। अब धीरे-धीरे पृथ्वी की ओर वापस लौटना प्रारम्भ कीजिये। नीचे आते हुए आकाशगंगा को देखिये।

सौर मण्डल और पृथ्वी को देखिये। जैसे-जैसे आप पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं, भूमण्डल क्रमशः बड़ा दिखने लगता है। अपना महादेश देखिये, अपना देश और उसमें अपना राज्य देखिये, अपना जिला और अपना नगर, अपना भवन देखिये। भवन में प्रवेश कीजिये, कमरे में जाइये जहाँ आपका शरीर बैठा है। उसी स्थान पर और उसी आसन में बैठे अपने शरीर को देखिये।

दशम् चरण – अभ्यास विराम

अपनी सजगता शरीर में ले आइये। भौतिक आयामों का अनुभव कीजिये। अपने शरीर की स्थिति का अनुभव कीजिये। अपने शरीर के वजन का अनुभव कीजिये, जो भूमि पर पड़ रहा है। घुटनों पर रखे हाथों को अनुभव कीजिये। अपनी श्वास एवं बाह्य ध्वनियों के प्रति सजग होइये। सिर से पैर तक अपने पूरे शरीर का अनुभव कीजिये। धीरे-धीरे आसन छोड़ दीजिये और आँखें खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

अन्तराकाश धारणा

संस्कृत में 'अन्तः' का अर्थ है आन्तरिक और आकाश है शून्य स्थान, आकाश। अतएव अन्तराकाश अन्दर का शून्य स्थान हुआ, आकाश हुआ, जो हमारी व्यक्तिगत सृष्टि का आधार होता है। यौगिक सिद्धान्तों एवं आधुनिक विज्ञान की विचारधारा के अनुसार भी इस भौतिक जगत् के, जिसके हम भी एक अंश हैं, दो मुख्य पक्ष हैं– बृहत ब्रह्माण्ड और लघु ब्रह्माण्ड। बाह्याकाश में जो कुछ देश, काल, और वस्तु के आयामों में है वह सब बृहत ब्रह्माण्ड है। इसी जगत् में हम रहते हैं। परन्तु बाहर में जो भी है, वह भीतर में भी अपने लघु रूप में पाया जा सकता है। और यह है लघु ब्रह्माण्ड।

जिस प्रकार हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व के बाहर बृहत् ब्रह्माण्ड बाह्याकाश के अन्दर ही अवस्थित है, उसी प्रकार लघु ब्रह्माण्ड अन्तराकाश के अन्दर में विद्यमान है। अतएव लघु ब्रह्माण्ड या आन्तरिक जगत् के अनुभव हेतु सर्वप्रथम अपने भीतर अन्तराकाश का प्रत्यक्ष बोध विकसित करना आवश्यक है, जिसके माध्यम से यह आन्तरिक जगत् सूक्ष्म रूप धारण करता है।

अन्तराकाश चेतना की सभी अभिव्यक्तियों के लिए, जिनका निरूपण शिव या पुरुष द्वारा किया जाता है, मूल तत्त्व या आधारभूत तत्त्व है; जबकि बाह्याकाश शक्ति या प्रकृति द्वारा निरूपित ऊर्जा या पदार्थ का आधार है। अपने को जानने के लिए, अपनी चेतना के विस्तार के लिए अन्तराकाश का भेदन आवश्यक है। इसके पश्चात् ही हमें अपने अस्तित्व के गहन आयामों का अनुभव होने लगता है।

विधि

प्रथम चरण– शरीर की विश्रान्ति

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। अपने को पुनः सुव्यवस्थित कर लीजिये, जिससे आपको अपने शरीर का कोई अंग हिलाना न

पड़े। अपने सम्पूर्ण शरीर का अवलोकन कर लीजिये और आश्वस्त हो जाइये कि सिर से पाँव तक पूरा शरीर तनाव और कड़ेपन से मुक्त है। अपने मन को अपने शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाइये। प्रत्येक अंग की जाँच कर लीजिये, प्रत्येक जोड़ की, प्रत्येक मांसपेशी की। आश्वस्त हो जाइये कि आप शारीरिक रूप से पूरे आराम में हैं। आन्तरिक रूप से अपने पूरे शरीर का अवलोकन कीजिये और उसे विश्रान्त कर लीजिये। अपने शरीर की, जितनी भी हो अधिकतम सुखद अवस्था के प्रति सजग होइये।

द्वितीय चरण– काया स्थैर्य

पूर्ण विश्रान्ति की भावना, पूर्ण शारीरिक विश्रान्ति बनाये रखते हुए अपनी शारीरिक भंगिमा के प्रति सजग बनिये। शरीर की स्थिति पर एकाग्र होइये। अनुभव कीजिये कि आप का शरीर स्थिर एवं निश्चल होता जा रहा है। स्थिरता एवं निश्चलता के भाव को विकसित कीजिये। साथ ही साथ अपनी स्वाभाविक श्वास के प्रति भी सजग होइये। ऐसा करते जाइये जब तक शरीर एकदम स्थिर और अचल न हो जाये। पूर्णतया स्थिर एवं अचल शरीर की सजगता बनाये रहिये। शारीरिक स्थिरता एवं पूर्ण नीरवता पर धारणा कीजिये। कोई शारीरिक स्पन्दन नहीं हो।

तृतीय चरण– अन्तराकाश में प्रवेश

शरीर में स्थैर्य का जो अनुभव कर सकते हैं उसकी पूर्ण सजगता बनाये रखिये। शरीर की इस स्थिरता में ही आन्तरिक आकाश का अनुभव करना प्रारम्भ कीजिये। अस्थि, मांस, रक्त एवं श्लेष्मा से निर्मित इस पार्थिव शरीर के प्रत्यय की धारणा को छोड़ दीजिये। आकाश रूप में, केवल आकाश रूप में शरीर का भाव विकसित कीजिये। अनुभव कीजिये कि यह शरीर मात्र त्वचा से निर्मित, एक खोखली आकृति है, जिसके भीतर कुछ नहीं है, बस आकाश ही है।

स्थिरता में अन्तराकाश का अनुभव कीजिये जो सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, रिक्त आकाश। इस आकाश की आन्तरिक व्यापकता, हल्केपन, रिक्तता का अनुभव कीजिये। इसी आकाश की ओर आपको अपनी चेतना को निर्दिष्ट करना है। शरीर में लघु ब्रह्माण्डीय अनुभूति अन्तर्विष्ट है। शरीर में लघु ब्रह्माण्डीय अनुभूति का विकास कीजिये। इस शरीर पिंजर में अनन्त आकाश का अनुभव कीजिये।

चतुर्थ चरण– आन्तरिक शरीराकाश

शरीर के अन्दर आकाश की पूर्ण सजगता बनाये रखिये। समस्त शरीर की रिक्तता का अवलोकन करते हुए सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में अपनी सजगता को घुमाइये। शरीर के प्रत्येक अंग में अपनी सजगता को ले चलिये और उसमें व्याप्त सूक्ष्म, आन्तरिक रिक्तता के प्रति सजग बनिये।

अपनी सजगता मस्तक में ले चलिये। मस्तक के क्षेत्र में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। दाहिने कन्धे, दाहिनी भुजा और दायीं हथेली में आकाश के प्रति सजग होइये। दायें कन्धे से अँगुलियों के छोरों तक में आकाश का अनुभव कीजिये। बाँयें कन्धे, बाँयी भुजा और बायीं हथेलियों में आकाश के प्रति सजग होइये। बाँयें कन्धे से अँगुलियों के छोरों तक में आकाश का अनुभव कीजिये।

पसलियों के मध्य, वक्ष प्रदेश में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। सामने से पीछे तक सम्पूर्ण वक्ष प्रदेश के आकाश के प्रति सजग होइये। उदर प्रदेश में: अधो और उर्ध्व उदर प्रदेश में आकाश का अनुभव कीजिये। नितम्बों में, दाँयें और बाँयें दोनों नितम्बों में आकाश का अनुभव कीजिये। कन्धों से लेकर मूलाधार तक सम्पूर्ण प्रदेश में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। अपने पूरे धड़ और उसमें व्याप्त आकाश के प्रति सजग होइये।

दाहिनी जांघ, दाहिने घुटने, दाहिनी पिण्डली और दाहिने पैर में आकाश के प्रति सजग होइये। दाहिने कुल्हे से पैर की अँगुलियों के मध्य आन्तरिक आकाश को अनुभव कीजिये। बाँयी जांघ, बाँये घुटने, बाँयी पिण्डली और बाँये पैर में व्याप्त आकाश के प्रति सजग होइये। बाँयें कूल्हे से पैर की अँगुलियों के मध्य आन्तरिक आकाश का अनुभव कीजिये।

दोनों पैरों, दोनों पैरों के पंजों में एक साथ आकाश के प्रति सजग बनिये। एक ही साथ दोनों भुजाओं और दोनों हथेलियों में आकाश के प्रति सजग बनिये। वक्ष प्रदेश, उदर एवं सम्पूर्ण धड़ में आकाश के प्रति सजग बनिये। गर्दन और मस्तक के अन्दर आकाश के प्रति सजग बनिये। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश के प्रति समांगी सजगता विकसित कीजिये, सम्पूर्ण शरीर में। सम्पूर्ण शरीराकाश।

पंचम चरण– विस्तार एवं संकुचन

अपनी सजगता को स्वाभाविक श्वास पर ले आइये। आने और जाने वाली श्वास को ध्यान से देखिये। उसके प्रवाह में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं

हो। केवल स्वाभाविक श्वसन प्रारूप का अवलोकन कीजिये। साथ ही साथ आन्तरिक आकाश की सजगता भी बनी रहे। जब श्वास अन्दर लेते हैं तो अनुभव कीजिये कि शरीर का विस्तार हो रहा है, शरीर फैल रहा है। जब श्वास छोड़ते हैं तब अनुभव कीजिये कि शरीर का संकुचन हो रहा है। प्रत्येक श्वास के साथ फैलते और संकुचित होते आकाश के प्रति अपनी सजगता को बढ़ाइये।

षष्ठ चरण– अभ्यास का विराम

अभ्यास को विराम देने हेतु तैयार हो जाइये। आकाश के अनुभव से अपनी सजगता को वापस लाइये। अपने प्रत्यक्ष ज्ञान को क्रमशः बहिर्मुखी कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने शरीर का अनुभव कीजिये। भूमि पर पड़ते हुए अपने शरीर के भार को अनुभव कीजिये। घुटनों पर रखे अपने हाथों का अनुभव कीजिये। बाहरी आवाजों के प्रति सजग होइये। जिस कमरे में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

चिदाकाश धारणा

'चित्त' का अर्थ है ज्ञान, चेतना। अत: चिदाकाश का अर्थ है चेतना का आकाश। यह आकाश ललाट के पीछे मस्तक में अवस्थित है। चिदाकाश का एक और अर्थ है– मन का पर्दा या आज्ञा चक्र का दृष्टि पटल। यदि आप कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द कर लेते हैं तब अपने सामने एक शून्य स्थान– आकाश देखते हैं। यही मन का पर्दा है जिस पर आप अपनी चेतना के गहरे स्तरों से अभिव्यक्त होने वाले सूक्ष्म दृश्यों और प्रभावों को देख सकते हैं।

चिदाकाश की तुलना एक गुफा से भी की जा सकती है। यदि आप बाहर से एक गुफा में देखें तो आप को केवल अभेद्य अंधकार दिखाई पड़ेगा। वहाँ इतना अंधकार रहता है कि आप अन्दर कुछ भी नहीं देख सकते हैं। परन्तु जब आप गुफा में प्रवेश करते हैं और आपकी आँखें अंधेरे की अभ्यस्त हो जाती हैं तो फिर आप चीजें देखने लगते हैं, यद्यपि वे चीजें वहाँ पहले से ही थीं, पर आप उन्हें देखने में असमर्थ थे। जो गुफा पहले अंधकार पूर्ण प्रतीत हो रही थी उसमें अनेक चीजें पड़ी हैं, वैसी भी चीजें जिनकी आप आशा नहीं करते थे।

यही बात मन की गुफा के साथ भी है। प्रारम्भ में जब आप चिदाकाश की गुफा में देखते हैं, आपको कुछ भी नहीं दिखेगा और आप को लगेगा कि वहाँ देखने के लिए कुछ भी नहीं है। परन्तु जैसे-जैसे आप उसके अभ्यस्त होते जायेंगे, आप अपनी अन्त: सत्ता की सजगता विकसित करना प्रारम्भ कर देंगे। यही है चिदाकाश धारणा। इस साधना में चार दिवालों, छत और फर्श से घिरे एक अंधेरे कमरे या गुफा के समान ही चिदाकाश की कल्पना की जाती है। फर्श में एक सुरंग है जो नीचे जाती है। यही सुषुम्ना नाड़ी है। सामने की दिवाल मानसिक पर्दा है, जिस पर दृश्य उभरते हैं।

चिदाकाश धारणा में बोध क्रमश: गहरा होने लगता है– शारीरिक, संवेदी अनुभूतियों से गहन अतीन्द्रिय और प्राणिक अनुभूतियाँ होने लगती

हैं। शारीरिक संवेदी अनुभूतियों को चिदाकाश के क्षेत्र में अनुभव करना चाहिए। यह तीन रूपों में होता है– 1. विद्यमान स्मृति की सजगता, 2. चिदाकाश में सहज स्वाभाविक एवं स्वत: उद्भूत अभिव्यक्तियों की सजगता और 3. मानस दर्शन।

स्मृति का प्रयोग इस अर्थ में किया जाता है कि जब प्रारम्भ में हम अपने मन के प्रति सजग होते हैं और इस उधमी मन, यायावर मन को शान्त करना चाहते हैं तब उस समय मन कुछ सोच रहा होता है, कुछ अनुभव कर रहा होता है। वह किसी दूसरी सजगता में लगा रहता है। आप उस तथ्य के विषय में सचेत नहीं भी हों, पर मन किसी न किसी विचार में, किसी स्मृति में, किसी घटना में लगा रहता है जिसका दिन में अनुभव हुआ रहता है। अतएव स्मृति के माध्यम से मन उस घटना या उस प्रक्रिया के किसी प्रकार के अर्थ का विश्लेषण करता या अर्थ निकालता रहता है।

वह एक अति सामान्य घटना हो सकती है, जैसे– किसी व्यक्ति से आपने कोई बात कही होती है। वही बात या वह पारस्परिक क्रिया स्मृति रूप में भीतर में वर्तमान रहती है, यदि आप उसके विषय में सजग होते हैं, तब उस चाक्षुष सम्बन्ध के प्रतिबिम्ब को भी देख सकते हैं। जब आप सजगता बढ़ाते हैं, तब आप अन्य संवेदी अनुभूतियों, स्पर्शानुभवों, जैसे, शरीर को स्पर्श करता वायु-प्रवाह, वायु की शीतलता, वस्त्रों की उष्मा आदि के प्रति भी सजग हो जायेंगे। स्मृति की वह सजगता, जिसने मानसिक सजगता को व्यस्त रखा था, वह इस चिदाकाश विधि की पहली प्रक्रिया है।

जो प्रभाव मन में पड़ने की प्रक्रिया में है उसे यह विधि साफ भी करती है। वह प्रभाव किसी अन्य विषय शृंखला का प्रारम्भ भी हो सकता है, जो आगे चलकर जीवन को प्रभावित कर सकता है। मन में क्या चल रहा है, यह जानना बड़ा कठिन है– किस प्रकार एक नगण्य, तुच्छ घटना भी मानसिक प्रारूप, मानसिक बोध, मानसिक सजगता को बदल सकती है। अत: चैतन्य रूप से मन की इस व्यस्तता के प्रति सजग बनना इस प्रक्रिया का पहला चरण है।

चिदाकाश की सहज स्वाभाविक, स्वत: उद्भूत अभिव्यक्तियों, चिदाकाश के पर्दे पर जो प्रतिबिम्ब आते हैं, जो क्षणिक झलकें दिखाई पड़ती हैं, जो रूप प्रकट होते हैं, उनका अवलोकन अगला पक्ष है, जो सामान्य अभ्यास है। अत: यहाँ चिदाकश के दो पक्ष हैं– पहला है मानसिक व्यस्तता और दूसरा है इन्द्रियों की सहज स्वाभाविक सृष्टि।

दूसरे पक्ष में आपको रंगों, छायाओं और प्रकाशों को पहचानना है। साधना का यह अत्यन्त आधारभूत अंश है, प्रारम्भ में विभिन्न रंगों को पहचानना कठिन होता है। वस्तुतः यह साधना अत्यन्त जटिल है और इसकी सिद्धि में काफी समय लगता है। यदि आप नीला रंग पहचान लेते हैं तब आपको नीले रंग को एक बिन्दु, वर्ण रेखा या उसी तरह की किसी चीज के रूप में जो प्रकट होती है, देखना है। यदि आप लाल रंग को पहचानते हैं तब आपको लाल रंग ही देखना है। यदि पीला पहचानते हैं तो पीला ही देखना है। इसी प्रकार क्रमशः चिदाकाश में वर्ण सजगता विकसित करनी है। मस्तिष्क में दृश्य प्रभावों के कारण उत्पन्न होने वाले दृष्टि संवेदनों, तथा चिदाकाश में भी सहज स्वाभाविक रंगों के उत्पादन के रूप में अभिव्यक्त होने वाले दृष्टि संवेदनों पर इस अभ्यास से नियन्त्रण प्राप्त होता है।

तीसरा पक्ष है, जहाँ हम चैतन्य रूप से बिम्ब या प्रभाव उत्पन्न करते हैं और उसे मन के पर्दे पर मन में ही स्पष्ट रूप से देखते हैं। इसके लिए पहले चिदाकाश में उभरते किसी ज्यामितीय आकार का अवलोकन किया जाता है। इसके पश्चात् अतीन्द्रिय लेखन की प्रक्रिया की कल्पना करते हैं, जिसमें संख्यायें, अक्षर और ज्यामितीय आकृतियाँ अतिन्द्रिय रूप से चिदाकाश के पर्दे पर अंकित की जाती हैं, तथा वे पहले अलग-अलग, और फिर सामूहिक रूप से ध्यान के विषय की तरह प्रयोग में लायी जाती हैं।

कल्पना के पश्चात् आकाश में तैरने का अभ्यास किया जाता है, जो भूमि से ऊपर उठने की सूक्ष्म संवेदना विकसित करता है। संक्षेप में चिदाकाश धारणा की यही प्रक्रिया है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। अपने को व्यवस्थित कर लीजिये, जिससे कि अभ्यास की अवधि में शरीर को हिलाने-डुलाने की जरूरत नहीं पड़े। आश्वस्त हो जाइये कि मेरुदण्ड लम्बवत है, सिर सीधा है। हथेलियों को घुटनों पर या गोद में रख लीजिये, जहाँ भी सुविधाजनक लगे। आँखें एवं ओठ धीरे से बन्द कर लें, पर न अधिक जोर से और न अधिक हल्के से। मानसिक रूप से कुछ क्षणों तक अपने पूरे शरीर की स्थिति का अवलोकन कर लीजिये तथा जिस प्रकार आप बैठे हैं उसके

प्रति सजग हो जाइये। पैर की अँगुलियों, पंजों, घुटनों, पैरों, हाथ की अँगुलियों, हथेलियों, भुजाओं, कन्धों, पीठ, नितम्बों, छाती, धड़, गर्दन और सिर की स्थिति का अवलोकन कर लीजिये।

द्वितीय चरण– काया-दर्पण

अपना मानसिक बिम्ब उत्पन्न करने का प्रयास कीजिये। मानसिक रूप से कल्पना कीजिये कि आपके सामने एक आदमकद दर्पण है और उस दर्पण में आपके शरीर की छवि पड़ रही है। शरीर की छवि देखने का प्रयास कीजिये। दर्पण में दिख रहे शरीर की छवि की पूर्ण सजगता रहे। आप अपना बिम्ब देख रहे हैं। शरीर के प्रतिबिम्ब में उसकी स्थिति और आसन के प्रति सजग होइये, जिसमें आप अभी बैठे हैं। केवल इतना ही नहीं, प्रतिबिम्ब में अपने वस्त्रों को भी देखिये। अपने बालों और अपने चेहरे के भावों को देखिये। इस प्रकार देखिये मानो आप एक आदमकद शीशे के सामने बैठे हैं और अपने आप को खुली आँखों से देख रहे हैं।

तृतीय चरण– त्रिकोण श्वसन

अपनी सजगता श्वसन पर ले चलें। नासिकारंध्रों में ऊपर-नीचे आ-जा रही सहज श्वास का अवलोकन कीजिये। श्वसन की अखण्ड एवं अटूट सजगता रहे। जब श्वास लेते हैं तो वायु के दो प्रवाह ऊपर जाते हैं और भ्रू-मध्य के पास मिल जाते हैं। जब प्रश्वास करते हैं तब दोनों प्रवाह विभक्त हो नीचे की ओर जाते हैं। दोनों श्वास प्रवाह एक त्रिभुजाकार पथ निर्मित करते हैं, इस त्रिभुज का शीर्ष भ्रू-मध्य पर है। श्वास की अभिसारी एवं अपसारी गति का अनुभव करना जारी रखिये। त्रिभुज की भुजाओं के सहारे ऊपर-नीचे आ-जा रही श्वास को देखिये। अपनी चेतना को श्वास में विलीन होते देखिये।

चतुर्थ चरण– मस्तकीय आकाश में प्रवेश

अपनी सजगता भ्रू-मध्य में लाइये। अंधेरे के प्रति सजग हो जाइये। बन्द आँखों के सामने अंधकारपूर्ण आकाश को देखिये। अधिक एकाग्र होने का कठिन प्रयास कर आँखों की पेशियों को तनाव में मत डालिये। केवल काले आकाश, शून्य आकाश को देखिये। चित्त के आकाश, मन के देखने वाले पक्ष, चेतना के आकाश का अनुभव करने वाले के प्रति सजग होइये। चिदाकाश की समग्रता का अनुभव कीजिए, यह आकाश भौतिक इन्द्रियों के क्षेत्र के परे है। यह विशुद्धि से ऊपर तथा सहस्रार के नीचे के क्षेत्र में व्याप्त है।

शारीरिक रूप से मस्तक का सम्पूर्ण क्षेत्र ही चिदाकाश का क्षेत्र है। सम्पूर्ण मस्तक में चिदाकाश के काले आकाश का अनुभव कीजिये, अपने भीतर, चारों ओर व्याप्त काले आकाश के प्रति सजग बनिये। चिदाकाश के प्रति, आन्तरिक आकाश के प्रति, जो आपके ऊपर है, नीचे है, पीछे है, चारों ओर है, पूर्ण सजगता विकसित कीजिये। शून्य आकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

पंचम चरण– चिदाकाश की गुफा

अपना अवधान चिदाकाश, मस्तक के भीतर के आकाश पर केन्द्रित कीजिये। मस्तक के भीतरी भाग की कल्पना एक गुफा या छोटे से अंधेरे कमरे के रूप में कीजिये। ललाट सामने की दिवाल है, सिर का पिछला हिस्सा पीछे की दिवाल है तथा सिर के दोनों बगलें अगल-बगल की दिवालें हैं। आँखों और कानों के स्तर पर मस्तिष्क का आधार फर्श है और सिर का ऊपरी भाग उसकी छत है। गुफा या एक छोटे कमरे के रूप में चिदाकाश के प्रति सजग बनिये। मस्तक के भीतर का कमरा जो सभी ओर से बन्द एवं अंधकारपूर्ण है, उसके प्रति सजग बनिये।

कल्पना कीजिये कि आप उस कमरे के मध्य में खड़े हैं। चारों ओर देखिये। वैसी ही अनुभूति विकसित कीजिये जो एक बिना दरवाजे और खिड़की वाले बन्द पूर्ण अन्धेरे कमरे में होती है। चिदाकाश के कमरे, चिदाकाश की गुफा का अनुभव कीजिये। अपनी सजगता को कमरे के सामने की ओर वाली दिवाल पर, जो ललाट के पीछे है, ले आइये। धीरे-धीरे सिर के पीछे की ओर पीछे वाली दिवाल के पास चलिये। वहाँ पीछे से सामने का अवलोकन कीजिये। सिर के केन्द्र में आइये, और कल्पना कीजिये कि आप वहाँ खड़े हैं। चारों ओर देखिये और चिदाकाश की विशालता एवं शून्यता को अनुभव कीजिये। आन्तरिक शान्ति, आन्तरिक नीरवता, मानसिक निश्चलता का अनुभव विकसित कीजिये। मन से, उसके बोध से, शरीर से और उसके बोध से अपने को, अपनी सजगता को अलग कीजिये। शान्ति, नीरवता, और निश्चलता की आन्तरिक अवस्था के प्रति सजग होइये।

षष्ठ चरण– स्मृति में आये प्रभाव

चिदाकाश के आकाश को देखिये तथा स्मृति में आये संवेदी प्रभावों के प्रति सजग होइये। इस समय आपके मन में जो भी संवेदी प्रभाव

सक्रिय हैं उनका अवलोकन कीजिये। चिदाकाश में आपको किस प्रकार के संवेदी अनुभवों का बोध हो रहा है? श्रवण सम्बन्धी निवेश, दृष्टि सम्बन्धी निवेश, स्वाद सम्बन्धी निवेश, स्पर्श सम्बन्धी निवेश, जो भी अभी स्मृति में सक्रिय हैं, उनके प्रति चिदाकाश में सजग होइये। उन्हें बस एक बार देखिये। चिदाकाश के क्षेत्र में सक्रिय स्मृति क्षेत्र के प्रति पूर्ण सजग होइये। तत्पश्चात् संवेदी अभिव्यक्तियों का रंगों, आकृतियों, प्रकाश-धाराओं या विभिन्न शारीरिक संवेदनाओं के रूप में चिदाकाश में अवलोकन कीजिये।

सप्तम् चरण – संवेदी अभिव्यक्तियाँ

अपना अवधान चिदाकाश में केन्द्रित रखिये। रंग और प्रकाश की गतियों के प्रति सजग बनिये। ये गतियाँ प्रकाश या रंगों की धारियों या परतों, अंधकार के आभा भेद या अस्पष्ट गतियों के रूप में हो सकती है। चिदाकाश में प्रकाश, छाया और रंगों की इन स्वाभाविक सहज गतियों के प्रति सजग होइये। कभी-कभी वे इतनी तेजी से आती हैं कि उनके रंग या आकृति को पकड़ना कठिन होता है। प्रत्येक क्षण बनती और विलीन होती जाती हैं। कभी-कभी तो प्रकाश या रंगों का गुच्छा चिदाकाश में अभिव्यक्त होता है और विलीन होने के पूर्व कुछ समय तक बना रहता है। जब ऐसा हो तब उसे ध्यान से देखिये।

चिदाकाश में हलचल का अवलोकन कीजिये, चाहे वह छाया की हो या प्रकाश की या रंग की। अपने अवधान को अभ्यास से विभ्रान्त मत होने दीजिये। चिदाकाश में छाया, प्रकाश और रंगों के हलचल के अतिरक्त अन्य किसी चीज के प्रति सजगता न रहे। यदि मन में जिज्ञासा, विश्लेषण, या अन्य किसी प्रकार का कोलाहल हो तो उन्हें रोकिये। चिदाकाश में आप जो देख रहे हैं उसके प्रति सजग रहिये। आपको उनकी बौद्धिक व्याख्या नहीं करनी है, बस केवल देखना है।

धीरे-धीरे चिदाकाश की, अनन्त आकाश की सजगता विकसित करनी है। कल्पना करने का प्रयास कीजिये कि जब एक आन्तरिक यात्री आकाश में भ्रमण करता है तब वह कैसा अनुभव करता है। उसके चारों ओर घोर अन्धकार होता है, वह सितारों को विभिन्न रंगों, आकार-प्रकारों में जगमगाते हुए देख सकता है। आपको उसी प्रकार का एक अनुभव विकसित करना है। उस विशाल चिदाकाश के आकाश का अनुभव कीजिये। चेतना के

एक भाग को अनुभव करना चाहिए और दूसरे भाग को अनुभव का, संवेदना का निरपेक्ष रूप से मात्र अवलोकन करना चाहिए।

अष्टम् चरण– बिम्ब विधान उत्पन्न करना

किसी चीज के बारे में सोचिये। मन में जो पहला विचार उठे, चाहे जो हो, उसका चित्र देखने का प्रयास कीजिये। अपने विचार को रूप दीजिये। यदि आप एक फूल के विषय में सोचते हैं, तो चिदाकाश में फूल का ही बिम्ब उत्पन्न कीजिये। यदि एक वृक्ष के विषय में सोचते हैं तो वृक्ष का ही बिम्ब चिदाकाश में उत्पन्न कीजिये। यदि आग की बात सोचते हैं तो आग का बिम्ब उत्पन्न कीजिये। पर स्मरण रखिये, मन में जो पहला विचार आये, केवल पहला, उसी को रूप दीजिये। यदि आप उसके विषय में सोचने के पश्चात् बिम्ब बनायेंगे वह मान्य नहीं होगा। प्रक्रिया स्वत: स्फूर्त होनी चाहिए। चिदाकाश में तैर रहे प्रकाश और रंग के कणों से ही बिम्ब बनाइये। जो बिम्ब बने उसको रंगों, प्रकाशों एवं छायाओं से भरिये। चिदाकाश में जो रूप आप उत्पन्न करते हैं, उसमें सजग प्रयास से रंग भरिये।

नवम् चरण– यंत्र का मानस दर्शन

एक यंत्र एक विशेष ज्यामितीय आकृति या आकृतियों के सम्मिश्रण के विषय में मन की तीव्रता से सोचिये। किसी यंत्र के विषय में सोचिये, चाहे उसके विषय में किसी से केवल सुन रखा हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आपने उस यंत्र को जीवन में कभी देखा है या नहीं। मन की तीव्रता से केवल किसी एक के विषय में सोचिये। उसका स्वाभाविक एवं सहज रूप में अवलोकन कीजिये। चिदाकाश में तीव्रता से देखिये, चाहे उस यंत्र की ज्यामितीय आकृति प्रकट हो अथवा नहीं। यंत्र का विचार, भाव, बोध अवचेतन मन से आना चाहिए। जब अवचेतन से विचार उत्पन्न होता है और चिन्तन में गहराई होती है तो यंत्र को प्रकट होना ही है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप यंत्र का प्रतिबिम्ब एक ही बैठक में देख लेते हैं या दस बैठकों में, अभी या बाद में। इसकी चिन्ता नहीं कीजिये। आपका प्रयोजन धारणा की तीव्रता से है, चिदाकाश की सजगता से है। साधना की अपनी सजगता को मानसिक बिखराव द्वारा विक्षिप्त न होने दीजिये, अपनी धारणा की तीव्रता और सजगता को नहीं खोइये।

दशम् चरण– अतीन्द्रिय लेखन

चिदाकाश धारणा का अगला चरण है अतीन्द्रिय लेखन। सम्पूर्ण चिदाकाश की एक विशाल ब्लैक बोर्ड के समान कल्पना कीजिये। उस ब्लैक बोर्ड पर आप विभिन्न रंगों की खड़ियों से लिखने जा रहे हैं। चिदाकाश के ब्लैक बोर्ड पर ऊपर बायीं ओर सफेद खड़िया से सुस्पष्ट अक्षरों में अपना नाम लिखिये। फिर उसके नीचे पीली खड़िया से एक से दस तक की संख्या लिखिये और प्रत्येक के बाद अर्ध विराम देते जाइये। फिर तीसरी लाइन में नारंगी रंग की खड़िया से छोटे-छोटे वृत्त बनाइये। पहले एक के नीचे फिर दो के नीचे, फिर तीन के नीचे और इसी तरह बनाते जाइये। इसके बाद लाल खड़िया से प्रत्येक वृत्त के नीचे छोटी-छोटी वर्गाकृति बनाते जाइये। अब सफेद खड़िया लीजिये और प्रत्येक वर्गाकृतियों के नीचे त्रिभुज बनाते जाइये।

अब पूरे ब्लैक बोर्ड पर नजर डालिये। बाँयें कोने पर लिखा अपना नाम देखिये। दूसरी लाईन में लिखी संख्याओं को देखिये, फिर तीसरी लाइन में वृत्तों को देखिये, चौथी लाइन में वर्गों को और पाँचवीं में त्रिभुजों को देखिये।

एकादश चरण– आकाश में उतराना

अब सारी लिखावट को साफ कर दीजिये। चिदाकाश की सजगता की ओर लौटिये। सम्पूर्ण मस्तक के आकाश, विस्तृत आकाश को एक वृत्त, एक गेंद, एक गोले की तरह देखिये, जिस में एक छोटा गोल द्वार है। उस गोले में उस गोल द्वार से होकर प्रवेश कीजिये। आप उस गोले के अन्दर तिर रहे हैं। चिदाकाश के गोले के अन्दर तिरने का अनुभव तभी होगा जब पूर्ण शारीरिक संतुलन एवं स्थिरता होगी। एक बार जब इसकी उपलब्धि हो जाती है, तब उतराने, तिरने या भूमि के ऊपर उठने की संवेदना आयेगी। आपको सर्वप्रथम शरीर और शारीरिक संवेदना के नियंत्रण द्वारा आकाश में उतराने के सूक्ष्म अनुभव हेतु प्रयास करना होगा। इसके बाद ही चिदाकाश के गोले में प्रवेश कीजिये और उसमें तिरने का अनुभव कीजिये। इस भावना को तीव्र एवं विकसित करने का प्रयास कीजिये, जो शारीरिक अनुभव और चिदाकाशीय अनुभव के मध्य समन्वय और समरसता द्वारा प्रकट होती है।

द्वादश चरण– अभ्यास का समापन

मानसिक आकाश, चिदाकाश के प्रति सजग बनिये। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त उस आकाश के प्रति सजग होइये। स्थूल शरीर और ध्यान के आसन के प्रति सजग बनिये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार का ख्याल कीजिये। स्थूल शरीर की पूर्ण सजगता। श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग होइये। जिस कमरे में बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। बाहर में हो रही आवाजों को सुनिये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिये।

अभ्यास टिप्पणी

चिदाकाश धारणा के मुख्य पक्षों का वर्णन किया गया है। परन्तु आपको प्रत्येक को सिद्ध करना होगा, एक-एक कर। आपको एक जानकारी देने की दृष्टि से उन्हें चरणों में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु, आपको प्रत्येक चरण को स्वतंत्र रूप से सिद्ध करना चाहिए। अगले चरण में तभी बढ़िये जब आप पूर्व का चरण सिद्ध कर चुके हों। मात्र सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करने की अपेक्षा प्रायोगिक समझ के लिए ऐसा करना आवश्यक है।

हरि ॐ तत्सत्

आज्ञा चक्र धारणा

आज्ञा चक्र का मानस दर्शन चिदाकाश धारणा का ही एक अंग है, परन्तु यह एक अधिक उन्नत स्तर का अभ्यास है। चिदाकाश धारणा के पूर्व अभ्यासों में हमने मानस पटल पर विभिन्न अभिव्यक्तियों के प्रति सजग बनने का प्रयास किया है, जहाँ विभिन्न प्रतिबिम्ब, रंग, आकृतियाँ, चित्र, काया, यंत्र और प्रतीक देखे गये, उत्पन्न किये गये और मिटा दिये गये।

चिदाकाश धारणा उन सूक्ष्म एवं मानसिक क्रियाओं की स्वीकृति से सम्बन्धित है जो मनः चतुष्टय, अर्थात्– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के साथ शरीर और इन्द्रियों की अन्योन्य क्रियाओं द्वारा स्वतः उत्पन्न होती हैं। परन्तु चिदाकाश धारणा के उस स्तर को भी सिद्ध करने में काफी समय लगता है, यद्यपि वे अभ्यास अपेक्षाकृत साधारण एवं सरल हैं।

शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्धित अनुभवों, मानसिक अनुभवों और महत् के मनः चतुष्टय का अतिक्रमण करने हेतु, उनके पार जाने हेतु चिदाकाश के प्रारम्भिक अभ्यासों को तो सिद्ध करना आवश्यक है। इसके पश्चात् ही हम आज्ञा-धारणा के विभिन्न चरणों में प्रवेश कर सकते हैं।

अन्तः प्रज्ञा का अधिष्ठान

योग सम्बन्धी वेदान्त के सिद्धान्तों तथा ऐसे व्यक्तियों के अनुभवों के अनुसार, जिन्होंने इन्हें सिद्ध किया है, आज्ञा चक्र वह स्थान है जहाँ महत् कामना के रूप में अभिव्यक्त होता है। उस कामना को जो महत् की प्रथम अभिव्यक्ति है, इच्छा शक्ति कहते हैं। इस महत की अगली अभिव्यक्ति संकल्प शक्ति के रूप में होती है। इसके पश्चात् यह क्रियाशक्ति, सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त होती है। बाद में परम प्रज्ञा की सृजन प्रक्रिया का विभिन्न चक्रों के स्तर पर अनुभव होता है। अतः आज्ञा चक्र ही वह बिन्दु है जहाँ उच्चतर

बुद्धि, व्यक्त एवं अव्यक्त बुद्धि दोनों की अनुभूति होती है। इसी कारण योग परम्परा में आज्ञा चक्र को अन्त: प्रज्ञा का अधिष्ठान, गुरु का स्थान या छठी इन्द्रिय का केन्द्र कहा गया है। पाँच इन्द्रियाँ तो व्यक्त आयाम से, व्यक्त अनुभव से सम्बन्धित हैं। छठी इन्द्रिय या अन्त:प्रज्ञा जन्य अनुभव परम प्रज्ञा की अनुभवातीत अभिव्यक्ति है। यहीं पर हमें अपनी सृजनात्मकता, संकल्प शक्ति, और कामना को व्यक्त या अव्यक्त अनुभवों का प्रापक या पात्र बनाने हेतु संकेन्द्रित करना है।

यंत्र का प्रतीकार्थ

आज्ञा रेडार की तरह काम करता है। आप जो भी ग्रहण करते हैं वह आपके संकेन्द्रण की दिशा पर निर्भर रहता है। यदि आप नीचे की ओर संकेन्द्रित करते हैं तो विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार में संचित अनुभव प्राप्त होंगे। आज्ञा को नीचे की ओर संकेन्द्रित कर आज्ञा में इन विभिन्न निम्नस्थ स्तरों के प्रति सजग बनना ही चिदाकाश धारणा है। जब आप आज्ञा की एकाग्रता को उलट देते हैं तब यह आज्ञा धारणा की साधना बन जाती है। एन्टेना को, जो ऊपर की सूचनायें और स्पन्दन प्राप्त करता है, पुन: संकेन्द्रित करना ही आज्ञा धारणा की साधना है।

उस एन्टेना (शृंगिका) के लिए एक केन्द्र बिन्दु होना आवश्यक है। परम चेतना को एक किरण पुंज के रूप में ले जाने एवं आज्ञा की ओर निर्दिष्ट करने हेतु, जिससे सूचना मानवीय संरचना में अनुभवातीत निवेश की तरह प्राप्त की जा सके, हमें यंत्र का प्रतीकार्थ जानना आवश्यक है। जिस यंत्र का हमें मानस दर्शन करना है वह श्वेत वृत्त में बालचन्द्र है। यह बालचन्द्र एन्टेना है और श्वेत वृत्त वह डिश (स्थालिका) है, जिसे दिशा विशेष की ओर संकेन्द्रित किया जाना है। इस 'डिश' को 'बिन्दु' में एकाग्र या संकेन्द्रित करना है, श्वेत वृत्त आज्ञा में 'बिन्दु' को निरूपित करता है।

आज्ञा में वह बिन्दु आज्ञा के ऊपर के बिन्दु का छाया प्रतिबिम्ब है। यह एक दर्पण बिम्ब है। आज्ञा के ऊपर का बिन्दु, जिसे हम जल की नीली बूँद के रूप में देखने का प्रयास करते हैं, वह परम प्रज्ञा के प्रज्ञा पट में वह छिद्र है जिससे होकर परम प्रज्ञा वस्तुत: छनकर आज्ञा की ओर निर्दिष्ट होती है। अत: आज्ञा और बिन्दु के इस सम्बन्ध के प्रति सजग होना ही आज्ञा धारणा का प्रथम चरण है।

निवेश का विलोपन

आज्ञा धारणा के अगले अभ्यासों में प्रत्येक प्रकार के निवेश का पूर्णतया विलोपन या अवरोध होता है जिन्हें हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियों और मन: चतुष्टय से प्राप्त करते हैं। यदि प्राकृत या सहज सजगता शारीरिक और मानसिक बोध या ज्ञान से परे ले जायी जाये तभी यह पूर्ण अवरोध होता है। जब तक हम उस बिन्दु पर पहुँच नहीं जाते यह अभ्यास अत्यन्त नीरस लगेगा, क्योंकि आलम्बन के लिए कुछ रह नहीं जाता। हम मूलाधार से विशुद्धि तक शून्य में छलांग लगाते हैं जहाँ अटकने के लिए कुछ नहीं रहता है, और पुन: आज्ञा धारणा में यह समान अनुभव है।

चिदाकाश धारणा में हमने संवेदी निवेशों, मानसिक निवेशों को स्वीकृति दी। रंगों की रचना चिदाकाश में एक निवेश है, इसे चाहे हम दृष्टि तन्त्रिकाओं का, संवेदी क्षेत्र का, संस्कारों का या स्मृति का निवेश कह सकते हैं। हम जिससे भी चाहें इस निवेश को जोड़ सकते हैं। यह अर्थहीन नहीं होगा।

जब ये निवेश साफ कर दिये जाते हैं तब आज्ञा का पुन: संकेन्द्रण होता है। दो ही मार्ग हैं जिन्हें आज्ञा का अभिग्राहक (receiver) चुन सकता है– निचला या ऊपर वाला। अत: जैसे ही आप प्रारम्भ करते हैं एक मार्ग अस्पष्ट हो जाता है और क्रमश: अवरुद्ध हो जाता है। दूसरा मार्ग जैसे खुलता है चित्र थोड़े धुँधले रहते हैं, फिर रूप रेखा उभरती है, छायाभास होता है और अन्तत: बिम्ब स्पष्ट हो जाता है। अस्पष्ट चित्र, रूप रेखा, छाया और स्पष्ट बिम्ब आज्ञा धारणा के चार चरण हैं जो प्रारम्भिक अवस्था के बाद आते हैं, जिसका वर्णन यहाँ दिया गया है।

कुण्डलिनी योग का अभिगम

इस प्रतीकार्थ को कुण्डलिनी योग में विभिन्न प्रकार से समझाया गया है, यथा यथार्थ अनुभूति जो समग्र व्यक्तित्व को पूर्णतया रूपान्तरित कर देती है। कुण्डलिनी योग का मत है कि बिन्दु अमृत का स्रोत है, अधिष्ठान है। तंत्र का भी यह विश्वास है। इसी बिन्दु से वह अमृत बूँद शरीर में गिरती है। जब यह शरीर में गिरती है तो मणिपुर की अग्नि द्वारा उसका उपभोग कर लिया जाता है और तब व्यक्ति जन्म, मृत्यु और नाश के चक्र में पड़ जाता है।

परन्तु कुछ साधनायें हैं जिनकी सहायता से यह अमृत बिन्दु विशुद्धि के स्तर पर ही रोक लिया जाता है। जब इस अमृत को नीचे मणिपुर तक गिरने

नहीं दिया जाता है, वरन् चिदाकाश क्षेत्र में ही रोक लिया जाता है तब व्यक्ति अमर हो जाता है। हठयोग एक कदम और आगे बढ़ जाता है– आज्ञा के अनुभव को अनुभवातीत प्रकृति में रूपान्तरित करने हेतु यह चिदाकाश में अमृत के स्राव हेतु खेचरी मुद्रा का उपयोग करता है।

आप कोई भी रास्ता अपनायें, कुण्डलिनी योग का, तंत्र का, योग वेदान्त का, साधनाओं में हल्का ही अन्तर होता है। प्रत्येक साधना की विधियों में अन्तर हो सकता है, पर परिणाम सबका एक ही होता है। यदि खेचरी मुद्रा के अभ्यास से आप बिन्दु या अमृत को चिदाकाश के स्तर पर धारण कर लेते हैं तब आप स्थूल रूप से स्वत: ही उसके स्वाद का अनुभव कर सकते हैं। बिन्दु को उच्चतर स्तर पर धारण कर लेना बड़ा शक्तिशाली अनुभव है जिसे शारीरिक, संवेदी अनुभव के रूप में भी बदला जा सकता है।

यह किसी खट्टी वस्तु के विषय में सोचने जैसा है। कल्पना कीजिये कि अभी आप एक नींबू चूस रहे हैं। जिन लोगों में वह तीव्रता होगी वे लार ग्रन्थियों में कड़ापन और लार के स्राव का वस्तुत: अनुभव कर सकते हैं। केवल अपनी सजगता अैर एकाग्रता को उस दिशा में लगाकर आप वह स्वाद इस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं कि वह एक स्थूल अनुभव बन जाए। यदि आप बिखरी हुई, विक्षिप्त मन:स्थिति में भी ऐसा कर सकते हैं तो कल्पना कीजिये कि अपनी समस्त मानसिक ऊर्जा को उस अनुभव पर केन्द्रित कर आप कैसे स्वाद को उत्पन्न कर सकते हैं।

इसी स्तर पर स्थूल मन और महत्, दोनों एक अत्यन्त गहरा रूपान्तरण लाने हेतु मिल जाते हैं। हम न केवल कुण्डलिनी योग, तंत्र या वेदान्त की ही दृष्टि से बात कर रहे हैं, वरन् विभिन्न स्तरों के विषय में कह रहे हैं। हम तीनों को सम्मिलित करना चाहते हैं, और इसी प्रकार हम उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं को समझ सकते हैं।

केन्द्र-परिवर्तन

आज्ञा धारणा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एकाग्रता एवं सजगता इस स्तर तक विकसित हो जाती हैं कि सारा संकेन्द्रण बिन्दु की ओर बदल जाता है, हम स्वर्ग से निवेश, सुदूर टेलीफोन कॉल प्राप्त करने लगते हैं– आज्ञा चक्र के इस स्तर पर यदि आप प्रभु से टेलीफोन कॉल प्राप्त करते हैं और वे कहते हैं– 'सुनो वत्स, अब तुम्हें यह करना है, अब वह करना है', तब जीवन बड़ा दुरुह हो जाता है।

उस समय अपनी आत्म-सजगता भी खो देना संभव है। शंकालु प्रकृति जग जाती है। परम मन के सम्प्रेषण में स्थूल मन हस्तक्षेप करने लग जाता है और हम सोचने लगते हैं, "हम इसका पालन करें या न करें? हम कैसे आश्वस्त हों कि यह सहजानुभूत संवाद है या त्रिशूल, डमरूधारी का आदेश है।" इस प्रकार की चीजें होती हैं और हम प्राय: इन्हें रहस्यमय अनुभव मान लेते हैं, फिर भी एक बार जब चेतना सहजानुभूत स्तर पर पहुँच जाती है तब हमें त्रिशूल-डमरूधारी से टेलीफोन कॉल नहीं आता है। केवल एक ही हॉट लाइन रहती है। परन्तु यदि मन में द्वन्द्व है, सजगता में द्वन्द्व है तब वही संशय आपका अपना शत्रु बन जाता है।

अतएव साधना में इस प्रकार की प्रगति का लक्ष्य रखना आवश्यक है जहाँ आप इन अनुभवों को क्रमानुसार एक-एक करके लेते हैं और सिद्ध करते हैं, जिससे आगे चलकर सही संकेत पाने में कोई द्वन्द्व न हो। मानसिक शक्ति, संवेदनात्मक शक्ति पर इतना नियंत्रण होना आवश्यक है। इन शक्तियों पर नियंत्रण ही तपस्या है जो शारीरिक और मानसिक दृढ़ता प्रदान करती है, शरीर और मन पर संयम प्रदान करती है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। शरीर को व्यवस्थित कर लीजिये जिस से मेरूदण्ड सीधा एवं लम्बवत् हो। हथेलियाँ घुटनों पर या गोद में रख लीजिये और आँखें बन्द कर लीजिये। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर की सजगता विकसित कीजिये। आश्वस्त हो जाइये कि शरीर का प्रत्येक अंग आराम में और विश्रान्त है। मन को शरीर के एक अंग से दूसरे अंग में घुमाइये। मन को विभिन्न अंगों में आन्तरिक रूप से घुमाकर सम्पूर्ण शरीर की पूर्ण सजगता विकसित कीजिये। विभिन्न पेशियों, तंत्रिकाओं, आन्तरिक अंगों और जोड़ों की स्थिति, तनाव और विश्रान्ति का अवलोकन कीजिये। आन्तरिक रूप से विश्रान्त हो जाइये जिससे समस्त शरीर में पूर्ण आराम रहे।

द्वितीय चरण– स्थिरता एवं नीरवता

अपने आसन के प्रति सजग होइये। शरीर की भंगिमा की सजगता विकसित कीजिये। जैसे-जैसे आप सजग होते जायेंगे, शरीर और मन

में निश्चलता, स्थिरता और नीरवता का भाव अभिव्यक्त होने लगेगा। शारीरिक निश्चलता के प्रति सजग बनिये। अपने भीतर एवं अपने आस-पास की नीरवता के प्रति सजग होइये। आपका शरीर एक मूर्ति के समान स्थिर है, पूर्णतया स्थिर और निश्चल। समस्त शारीरिक और मानसिक संरचना में व्याप्त नीरवता एवं स्थिरता के अनुभव के प्रति सजग बनिये।

किसी शारीरिक अनुभव के साथ तादात्म्य मत स्थापित कीजिये। किसी प्रकार की सुविधा या असुविधा, पीड़ा या आनन्द का अनुभव नीरवता एवं स्थिरता की संवेदना की आपकी सजगता को भंग नहीं कर सकता है। शारीरिक अनुभवों से अपने को पूर्णरूपेण पृथक् कर लीजिये। मानसिक रूप से अपने से कहिये, "मैं न शरीर हूँ और न मानसिक अनुभवों से सम्बद्ध हूँ।" शरीर और शारीरिक अनुभूतियों से, मन और मानसिक अनुभूतियों से, अपने आपको पृथक् कर लीजिये, निर्लिप्त कर लीजिये।

तृतीय चरण– पवन स्तम्भ

अब शरीर में मणिपुर से आज्ञा तक खड़े एक पवन स्तम्भ के रूप में अपनी श्वास के प्रति सजग होइये। अभिश्वसन एवं अपश्वसन के समय आपकी चेतना इसी स्तम्भ पर क्रमशः मणिपुर से आज्ञा तक आरोहण करती है और आज्ञा से मणिपुर तक अवरोहण करती है। शारीरिक हलचल से अपनी सजगता हटाइये। मणिपुर से आज्ञा तक खड़े इस पवन स्तम्भ के सहारे अपनी चेतना के आरोहण एवं अवरोहण के प्रति सजग रहिये। निश्चलता की भावना के प्रति सतत् सजगता बनाये रहिये। केवल अपनी श्वास और पवन स्तम्भ पर चेतना के आरोहण-अवरोहण के प्रति सजग बने रहिये।

चतुर्थ चरण– आकाशी मुद्रा

अपनी समग्र सजगता को चिदाकाश क्षेत्र में आज्ञा चक्र पर ले आइये और वहीं केन्द्रित कीजिये। आज्ञा चक्र के क्षेत्र में आकाश के अनुभव के प्रति पूरी सजगता विकसित कीजिये। आज्ञा चक्र के क्षेत्र में आकाश के प्रति सजगता के द्वारा अपने मन को शेष शरीर से क्रमशः पृथक् कीजिये। आज्ञा क्षेत्र की पूर्ण सजगता बनी रहे।

ध्यान से सुनिये और निर्देशों का पालन कीजिये। सर्वप्रथम अपने सिर को ऊँचा कीजिये और पीछे की ओर विश्रान्त भाव से ढुलक जाने दीजिये।

इस प्रकार आपका चेहरा छत की ओर हो जायेगा। तत्पश्चात् आँखें खोल लीजिये और आँखों को भ्रू-मध्य में केन्द्रित कीजिये, जैसा कि शाम्भवी मुद्रा में होता है, आँखों की पेशियों में न तनाव उत्पन्न करें और न ही आँखों की पलकें झपकायें। जब आप ऊपर की ओर एकटक देखना प्रारम्भ करेंगे तो आप पायेंगे कि भौंहें एक अधोमुखी त्रिकोण बनाती हैं।

उस अधोमुखी त्रिकोण के शीर्ष पर धारणा कीजिये। फिर हल्के से आँखें बन्द कर लीजिये। सिर को सीधा कर लीजिये। सिर में हो रही संवेदना के प्रति सजग होइये। हल्केपन और तैरने जैसा अनुभव कीजिये। आँखों की पेशियों में थकान या तनाव से मन को अलग कीजिये। वे धीरे-धीरे विश्रान्त हो जायेंगी। चिदाकाश में, सिर में अनुभव हो रही संवेदना पर ही अधिक से अधिक संकेन्द्रित होइये।

एक बार फिर सिर को उठाइये और पीछे ढुलक जाने दीजिये। जब आप सुविधाजनक स्थिति में आ जायें तब आँखें खोल लीजिये और भ्रू-मध्य में एकटक देखना शुरू कर दीजिये। आँखें बन्द कर लीजिये और सिर को पुन: सीधा कर लीजिये। सिर के भीतर हो रही संवेदना के प्रति सजग हो जाइये। आँखों की पेशियों के अनुभव से अपने मन को अलग कर लीजिये।

फिर सिर को पीछे ढुलकाइये। आँखें खोलकर भ्रू-मध्य पर एकटक देखिये। आँखें बन्द कर सिर को सीधा कीजिये। सिर में हो रही संवेदना के प्रति सजग होइये और गर्दन, आँखों की पेशियों और आँखों के तनाव को विश्रान्त करने का सजग प्रयास कीजिये। उन क्षेत्रों से अपने बोध को अलग कर सिर के मध्य में आज्ञा चक्र पर उसे संकेन्द्रित कीजिये।

पंचम चरण– यंत्र का मानस दर्शन

सिर के मध्य में आज्ञा चक्र की अवस्थिति का पता करने का प्रयास कीजिये। भ्रू-मध्य पर अवस्थित आज्ञा क्षेत्र से अपने अवधान को सिर के भीतर ले आइये और मध्य मस्तिष्क के केन्द्र में उसे संकेन्द्रित कीजिये। कल्पना कीजिये कि एक अदृश्य धागा बाँयें कान से दाँयें कान तक तथा दूसरा धागा भ्रूमध्य से सिर के पीछे के भाग में जाता है। सिर के भीतर मध्य में जहाँ दोनों धागे एक-दूसरे को पार करते हैं वही धारणा का बिन्दु है।

उसी बिन्दु पर एक बाल चन्द्र और श्वेत वृत्त की कल्पना कीजिये। अनन्त आकाश की नीरवता एवं अंधकार में ऊपर एक प्रकाशमान श्वेत वृत्त के

साथ एक प्रकाशमान श्वेत बालचन्द्र का मानस-दर्शन कीजिये, उसका अनुभव कीजिये। वेदान्त के अनुसार यह आज्ञा चक्र का स्वरूप है।

आज्ञा के इस यंत्र पर अवधान केन्द्रित करते समय ही सिर के अन्दर सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त स्पन्दन के प्रति सजग बनिये। वह ॐ का स्पन्द है। ॐ आज्ञा का बीज मंत्र है। आज्ञा के इस यंत्र का स्वरूप है– ऊपर में एक श्वेत वृत्त के साथ रजत बालचन्द्र।

षष्ठ चरण– मन नहीं, शरीर नहीं

आज्ञा के बीज के स्पन्द और यंत्र पर जैसे-जैसे आपकी एकाग्रता अधिक तीव्र होती है, आपको लगेगा कि क्रमशः आपकी शारीरिक और संवेदी सजगता कम होती जाती है। उस गहरे काले और नीरव आकाश से, जो आज्ञा के मंत्र एवं यंत्र को धारण किये हुए है, एक एकात्म भाव आ जाता है।

यदि आपको पता चलता है कि सिर के मध्य में आज्ञा के बिम्ब से आपकी सजगता सिर के अग्र भाग में विचलित हो रही है तब आप अपनी सजगता को पीछे खींचकर केन्द्र में लाने का प्रयास कीजिये। चिदाकाश के गहरे काले अनन्त आकाश में आज्ञा के स्पन्द और आज्ञा के बिम्ब के बोध की सजगता में विलीन होने एवं अधिक तीव्रता से एकाग्र होने का प्रयास कीजिये।

आज्ञा क्षेत्र में अपना अवधान रखते हुए मनः चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) की कम होती सजगता का अवलोकन कीजिये। जैसे-जैसे आपकी सजगता आज्ञा चक्र पर अधिकाधिक तीव्रता से केन्द्रित होती है, इस मनः चतुष्टय की आसक्ति, पकड़ और तीव्रता क्रमशः कम होती जाती है ।

आज्ञा क्षेत्र में समस्त सजगता को केन्द्रित करते हुए 'मन नहीं' एवं 'शरीर नहीं' की अनुभूति विकसित कीजिये, केवल आज्ञा में स्थिति होने की अनुभूति रहे। पूरे समय यही सजगता बनाये रखिये, 'शरीर नहीं' की सजगता, 'मन नहीं' की सजगता, केवल आज्ञा के आकाश की ही अनुभूति बनी रहे।

सप्तम् चरण– आज्ञा और बिन्दु

अब सिर के पीछे ऊपर के हिस्से में बिन्दु के क्षेत्र में अपनी सजगता को ले चलिये। जल के एक बिन्दु के समान, दीप्त नीले रंग के एक प्रकाश बिन्दु

के प्रति सजग होइये। इसी बिन्दु पर धारणा कीजिये। साथ ही साथ केन्द्र में आज्ञा का, श्वेत वृत्त के साथ एक श्वेत बाल चन्द्र का अवलोकन कीजिये। बिन्दु को, दीप्त नीले प्रकाश बिन्दु के रूप में तथा आज्ञा को श्वेत वृत्त के साथ एक श्वेत बालचन्द्र के रूप में देखिये। आज्ञा और बिन्दु, दोनों को साथ-साथ देखिये।

अष्टम् चरण– अभ्यास का विराम

सजगता और धारणा के दोनों स्थलों से अपने मन को धीरे-धीरे वापस लाइये। चिदाकाश के प्रति सजग होइये। मन को क्रमशः बहिर्मुखी कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। स्वाभाविक श्वसन के प्रति चैतन्य होइये। जिस कमरे में बैठे हैं उसके प्रति, बाह्य वातावरण के प्रति सजग होइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

हृदयाकाश धारणा

हृदयाकाश धारणा का अर्थ है हृदय के आकाश पर धारणा, एकाग्रता। यह साधना आपको सीधी एवं सरल प्रतीत हो सकती है या फिर कठिन और जटिल भी प्रतीत हो सकती है। यह इस पर निर्भर रहता है कि आप कितनी तीव्रता और प्रागाढ़ता से मनोभाव उत्पन्न कर पाते हैं, क्योंकि यह साधना आप की भावनाओं, आपकी संवेदनशीलता की तीव्रता से सम्बन्धित है।

सुनिश्चित कर लीजिये कि इस साधना क्रम में मनोभावों की तीव्रता आपकी मानसिक दृष्टि को नहीं बदल सके। इस साधना में पूर्ण विषाद या आह्लाद का अनुभव होना सरल है। आपको रोना भी आ सकता है या हँसी भी आ सकती है। पर एक बात स्मरण रखनी है कि जब भावनाओं का ज्वार उमड़े तो उसे नियंत्रित करने का प्रयास नहीं हो। चिन्ता की बात नहीं, कुछ नहीं होगा।

हृदयाकाश की वास्तविक साधना का विवरण अन्त में दिया गया है पर पहले आप इसके विभिन्न पक्षों की जानकारी ले लीजिये। संक्षेप में मुख्य बातें हैं– भावनाओं की उत्पत्ति, भावनाओं के वर्ण (रंग), भावनाओं के परिवर्तन, भावनाओं की तीव्रता और भावनाओं के परे के आयाम। जब हम इन अभ्यासों को करते हैं तो याद कर इन्हें पूर्ण तीव्रता से करें, धारणा की तरह, और ऐसा नहीं कि जो भी हो रहा है उसके एक निष्क्रिय द्रष्टा बने रहें। साधना के समय अपनी समस्त ऊर्जा, भावना, और विचारों को केन्द्रित करने का हर संभव प्रयास कीजिये।

हृदयाकाश की प्रक्रिया

हृदयाकाश धारणा की पूरी प्रक्रिया अत्यन्त लम्बी एवं जटिल है। इसे छोटा बनाना कठिन है, क्योंकि इसमें एक ही साथ अनेक चीजें करनी पड़ती हैं।

अधिकतर व्यक्तियों के पास तो वस्तुत: इसके प्रत्येक पक्ष की गहराई में जाने हेतु पर्याप्त समय भी नहीं होता। यह आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। तथापि हमने गम्भीर साधकों के ज्ञान और निर्देशन हेतु हृदयाकाश धारणा को एक व्यापक, सम्पूर्ण और क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इसकी जटिलता का संक्षिप्त आभास तो इसी से मिल जायेगा कि इस धारणा का सम्बन्ध आपकी स्मृतियों, भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं से है जिनका अनुभव व्यक्ति इन सबके स्मरण से करता है। जिन भावनाओं की चर्चा यहाँ पर है, वह दिनानुदिन की सामान्य भावनायें नहीं हैं, जिन्हें हम जानते हैं। दिनानुदिन की सामान्य भावनायें उतनी तीव्र नहीं होती हैं। इस विधि में आपको बताया जाता है कि सूक्ष्म मानसिक धरातल पर विद्यमान प्रतिरोधों को हटाने के निमित्त किस प्रकार की विशिष्ट स्मृतियाँ या भावनायें जाग्रत करनी पड़ती हैं।

ध्यान का मनोचिकित्सात्मक पक्ष वस्तुत: हृदयाकाश धारणा का ही एक रूप है, क्योंकि अनेक प्रभावों को ऊपर सतह पर लाया जाता है, जो दमित या अवरुद्ध हैं। तथापि इस साधना को चिकित्सात्मक परिणामों की प्रत्याशा से नहीं लिया जाना चाहिए, क्योंकि यहाँ हम जो बता रहे हैं वह उपचारात्मक पक्ष नहीं है। हमारा प्रयोजन यहाँ सीमित मन और उसकी संचित स्वभावगत विशेषताओं और जटिलताओं से ऊपर उठने से है। हम यहाँ स्मृति, भावना एवं प्रतिक्रिया के साथ एक दूसरे ही दृष्टिकोण से कार्य कर रहे हैं, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जन्म काल की अवस्था को एक बार फिर से जीने की आधुनिक तकनीक, जिसे 'रीबर्थिंग' कहते हैं, का स्रोत भी हृदयाकाश धारणा ही है। इसकी और भी अन्य तकनीकें हैं जो अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं और हृदयाकाश धारणा के विभिन्न पक्षों से मिलती-जुलती हैं। अतएव, यह तो एक व्यापक विषय है। इस साधना को स्पष्ट करने हेतु बहुत से चरणों में इसे विभक्त किया गया है।

विद्यमान मनोभाव एवं ज्योति शिखा

इस प्रक्रिया में जो पहली चीज हम लेते हैं वह है विद्यमान मनोभाव। वह विद्यमान मनोभाव चिदाकाश के अनुभव से सम्बन्धित हो सकता है। चिदाकाश में हम जिस विचार-प्रक्रिया को देख रहे हैं, यह उस विचार प्रक्रिया के कारण उत्पन्न चिन्ता का मनोभाव हो सकता है। यह आनन्द या संतोष का भाव हो

सकता है जो चिदाकाश में संवेदी निवेश से सम्बद्ध हो। यह क्रिया किसी घटना के कारण भी हो सकती है जो घट चुकी है और जिसने हमारी मनोदशा बदल दी है। यह धारणा या एकाग्रता के कारण उत्पन्न अन्तर्मुखी भाव भी हो सकता है। सर्वप्रथम विद्यमान मनोभाव के प्रति सजगता होनी चाहिए। फिर उस मनोभाव की पहचान होनी चाहिए कि वह क्या है, उसका ज्ञान और अन्ततोगत्वा उसकी अनुभूति होनी चाहिए कि वह संतोष है, शान्ति है, चिन्ता है, आह्लाद या और कुछ है। "मैं अपनी चेतना को उस मनोभाव में विलीन कर रहा हूँ", इस बोध को खोये बिना, सजगता का उस मनोभाव में विलय किया जाये।

विद्यमान मनोभाव के पीछे ज्योति शिखा है। ज्योति शिखा का यह बिम्ब आत्मा के अधिष्ठान को प्रस्तुत करता है। योग परम्परा के अनुसार प्रकाश की एक शिखा या कण के रूप में आत्मा हृदयाकाश में रहती है।

> *अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ॥*
> *अँगुष्ठमात्र पुरुषो ज्योतिरिवा धूमकः ईशान भूत भव्यस्य स एवाथ सउर वः॥ एत द्वैतत् ॥ कठ 30*

इस संकल्पना की व्याख्या है हिरण्यगर्भ। कामना, भावना, वासना या महत्त्वाकांक्षा की हवा से अप्रभावित लघु निष्कम्प ज्योति शिखा ही वास्तविक 'आप' हैं। वही ज्योति शिखा, जो मन से परे है, शरीर से परे है, अनुभवों से परे है, आत्मा को प्रस्तुत करती है। यह एक स्वीकृति है– हाँ, मैं वही हूँ– 'सोऽहमस्मि' – "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ।"

भावना, स्मृति, प्रतिक्रिया

भावना को उत्पन्न करने और तदनुरूप रंग पैदा करने का प्रयास करने हेतु विद्यमान मनोभाव के प्रति सजग होना आवश्यक है। यदि आपको पक्का पता नहीं भी है कि किस प्रकार के मनोभाव के अनुरूप कौन-सा रंग होता है तो कोई बात नहीं। धारणा की तीव्रता के साथ ही काल क्रम में वह रंग आ जायेगा। वर्णोपचार की पुस्तकें पढ़कर अपने मन को पूर्वानुकूलित नहीं करें। मैं जानता हूँ कि क्रोध का सम्बन्ध लाल रंग से है, अतः अगली बार जब मैं हृदयाकाश धारणा की साधना करूँगा तो मैं लाल रंग देखूँगा। साधना स्वतः स्फूर्त होनी चाहिए। आप मनोभावों की स्वतः अभिव्यक्ति होने दें।

भावनाओं को तीव्रता के साथ प्रकट करना साधना का दूसरा पक्ष है। आपको केवल तीव्रता को बनाये रखना है। यह भी एक तकनीक है जो अनुभवों एवं मनोभावों के व्यापक क्षेत्र से सम्बन्धित है। यह सजगता को, उन प्रतिक्रियाओं को सम्हालने के लिए तैयार करती है जो स्मृतियों और भावनाओं के सम्मिश्रण की स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ हैं। ये प्रतिक्रियायें शारीरिक ही हों आवश्यक नहीं है। ये अन्य मनोभावों का भी रूप ले सकती हैं जो प्रथम भावना के प्रकट होने पर उत्पन्न होते हैं। अत: इन प्रतिक्रियाओं को आप अपनी अभिव्यक्ति नहीं समझें। ऐसा कुछ नहीं है जो आपकी अपनी भावना है या जो आप से उत्पन्न हुआ है। प्रतिक्रिया किसी स्मृति, किसी भावना, किसी परिस्थिति या देश और काल से सम्बन्धित है। उसी प्रकार सभी अनुभव एक-दूसरे से जुड़े हैं। हमें केवल एक ही काम करना है, उस भूली हुई कड़ी का पता लगाना है जो सम्पूर्ण चित्र को बदल देती है।

स्मृति का अभिनय

इस साधना के अन्तिम चरण में हम आद्यतम स्मृति का पुनर्स्मरण करने का प्रयास करते हैं जो हमारी चेतना में अन्तर्विष्ट है। यदि आप अपने मन में उस पुन: अभिनय की प्रक्रिया से गुजरते हैं, स्मृति का विश्लेषण करते हैं, तब आप को वातावरण में विद्यमान या स्वत: उत्पन्न कुछ विचार या भाव मिलेंगे, जिन्होंने आपके वर्तमान जीवन निर्माण में किसी न किसी प्रकार सहयोग दिया है। अवचेतन प्रभावों की शक्ति की कोई तर्क पूर्ण या बौद्धिक व्याख्या नहीं है। तथापि उस स्मृति में जो शब्द बोले गये थे, उन्होंने एक मनोदशा उत्पन्न की, जो कर्म किये गये थे, उन्होंने एक प्रभाव उत्पन्न किया और जिस चरित्र का प्रदर्शन आपने उस समय किया था या जो चरित्र आपके आस-पास में थे, उन्होंने भी प्रभाव छोड़ा है। जिस मनोदशा का आपने उस समय प्रदर्शन किया था वह उस समय विद्यमान थी। उसने भी एक प्रभाव उत्पन्न किया है। चैतन्य रूप से हम अवगत नहीं हैं कि क्या हुआ है, परन्तु वे प्रभाव और छाप हमारे साथ आज भी हैं तथा हमारे व्यवहार, मनोवृत्ति और चरित्र में, हमारे मनोभावों में एवं हमारी अपनी अभिव्यक्तियों में परिलक्षित होते हैं।

यदि हम में और भी अधिक पिछली स्मृतियों में जाने की क्षमता हो तो हम पायेंगे कि बच्चे के रूप में ऐसे अनेक प्रभाव हमारे द्वारा संचित किये गये हैं। आगे चलकर ये प्रभाव अपने को सुखद या दु:खद स्मृतियों में बदल देते हैं।

उनकी जो भी स्थिति हो, उनकी जो भी अवस्था हो, हमें उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। वे यदि मधुर या सुखद हैं तो उन्हें हम आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। यदि वे अप्रिय और दु:खद हैं तब हम उन्हें उतनी आसानी से स्वीकार नहीं करते हैं।

प्रथम प्रभाव

यदि हम लोग अपनी स्मृतियों में और भी अधिक पीछे जा सकें तो हम अपने जन्म के समय को, जब पूरा शरीर भी गर्भ से बाहर नहीं निकल पाया था, पुन: स्मरण करने का प्रयास कर सकते हैं, माँ के पेट से बाह्य वातावरण में प्रथम प्रवेश ने, संसार के प्रथम परिचय ने भी एक प्रभाव डाला है, एक छाप छोड़ी है। दुर्भाग्यवश यह पहला प्रभाव सामान्य रूप से असुरक्षा का होता है। एक ऐसे स्थान से, जो सुन्दर, सुखद, उष्मापूर्ण, सुरक्षित एवं निरापद है, बाहर ऐसे अपरिचित वातावरण में, जहाँ वायु-प्रवाह है, उष्मा एवं सुख का अभाव है, आना ही तो जगत् से प्रथम परिचय है, जगत् का प्रथम प्रभाव है। और यह सही प्रभाव है। असुरक्षा ही प्रथम प्रभाव है, प्रथम शिक्षा है, जो हमने जीवन में प्राप्त की है। उसी बिन्दु से हमारा जीवन यहाँ तक आया है। जिस क्षण हमने संसार में सिर निकाला उसी समय हमारे अन्दर असुरक्षा का बीज पड़ गया।

ध्यान में भी हमें असुरक्षा के उसी भाव का विभिन्न रूपों, विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में सामना करना पड़ता है। उस असुरक्षा की भावना को यहाँ एक अलग ढंग से, एक दूसरी मन:स्थिति में देखना होगा। मन की यह अवस्था तटस्थ एवं निष्पक्ष अवस्था है, जो कहीं लिप्त नहीं है। यदि हम लिप्त हो जाते हैं, उलझ जाते हैं तब हम एक भँवर में पड़ जाते हैं। फिर तो हम अविश्वसनीय गति से गोल-गोल घूमते रहते हैं, चक्कर लगाते जाते हैं। परन्तु हमें इस चक्रवात की परिधि से इसकी नाभि में, केन्द्र में जाना है। उच्चतर ध्यानावस्था में भी हम उसी अवस्था की कामना करते हैं जो व्यक्ति को गर्भवास में मिलती है– आराम, सुख, सुरक्षा और संतोष की अवस्था। इस प्रकार के ध्यान का कारण बड़ा सरल है– मन के उस अनुकूलन को भंग करना जो जन्म के समय उत्पन्न हो गया था।

हृदयाकाश की विभिन्न साधनाओं में बहुत अधिक अन्तर है। प्रारम्भिक साधनाओं में, उस मनोदशा में जीने और पुन: जीने का और उस मनोदशा

को तीव्र करने का कठिन, अपरिष्कृत और अदूषित भावों और भावनाओं की अनुभूति के लिए प्रयास किया जाता है। अन्तिम साधना में एक अत्यन्त ही सरल रूप से आत्म सहभागिता को एक ऐसी वास्तविक घटना से विलग करने का प्रयास किया जाता है जिसका हमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड और सिर सीधा रखते हुए ध्यान के किसी आसन में बैठ जाइये। हथेलियाँ घुटनों पर रख कर आँखें बन्द कर लीजिये। कुछ क्षणों तक अपनी शारीरिक स्थिति का अवलोकन कीजिये जो स्थिर एवं नीरव होती जा रही है। मानसिक रूप से पैरों, बाहुओं, सिर और सम्पूर्ण शरीर की स्थिति का अवलोकन कीजिये। सम्पूर्ण शारीरिक संरचना की पूर्ण सजगता रहे। यदि शरीर के किसी अंग में कड़ापन या तनाव है तो अपनी स्थिति को पुनर्व्यवस्थित कर लीजिये ताकि आपको सुविधा मालूम पड़े। शरीर और मन, दोनों में ही साथ-साथ शान्ति और नीरवता बनाये रखिये।

मन ही मन कहिये– "मैं धारणा का अभ्यास करने जा रहा हूँ।" यह कहकर मानसिक रूप से तैयार हो जाइये। धारणा के अभ्यास के लिए प्रथम महत्त्वपूर्ण शर्त है कि मानसिक विक्षेप और बिखराव रुके। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है कि ध्यान के विषय या ध्यान प्रक्रिया में अवलोकन के क्रम में चैतन्य होकर संकल्पपूर्वक धारणा को तीव्र करने की क्षमता निश्चित रूप से विकसित कर ली जाये। पुनः मन ही मन अपने से कहिये– "मैं धारणा का अभ्यास करने जा रहा हूँ" ऐसा कहकर आप अपने मन को बाह्य वस्तुओं पर भटकना छोड़कर, एकाग्र होने के लिए निर्देश दे रहे हैं।

अभ्यास के समय मनोभाव को तीव्रता से उत्पन्न करने का प्रयास कीजिये। अभ्यास के पूर्व, पश्चात् या अभ्यास के समय अपने अनुभव का विश्लेषण करने या उस पर विचार करने का प्रयास नहीं कीजिये। अपने आस-पास की सभी चीजों को भूल कर तीव्रता से अनुभव करने का प्रयास कीजिये। केवल आप और आपके ईश्वर ही विद्यमान हैं। अन्य कोई या कुछ भी नहीं है। आपके आस-पास अन्य अनेक व्यक्तियों की उपस्थिति के बावजूद भी अपने आप में अकेले होने की मनोदशा विकसित कीजिये। अन्दर में अकेलेपन की अनुभूति विकसित कीजिये।

इस आन्तरिक एकान्त में आकाश के अनुभव के प्रति सजग बनिये, शरीर के अन्दर आकाश की पूर्ण सजगता। आकाश की इस सजगता में स्थिरता की अनुभूति है। इस अनुभूति के प्रति सजग बनिये जो समस्त शरीर में व्याप्त है।

द्वितीय चरण– हृदयाकाश में प्रवेश

अपनी सजगता को वक्ष-प्रदेश में लाइये। वक्ष पिंजर से घिरे आकाश के प्रति सजग होइये। यही हृदयाकाश है। सामने में उरोस्थि और पीछे में मेरुदण्ड, दोनों के मध्य में आकाश का अवलोकन कीजिये। मध्य-पटल और कन्धों के बीच के समस्त आकाश को देखिये। श्वास लेते समय अनुभव कीजिये कि यह आकाश फैल रहा है और श्वास छोड़ते समय संकुचित हो रहा है।

हृदयाकाश, वक्ष-प्रदेश के आकाश की सजगता विकसित कीजिये। नीरवता एवं निश्चलता से संतृप्त अनन्त आकाश का अनुभव कीजिये। इस आकाश में व्याप्त नीरवता एवं निश्चलता का जब आप अवलोकन करते हैं तो आपको प्रतीत होता है कि इन्द्रियों और विचारों की बाह्य हलचल भी थम गई है। मन और शरीर दोनों विस्तार, नीरवता एवं नि:शब्दता की उसी संवेदना का अनुभव करते हैं। हृदयाकाश में धारणा का यही परिणाम है।

अंधकार से आच्छादित हृदयाकाश में प्रकाश की एक क्षीण लौ के प्रति सजग होइये। प्रकाश की लौ को मानसिक रूप से देखिये। यह एक स्वर्णिम प्रकाश की लौ है। स्वर्णिम प्रकाश के प्रति इस सजगता को तीव्र कीजिये। प्रकाश की यह लौ हृदय के आकाश में स्थित है जिसे हृदयाकाश कहते हैं। यह आकाश श्वसन प्रक्रिया के विस्तार एवं संकुचन तथा हृदय-स्पन्द की लय से भरा है।

हृदय के क्षेत्र में इस प्रकाश की लौ की कल्पना कीजिये। इसे चमकते एवं मन्द होते, चमक उठते और मन्द होते देखिये। प्रकाश के इस स्पन्दन को देखिये। प्रत्येक स्पन्द के साथ यह पूरा क्षेत्र क्षण भर के लिए प्रकाश से भर जाता है और पुन: मन्द होकर मात्र लाल आभास भर रह जाता है। प्रकाश की उस लौ का अनुभव कीजिये जो विस्फोट और अन्त: स्फोट करती है और सम्पूर्ण अस्तित्व को आलोकित कर देती है।

तृतीय चरण– मनोभावों की सजगता

अनाहत क्षेत्र में वर्तमान मनोभाव, विद्यमान मनोभाव के प्रति सजग होइये। उस भाव को एक संवेदना के रूप में रूपान्तरित कीजिये। अपने में नीरवता,

तृप्ति, शान्ति एवं प्रकाश जैसे मनोभाव विकसित कीजिये। वहाँ जो भी मनोभाव हो, उसे नीरवता, प्रसन्नता, शान्ति और प्रकाश में बदलिये। उन विद्यमान मनोभावों पर चिन्तन कीजिये जिन्हें आपने प्रारम्भ में देखना शुरू किया था। जब आप उस पर चिन्तन करते हैं उस समय अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में शान्ति का मनोभाव प्रवाहित होने दीजिये।

अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को सहारा देते, प्रोत्साहित करते, सबल करते स्पन्दनों और शान्ति के ऊर्जा प्रवाह का अनुभव कीजिये। तृप्ति, प्रकाश, प्रसन्नता और शान्ति का भाव विकसित कीजिये। हृदय के आकाश की सजगता बनाये रखिये। अनाहत चक्र पर धारणा के द्वारा हृदयाकाश के प्रति सजग रहिये। बाह्य परिवेश द्वारा विक्षिप्त न होइये। अभी तत्काल आप के अन्दर जो मनोभाव हों, चाहे वह जो भी हों, नीरवता एवं एकान्त का भाव या चिन्ता, परेशानी, तनाव या अन्य किसी चीज का भाव, उसके प्रति सजग बनिये।

चतुर्थ चरण– मनोभाव का रंग

पहले मनोभाव को पहचानने का प्रयास कीजिये और तत्पश्चात् उसके रंग के प्रति सजग बनिये। जब मनोभाव बदले, जो स्वाभाविक और स्व-स्फूर्त्त ढंग से होता है, तब आपको सजगता एवं इच्छापूर्वक रंग को बदलना है। रंग मनोभाव के अनुरूप होना चाहिए। उदाहरणार्थ, लाल रंग क्रोध के भाव या भावना के अनुरूप है। जब मन में ऐसी पहचान हो जाये तब आप देखिये कि आपका हृदयाकाश लाल प्रकाश से भर गया है। यदि अस्वस्थता का भाव हो, यदि आप शारीरिक रूप से अच्छा नहीं अनुभव कर रहे हों तो उसी के अनुरूप रंग देखिये, जो इस मामले में उदास पीला रंग है।

यदि खुशी, प्रसन्नता या तृप्ति का भाव है; यदि अहंकार, गर्व, या आत्म तुष्टि का भाव है; यदि उदासी, हानि, या दु:ख का भाव है या अन्य कोई भाव है तब उसको पहचानिये और उसे देखिये। फिर हृदयाकाश में उस मनोभाव के ही अनुरूप रंग उत्पन्न कीजिये। यदि एक ही मनोभाव देर तक बना रहे, तब अन्य मनोभाव के विषय में चिन्तन कर उसे बदलिये जो भिन्न भावना वाला हो और तदनुरूप रंग को देखिये।

अधिक देर तक एक ही मनोभाव या भावना पर चिन्तन मत कीजिये। उसे पहचानने के लिए पूरा समय दीजिये। तत्पश्चात् सजगता एवं संकल्प के साथ तदनुरूप रंग चेतना हृदयाकाश में उत्पन्न कीजिये और अन्य

मनोभाव की ओर प्रस्थान कीजिये। यदि मनोभाव स्व-स्फूर्त्त ढंग से आ जाये तो उसका अवलोकन कीजिये। यदि मनोभाव नहीं प्रकट हो तो आपको एक मनोभाव उत्पन्न करना होगा। स्मरण रखिये कि मुख्य प्रयोजन है हृदयाकाश में रंग का अवलोकन करना, मनोभाव का विश्लेषण करना नहीं। अनासक्त भाव से किसी मनोभाव का अवलोकन कीजिये, जो प्रकट हो जाये और फिर उसको रंग दीजिये।

पंचम चरण– मनोभाव उत्पन्न करना

अब हम सहजता से उत्पन्न होते मनोभावों का अवलोकन नहीं करेंगे। हमें मनोभाव को उत्पन्न करना होगा। उस भाव की तीव्रता का अनुभव कीजिये और साथ ही साथ रंग का अवलोकन कीजिये। उदाहरण के लिए, प्रेम का भाव ही लीजिये। प्रेम के भाव को अनुभव कीजिये और उसे तीव्र कीजिये। अपने हृदय में प्रेम के भाव को उमड़ने दीजिये। यथाशक्ति समस्त तीव्रता के साथ प्रेम के भाव को अनुभव करने का प्रयास कीजिये, प्रगाढ़ प्रेम के साथ स्वाभाविक रूप से जो तदनुरूप रंग प्रकट होता है उसका अवलोकन कीजिये।

अपने हृदय की पूर्ण तीव्रता के साथ प्रेम का अनुभव कीजिये। यदि आपको आश्चर्य हो कि किसके लिए, किसलिए तो उस व्यक्ति के विषय में सोचिये जिसे आप गहराई से प्रेम करते हों। किसी चीज के विषय में सोचिय जो आप में इस प्रकार का भाव जगा दे। उसके विषय में सोचिये, अपने अन्दर के भाव की गहराई में चिदाकाश में उतरिये। यह चेतना की प्रक्रिया, अनुभव और अवलोकन सभी हृदयाकाश में हो रहा है।

षष्ठ चरण– भाव परिवर्तन

अब यह प्रक्रिया तीन स्तरीय हो रही है, प्रथम-भाव को उत्पन्न करना, दूसरा-भाव का अवलोकन और उसे तीव्र करना और तीसरा भाव परिवर्तन। भाव उत्पन्न करने तथा पूर्ण तीव्रता से उसका अवलोकन कर लेने के पश्चात् आप उसे बदल दें। नीरवता का भाव उत्पन्न कीजिये, मानो आप सागर की गहराई में बैठे हों। चारों ओर व्याप्त पूर्ण नि:शब्दता के प्रति सजग होइये, नि:शब्दता, जो आपके व्यक्तित्व के प्रत्येक अंश में प्रवेश कर रही है। उस नि:शब्दता का अनुभव करने का प्रयास कीजिये जो आपके रोम-रोम में प्रवेश कर रही है। अब आप पीछे की ओर उस क्षण में चलिये जिस क्षण आप का जन्म हुआ था। यह उस क्षण की चैतन्य स्मृति नहीं है, वरन् आपके

अन्दर गहरे में वह अनुभव का क्षण आज भी विद्यमान है। उसका अनुभव करने का प्रयास कीजिये। एक बार फिर जन्म ले रहे हैं, ऐसा अनुभव कीजिये। उस क्षण आपने जो अनुभव किया उसका उत्साहपूर्वक सामना कीजिये। उत्सुकता के भाव में कोई परिवर्तन नहीं। चरम उत्सुकता।

एक-एक भाव का अनुभव करने का प्रयास कीजिये। केवल उसके विषय में सोचिये नहीं। निद्रा के भाव में चलिये, उस अनुभव का भाव कि आप बहे जा रहे हैं। अपने को जागृति और सुषुप्ति की सीमाओं के मध्य तैरता हुआ अनुभव कीजिये। प्रत्येक रात में नींद के समय जो क्षणिक सजगता आती है, उसको ही विकसित कीजिये। वह भाव वर्तामान है, उसे जाग्रत कीजिये। चेतन से अवचेतन की ओर बहते जाने, क्रमश: बहते जाने, बहते जाने की स्मृति भी है, उसे जाग्रत कीजिये। अब नीरवता के भाव की ओर चलिये, फिर तृप्ति, शक्ति, प्रसन्नता एवं शान्ति के भावों की ओर बदलते चलिये।

सप्तम् चरण – आद्यतम स्मृतियाँ

इसके पश्चात् आप अपने सुदूर बचपन की प्रारम्भिक स्मृतियों के प्रति सजग होइये। अपने बचपन की उस स्मृति, उस आद्यतम स्मृति का अनुस्मरण कीजिये, जिसे याद कर सकते हों। जो घटनायें आपके सम्मुख आ रही हैं उन्हें देखिये। उन घटनाओं को देखते समय अपने प्रारम्भिक शैशवकाल की स्मृतियों को याद कीजिये और ऐसे देखिये जैसे सामने कोई फिल्म देख रहे हों या चित्र देख रहे हों। सुनिश्चित कर लीजिये कि वह आद्यतम स्मृति है जिसे आप याद कर सकते हैं।

इस स्मृति को याद करते समय आप इसके ठीक पूर्व की स्थिति के प्रति भी सजग हो जा सकते हैं। प्रथम स्मृति के पूरा हो जाने के बाद आप उसका अवलोकन कीजिये जो बीच में आयी थी। अपने आन्तरिक नेत्रों के समक्ष प्रकट होने वाली उस घटना का अनासक्त रूप से अवलोकन कीजिये। उस घटना को आप याद कर रहे हैं, बस इसके अतिरिक्त आपकी उसमें संलग्नता न हो। एक बार जब सारी घटना आपके आन्तरिक नेत्रों के समक्ष आकर गुजर जाती है तब उससे भी पूर्व की किसी स्मृति को याद कीजिये। अपनी तीव्रतम अनुस्मरण क्षमता से आद्यतम स्मृति का अवलोकन कीजिये। अपने जीवन में जितना भी पूर्व में जा सकते हैं, जो भी पुरातन स्मृति है वहाँ तक जाइये। आपका एक अंश उस घटना को अभिनीत कर रहा है। अनासक्त रूप से उस आद्यतम (पुरातन) स्मृति के प्रति सजग होइये।

अब आप उन आद्यतम स्मृतियों का अवलोकन एवं विश्लेषण करने जा रहे हैं। इसका क्या तात्पर्य है? क्या यह कुछ सूचित करती है, क्या अपने साथ यह कोई भावना भी ले चल रही है? स्मृति का, अपनी शैशवावस्था की आद्यतम स्मृति का विश्लेषण कीजिये। इससे क्या शिक्षा मिली है? इसने कौन-सा अनुभव प्रदान किया है?

अनासक्त एवं तटस्थ भाव से इस स्मृति को खण्ड-खण्ड में विभाजित कीजिये। इस अनुस्मरण में आपने कौन-कौन से शब्द सुने? शब्द जो आपके विषय में बोले गये हैं। शब्द जो आपको बोले गये हो सकते हैं। आपकी क्रियायें क्या थीं? आप क्या कर रहे थे? किसके साथ आपका यह अनुस्मरण है? यह किसका अनुस्मरण है– मित्रों का, माता-पिता का या सम्बन्धियों का? इसके पात्र कौन-कौन हैं? उनकी मानसिकता क्या है और आप से उनका सम्बन्ध क्या है? इस स्मृति में आपके अतिरिक्त और कौन-कौन पात्र हैं? किस समय और कहाँ पर यह घटना घटी है? भावना क्या थी? उस क्षण में आपको किस भाव की अनुभूति हुई, इस अभिनय में नहीं, वरन् उस विशेष समय में? वहाँ कैसा परिवेश था?

सजग रहिये। आपके अवधान से कुछ भी छूटे नहीं। स्मृति के अन्य पात्रों और अपने आप से सम्बन्धित प्रत्येक विवरण के प्रति पूर्ण सजग बनिये। जब आपको लगे कि आप भटक रहे हैं या आपकी सजगता बिखरती जा रही है तब आप हृदयाकाश में अपने को केन्द्रित कीजिये। फिर जब आप अपनी सजगता को केन्द्रित कर लें तब अपने जीवन की उस आद्यतम (प्राचीनतम) स्मृति की सजगता चालू कीजिये।

अष्टम चरण– अभ्यास का समापन

स्मृति के विश्लेषण के पश्चात्, अपनी सजगता को अनाहत में स्थित स्वर्णिम प्रकाश पर केन्द्रित कीजिये। हृदयाकाश के प्रति सजग होइये। अपने सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त अनन्त आकाश का अनुभव कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। अपने शरीर के भार का अनुभव कीजिये। क्रमशः मन को बहिर्मुखी कीजिये। जिस कक्ष में बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। बाहर की आवाजें सुनिये। अपनी श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग होइये। गहरी श्वास लीजिये और तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश धारणा

आकाश धारणा की साधनाओं में चिदाकाश का सम्बन्ध नाम, रूप और भाव के आयाम में होने वाली घटनाओं, स्मृतियों और अनुभूतियों से सम्बन्धित धारणा के अभ्यासों से है। चिदाकाश में बाह्य, संवेदी अनुभूतियों का प्रत्यक्ष दर्शन किया जाता है। हृदयाकाश में सूक्ष्म, भावनात्मक और अनुभवात्मक पक्ष को देखा और विकसित किया जाता है। दहराकाश में प्राणिक, अतीन्द्रिय अनुभव उत्पन्न होते हैं और उनका दर्शन किया जाता है। परन्तु प्राणिक और अतीन्द्रिय अनुभूतियों की पहचान करने हेतु बाह्य मन अथवा वर्तमान में हमारे अन्दर जो सक्रिय मन है उसके समुचित निर्देशन एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

दहराकाश साधना

प्रशिक्षण की प्रक्रिया में धारणा साधनाओं का एक भाग है जिसे पंचतत्त्व धारणा कहा जाता है। इस धारणा में दो भिन्न पद्धतियाँ हैं। प्रथम पद्धति में पाँच स्थूल तत्त्वों को देखा जाता है और उनकी गहन सजगता उत्पन्न की जाती है। उदाहरण के लिए, यह शरीर जो ठोस पृथ्वी तत्त्व, पदार्थ का बना है, उस तत्त्व के ठोसपन के आणविक स्वरूप को देखने तक उसका विश्लेषण किया जाता है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वों को भी मन में स्पष्ट रूप से देखा जाता है। दूसरी पद्धति पंच कोशों से सम्बन्धित है– अन्नमय कोश से लेकर आनन्दमय कोश तक सभी पंचकोशों की अनुभूतियों को देखना, समझना और विश्लेषण करना।

पंचतत्त्व धारणा दहराकाश धारणा का ही एक भाग है। तत्त्वों और कोशों के सूक्ष्म स्तरों और गहन पक्षों का अनुभव करने हेतु मन को प्रशिक्षित करने के लिए, इस प्रक्रिया का अवलोकन करने एवं समझने हेतु मन को तैयार

करने के लिए हमें व्यक्तित्व के सूक्ष्म ज्ञान एवं अनुभव से सम्बन्धित मानसिक शिक्षा की पद्धति का अनुसरण करना होगा। योग में, व्यक्तित्व की अवधारणा विशाल है। व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक पक्ष तो व्यक्ति के आचरण, गुणों, क्षमताओं और कमजोरियों आदि तक ही सीमित है। परन्तु योग सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व पंचकोश और उनसे सम्बन्धित व्यक्त निम्न मन और अव्यक्त उच्चतर मन के क्षेत्रों के अनुभवों का समुच्चय हैं।

इन विभिन्न पंचकोश तकनीकों के मूल सिद्धान्तों का ही अभ्यास हम ध्यान की साधना में करते हैं। अन्य तकनीकों को हम इसके ऊपर रखते हैं, जैसे बच्चे लकड़ी के गुटकों को एक के ऊपर एक सजाकार घर बनाते हैं। इसी प्रकार हम मन में भी एक संरचना निर्मित करना चाहते हैं, जहाँ चेतना की शक्तियाँ, क्षमतायें उन्मुक्त हो भ्रमण कर सकती हैं एवं विभिन्न वस्तुओं को देख और अनुभव कर सकती हैं। हम लोग श्वसन प्रक्रिया से अवगत हैं जो सामान्यत: नितान्त शारीरिक आवश्यकता मानी जाती है। जब हम श्वास छोड़ते हैं तो फेफड़े खाली होते हैं। अत: सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया एकदम शारीरिक है, परन्तु इसी शारीरिक अनुभूति में एक भिन्न दृष्टि प्राप्त करने हेतु सूक्ष्म अनुभव विकसित करना है।

तीव्रीकरण की प्रक्रिया

जब हम वास्तविक रूप से सूक्ष्म प्रक्रिया का अनुभव करने लगते हैं तब हमारा प्रत्यक्ष बोध बदल जाता है। यह अपने चारों ओर की दुनिया को अपनी आँखों से ठोस धरातल पर देखने जैसा है और पुन: उन्हीं आँखों और दृष्टि से उन वस्तुओं को जल के अन्दर से देखते हैं। दृष्टि का अंग नेत्र नहीं बदलता। दृष्टि की क्षमता नहीं बदलती। आँखों का प्रत्यक्ष ज्ञान ही एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व में बदलता है। यदि हम जल के अन्दर चारों ओर देखते हैं तो वहाँ स्पष्टता नहीं रहती। वहाँ धुँधलापन रहता है तथा रंगों का, वर्णों का प्रत्यक्ष बोध बदल जाता है। अर्थात् जिस रंग का स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान हमें यहाँ होता है, वहाँ पर यह वही नहीं रहता।

जैसे-जैसे हम जल की गहराई में उतरते जाते हैं दृष्टि का परास तो बदल ही जाता है। उसके साथ ही उसकी तीव्रता भी अधिक हो जाती है, क्योंकि उसका क्षेत्र सीमित हो जाता है। उसके साथ ही साथ हम अधिक सजग हो जाते हैं। ऐच्छिक अनुभवों का परास जितना ही विस्तृत होता है उतनी अधिक संभावना

रहती है कि कुछ चीजें हमारी दृष्टि से छूट भी जायें। जब प्रत्यक्षीकरण का परास सीमित रहता है तो सजगता की तीव्रता बढ़ जाती है। इसीलिए धारणा में भी जब हम अपने मन की क्षमताओं को एक विशेष क्षेत्र में केन्द्रित करने का प्रयास करते हैं तब हम अपने अवधान के क्षेत्र को कम करते हैं तथा सजगता को अधिक से अधिक तीव्र करते जाते हैं।

इस तीव्रीकरण की प्रक्रिया में यह शरीर आधार होता है। यही वह पहली वस्तु है जो सदा विद्यमान रहती है और आप किसी भी समय अपने शरीर का अनुभव कर सकते हैं। अत: जहाँ भौतिक अवस्था, स्थूल अवस्था की स्वीकृति है– "यह हो रहा है", वहीं पर सूक्ष्म अवस्था की सजगता भी है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। प्राय: हम सामान्य रूप से कह देते हैं, "शरीर के प्रति सजग होइये" परन्तु वस्तुत: हम शरीर की उस स्थिति को स्वीकार करना चाहते हैं जिसमें वह अभी है। जब हम शरीर के प्रति नहीं, अन्य किसी चीज के प्रति सजग होने को कहते हैं, जो अधिक सूक्ष्म या शारीरिक अनुभूति से अधिक गहरी हो तो उस समय प्रयोजन होता है दृष्टि के उस सीमित क्षेत्र में अधिक सजग होने से।

धारणा की साधनाओं में यही प्रशिक्षण प्राप्त करने का प्रयास रहता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के परास को कम किया जाये, जिससे सजगता और धारणा अधिक से अधिक तीव्र हों। इसलिए शरीर ही आधार है जहाँ से अन्य अनुभूतियाँ विकसित होती हैं। स्थूल के पश्चात् जो शरीर विकसित होता है वह है मानसिक। पंचतत्त्व धारणा में मानसिक शरीर की सजगता का सम्बन्ध चार खण्डों–बुद्धि, चित्त, मनस और अहंकार से तथा किस प्रकार ये मानसिक क्रियाशीलतायें अनुप्राणित होती हैं, इससे रहता है। कोई एक प्रक्रिया है जो हमारी विचारधारा को अनुप्राणित करती है। एक प्रक्रिया है जो हमारी महत्त्वाकांक्षाओं और कामनाओं को गतिशील बनाती है। वह प्रक्रिया या शक्ति क्या है?

सामान्य शब्दावली में निस्संदेह यह प्राण है। तथापि श्वसन प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्राण की अवधारणा का विश्लेषण करने में ओज पक्ष द्वारा सूक्ष्म शरीर ऊर्जान्वित होता है। स्थूल आयाम के संदर्भ में यह प्राण की प्रथम अभिव्यक्ति या पक्ष है। सामान्य रूप से कहा जाता है कि प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति। जीवनी शक्ति प्राण का एक वर्णन है। इस जीवनी शक्ति को एक शक्ति के रूप में देखा जाता है जो मानसिक शरीर को ऊर्जान्वित करती है।

यहाँ सूक्ष्म शरीर गहन मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन करने के लिए एक शब्द मात्र है। विचार, महत्त्वाकांक्षायें, कामनायें आदि सतही मानसिक प्रक्रियाएँ हैं। सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं के समेकित रूप को हम संस्कार कह सकते हैं, जो वह बीज है जिससे बाह्य जीवन में व्यक्त होने वाला वृक्ष उत्पन्न होता है। संस्कार का सम्बन्ध आचरण, कर्मों, कामनाओं से रहता है और ऐसे बीजों की संख्या अनन्त है। सूक्ष्म शरीर में यह संस्कार पक्ष प्राण के द्वारा अनुप्राणित होता है, जिसका मानस दर्शन ऊर्जा कणों के प्रवाह के रूप में होता है। यह ऊर्जा-शरीर, अतीन्द्रिय-शरीर, वास्तविक ऊर्जा सक्रियता का क्षेत्र स्पन्दित, पुलकित प्राण के रूप में जीवन, रंग, उष्मा, प्रकाश से पूर्ण बहुआयामी है। यही पंचतत्त्व धारणा का प्रारम्भ है।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश एक

पंचतत्त्व धारणा (क)

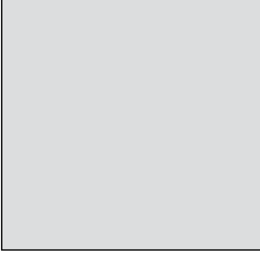
योग दर्शन के अनुसार समस्त सृष्टि का उद्‌भव और संधारण तत्त्वों के द्वारा होता है। समस्त सृष्टि का निर्माण ही तत्त्वों से हुआ है। उपनिषद् कहते हैं कि पंचतत्त्वों की उत्पत्ति मन से हुई है, मन की उत्पत्ति ब्रह्माण्डीय प्राण से और ब्रह्माण्डीय प्राण की परा चेतना से हुई है। चूँकि मानव शरीर उन्हीं ब्रह्माण्डीय तत्त्वों से निर्मित है, अत: उन तत्त्वों के गुण मन और शरीर में स्वाभाविक रूप में व्याप्त हैं। उनका प्रभाव इतना सूक्ष्म है कि वे सम्पूर्ण जीवन पद्धति एवं जीवन चक्र को प्रभावित करते हैं। जो कुछ भी हम सोचते या करते हैं वह उन्हीं तत्त्वों के प्रभाव में करते हैं।

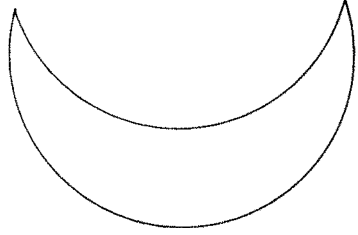
यद्यपि इन तत्त्वों को पाँच मूल तत्त्व– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश कहते हैं, पर इन्हें भौतिक या रासायनिक तत्त्वों के रूप में नहीं, वरन् विभिन्न प्राणिक स्पन्दनों द्वारा निर्मित सूक्ष्म ध्वनि एवं प्रकाश उद्‌भव का परिणाम समझना चाहिए, जो प्राण प्रवाह को प्रभावित करता है। प्राण के स्पन्द विशेष से ध्वनि, प्रकाश एवं रंग की उत्पत्ति होती है। ये प्राणिक स्पन्द, रंग एवं ध्वनियाँ विभिन्न तत्त्वों का संकेत देती हैं।

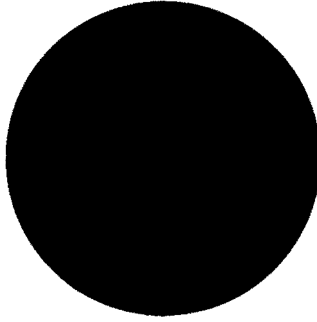
ये पाँच तत्त्व एक अन्त: सम्बद्ध समष्टि के अंश हैं, जिसमें प्रत्येक तत्त्व अपने पूर्ववर्त्ती तत्त्व से उत्पन्न होता है। अपने विकास के अवरोही क्रम में ये पाँचों तत्त्व निम्नवत् हैं–

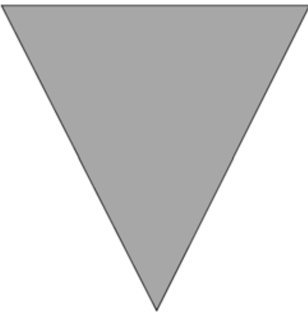
1. आकाश– ईथर, शून्य एवं अवकाश का कारण।
2. वायु– हवा, सतत् गति का कारण।
3. अग्नि– ऊष्मा का कारण।
4. अपस्– जल, तरलता का कारण।
5. पृथ्वी– ठोसपन या संसक्ति का कारण।

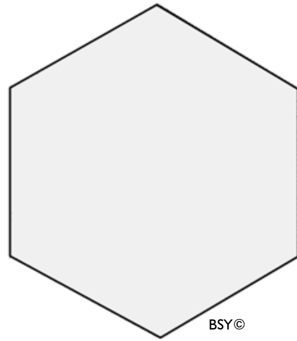
पंचतत्त्व धारण


पृथ्वी


जल


आकाश


अग्नि



वायु

प्रथम उत्पन्न होने वाला तत्त्व आकाश है जो समरूप पदार्थ है, जिसमें असीमित अन्तर्निहित ऊर्जा रहती है। आकाश सूक्ष्म अवस्था है जहाँ ऊर्जा और पदार्थ, दोनों ही चेतना में सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहते हैं। जब आकाश के कणों में विद्यमान ऊर्जा स्पन्दित होती है तो गति उत्पन्न होती है और हवा के रूप में वायु तत्त्व उत्पन्न होता है। वायु कणों में गति की सर्वाधिक स्वतंत्रता रहती है, इसलिए वायु को सर्वव्यापी गति के रूप में देखते हैं।

वायु में ऊर्जा की अतिशय गति के परिणामस्वरूप ताप या ऊष्मा उत्पन्न होती है, जो अग्नि तत्त्व के कारण के रूप में कार्य करती है, अग्नि तत्त्व में वायु तत्त्व की अपेक्षा ऊर्जा की गति कम रहती है। गति में ह्रास के कारण अग्नि अपनी कुछ ऊष्मा का विसर्जन करती है और फलस्वरूप शीतल हो, जल तत्त्व या आप: तत्त्व हो जाती है।

अपस् तत्त्व की उत्पत्ति के साथ-साथ वायु तत्त्व की पूर्ण एवं अग्नि तत्त्व की सीमित स्वतंत्रता भी समाप्त हो जाती है तथा पदार्थ के कण एक निश्चित आकाश में संसीमित हो जाते हैं और उसी सीमित, लघु क्षेत्र में गतिशील होते हैं। पृथ्वी तत्त्व, जो अन्तिम तत्त्व शेष रह जाता है, ऊर्जा स्पन्द के और अधिक ह्रास के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। ऊर्जा स्पन्द के इस ह्रास के कारण जल तत्त्व ठोस रूप लेकर पृथ्वी तत्त्व बन जाता है। इसके साथ ही अपस् की जो सीमित गति थी वह भी प्राय: खत्म हो जाती है। पृथ्वी तत्त्व के प्रत्येक कण का अपना स्थान होता है तथा उसके भीतर का कोई भी स्पन्द उसके अपने सीमित स्थान के ही अन्दर रहेगा।

पृथ्वी तत्त्व

इस ध्यान के प्रयोजन से हम पृथ्वी तत्त्व धारणा से प्रारम्भ करते हैं, जो पंच तत्त्व धारणा की शृंखला में प्रथम है, यहाँ दहराकाश में एक पीले वर्ग की कल्पना करते हैं। वर्ग या चतुर्भुजाकृति से ठोसपन का आभास होता है। यह आकृति पूर्णतया सुस्थिर है, इसमें कोई गति नहीं है। यह पूर्णरूपेण संतुलित है तथा इसमें कोई असंतुलन नहीं है।

कुण्डलिनी योग के अनुसार पीला रंग पृथ्वी यंत्र से सम्बद्ध है। यह यंत्र वर्गाकार होता है, जो अव्यक्त से व्यक्त आयाम में ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की अभिव्यक्ति को तथा भौतिक शरीर के निर्माण को प्रकट करता है। भौतिक शरीर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की अन्तिम अभिव्यक्ति है। अत: भौतिक शरीर और

पीले वर्ग की छवि एक साथ रहती है। इसलिए साधना के इस चरण में इन दोनों की सजगता साथ-साथ रहती है। पीला वर्ग पृथ्वी तत्त्व की अतीन्द्रिय अभिव्यक्ति है और भौतिक शरीर स्थूल।

पृथ्वी तत्त्व शारीरिक, मानसिक एवं परिवेशीय, सभी ओर स्थैर्य और स्थायित्व प्रदान करता है। शारीरिक रूप से इसकी अवस्थिति घुटनों एवं पैर की अंगुलियों के मध्य होती है। मानसिक रूप से यह चेतन और अवचेतन स्तरों से सम्बन्धित है। यह भूलोक और अन्नमय कोश से सम्बन्धित है। पृथ्वी का सूक्ष्म संवेदी प्रत्यक्षीकरण गंध है, जो घ्राणेन्द्रिय नाक के माध्यम से सम्प्रेषित होती है।

अपस् तत्त्व

अपस् तत्त्व या जल तत्त्व की अवस्थिति रजत बाल चन्द्र के रूप में नाभि और घुटनों के मध्य मानी जाती है। भौतिक शरीर में जल प्रथम स्पृश्य तत्त्व है जो तरल रूप में पदार्थ की तरह प्रकट होता है। चन्द्रमा का रजत वर्ण धूसर वर्ण से काफी मिलता जुलता है, जो प्रकाश और अंधकार, श्वेत और श्याम, दिन और रात, व्यक्त और अव्यक्त के विलयन को द्योतित करता है।

शारीरिक रूप से अपस् तत्त्व नाभि और घुटनों के मध्य अवस्थित है। मानसिक रूप से यह महत् तत्त्व है, जिसमें चारों अनुभूतियाँ– मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार समाविष्ट हैं। यह तत्त्व भुवः लोक, सूक्ष्म स्तर और प्राणमय कोश, ऊर्जा शरीर से सम्बन्धित है। अपस् तत्त्व का संवेदी प्रत्यक्षीकरण स्वाद है, जो रसेन्द्रिय जिह्वा द्वारा सम्प्रेषित होता है।

अग्नि तत्त्व

अग्नि तत्त्व अपनी अभिव्यक्ति के प्रथम चरण में ऊर्जा है, जो प्रकाश या ऊष्मा के रूप में रहती है। इस प्रकाश और ऊष्मा के आविर्भाव से आकार का बोध होता है। इस प्रकार अग्नि तत्त्व ही आकार बोध कराता है, जिसका ज्ञान दृश्येन्द्रिय के माध्यम से होता है। आकार के अभाव में आसक्ति नहीं हो सकती। इसलिए अग्नि तत्त्व भी वह प्रथम चरण है जहाँ अहंकार अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ करता है। जैसे ही प्रकाश ऊर्जा को आकार प्रदान करता है, अहंकार अपने से भिन्न वस्तुओं के प्रति चैतन्य होने लगता है। इस प्रकार व्यष्टि अहंकार का बीज उत्पन्न होता है।

अग्नि की स्पन्द आवृत्ति का रंग लाल होता है। इसलिए अग्नि यंत्र अधोमुखी प्रज्वलित लाल त्रिकोण है। यह त्रिकोण लाल प्रकाश कणों से निर्मित है जो अनवरत स्पन्दन और विकिरण कर रहे होते हैं। भौतिक शरीर में अग्नि नाभि और हृदय के मध्य अवस्थित है। यही पाचक अग्नि या जठराग्नि और योगाग्नि का कारक है जो हमारे व्यक्तित्व के आन्तरिक स्तर पर एकत्र मल को जला कर समाप्त करती है और उच्चतर साधना की फलप्राप्ति को संभव बनाती है। मानसिक रूप से यह अवचेतन से सम्बन्धित है। इसकी अतीन्द्रिय अवस्थिति मणिपुर चक्र में है। यह स्व: लोक या दिव्य लोक के आयाम से तथा मनोमय कोश अथवा मानसिक शरीर से सम्बन्धित है।

वायु तत्त्व

वायु तत्त्व की प्रकृति गति की है। इससे धूसर-नीला रंग प्रकट होता है जो इस तत्त्व की विशिष्टता है, पहचान है। वायु यंत्र की आकृति धूसर-नीलवर्ण षटकोणीय है। इसे हृदय और भ्रूमध्य के मध्य षटकोणीय आकार में स्थित छ: धूसर-नीलवर्णी गैसीय बिन्दुओं के रूप में भी देखा जा सकता है। वायु शरीर में प्राण से सीधे मेल खाता है, अतएव इसकी शारीरिक स्थिति वक्ष प्रदेश में है।

भौतिक दृष्टि से वायु तत्त्व अदृश्य होता है। इस सूक्ष्म स्तर पर पदार्थ अभी भी अभिन्न रूप में ही है। इसे गतिशील ऊर्जा कहा जा सकता है। भौतिक शरीर में वायु का बोध स्पर्श रूप में होता है जिसकी संवेदी इन्द्रिय त्वचा है। मानसिक रूप से यह अवचेतन मन से सम्बन्धित है। इसका अतीन्द्रिय केन्द्र अनाहत है, हृदय चक्र। यह मह: लोक के आयाम के सदृश है, जो सिद्धों, संतों का स्तर है, तथा विज्ञानमय कोश या मानसिक अथवा अन्तर्ज्ञान शरीर के सदृश है।

आकाश तत्त्व

आकाश या आकाश तत्त्व में सभी पदार्थ व्यक्त होते हैं। सर्वव्यापक, अचल और स्थिर होने के कारण यह पंच तत्त्वों में सूक्ष्मतम है। चूँकि आकाश तत्त्व अपरिमित है और समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है, इसलिए इसे शून्य वृत्त के रूप में देखा जाता है। आकाश को पारदर्शक या काला या वर्ण रहित कहते हैं, क्योंकि यह प्रकाश के अभाव में भी विद्यमान रहता है। फिर भी श्यामता में वर्णक्रम के सभी वर्ण या रंग समाविष्ट हैं। अत: आकाश का वृत्ताकार यंत्र शून्य की प्रवृत्ति को प्रकट करने वाले बहुरंगीय धब्बों से भरा है।

इस तत्त्व का स्पन्द इतना सूक्ष्म है कि इन स्थूल बाह्य इन्द्रियों के माध्यम से इसका बोध नहीं हो सकता। अतएव जब तक हम अपनी इन्द्रियों से काम करते रहेंगे हमें उस सूक्ष्म स्पन्द का प्रत्यक्ष बोध नहीं हो पायेगा। जब ध्यान के माध्यम से मानसिक आवृत्तियाँ आकाश से सह-सम्बन्ध स्थापित करती हैं तब मनुष्य समय का अतिक्रमण कर जाता है। आकाश तत्त्व को ही योग की शब्दावली में 'चेतना का आकाश' कहते हैं। भौतिक शरीर में आकाश सर्वव्याप्त है। मानसिक स्तर पर यह भावनाओं और कामनाओं को नियंत्रित करता है। कहते हैं कि जब आकाश तत्त्व प्रबल होता है तब मन इन्द्रियानुभूति से विमुख हो जाता है। अत: आध्यात्मिक प्रगति के लिए आकाश तत्त्व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शरीर में आकाश की अवस्थिति सिर के शीर्ष भाग में भ्रू-मध्य एवं शीर्ष के मध्य होती है। मानसिक रूप से यह अचेतन मन से सम्बन्धित है। इसकी अतीन्द्रिय अवस्थिति विशुद्धि चक्र में है। आध्यात्मिक रूप से यह जन: लोक, ऋषि-मुनियों के लोक के और आनन्दमय कोश या कारण शरीर के सदृश है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में मेरुदण्ड और सिर सीधा रखते हुए बैठ जाइये। आँखें बन्द रहें। आन्तरिक रूप से अपनी शारीरिक भंगिमा, शारीरिक असुविधा, कड़ापन या तनाव के क्षेत्रों के प्रति सजग होइये। शरीर अवलोकन की प्रक्रिया में यदि आपको शारीरिक असुविधा, कड़ापन या तनाव के क्षेत्र का पता चले तो अपने को पुन: सुव्यवस्थित एवं विश्रान्त करने का प्रयास कीजिये, जिससे आपकी पूर्ण सुखद स्थिति हो जाये। यदि अभ्यास के क्रम में आपको अपना शरीर हिलाने की जरूरत मालूम पड़े तो भी कोई शारीरिक हलचल न कीजिये, जिससे अभ्यास के मध्य आपके अवधान में, एकाग्रता में कोई विक्षेप न हो। एक बार जब आप अपनी सजगता को पूरे शरीर में घुमा लेते हैं, उसके पश्चात् आन्तरिक रूप से शारीरिक स्थिरता, सुविधा और आराम का भाव विकसित कीजिये।

द्वितीय चरण– संवेदी सजगता

अपनी इन्द्रियों को अपने परिवेश में बहिर्मुखी कीजिये। अपने चतुर्दिक परिवेश के प्रति सजग होइये। आपके मस्तिष्क में प्रत्येक इन्द्रिय के माध्यम

से जो भी प्रत्यक्ष बोध प्राप्त हो रहे हैं उनके प्रति सजग होइये। सभी श्रव्य, स्पृश्य या अन्य इन्द्रियानुभवों के प्रति सजग होइये। बाह्यानुभूतियों को केवल स्वीकार करते जाइये, जो वातावरण में, परिवेश में विद्यमान हैं।

एक-एक कर सभी आवाजों को सुनिये। अपनी चेतना की सजगता को स्वतंत्र रूप से दूसरी आवाज पर जाने दीजिये, न कोई विश्लेषण, न कोई भेदभाव, केवल उन्हें सुनना है। विभिन्न स्पृश्य संवेदनाओं का अनुभव कीजिये, जैसे– खुजली, शीतलता, दबाव, झुनझुनी आदि। विभिन्न गंधों के प्रति सजग होइये। एक-एक कर विभिन्न प्रकार के संवेदी बोधों को मन में अंकित करते जाइये जो वह बाह्य परिवेश से प्राप्त करता है।

तृतीय चरण– पृथ्वी तत्त्व धारणा

अब इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कीजिये और सम्पूर्ण शरीर में सिर से पैर तक व्याप्त अन्त: आकाश के प्रति सजग होइये। शरीर के अन्दर के आकाश की पूर्ण सजगता बनाइये। समस्त सजगता को नीचे की ओर, मस्तक से दहराकाश की ओर ले चलिये, जो मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर के क्षेत्र में व्याप्त है। मूलाधार और नाभि के मध्य व्याप्त आकाश का अवलोकन कीजिए। मस्तक के आकाश से अपनी सम्पूर्ण चेतना को नीचे दहराकाश की ओर निर्दिष्ट कीजिए। इस आकाश की गहराई में उतरिये। दहराकाश के गहन, घटाटोप अंधेरे आकाश को अनुभव कीजिए।

अपनी समस्त सजगता और अवधान को दहराकाश में केन्द्रित रखते हुए एक बड़े ठोस, भारी, पीत वर्ग की मानस-आकृति विकसित कीजिये। यह वर्गाकृति समस्त दहराकाश क्षेत्र को भर रही है। वर्ग का मानस दर्शन कीजिये, जो पीले रंग का है। चेतन और सजग बनिये। दहराकाश क्षेत्र में इस वर्ग के अवलोकन में पूरी सजगता से सम्मिलित होइये, जो पीले रंग का है। अपनी सजगता इस वर्ग के चारों ओर घुमाइये। इसके पीले रंग को स्पष्ट रूप से देखिये। जब इस पीले वर्ग का मानस दर्शन स्पष्ट रूप से दहराकाश में होने लगे तब इस पीले वर्ग के मानस-दर्शन का विस्तार कीजिए, जिससे कि यह समस्त शरीर को आवृत्त कर सके, मानो समस्त शरीर ही उस पीले वर्ग के अन्दर रख दिया गया हो। अपने स्थूल शरीर को वृहत, दीप्त पीले वर्ग के अन्दर देखिये। यह पीला वर्ग मलिन या निष्प्रभाव नहीं है, वरन् प्रदीप्त है। इस वृहत दीप्त पीले वर्ग की सजगता बनाये रहिये, जो सम्पूर्ण शरीर को घेरे हुए है तथा अपने को उसी के अन्दर बैठा हुआ देखिये।

यह पीला वर्ग पृथ्वी यंत्र है। पृथ्वी तत्त्व भौतिक शरीर के रूप में प्रकट होता है। यह वर्ग दृढ़तापूर्वक जमीन पर बैठा हुआ है। उसी प्रकार यह सम्पूर्ण भौतिक शरीर भी पूर्ण संतुलन में बैठा है। शारीरिक संरचना में स्थिरता, दृढ़ता और ठोसपन है। उसी प्रकार यंत्र या पृथ्वी तत्त्व में स्थिरता, दृढ़ता और ठोसपन है। पीला प्रदीप्त वर्ग सम्पूर्ण शरीर को घेरे हुए है और अपनी चमक से शरीर को प्रकाशित करता है।

अवलोकन और अनुभूति की प्रक्रिया में गहरे उतरिये। मानस दर्शन की प्रक्रिया में भी गहरे उतरिये। पृथ्वी तत्त्व के यंत्र के भीतर अपने शरीर का मानस दर्शन कीजिये। सम्पूर्ण शरीर को घेरे हुए यंत्र की दीप्ति को देखिये। अब यंत्र और रंग की सजगता को और अधिक गहरा कीजिये। प्रकाश के उन दीप्त कणों का अवलोकन कीजिये जिनसे यंत्र निर्मित है। पृथ्वी यंत्र के भीतर अन्तर्विष्ट पीले रंग के चमकीले कणों को देखिये।

दीप्त पीला प्रकाश युक्त प्रत्येक कण शरीर के अणुओं के साथ समस्वरित होकर स्पन्दित हो रहा है, धड़क रहा है। इस धड़कन की लय को अनुभव कीजिये। शरीर के अणुओं और पृथ्वी यंत्र के प्रकाश कणों के स्पन्दन की लय को अनुभव कीजिये। दहराकाश, सम्पूर्ण शरीर के परिवेश के अनुभव एवं अवलोकन की प्रक्रिया में लीन हो जाइये। जब पृथ्वी यंत्र की झलक मन्द हो जाये, तब पीले वर्ग को आकाश में विलीन हो जाने दीजिये। शुद्ध आकाश, आन्तरिक आकाश के प्रति सजग होइये।

चतुर्थ चरण– अपस् तत्त्व-धारणा

पुनः समग्र चेतना को, सजगता को दहराकाश में वापस लाइये। मूलाधार और मणिपुर के मध्य के क्षेत्र, मूलाधार पिण्ड और नाभि के मध्य के क्षेत्र के आकाश को अनुभव कीजिये। यहाँ जल तत्त्व के यंत्र का अवलोकन कीजिये। अपस् तत्त्व या जल तत्त्व को प्रस्तुत करने वाले रजत बाल चन्द्र के बिम्ब का दहराकाश में अवलोकन कीजिये। स्पष्ट कल्पना विकसित कीजिये। जल तत्त्व को प्रस्तुत करने वाले दहराकाश में रजत बालचन्द्र के बिम्ब का अवलोकन कीजिये। एक बार जब आप तत्त्व का, रजत बालचन्द्र का स्पष्ट मानस दर्शन करने में समर्थ हो जाते हैं, तब यंत्र का इतना अधिक विस्तार कीजिये कि वह आपके सम्पूर्ण मनोमय कोश को आच्छादित कर ले। अपस् यंत्र से प्रकाश के रजत कणों के निकलने और समस्त मनोमय कोश में व्यापत होते जाने के प्रति सजग बनिये।

अपस् यंत्र महत् तत्त्व के सम्पूर्ण मनोमय कोश को प्रस्तुत करता है। महत् में मन: चतुष्टय के चारों पक्ष– मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार, सभी समाविष्ट हैं। यह समस्त सूक्ष्म मानसिक क्रियाशीलनों का स्रोत है। इस अपस् यंत्र के प्रति सजग होने के साथ-साथ अहंकार के प्रति भी सजग होइये। एक व्यक्ति के रूप में अपने अस्तित्व की भावना विकसित कीजिये। "मैं व्यष्टि आत्मा हूँ।" एक स्वतंत्र इकाई, एक व्यक्ति के रूप में 'मैं हूँ', 'मैं विद्यमान हूँ', यह सजगता ही अहंकार है।

अहंकार के अनुभव के पश्चात् चित्त के अनुभव में प्रवेश कीजिये। "मैं सजग हूँ, मैं अवलोकन करता हूँ।" व्यक्तिगत सजगता की प्रक्रिया का अनुभव कीजिये। आत्मावलोकन की प्रक्रिया का अवलोकन कीजिये, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व और संरचना को जानता है। यहाँ से बुद्धि के अनुभव में चलिये। विश्लेषण के स्वरूप, असंगत अनुभवों के संगत भाषा में स्पष्टीकरण का अनुभव कीजिये, जो आत्मा के द्वारा समझा जाता है। विश्लेषण, बोध और विश्वास के पक्ष का अवलोकन कीजिये।

तत्पश्चात् मनस के अनुभव की ओर चलिये। उस चेतना का अवलोकन कीजिये जो एक विषय से दूसरे पर, एक नाम से दूसरे पर, एक व्यक्तित्व से दूसरे पर, एक आकृति से दूसरी पर, एक भाव से दूसरे पर उछलती रहती है। इन चारों पक्षों से महत् का परास निर्मित होता है, जो अपस् यंत्र द्वारा प्रकाशित होता है। अपस् यंत्र, रजत बालचन्द्र के स्पन्दन, धड़कन से समस्वरित होते अपने महत् को देखिये। अब इस दृश्य को, इस सजगता को आकाश में, आकाशानुभव में विलीन हो जाने दीजिये।

पंचम चरण– अग्नि तत्त्व धारणा

पुन: दहराकाश के प्रति सजग होइये। मूलाधार और मणिपुर के मध्य निम्न आकाश में अपनी चेतना को केन्द्रित कीजिये। निम्न आकाश में एक प्रज्वलित लाल अधोमुखी त्रिभुज का अवलोकन कीजिये। देखिये कि सम्पूर्ण आकाश लाल त्रिभुज से भर गया है। त्रिभुज की तीनों भुजाओं पर अपनी चेतना को घुमाइये। दहराकाश में त्रिभुज के बिम्ब पर धारणा कीजिये जब तक वह स्पष्ट एवं जीवन्त नहीं हो जाता। प्रज्वलित लाल रंग को देखिये। लाल त्रिभुज की पूर्ण सजगता रहे।

जब त्रिभुज का दृश्य स्पष्ट और स्थिर हो जाये तब इसका इतना विस्तार कीजिये कि यह सम्पूर्ण शरीर को आच्छादित कर ले। आपके सम्पूर्ण

शरीर को आच्छादित कर रहे त्रिभुजाकार लाल रंग के प्रति सजग होइये। अपने को उस अधोमुखी लाल त्रिभुज के मध्य बैठा हुआ देखिये। इस अवलोकन और अनुभव की प्रक्रिया में गहरे जाइये। कल्पना की प्रक्रिया में गहरे जाइये। अपने शरीर को अग्नि यंत्र के मध्य बैठा हुआ देखिये। आपके सम्पूर्ण शरीर को घेरने वाले यंत्र की दीप्ति का अवलोकन कीजिये। प्रज्वलित लाल रंग देखिये। दीप्त लाल प्रकाश कणों को देखिये जिनसे अग्नि यंत्र बना है।

लाल प्रकाश का प्रत्येक कण आपके शरीर के ऊर्जा क्षेत्र की लय में धड़क रहा है, स्पन्दित हो रहा है। लाल रंग की गत्यात्मकता और ओजस्विता को अनुभव कीजिये। सम्पूर्ण शरीर को घेर रहे दहराकाश के अवलोकन और अनुभव की प्रक्रिया में गहराई के साथ संलग्न हो जाइये। यदि आपका अवधान भटक जाता है तो उसे मानस दर्शन में, दहराकाश में अग्नि यंत्र के अनुभव में सीधे वापस लाइये। जब आपको प्रतीत हो कि अग्नि यंत्र अस्पष्ट होता जा रहा है, तब लाल त्रिभुज को आकाश में विलीन हो जाने दीजिये। शुद्ध आकाश, आन्तरिक आकाश के प्रति सजग हो जाइये।

षष्ठ चरण– वायु तत्त्व धारणा

समग्र चेतना को दहराकाश में लाइये। मणिपुर और मूलाधार के मध्य क्षेत्र के आकाश का अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप की चेतना निम्न आकाश में गहराई तक प्रवेश करती जा रही है, जैसे सागर के गोताखोर समुद्र के तल तक चले जाते हैं। नीरव गहरे आकाश की समग्र चेतना। दहराकाश की गहराई में वायु तत्त्व के नीले धूसर षट्कोण को देखना प्रारम्भ कीजिये। दहराकाश में षट्भुज आकृति को स्पष्टता से देखिये। वायु यंत्र पर धारणा कीजिये, जो सम्पूर्ण दहराकाश को नीले धूसर प्रकाश से भर रहा है। अपनी चेतना को उस षट्भुज की प्रत्येक भुजा पर धीरे-धीरे घुमाइये। दहराकाश में वायु यंत्र का दृश्य बनाये रखिये।

जब आप नीले धूसर षट्कोण को स्पष्टता से देखने में समर्थ हो जायें, तब अनुभव कीजिये कि यंत्र फैलता जा रहा है और आपके सम्पूर्ण शरीर को आच्छादित कर लेता है। वायु यंत्र से निकल रहे नीले धूसर प्रकाश कणों के प्रति सजग होइये। उन प्रकाश कणों का अवलोकन कीजिये जो आपकी आन्तरिक सत्ता की लय में स्पन्दित हो रहे हैं, धड़क रहे हैं। अपने

को वायु यंत्र के नीले धूसर प्रकाश से पूर्णरूपेण आवृत्त और आच्छादित देखिये। उस नीले धूसर षट्कोण में अपने शरीर को बैठा हुआ देखिये। पूर्ण स्पष्टता एवं एकाग्र धारणा के साथ इस दृश्य की तीव्रता को बनाये रखिये। जब वायु यंत्र का बिम्ब अस्पष्ट होने लगे तब नीले-धूसर षट्कोण को भी आन्तरकि आकाश में विलीन हो जाने दीजिये।

सप्तम् चरण– आकाश तत्त्व-धारणा

अपनी समग्र चेतना को पुन: नीचे दहराकाश में ले आइये। नाभि और मूलाधार पिण्ड के मध्य दहराकाश का अनुभव कीजिये। इस आकाश में निर्भय होकर इस अंधेरे अतल गढ्ढ़े में गहरे और अधिक गहरे प्रवेश करते जाइये। दहराकाश की गहराइयों में वृत्ताकार आकाश यंत्र को देखिये। शून्य वृत्त को देखिये। चूँकि प्रकाश के अभाव में भी शून्य विद्यमान रहता है, यह यंत्र रंगहीन, पारदर्शक या काला है। फिर भी श्यामता या पारदर्शिता में सभी रंग अन्तर्विष्ट हैं।

इसलिए यह शून्य का वृत्त बहुरंगी बिन्दुओं, लघु प्रकाश कणों से भरा है, जो अत्यन्त वेग से घूम रहे हैं और अपना स्थान बदल रहे हैं। वे इतने प्रचण्ड वेग से घूमते हैं कि एक दृष्टि में प्रतीत होता है कि वे एकदम अचल हैं। उस शून्य वृत्त में देखिये जो सम्पूर्ण दहराकाश के आकाश में भरा हुआ है। चेतना की पूर्ण तीव्रता के साथ दृश्य को देखते रहिये। अपना अवधान खिसकने नहीं दीजिये।

जब आप आकाश यंत्र का स्पष्ट मानस-दर्शन करने और उस बिम्ब को धारण करने में समर्थ हो जाते हैं तब उसका विस्तार कीजिये। अनुभव कीजिये कि वह शून्य वृत्त आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को सभी ओर से घेरे हुए है और उसे परिव्याप्त कर रहा है। आपके सभी ओर तथा आपके भीतर केवल आकाश है, आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। देखिये कि नन्हें प्रकाश कण सभी दिशाओं में वेग से घूम रहे हैं और यहाँ-वहाँ विभिन्न रंगों के धब्बे बना लेते हैं, फिर पूर्णतया कोई दूसरा डिजाइन बना लेते हैं। कल्पना कीजिये कि आप आकाश यंत्र में, उस शून्य वृत्त के अन्दर हैं।

अपनी सम्पूर्ण चेतना को, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को, आकाश यंत्र में विलीन कर दीजिये। आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, केवल आकाश, विशाल, अनन्त, नीरव; बिना आदि के बिना अन्त के। उस

शून्य वृत्त पर पूर्ण स्पष्टता एवं तीव्रता के साथ अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये। जब यह दृश्य धुँधला पड़ने लगे तो आकाश यंत्र को आन्तरिक आकाश में विलीन हो जाने दीजिये।

अष्टम् चरण– अभ्यास का समापन

अब अभ्यास समाप्त करने हेतु तैयार हो जाइये। पुनः अपने सम्पूर्ण शरीर– सिर से पैर तक व्याप्त आन्तरिक आकाश के प्रति सजग होइये। भौतिक शरीर के अनुभव को विकसित कीजिये। अपने ध्यान के आसन के प्रति सजग होइये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार के प्रति सजग होइये। बाह्य वातावरण के प्रति सजग होइये। बाह्य ध्वनियाँ सुनिये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश दो

पंचतत्त्व धारणा (ख)

इस साधना में तत्त्वों के गुणों एवं प्रतीकों का चेतना के तीनों स्तरों– चेतन, अवचेतन और अचेतन में अन्वेषण करते हैं। इन प्रतीकों के क्या गुण हैं, और वे मानव चेतना से किस प्रकार सम्बद्ध हैं, यह समझने के लिए हमें पहले सांख्य दर्शन के द्वारा प्रतिपादित विकासक्रम के सिद्धान्त को जानना होगा। चेतना और ऊर्जा की पुरुष और प्रकृति के रूप में अभिव्यक्ति का विस्तृत विवेचन सांख्य दर्शन में किया गया है।

ब्रह्माण्डीय चेतना को ही पुरुष के रूप में मानते हैं। पुरुष का अर्थ ही है एक संरचना में रहने वाली चेतना जो सुषुप्तावस्था में है। ब्रह्माण्डीय चेतना या पुरुष परिशुद्ध, निरंजन और निस्सीम है। पुरुष के साथ ही एक और सत्ता है– ब्रह्माण्डीय ऊर्जा। यह ब्रह्माण्डीय ऊर्जा ही प्रकृति है जो समस्त सृष्टि को नियंत्रित करती है।

व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि की पृष्ठभूमि में सांख्य ने पुरुष और प्रकृति की युगल शक्ति को देखा है। प्रारम्भ में ये दोनों शक्तियाँ पृथक् थीं। तथापि इनके पार्थक्य की अवस्था में कुछ ऐसा हुआ कि जिसने दोनों को साथ ला दिया। जब ये दोनों शक्तियाँ साथ आईं और मिलकर एक हो गईं तब एक परिवर्तन भी स्वाभाविक ही है। आज भी हम इसे समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मेल से एक तीसरी वस्तु का निर्माण या सृष्टि होती है। उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति के मेल या विलयन के फलस्वरूप जो तीसरी वस्तु उत्पन्न हुई, उस परिणामी वस्तु को हम तत्त्व के रूप में जानते हैं।

पुरुष और प्रकृति की अभिव्यंजना के चरम विकास या अन्तिम अभिव्यक्ति को तत्त्व कहते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में तत्त्व सत्ता भूतों के रूप में थी। भूत का

अर्थ है अशरीरी स्तर से स्थूल स्तर में रूपान्तरण होना। सूक्ष्म से जब ठोस में रूपान्तरण हुआ तो वह ठोस प्रकृति ही तत्त्व के नाम से जानी गयी।

तत्त्व का अर्थ है एक पारिभाषित यथार्थता। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पूर्व से ही मौलिक तत्त्वों के रूप में जाने जाते हैं। इन तत्त्वों की अभिव्यक्ति के साथ ही इन तत्त्वों की प्रकृति, गुण या प्रत्यक्षीकरण भी आये। पृथ्वी तत्त्व का गुण जल तत्त्व के गुण से भिन्न है। जल तत्त्व का गुण अग्नि से भिन्न है। प्रकृतियाँ भिन्न हैं और इन विभिन्न प्रकृतियों के प्रत्यक्षीकरण को तन्मात्रा के रूप में जानते हैं।

तन्मात्रा तत्त्वों का सूक्ष्म सार है। पाँच तन्मात्रायें हैं– 1. शब्द या ध्वनि, आकाश तत्त्व का सूक्ष्म सार; 2. स्पर्श वायु तत्त्व का सूक्ष्म सार; 3. रूप या आकार, अग्नि तत्त्व का सूक्ष्म सार; 4. रस या स्वाद, जल या अपस् तत्त्व का सूक्ष्म सार और 5. गन्ध, पृथ्वी तत्त्व का सूक्ष्म सार। इन पाँच तन्मात्राओं का बोध पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होता है– शब्द बोध की ज्ञानेन्द्रिय है कान, स्पर्श बोध की ज्ञानेन्द्रिय है त्वचा, रूप बोध की ज्ञानेन्द्रिय हैं आँख, रस बोध की ज्ञानेन्द्रिय है जिह्वा और गंध बोध की ज्ञानेन्द्रिय है नासिका या घ्राणेन्द्रिय।

वस्तुत: इन पाँच तन्मात्राओं से पंचतत्त्व उत्पन्न हुए हैं। तन्मात्रायें और तत्त्व भी चक्रों से सम्बन्धित हैं। अत: देखते हैं कि मूलाधार में पीला वर्ग पृथ्वी तत्त्व और गंध तन्मात्रा को प्रस्तुत करता है। उसी प्रकार स्वाधिष्ठान में जल तत्त्व का श्वेत बाल चन्द्र और रस या स्वाद की तन्मात्रा होती है। मणिपुर में प्रज्वलित लाल त्रिभुज और रूप की तन्मात्रा है। अनाहत में वायु तत्त्व का नीला षडभुज और स्पर्श की तन्मात्रा है। विशुद्धि चक्र में शून्य का वृत्त या आकाश तत्त्व और शब्द की तन्मात्रा है।

यह साधना व्यक्ति को क्रमश: तत्त्व के चेतन, अवचेतन एवं अचेतन आयामों में ले चलती है। प्रथमत: ज्ञानेन्द्रियों द्वारा आन्तरिक रूप से संवेदी या ऐन्द्रिक वस्तुओं का अनुभव होता है। यह तत्त्व के प्रत्यक्ष बोध के चेतन स्तर में सह-सम्बन्ध स्थापित करता है। दूसरे, अवचेतन स्तर पर कुछ विशेष भावों, प्रतीकों और दृश्यों का आह्वान होता है, जो तत्त्वों के अनुरूप होते हैं। तृतीय, विशेष देवता या दिव्य आकृतियों का मानस दर्शन होता है, जो तत्त्वों का अवचेतन स्तर से सह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

इस प्रकार पंचतत्त्वों में से प्रत्येक का अन्वेषण किया जाता है और विकास क्रम की प्रक्रिया में उसका अपना विशेष स्थान निर्धारित किया जाता है। इस

प्रकार तत्त्वों के विभिन्न आयामों के अन्वेषण द्वारा हम तत्त्वों का चेतना और ऊर्जा या पुरुष और प्रकृति के साथ पारस्परिक प्रभाव का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। विकास की प्रक्रिया का पुनर्सृजन कर हम जटिल सम्पूर्ण के अनिवार्य अंग के रूप में प्रत्येक पक्ष का अनुभव कर सकते हैं।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के सुखद आसन में बैठ जाइये। अपनी स्थिति को पुनर्व्यवस्थित कर लीजिये जिससे मेरुदण्ड सीधा रहे और सिर थोड़ा सा पीछे की ओर झुका रहे। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। ओठों और आँखों को कोमलता से बन्द कर लीजिये। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर के प्रति चैतन्य हो जाइये। अपनी चेतना को शरीर के एक अंग से दूसरे अंग में घुमाते जाइये और आश्वस्त हो जाइये कि कहीं पर किसी अंग में कड़ापन या तनाव नहीं है। मन को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हुए अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाइये। प्रत्येक अंग में किसी तनाव या विश्रान्ति के प्रति चैतन्य हो जाइये। अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण शरीर विश्रान्त होकर सुविधापूर्ण स्थिति में आ रहा है।

द्वितीय चरण– काया स्थैर्यम्

जिस आसन में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। अपने आसन पर एकाग्र होइये। अनुभव कीजिये कि शरीर स्थिर एवं शान्त हो रहा है। आसन की सजगता रखते हुए स्थिरता एवं निश्चलता का अनुभव कीजिये। सम्पूर्ण शरीर पूर्णत: स्थिर और निश्चल है। समस्त भौतिक शरीर में पूर्ण नीरवता एवं निश्चलता का अनुभव कीजिये।

तृतीय चरण– पृथ्वी तत्त्व/गन्ध

चेतन स्तर– इस नीरवता एवं निश्चलता में ही शरीर के अन्दर के आकाश के प्रति सजग होइये। सिर से पैर की अंगुलियों तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। स्थूलाकाश, समग्र शरीर में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। आकाश की पूर्ण सजगता विकसित कीजिये जो आपके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इस आकाश में ही पृथ्वी तत्त्व के प्रति सजग होइये जो घ्राणेन्द्रिय से सम्बन्धित है। अपनी सजगता को घ्राणेन्द्रिय में लाइये। वातावरण में अभी जो भी गंध हैं उन्हें अनुभव कीजिये।

एक गुलाब की गंध के प्रति सजग होइये। गुलाब की गन्ध का स्मरण कीजिये और उसे अभी ही सूँघने का यत्न कीजिये, मानो आपने अभी ही एक गुलाब के फूल को तोड़ा है। अब चमेली की गंध पर आ जाइये। चमेली की गंध के प्रति सजग होइये। चमेली की गंध की सजगता को तीव्र कीजिये।

जैसे ही विभिन्न वस्तुओं का नाम लिया जाये, उसकी गंध के प्रति तीव्रता से सजग होने का प्रयास कीजिये, मानो वह वस्तु एकदम आपके सामने उपस्थित है। कुछ क्षणों के लिए अपनी सजगता को स्थिर रखने का प्रयास कीजिये, फिर दूसरी वस्तु की ओर बढ़ जाइये। अमरूद, गर्म घी, सरसों तेल, गर्म भात की गंध के प्रति सजग होइये। प्रत्येक गंध के प्रति अलग-अलग तीव्रता से सजग होइये। गंध लीजिये– ताजी लकड़ी, तुलसी का पौधा, चन्दन की लकड़ी, पेट्रोल, साबुन, धुआँ।

अब इन गंधों का स्मरण कीजिये और इनके प्रति सजग होइये– अस्पताल, दवायें, मूत्र, विष्टा, पसीना। तम्बाकू, अगरबत्ती, वर्षा के बाद की भींगी मिट्टी, फफूँदे की गंध। सागर की गंध, कपूर की गंध।

अवचेतन स्तर– अब गंध की इन्द्रिय को भूल जाइये और स्थूल शरीर की ओर अपनी चेतना को वापस लाइये। सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग होइये। अपने शरीर की स्थिरता का अनुभव कीजिये। आपका शरीर पूर्ण अचल और स्थिर है। अपने शरीर के भारीपन के प्रति सजग होना प्रारम्भ कीजिये। अपने शरीर को पृथ्वी के समान भारी होता अनुभव कीजिये। शरीर के भारीपन और स्थैर्य का अनुभव कीजिये। शरीर को पृथ्वी के समान भारी और स्थिर होता अनुभव कीजिये।

अब पृथ्वी के अन्दर में बैठे अपने शरीर की अनुभूति उत्पन्न कीजिये। मिट्टी सम्पूर्ण शरीर के चारों ओर है। ऊपर मिट्टी है, नीचे मिट्टी है, मिट्टी के साथ एक हो जाइये। आप मिट्टी ही हैं। मिट्टी की गंध लीजिये।

मिट्टी की इस सजगता के मध्य एक अत्यधिक लाल कमल के फूल की कल्पना कीजिये। अत्यधिक लाल रंग के कमल के फूल को देखिये और उसकी पंखुड़ियों को भी सूक्ष्मता से देखिये। अब लाल कमल की सजगता को मिटने दीजिये और एक पीली वर्णाकृति देखिये। एक पीले बड़े से वर्ग को देखिये। पीले वर्ग की सजगता गहरी कीजिये। चमकीले पीले रंग को चारों ओर से घेरने वाले वर्ग की चारों भुजाओं को देखिये।

सजगता को विभ्रान्त मत होने दीजिये या मन को अभ्यास से भटकने मत दीजिये। अब पीले वर्ग की सजगता को जाने दीजिये और एक धूमवर्णी धूसर शिवलिंग को देखिये। शिवलिंग को स्पष्टता से देखिये, और धूमवर्णी धूसर रंग के प्रति सजग होइये। सर्प लिपटे इस धूमवर्णी धूसर शिवलिंग को देखिये। धूमवर्णी धूसर शिवलिंग को अपनी कुण्डली में लपेटे सर्प को देखिये। यह कुण्डली लगाये सर्प सुषुप्त कुण्डलिनी, या आध्यात्मिक शक्ति का द्योतक है।

जैसे-जैसे शिवलिंग और सर्प की छवि विलीन होती जाती है, शरीर के आकाश में एक हाथी की कल्पना कीजिये। इस हाथी की सात सूँड़े हैं। इस छवि को पूर्ण स्पष्टता से देखिये। हाथी और इसकी सात सूँड़ों को पूर्ण विस्तार से देखिये। इस हाथी के भार और ठोसपन को अनुभव कीजिये, जो पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक है।

अचेतन स्तर– सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश, स्थूलाकाश में अपनी सजगता को ले आइये। स्थूलाकाश के प्रति पूर्णतया सजग होइये। स्थूलाकाश में भू:देवी की छवि देखिये जो काले रंग की है। भू:देवी के सर्वालंकार भूषित सौम्य रूप की कल्पना कीजिये। उनकी चार भुजायें हैं। उनके एक हाथ में ईख है, दूसरे में धनुष है, तीसरे में नए अन्न की बाली है और चौथे में कलश है। पृथ्वी से हमें जो भी मिलता है उसके ये प्रतीक हैं। इस कृष्ण वर्ण की भू:देवी की छवि स्पष्टतया देखिये।

अब भूदेवी की छवि को विलीन हो जाने दीजिये। गणेश की छवि उत्पन्न कर उसका मानस दर्शन कीजिये। उन्हें एक चौकी पर बैठा हुआ देखिये। बड़े-बड़े कानों से युक्त उनके हाथी के सिर की कल्पना कीजिये। ये बड़े कान सत्यान्वेषी के लिए आवश्यक हैं। ये अहर्निश मेघावी श्रवण क्षमता के प्रतीक हैं। दो दाँत हैं, जिनमें एक टूटा हुआ है, लम्बी सूँड़ दोनों के मध्य लहरा रही है। उनके चार हाथ हैं, एक हाथ में पाश है, जिससे वे जगत् की आसक्ति को काट कर दु:खों का अन्त करते हैं। दूसरे हाथ में पाश है जिससे वे साधकों को सत्य के समीप से समीपतर खींचते हैं। उनके तीसरे हाथ में एक मोदक है, जो अविरल साधना के प्रसाद का द्योतक है। उनका चौथा हाथ अभय मुद्रा में है, जिसके द्वारा वे साधक को शक्ति प्रदान करते हैं और उसकी सारी बाधायें दूर करते हैं।

उनका दायाँ पैर बायीं जाँघ पर है और बायाँ पैर भूमि पर अवस्थित है। यह मन की एकाग्रता और बुद्धि का प्रतीक है। गणेश के सामने मिष्टान्न से भरा एक पात्र है, जो अस्तित्व के समस्त गौरव का द्योतक है, जो सभी महान् योगियों की सेवा में तत्पर रहता है। गणेश के समीप एक छोटा चूहा बैठा है। इस सम्पूर्ण छवि को जीवन्त एवं स्पष्ट रूप में देखिये। एक-एक चीज के प्रति सजग होइये तथा संतोष और समस्वरता के भाव का अनुभव कीजिये जो गणेश जी विकसित कर रहे हैं।

चतुर्थ चरण– अपस् तत्त्व/स्वाद

चेतन स्तर– पृथ्वी तत्त्व की सजगता और इन छवियों को समाप्त कीजिये। पुन: स्थूलाकाश के प्रति सजग होइये। समस्त शरीर में व्याप्त आकाश को अनुभव कीजिये। अपनी चेतना को अब अपस् तत्त्व या जल तत्त्व पर केन्द्रित कीजिये। जल तत्त्व से सम्बन्धित तन्मात्रा है स्वाद। अभी तत्क्षण आपके मुँह में जो स्वाद है, उस स्वाद में अपना अवधान लाइये। स्वाद के प्रति सजग होइये। जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों का नाम लिया जाता है उसका स्वाद तीव्रता से उत्पन्न कीजिये, मानो इसी क्षण उन्हें खा रहे हैं।

कल्पना कीजिये कि आप रसगुल्ला खा रहे हैं। तत्क्षण उस स्वाद को स्मरण कीजिये एवं अनुभव कीजिये। थोड़ी देर तक उसे रहने दीजिये और बाद में उसे समाप्त होने दीजिये। इन स्वादों को उत्पन्न कीजिये– चॉकलेट, आइसक्रीम, कोका-कोला, पका आम। नींबू की खट्टास का स्वाद लीजिये। अब इनका स्वाद लीजिये– प्याज, ईलाइची, लौंग, अदरक, दूध, मक्खन, दही, खोआ। कड़वा नीम, नमक, चीनी, मधु, और खीर का स्वाद लीजिये।

अवचेतन स्तर– अब स्वाद की सजगता को विलीन हो जाने दीजिये और सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश के प्रति सजग होइये। कल्पना कीजिये कि आप किसी पहाड़ी झरने में गिर रहे जलप्रपात के नीचे बैठे हैं। आपके ऊपर पानी है, नीचे पानी है। आपके चारों ओर पानी एक परदे के समान गिर रहा है। शीतल जल की फुहार का अनुभव कीजिये। गिर रहे जल के भार का अनुभव कीजिये। उसकी तरलता का अनुभव कीजिये। अपने को भी तरल बन कर जल में मिल जाता अनुभव कीजिये। अपने को जल के समान, शीतल जल के समान प्रवाहित होता

अनुभव कीजिये। जल की धार के साथ अपने को धारा में नीचे की ओर बहता हुआ अनुभव कीजिये। आप बिना किसी प्रतिरोध के बहते जा रहे हैं। शीतल जल का आनन्द लीजिये।

तरलता की अनुभूति के साथ ही साथ एक श्वेत कमल की कल्पना कीजिये। उसको पूर्ण विस्तार से देखिये। चमकीला उजला रंग, पूर्ण श्वेत पँखुड़ियाँ। श्वेत कमल की शीतलता। सम्पूर्ण स्थूलाकाश में चमकीले श्वेत कमल को देखिये। एक क्षण के लिए श्वेत कमल के प्रति तीव्रता से सजग होइये, फिर उसे आकाश में विलीन हो जाने दीजिये।

जैसे ही श्वेत कमल आकाश में विलीन होता है वहाँ रजत वर्णी बाल चन्द्र को देखिये। बाल चन्द्र की निर्मल श्वेताभा को देखिये, बालचन्द्र की सुघड़ नोकों को देखिये। छवि को सम्पूर्ण आकाश में भर जाने दीजिये। सम्पूर्ण स्थूलाकाश में व्याप्त हो रहे बालचन्द्र की स्निग्ध, शीतल, चाँदनी के प्रति सजग होइये। निर्मल श्वेत बालचन्द्र के साथ अपने को एकाकार होता अनुभव कीजिये।

इस बालचन्द्र की छवि को विलीन होने दीजिये और एक विशाल श्वेत मगर की कल्पना कीजिये। आप उसे जैसे-जैसे पूर्ण विस्तार में देखते हैं, वह सम्पूर्ण आकाश में भर जाता है। उसके तीखे दाँतों और विशाल जबड़े को देखिये। उसकी लम्बी-पूँछ और छोटी-छोटी टाँगों को देखिये। मगर अपनी शुभ्रता में जगमगा रहा है।

अब मगर की छवि को भी काले सागर में विलीन होने दीजिये। सागर की लहरों के प्रति सजग होइये। लहरें अनवरत गतिशील हैं। रात अन्धेरी है, पर आकाश में बालचन्द्र और तारों का मद्धिम प्रकाश है। इस छवि को स्पष्ट रूप से देखिये। बाल चन्द्र एवं तारों के मद्धिम प्रकाश से भरा काला आकाश। चाँद और तारे विशाल सागर में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। सागर की गहराई और उसकी अनवरत हलचल के प्रति सजग होइये।

अचेतन स्तर– अब इस छवि को जाने दें। अब आकाश में सहस्त्रफण वाले शेषनाग की शय्या पर लेटे विष्णु की कल्पना कीजिये। उन्हें क्षीर सागर के मध्य में तैरता हुआ देखिये। विष्णु की नाभि से निकलते हुए एक बड़े गुलाबी रंग के कमल को देखिये, जिस पर ब्रह्मा बैठे हैं। धन, शक्ति एवं ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी को विष्णु के चरणों के पास बैठा हुआ देखिये। जब मन अन्तर्मुखी हो और बाहर की ओर भाग नहीं रहा हो

तभी इस छवि को स्पष्टता से देखा जा सकता है। इस छवि को स्पष्टता एवं तीव्रता से देखिये।

सहस्त्र फण वाले विशाल काले शेषनाग की कल्पना कीजिये। इस शेषनाग पर नीले रंग के विष्णु को देखिये, जो अनन्त के प्रतीक हैं और अभी योगनिद्रा में लेटे हैं। मानवीय करुणा के प्रतीक क्षीर सागर में वे तिर रहे हैं। विष्णु की नाभि से निकले गुलाबी रंग के कमल पर ब्रह्मा बैठे हैं, जो स्त्रष्टा हैं और अनन्त जिनका उद्‌भव है। विष्णु पत्नी लक्ष्मी अपने पति के चरण दबा रही हैं। कुछ क्षणों के लिए इस छवि का मानस दर्शन कीजिये।

पंचम् चरण– अग्नि तत्त्व/रूप

चेतन स्तर– पुनः चेतना को स्थूलाकाश में ले आइये। स्थूल आकाश के विशाल आकाश के प्रति सजग होइये। अभ्यास का अगला चरण है अग्नि तत्त्व की सजगता। अग्नि तत्त्व की तन्मात्रा है रूप। यहाँ आपको स्थूलाकाश में उत्पन्न विभिन्न रूपों के प्रति सजग होना चाहिए। यहाँ प्रत्येक रूप या दृश्य को यथासंभव स्पष्टता से, जितना भी विस्तार में हो सके उतने अधिक विस्तार में देखिये।

एक हरे भरे पथरीले पहाड़ को देखिये जो बर्फ से ढका है। एक बालूमय किनारों वाली चौड़ी नदी को देखिये, जिसके दोनों ओर हरे-भरे मैदान और जंगल हैं। नदी में छोटी नावें, पाल वाली बड़ी नौकायें और पानी के जहाज भी हैं। नदी में लोग स्नान कर रहे हैं। फलों से लदे एक आम के पेड़ को देखिये। आम के पूरे बगीचे को देखिये।

अपनी सजगता को एक दृश्य से दूसरे दृश्य पर घुमाते चलिये। अपने अवधान को एक ही स्थान पर टिक नहीं जाने दें या अन्यत्र भटकने भी मत दीजिये। मानस दर्शन कीजिये– एक छोटा गाँव, कमल का सरोवर, काले मेघ, मूसलाधार वर्षा, इन्द्रधनुष। तारों भरे, पर चन्द्रमा से रहित आकाश को देखिये। एक अर्द्ध चन्द्र, पूर्ण चन्द्र को देखिये। नीम के वृक्ष, वटवृक्ष की, फूलों से लदे वृक्ष की आकृति निर्मित कीजिये। पेड़ पर बैठे पक्षी, उड़ते हुए उजले पंडुक, पंख फैलाये मोर, हरा तोता, नीलकण्ठ का मानसिक रूप से दर्शन कीजिये। देखिये– एक चूहा, एक साँप, गिद्ध, मकड़ा, छिपकिली, कुत्ता, बकरी, सिंह, बन्दर, बछड़े के साथ गाय, भैंस। चल रही साइकिल, चल रही मोटरकार, गतिमान ट्रक, बस, ट्राम,

ट्रेन का मानस दर्शन कीजिये। चिता पर जल रहे शव को देखिये। घना, शान्त वन, कृष्ण मन्दिर, शिव मन्दिर को देखिये।

अवचेतन स्तर– अब कल्पना कीजिए कि आप प्रज्वलित अग्नि के मध्य बैठे हुए हैं। देखिये कि आग की लपटें चारों ओर लपक रही हैं। आग की भीषण गर्मी का अनुभव कीजिये। चारों ओर स्वर्णिम, लाल और नीली लपटें देखिये। अनुभव कीजिये कि गर्मी अत्यधिक बढ़ती जा रही है और आप अत्यन्त तप्त से तप्त होते जा रहे हैं। आप आग या उसकी लपटों का प्रतिरोध नहीं कीजिये। अपने को उस झुलसाती गर्मी के साथ एक हो जाने दीजिये। अपने को अग्नि ही होता अनुभव कीजिये। अनुभव कीजिये कि आप ही आग हैं, और जो भी आपके सम्पर्क में आता है, उसे जला दे रहे हैं। आप प्रचण्ड अग्नि ही बन जाइये।

धीरे-धीरे इस छवि को समाप्त हो जाने दीजिये, अपने चतुर्दिक आकाश में इसे विलीन हो जाने दीजिये। अब एक चमकीले पीले रंग के कमल पुष्प की कल्पना कीजिये। कमल की चमकीली आभा को अलग-अलग प्रत्येक पँखुड़ी में देखिये। कमल पुष्प की स्पन्दनशीलता के प्रति सजग होइये। कुछ क्षणों तक इस छवि को देखिये, तत्पश्चात् इसे विलीन हो जाने दीजिये। जैसे ही कमल विलीन होता है, आकाश में उभरते एक अधोमुखी लाल त्रिभुज को देखिये। आप उस त्रिभुज के ताप को प्राय: अनुभव कर सकते हैं, लाल रंग इतना तेज है मानो धू-धू करती अग्नि हो।

अब सूर्य को देखिये। मध्याह्न सूर्य के जलते गोले का मानस दर्शन कीजिये। प्रचण्ड सूर्य से आती तीव्र गर्मी और प्रकाश का अनुभव कीजिये। सूर्य की ऊर्जा और शक्ति के प्रति सजग होइये। जैसे-जैसे यह छवि लुप्त होती है एक भेड़ (मेष) की छवि उत्पन्न कीजिये, जो मणिपुर चक्र, बल, और सौर जालिका में निहित तेज की प्रतीक है। अपनी राह की सभी बाधाओं को पार करते, बली, अग्रगामी भेड़ की छवि देखिये।

अचेतन स्तर– समस्त शरीर में व्याप्त आकाश में पुन: अपनी चेतना को ले आइये। अब सूर्य का मानस दर्शन कीजिये जो अग्नि के देवता हैं। वे एक स्वर्णिम देव हैं। उनके हाथ और पैर स्वर्णिम हैं, बाल भी स्वर्णिम हैं। वे सभी दिशाओं में स्वर्णिम प्रकाश का विकिरण कर रहे हैं। आकाश मार्ग में वे स्वर्णिम रथ पर जा रहे हैं, उस रथ पर स्वर्ण का छत्र लगा है। उनके रथ में सात घोड़े जुते हैं जिनके पैर लाल हैं एवं आँचल काला है।

प्रत्येक प्रात: जैसे ही वे आकाश मार्ग में अपनी यात्रा प्रारम्भ करते हैं रात्रि का अन्धकार भाग खड़ा होता है और सारा विश्व कर्म में लग जाता है। सूर्य से विकिरित होते स्वर्णिम जीवनदायी प्रकाश का अनुभव कीजिये। इस प्रकाश को अपने सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होते अनुभव कीजिये, जो ज्ञान को ढक कर अज्ञान उत्पन्न करने वाले आन्तरिक अन्धकार को दूर कर देता है। अनुभव कीजिये यह प्रकाश आपके चतुर्दिक विद्यमान आकाश को भर रहा है। अपने आपको प्रकाश से एकाकार अनुभव कीजिये। सूर्य में ताप और प्रकाश दोनों हैं। प्रकाश से वह अन्धकार का नाश करता है एवं समस्त विश्व को ऊर्जान्वित करता है, तथा ताप के द्वारा वह समस्त बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को उस प्रकाश और ताप से अभिभूत होता अनुभव कीजिये।

अब अग्नि के अन्य पक्ष की ओर चलिये। अग्नि देव की कल्पना कीजिये। अग्नि को गहरे लाल रंग का मानते हैं। इनके दो मुख हैं जो इनके दो पक्षों– रचनात्मक प्रकाश और विनाशात्मक अग्नि के प्रतीक हैं। इनके तीन हाथ और सात पैर हैं। इनका वाहन है मेष तथा इनकी पताका पर भी इसी का चित्र है। प्रत्येक मुख से बाहर लपटों के रूप में विभाजित जिह्वा निकली हुई है। अग्निदेव सदा युवा रहते हैं, उनका क्षय नहीं होता है। वे अमर हैं।

लाल जलती अग्नि को देखिये। वे सभी देवताओं में अत्यधिक तेजस्वी एवं दाहक हैं। वे पवित्र हैं, क्योंकि सारी अपवित्रतायें उनमें भस्म हो जाती हैं। अग्नि हमें उच्चतम ज्योति की ओर ले जाती है। सदा वर्द्धनशील अग्नि का मानस दर्शन कीजिये। आकाश में अग्नि तत्त्व को धीरे-धीरे विलीन होने दीजिये।

षष्ठ चरण– वायु तत्त्व/स्पर्श

चेतन स्तर– अब हम वायु तत्त्व को लेते हैं। स्पर्श की तन्मात्रा है वायु तत्त्व की इन्द्रिय। स्पर्श के प्रति सजग होइये। अपनी त्वचा पर वस्त्रों के स्पर्श को अनुभव कीजिये। घुटनों पर रखी अपनी हथेलियों के स्पर्श का अनुभव कीजिये। कल्पना कीजिये कि आप एक बिल्ली को सहला रहे हैं। सहलाते समय उसके कोमल, चिकने रेशमी वालों के स्पर्श को अनुभव कीजिये। अब आप अपने कुत्ते को सहला रहे हैं। अब कुत्ते की भिन्न प्रकृति के मोटे रुखड़े बालों का स्पर्श अनुभव कीजिये।

एक गाय, पक्षी, सर्प के स्पर्श का अनुभव कीजिये। इन सभी प्राणियों की भिन्न त्वचा संरचना, तापमान, और संवेदन का अनुभव कीजिये। मछली का स्पर्श अनुभव कीजिये, शीतल, पपड़ीदार त्वचा का।

शीतलता की अनुभूति उत्पन्न कीजिये। अपनी त्वचा में शीतल वायु का स्पर्श अनुभव कीजिये, जो रोंगटे खड़े कर देता है। अब ताप को अनुभव कीजिये, अनुभव कीजिये कि गर्म हवा आपकी त्वचा से स्पर्श कर रही है। अपने गालों पर अपनी माँ का स्पर्श अनुभव कीजिये। त्वचा का स्पर्श करने पर त्वचा को अनुभव कीजिये। एक शिशु का स्पर्श अनुभव कीजिये। एक मित्र का, अपने पति या पत्नी का स्पर्श अनुभव कीजिये। इस स्पर्श की संवेदना को शारीरिक रूप और सूक्ष्म रूप से अनुभव कीजिये। चुस्त जीन्स, रेशमी वस्त्र, मखमली तारों का ब्रश, स्टील के बरतन, ऊनी कम्बल का स्पर्श अनुभव कीजिये। अपनी सजगता को घुमाते रहिये। कोमलता, कठोरता, शीत या ताप के प्रति सजग होइये। वस्तुओं की भिन्न-भिन्न स्पर्शानुभूतियों के प्रति सजग होइये। कल्पना कीजिये कि आप प्रत्येक को हाथ बढ़ाकर स्पर्श कर रहे हैं।

फूलों, बाल, पत्थर, आम, नारंगी, पत्ते, गीली मिट्टी, चींटी का काटना, मधुमक्खी या मच्छर के दंश, चुटकी, थप्पड़ के स्पर्शानुभव के प्रति सजग होइये। इससे जो पीड़ा होती है उसे तथा इसकी तीक्ष्णता को अनुभव कीजिये। काटने, गुदगुदाने, नमी, सूखापन, खुजली, गोंद के चिपचिपेपन की संवेदना का अनुभव कीजिये। इन सभी संवेदनाओं का शरीर पर जो प्रभाव होता है उसे अनुभव कीजिये। इनमें से प्रत्येक के स्पर्श पर जो शारीरिक प्रतिक्रिया होती है उसका अनुभव कीजिये।

कल्पना कीजिये कि आप नंगे पैर भींगी घास पर चल रहे हैं, घास की नमी और कोमलता का अनुभव कीजिये। नुकीले पत्थरों, काँटों, सूर्य की तीक्ष्ण धूप में जलती कोलतार की सड़क पर, संगमरमर के शीतल फर्श पर, जल में बर्फ पर नंगे पैर चल रहे हैं। अपने पैर के तलवों में हिम की शीतल कुरमुराहट को अनुभव कीजिये। पंखे से उत्पन्न हवा के प्रति, ठण्ढी वर्षा के प्रति सजग होइये।

अवचेतन स्तर– इन अनुभवों और संवेदनाओं को समाप्त होने दीजिये और पुन: अपने चतुर्दिक आकाश के प्रति सजग होइये। अपने को आकाश में अवस्थित देखिये और शीतल मन्द समीर के प्रति सजग होइये। अनुभव

कीजिये कि मन्द समीर आपकी त्वचा को स्पर्श कर रहा है। हवा तेज हो रही है। अपने चारों ओर तेज बहती हवा का अनुभव कीजिये जो समस्त आकाश में भर गई है। हवा आपकी पीठ पर और सामने लग रही है। हवा आपके ऊपर है, आपके नीचे है। आपके चारों ओर हवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो आपको क्रमशः अधिकाधिक हल्का बनाती जा रही है। हवा आपके शरीर का भार समाप्त करती जा रही है। आप प्रायः भारहीन होते जा रहे हैं। अनुभव कीजिये कि हवा आपको बहा ले जा रही है और धीरे-धीरे आप हवा ही बनते जा रहे हैं, और आप में और हवा में अन्ततः कोई अन्तर नहीं रह जाता है। अपने को सभी दिशाओं में बहता हुआ अनुभव कीजिये। आपको कुछ भी पकड़ नहीं पा रहा है, आप किसी भी वेग से, किसी भी दिशा में हवा के साथ निर्बाध बह सकते हैं। हवा के स्पर्श को अनुभव कीजिये।

धीरे-धीरे इस भावना को विलीन हो जाने दीजिये और गहरे सघन अन्धकारपूर्ण आकाश के प्रति पुनः सजग हो जाइये। एक नीले कमल का मानस दर्शन कीजिये। वायु तत्त्व का, वायु के अबाधित तत्त्व का रंग नीला है। एक प्रभापूर्ण नीला कमल। उसे स्पष्ट रूप से देखिये। अब इसे विलीन होने दीजिये और दो अन्तर्ग्रथित त्रिभुजों को देखिये। एक त्रिभुज उर्ध्वमुख है और दूसरा अधोमुखी है। त्रिभुज की बाहरी रेखाओं पर चेतना को घुमाते जाइये, मानो आप उन्हें बनाते जा रहे हैं। इन दो अन्तर्ग्रथित त्रिभुजों को देखते जाइये।

आकाश के अन्धेरे में एक छोटे दीपक के प्रति सजग होइये। अन्धेरे में जल रही दीप शिखा को देखिये। प्रकाश को विकीर्ण होते देखिये जो आकाश में भरता जा रहा है। ज्योति स्थिर और निष्कम्प है। कुछ क्षणों तक इस छोटे, चमकीले निष्कम्प दीप लौ को देखते जाइये। यह ज्योति आपके अन्दर विद्यमान स्थिर, अपरिवर्तनशील आत्मा की प्रतीक है।

अब एक शान्त बड़े सरोवर की कल्पना कीजिये। सरोवर में कोई हलचल नहीं है। पूरा शान्त है। सरोवर की सतह एक बड़े दर्पण की तरह है जिसमें नीला गगन प्रतिबिम्बित हो रहा है। सरोवर को गौर से देखते हुए उसकी गहराई और स्थिरता के प्रति सजग होइये। शान्ति एवं स्थैर्य के अनुभव को गहरा कीजिये। सरोवर के गहरे जल को ध्यानपूर्वक देखते हुए एक कृष्ण मृग को देखिये। एक कृष्ण मृग की

कल्पना कीजिये। इस गहरे काले रंग के मृग की मनोहर लहराती चाल को देखिये। हिरण तेज है और अपनी चाल के प्रति आश्वस्त है जो अबाधित है।

अचेतन स्तर– जब यह छवि धूमिल होने लगे तो इसे आकाश में ही मिल जाने दीजिये। अन्धेरे आकाश में वायु की कल्पना कीजिये, जिन्हें वायु देवता, मरुत कहा जाता है। वायुदेव का रंग नीला है जो अनन्तता का द्योतक है। वे विचार के समान वेगवान हैं। उनका वाहन है मृग, जो द्रुतवेग का प्रतीक है। उनके एक हाथ में पंखा है, जो उनकी सतत् प्रवाहमान गति का प्रतीक है। वायु सभी चीजों में व्याप्त है। वे एक चमकीले रथ में सवार हैं, जिसमें दो लाल घोड़े जुते हैं। उनमें स्वस्थ बनाने की क्षमता है। अत्यधिक शक्तिशाली होने के कारण प्राय: उनकी उपमा वृषभ से दी जाती है। वे तलवार लिये हैं, जो ऊर्जा और कुशाग्र बुद्धि की प्रतीक हैं। वायुदेव की आकृति बनाने का प्रयास कीजिये। उनकी सतत् प्रवाहमान गति के प्रति सजग होइये। वायु तत्त्व को समझने का प्रयास कीजिये जो सभी चीजों में व्याप्त है। कुछ और क्षणों तक यह सजगता बनाये रखिये, फिर इसे स्थूलाकाश में विलीन हो जाने दीजिये।

सप्तम चरण– आकाश तत्त्व/ध्वनि

चेतन स्तर– अब आकाश तत्त्व को लें। उस आकाश के प्रति सजग होइये जिसमें आपका शरीर बैठा है। अपने चतुर्दिक फैले एवं आपके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। शरीर के अन्दर जो आकाश है वही बाहर में आपके शरीर के चारों ओर भी है। यही है आकाश तत्त्व।

आकाश तत्त्व की तन्मात्रा है शब्द, ध्वनि। अगले कुछ क्षणों तक अपने चारों ओर हो रही ध्वनियों के प्रति सजग होइये। अपनी पूरी सजगता को ध्वनि पर केन्द्रित कीजिये। अब घण्टी बजने की ध्वनि उत्पन्न कीजिये। बजती हुई घण्टी की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनिये। शंख की ध्वनि सुनिये, मुरली की मधुर ध्वनि सुनिये। घड़ियाल पर चोट पड़ते सुनिये और उसकी ध्वनि के स्पन्दन को अनुभव कीजिये। झाँझ की, डमरू की, मृदंग की, तबले की ध्वनि सुनिये। पाँव के नूपुरों की झंकार, पक्षियों का संगीत, कार का हार्न, एक बच्चे का रोना, मन्त्रोच्चार एवं कीर्तन की ध्वनि सुनिये।

अब पैरों की पदचाप सुनिये, लोगों के बात करने, हँसने, खाँसने, छींकने, खर्राटे लेने की ध्वनि सुनिये। टेलीफोन की बज रही घण्टी, अलार्म घड़ी की बजती घण्टी, चलती ट्रेन, ट्रेन की सीटी, चल रही बड़ी मशीन की आवाज, टाइपिंग की आवाज सुनिये।

अगले कुछ क्षणों तक विभिन्न पशुओं, जैसे– गाय, बिल्ली, कुत्ते, मेंढक और झिंगुर की आवाज सुनिये। बिजली कड़कने, घनघोर वर्षा की आवाज सुनिये। सुनिये, ऊपर से हवाई जहाज जा रहा है।

अवचेतन स्तर– इन सारी ध्वनियों को विलीन हो जाने दीजिये और अपनी चेतना को अपने चतुर्दिक फैले आकाश में, जिसमें आप बैठे हैं, ले आइये। अनुभव कीजिये मानो आप आकाश में तैर रहे हैं। आपका शरीर हल्का, वरन् पूरा भारहीन है और विस्तृत काले आकाश में उड़ता जा रहा है। काले विस्तृत आकाश में तैरते समय सजग होइये कि क्षुद्र ग्रह आपकी अगल-बगल से निकलते जा रहे हैं। समग्र अंधेरे में बिखरे तारों के प्रति सजग होइये, जो चमकीले और जलते-बुझते प्रकाश कण से दीखते हैं। आकाश में तैरते समय चाँद और सूरज को देखिये। जिस आकाश में आप तैर रहे हैं उसी में अपने को घुलते हुए देखिये, उस आकाश से एकाकार होते देखिये। आकाश तत्त्व का अनुभव कीजिये। आप स्वयं ही आकाश तत्त्व हैं।

इस आकाश तत्त्व में एक विशाल चमकीले 'ॐ' के प्रतीक को देखिये। वह 'ॐ' का प्रतीक स्पन्दित हो रहा है और उससे किरणें निकल रही हैं। मधुर स्वर में लगातार ॐ के उच्चारण को सुनिये, जो समस्त आकाश में गूँज रहा है। अब पूर्णिमा के चाँद का मानस दर्शन कीजिये। शुभ शीतल चाँदनी का अनुभव कीजिये। एक हिम धवल हाथी को देखिये। विशाल हाथी को स्पष्ट रूप से देखिये। हाथी एकदम बर्फ सा सफेद है, कहीं पर अन्य किसी रंग का धब्बा नहीं है। अब एक काले शिवलिंग की कल्पना कीजिये। शिवलिंग गहरा काला है।

अचेतन स्तर– अब सभी ध्वनियों को विलीन हो जाने दें और प्राचीन वैदिक देवता 'द्यौ' की कल्पना करने का प्रयास कीजिये, जो आकाश या महाव्योम का प्रतीक है। असीम प्रभापूर्ण महाव्योम, गगन का पुरुष रूप में, पितृदेव के रूप में मानस दर्शन कीजिये। 'द्यौ:' शुद्ध चेतना का प्रतीक है, जो अपरिवर्तनशील एवं अपरिवर्तनीय है, जिसका न आदि है न अन्त,

जो सब में व्याप्त है तथा सबसे परे भी है। शुद्ध चेतना किसी भी रूप में अभिव्यक्त हो सकती है, पर अपने आप में वह अरूप है, निराकार है, उस शुद्ध चेतना का अनुभव कीजिये।

अष्टम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब अभ्यास समाप्त करने की तैयारी कीजिये। अपने चारों ओर फैले आकाश के प्रति सजग होइये, जिसमें आप बैठे हैं। क्रमश: स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये, अपने आसन के प्रति सजग होइये। शरीर और भूमि के मध्य स्पर्श के प्रति सजग होइये। स्थूल शरीर के भार के विषय में सजग होइये। बाह्य वातावरण के प्रति सजग होकर अपने मन को धीरे-धीरे बहिर्मुखी बनाइये। अपने परिवेश के प्रति सजग होइये। लम्बी गहरी साँस लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

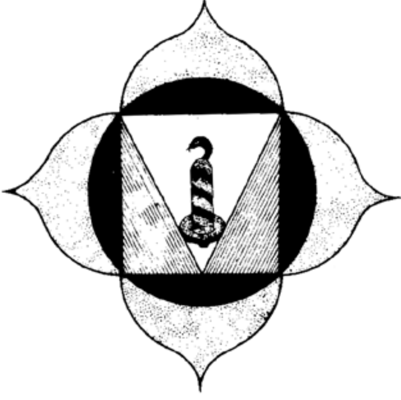
दहराकाश तीन

चक्र धारणा (क)

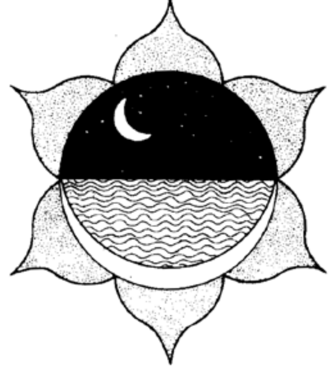
दहराकाश दो शब्दों से बना है– 'दहर', अर्थात् कुण्ड और 'आकाश' जिसे अंग्रेजी में स्पेस कहते हैं। अत: दहराकाश का अर्थ है 'गहरा आकाश'। विभिन्न साहित्यों में दहराकाश का वर्णन आया है, जो चिदाकाश और हृदयाकाश की सीमाओं से भी परे है। कुछ शास्त्रों में दहराकाश वर्णन शरीर के निम्न भाग के आकाश के रूप में है, जिसका भी अर्थ होता है गहरा या निम्नतर आकाश। योग की प्रत्येक शाखा की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं, परन्तु अधिकांश शाखायें इस बात पर सहमत हैं कि दहराकाश में अतीन्द्रिय चेतना और अतीन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। अतएव इस आकाश के अनुभव हेतु चक्रों के मानस दर्शन पर विशेष बल दिया जाता है।

चक्र धारणा के इस अभ्यास में सभी चक्रों को एक ही लाल रंग में देखते हैं। वे एक सुनहले वलय से घिरे रहते हैं, जो अलग-अलग प्रत्येक चक्र की शुद्धता एवं शक्ति के प्रतीक हैं। मानस दर्शन भी बीज मंत्रों के सहित ही होता है। एक मन्त्र के द्वारा प्रत्येक चक्र के मध्य एक मंत्र सम्बन्ध के प्रति सजग होना इस अभ्यास का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। हमने दो नये चक्रों, नासिकाग्र और बिन्दु का उपयोग किया है। बिन्दु तो उपचक्र है और नासिकाग्र मूलाधार का स्विच है। जिस प्रकार छत में लगे बल्ब को दीवाल पर लगे स्विच से जला देते हैं, उसी प्रकार नासिकाग्र के स्विच के द्वारा मूलाधार को जाग्रत करते हैं।

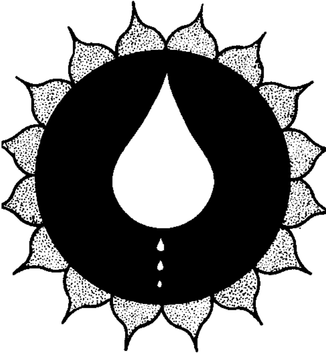
चक्र धारणा



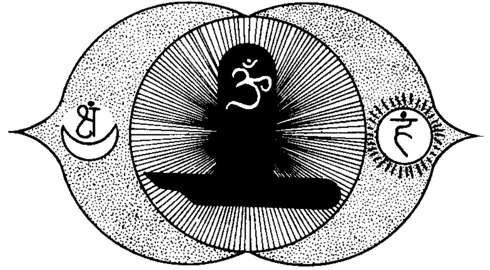
मूलाधार



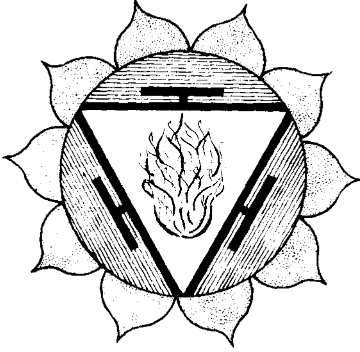
स्वाधिष्ठान



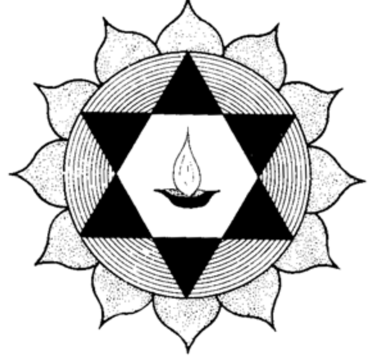
विशुद्धि



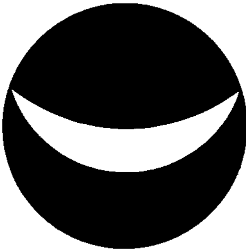
आज्ञा



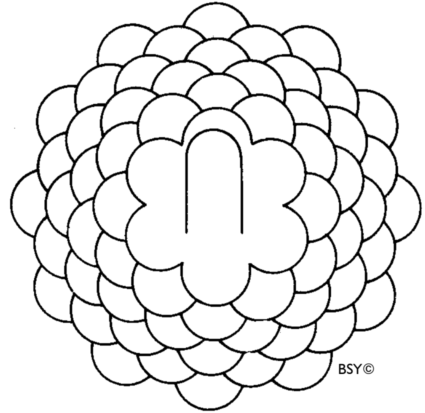
मणिपुर



अनाहत



बिन्दु



सहस्रार

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। आश्वस्त हो जाइये कि मेरुदण्ड लम्बवत् है और सिर सीधा है। आँखें बन्द कर लें। अपनी स्थिति को पुनर्व्यवस्थित कर लीजिये जिससे आप बिना असुविधा के कुछ देर तक बैठ सकें। शारीरिक रूप से पूर्ण आराम में बैठिये। एक बार सुव्यवस्थित हो जाने के बाद प्रयास रहे कि शरीर में कम से कम हलचल हो। अपने को शरीर में केन्द्रित कीजिये। अपनी चेतना को अपने अन्दर लाइये। बाह्य कोलाहल और विक्षेपों से अपने अवधान को वापस लाइये जिससे आन्तरिक शान्ति एवं स्थैर्य आ जाये।

अपने सम्पूर्ण शरीर का अवलोकन कीजिये और आश्वस्त हो जाइये कि सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर तनाव और कड़ेपन से मुक्त है। अपने मन को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाइये। प्रत्येक अंग, प्रत्येक जोड़, और प्रत्येक पेशी की जाँच कर लीजिये और आश्वस्त हो जाइये कि शारीरिक रूप से आप पूरे आराम में हैं।

अपने सम्पूर्ण शरीर को आन्तरिक रूप से देखिये और विश्रान्त कीजिये। अधिकतम शारीरिक सुविधा के प्रति सजग होइये, जिसका आप अनुभव कर सकते हैं। विश्रान्ति और शारीरिक विश्रान्ति के अनुभव में आन्तरिक व्यापकता के प्रति सजग होइये। मन को शारीरिक संरचना के अन्दर ले आइये। शरीर में सजगता है। शारीरिक संरचना के भीतर यह लघु ब्रह्माण्डीय अनुभूति अपने आप में एक अपरिमित अनुभव है।

द्वितीय चरण– अन्तराकाश

अपने सम्पूर्ण शरीर और शरीर के भीतर के आकाश के प्रति सजग हो जाइये। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में, अँगुलियों के अन्तिम पोरों तक व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। इस आकाश का मानस दर्शन कीजिये। ऐसा अनुभव कीजिये मानो यह पूरा शरीर एक खोखला ढाँचा हो। जब आप इस आकाश के प्रति सजग हो जाते हैं तब व्यापकता का भाव आता है। जब आप हवा के प्रति सजग होते हैं तो गति, हलचल का भाव आता है। शरीर के अन्दर ये दोनों भाव विद्यमान हैं। प्राणिक गति का अवलोकन कीजिये, शरीर में रंगों और ज्योतियों की गति, मन की गति का अवलोकन कीजिये। शरीर के

अन्दर नीरवता, शान्ति, और व्यापकत्व के प्रति सजग होइये, जो क्रमश: वायु और आकाश का प्रतीक है।

तृतीय चरण– मूलाधार धारणा

आन्तरिक आकाश में, जिसे आप देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, एक चार पँखुड़ियों वाले कमल का रूप उत्पन्न कीजिये। स्मरण रहे कि यह आन्तरिक आकाश है, जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, केवल चिदाकाश या हृदयाकाश नहीं है। किसी निश्चित स्थान पर आपको मूलाधार यंत्र की कल्पना नहीं करनी है। आप जिस आकाश को देख रहे हैं, उसमें चार पँखुड़ियों वाले कमल पुष्प की छवि विकसित कीजिये। इस छवि को छोटा कीजिये और इसे नीचे मूलाधार क्षेत्र में ले जाइये। मूलाधार क्षेत्र में इस चार पँखुड़ियों वाले कमल का अवलोकन कीजिये।

मूलाधार में लाल रंग के इस चार पँखुड़ियों वाले कमल पुष्प की सजगता को तीव्र कीजिये। देखिये कि इस लाल कमल के चारों ओर सुनहले प्रकाश का प्रभामण्डल है। पूर्ण सजगता एवं तीव्रता के साथ मूलाधार में धारणा कीजिये। मूलाधार के प्रतीक, लाल रंग के चार पँखुड़ियों वाले कमल पुष्प का मानसिक रूप से दर्शन कीजिये जो पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक है। इसका अवलोकन कीजिये। इसे देखिये और मूलाधार क्षेत्र में इसकी स्पष्ट छवि विकसित कीजिये।

एक बार जब मानसिक रूप से यह छवि प्रत्यक्ष बोध में आ जाती है, श्वास एवं प्रश्वास में मूलाधार के बीच मन्त्र 'लं' का जप कीजिये। 'लं' मन्त्र के जप के द्वारा मन को विभ्रान्त मत होने दीजिये। मन को सुनहले प्रभामण्डल से घिरे चार पँखुड़ियों वाले एक लाल कमल की मूलाधार छवि पर केन्द्रित रखिये। पूरक एवं रेचक के दौरान 'लं' मन्त्र के प्रत्येक उच्चारण के साथ मूलाधार की सजगता को तीव्र करते जाइये। अब मूलाधार के बीज मन्त्र 'लं' का जप बन्द कीजिये।

चतुर्थ चरण– स्वाधिष्ठान धारणा

अपने शरीर के आकाश में एक छ: पँखुड़ियों वाले कमल की छवि उत्पन्न कीजिये। छ: पँखुड़ियों वाले कमल को उत्पन्न कीजिये, जो लाल रंग का है। अब इसके पश्चात् इस छवि को छोटा कीजिये और स्वाधिष्ठान चक्र के क्षेत्र में इसे स्थापित कीजिये। स्वाधिष्ठान की अवस्थिति जननेन्द्रियों के ऊपर त्रिक (sacral) क्षेत्र में है। इसके प्रति सजग होइये। अब शरीर के आकाश

में दो फूल हैं, पर आप दूसरे पर धारणा कर रहे हैं जो छः पँखुड़ियों वाला लाल कमल है और सुनहले प्रकाश के प्रभामण्डल से घिरा है।

श्वास और मन्त्र द्वारा दोनों को सम्बन्धित कीजिये। श्वास लीजिये और मूलाधार के बीज मंत्र 'लं' का उच्चारण कीजिये। इसके पश्चात् निःश्वास कीजिये और स्वाधिष्ठान के बीज मन्त्र 'वं' का उच्चारण कीजिये। दोनों की ध्वनियों को एक समान ही देखने का प्रयास कीजिये, जिनका रंग, आकार और प्रकार एक समान है। अन्तर केवल पँखुड़ियों की संख्या में है– एक में चार और दूसरे में छः पँखुड़ियाँ हैं। दोनों लाल रंग के हैं और सुनहले प्रभामण्डल से घिरे हैं। श्वास लेने के समय 'लं' का उच्चारण करें और निःश्वास के समय 'वं' का।

पंचम् चरण– मणिपुर धारणा

अब बीज मन्त्रों का उच्चारण छोड़कर तीसरी छवि उत्पन्न कीजिये। एक दस दल वाले कमल की कल्पना कीजिये जो लाल रंग का ही है। शरीर के आकाश में दस दल वाले लाल कमल पुष्प को देखिये। दस पँखुड़ियों वाले इस लाल कमल की सजगता तीव्र कीजिये, दस पँखुड़ियों वाले इस लाल कमल के प्रति सजग होने के लिए निश्चित रूप से दसों पँखुड़ियों को एक-एक कर अलग-अलग देखिये। एक बार ऐसा कर लेने के पश्चात् इस कमल पुष्प को छोटा कीजिये और इसे मणिपुर क्षेत्र में ले चलिये। नाभि के पीछे मणिपुर क्षेत्र में यह लाल कमल स्वाधिष्ठान और मूलाधार स्थित कमलों के साथ ही दिखाई पड़ता है।

इन तीनों कमल पुष्पों को सुन्दर चमकीले लाल रंग में देखिये, जिनके चारों ओर सुनहला प्रभामण्डल है। फिर भी आप अन्य की अपेक्षा मणिपुर के प्रति अधिक तीव्रता से सजग हैं। श्वास लेने के समय मूलाधार में चेतना के साथ 'लं' मन्त्र का उच्चारण कीजिये। जैसे-जैसे चेतना श्वास के साथ ऊपर बढ़ती है और स्वाधिष्ठान के सामने आती है, 'वं' का उच्चारण कीजिये। श्वसन के अन्तिम चरण में जब चेतना मणिपुर में पहुँचती है, 'रं' का उच्चारण कीजिये। फिर प्रश्वास के साथ जब चेतना मणिपुर से नीचे उतरने लगती है, 'रं' का उच्चारण कीजिये। स्वाधिष्ठान में 'वं' का और मूलाधार में 'लं' का उच्चारण कीजिये। इस प्रकार श्वास लेने में आरोहण करते हुए 'लं, वं, रं' का उच्चारण कीजिये तथा निःश्वास में अवरोहण करते समय 'रं, वं, लं' का उच्चारण कीजिये। चक्रों के तीनों बीज मन्त्रों

को जोड़िये और समान दृष्टि रखिये। तीनों में एक ही रंग देखिये, सुनहले प्रभामण्डल से घिरा प्रभापूर्ण लाल कमल।

षष्ठ चरण– अनाहत धारणा

अब मन्त्र का उच्चारण बन्द कीजिये। आकाश में एक लाल रंग के द्वादश दल कमल की कल्पना कीजिये। आन्तरिक रूप से बारहों दलों को देखिये। प्रत्येक पँखुड़ी की एक-एक कर कल्पना कीजिये। एक बार जब द्वादश दल लाल कमल की स्पष्ट छवि विकसित हो जाती है तब उसे छोटा कीजिये। उस द्वादश दल कमल को अनाहत क्षेत्र में हृदय चक्र में स्थापित कीजिये। सभी चारों चक्रों को सम्बन्धित कीजिये। अनाहत का बीज मन्त्र है 'यं'। पूरक के साथ आरोहण करते हुए लं, वं, रं, यं का उच्चारण कीजिये। पुन: रेचक के साथ अवरोहण करते हुए यं, रं, वं, लं का उच्चारण कीजिये। बारी-बारी से प्रत्येक कमल को मानसिक रूप से देखिये।

सप्तम् चरण– विशुद्धि धारणा

अब मन्त्र उच्चारण बन्द कीजिये और शरीर के आकाश में दूसरी छवि उत्पन्न कीजिये। मानसिक रूप से सोलह पँखुड़ियों वाले लाल षोडश दल कमल को देखिये। प्रत्येक पँखुड़ी को पहचानिये और एक-एक के प्रति सजग होइये। अब छवि को छोटा कर विशुद्धि क्षेत्र में उसे स्थापित कीजिये। समस्त शरीर के आकाश में विशुद्धि पर लाल कमल पुष्प को देखिये, जो अन्य चक्रों में अवस्थित कमलों के समान ही रंग, आकृति और आकार का है। विशुद्धि का बीज मंत्र है 'हं'। सभी चक्रों को मंत्र और श्वास से जोड़िये। श्वास लेते और आरोहण करते समय 'लं, वं, रं, यं, हं' का उच्चारण कीजिये और नि:श्वास में अवरोहण करते समय 'हं, यं, रं, वं, लं' का उच्चारण कीजिये। सभी कमलों को अपने समुचित स्थान में देखिये। सबका रंग लाल है, और वे सभी अलग-अलग सुनहले प्रभामण्डल से घिरे हैं। अन्तर केवल पँखुड़ियों की संख्या में है। सभी श्वास और बीज मंत्रों के द्वारा जुड़े हैं।

अष्टम् चरण– नासिकाग्र दृष्टि

अब मन्त्र उच्चारण बन्द कीजिये। एक वृत्त की छवि उत्पन्न कीजिये, लाल वृत्त की। इस वृत्त के आकार को छोटा कीजिये और इसे अपने नासिकाग्र पर स्थापित कीजिये। नासिका के छोर पर अवस्थित लाल वृत्त पर धारणा कीजिये। शरीर के आकाश में लाल वृत्त पर पूर्ण एकाग्रता के साथ इसे

नाक के छोर पर देखिये। नासिकाग्र पर धारणा कीजिये। नासिकाग्र का बीज मन्त्र है 'सो'। श्वास लेते हुए आरोहण करते समय मानसिक रूप से क्रमशः 'लं, वं, रं, यं, हं सो' का उच्चारण कीजिये। निःश्वास में अवरोहण के समय 'सो, हं, यं, रं, वं, लं' का उच्चारण कीजिये।

नवम् चरण– आज्ञा धारणा

अब मन्त्र उच्चारण बन्द कीजिये। आकाश में एक दो दल वाले कमल पुष्प की छवि उत्पन्न कीजिये। दो दल वाले एक लाल कमल को मानसिक रूप से देखिये, जिसकी दोनों पँखुड़ियाँ एक-दूसरे को स्पर्श कर रही हैं। इस छवि का आकार छोटा कीजिये और इसे आज्ञा क्षेत्र में स्थापित कीजिये। आज्ञा का बीज मन्त्र 'ॐ' है। सभी चक्र मन्त्र और श्वास के द्वारा सम्बन्धित हैं। सभी लाल रंग के हैं और सुनहरे प्रभामण्डल से आवृत्त हैं। पूरक के साथ आरोहण करते हुए उच्चारण कीजिये 'लं, वं, रं, यं, हं, सो, ॐ' और रेचक के साथ अवरोहण करते समय उच्चारण कीजिये, 'ॐ, सो, हं, यं, रं, वं, लं'।

दशम् चरण– चक्र के मानस दर्शन के साथ ॐ उच्चारण

अब मन्त्रों का उच्चारण बन्द कीजिये। अपने अवधान को मूलाधार में संकेन्द्रित कीजिये तथा ॐ मन्त्र का उच्चारण करते जाइये। तत्पश्चात् अपना अवधान स्वाधिष्ठान में संकेन्द्रित कीजिये और ॐ का उच्चारण कीजिये। मणिपुर में आइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। सजगता को अनाहत में लाइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। विशुद्धि में आइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। नासिकाग्र पर आइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। आज्ञा के प्रति सजग होइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। अन्ततः बिन्दु में आइये और ॐ का उच्चारण कीजिये। अब सभी कमल पुष्पों को आकाश में विलीन कर दीजिये। समस्त शरीर में व्याप्त आकाश के प्रति सजग होइये।

एकादश चरण– अभ्यास का समापन

अब अभ्यास समाप्त करने की तैयारी कीजिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने शरीर के प्रति सजग होइये। भूमि पर पड़ रहे अपने शरीर के भार को अनुभव कीजिये। बाह्य वातावरण के प्रति सजग होइये। अपनी श्वास के प्रति सजग होइये। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलिये और शरीर को हिलाइये।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश चार

चक्र धारणा (ख)

जब साधक धारणा का अभ्यास शुरू करते हैं तो वे सदा उसी कठिनाई का सामना करते हैं। वे बार-बार एक बिन्दु पर धारणा करने का प्रयास करते हैं, परन्तु मन भटक जाता है। वे उसे वापस लाते हैं, पर वह पुनः भटक जाता है। इस प्रकार वे बारी-बारी से एकाग्रता और निरंकुशता की स्थिति में जूझते रहते हैं। पर वे धारणा की अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाते, क्योंकि वे लगातार मन से संघर्ष करते रहते हैं।

योग धारणा की समस्या को दूसरे ढंग से लेता है। सुषुम्ना नाड़ी के जागरण से धारणा का अवतरण होता है। सुषुम्ना आध्यात्मिक शक्ति की वाहिका है, जो मेरुदण्ड के ढाँचे में प्रवाहित होती है। यह मूलाधार पिण्ड में अवस्थित प्रथम अतीन्द्रिय चक्र, मूलाधार से प्रारम्भ होती है और सीधे अन्य चक्रों से होती हुई कपाल के शीर्ष पर अवस्थित सहस्रार चक्र तक प्रवाहित होती है।

मनुष्य में सुषुम्ना सर्वाधिक शक्तिशाली ऊर्जा प्रवाह है। यह अभौतिक, नितान्त अनुभवातीत, निराकार प्रवाह है। यह ब्रह्माण्डीय अस्तित्व, दिव्यावस्था की प्रतिमूर्त्ति है। सामान्य रूप से सुषुम्ना सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है, और इसे सुषुप्त नाड़ी कहते भी हैं। एक बार जब सुषुम्ना जाग्रत हो जाती है, तब आपको धारणा के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। यह सहज प्रक्रिया हो जाती है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड सीधा और सिर सीधा कर ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हथेलियों को ज्ञान या चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। ओंठ

और आँखें कोमलता से, पर दृढ़ता से बन्द रहें, उनमें न कसाव रहे और न ढीलापन। कुछ क्षणों तक मानसिक रूप से अपने शरीर की स्थिति का अवलोकन कीजिये। आप इसके प्रति सजग हो जाइये कि आप कैसे बैठे हैं। पैरों, पैर की अँगुलियों, घुटनों, जांघों, हाथ की अँगुलियों, हथेली, भुजा, पीठ, धड़, गरदन, कन्धों और सिर की स्थिति का अवलोकन कीजिये। अपनी एक मानसिक छवि बनाइये।

मानसिक रूप से कल्पना कीजिये कि आप एक आदमकद दर्पण के सामने बैठे हैं और उसमें आपका शरीर प्रतिबिम्बित हो रहा है। दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखने का प्रयास कीजिये। शरीर की पूर्ण सजगता रहे जो दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है। आप अपना प्रतिबिम्ब देख रहे हैं। प्रतिबिम्ब में अपनी स्थिति के प्रति, जिस आसन में आप अभी बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। आपने जो वस्त्र पहने हैं, प्रतिबिम्ब में उनके प्रति भी सजग होइये। यह ऐसा ही है मानो आप आदमकद दर्पण के सामने बैठ कर अपने को खुली आँखों से देख रहे हों।

द्वितीय चरण– चिदाकाश की सजगता

अब अपनी चेतना को चिदाकाश में लाइये। चिदाकाश में अन्धकार, काले आसमान के प्रति सजग होइये। सम्पूर्ण सिर में चिदाकाश का अनुभव कीजिये। चिदाकाश की, आन्तरिक आकाश की, जो आपके ऊपर है, नीचे है, पीछे है, आगे है, बगल में है, पूर्ण सजगता रहे। शून्य आसमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। चिदाकाश का अवलोकन करने में आप हल्के रंगों, मन्द प्रकाशों, छायाओं, चित्रों और आकृतियों की अभिव्यक्तियाँ देखेंगे। आप अनेक रंग, प्रकाश, और छायायें देखेंगे, जो लगातार चलती-फिरती और आपस में विलीन होती जाती हैं। एकाग्रता और सजगता को तीव्र करते जाइये। आपको चिदाकाश के अनुभव का, रंगों, प्रकाशों, छायाओं, चित्रों और रूपों की अभिव्यक्ति का अवलोकन करना है। ये आन्तरिक हलचल की अभिव्यक्तियाँ हैं। इनका अवलोकन कीजिये। आपको किसी चीज का विश्लेषण करने का प्रयास नहीं करना है, केवल उन्हें देखिये। सम्पूर्ण शरीर में क्रमश: चिदाकाश की शून्यता की भावना एवं विशाल आकाश के अनुभव की सजगता विकसित कीजिये।

कल्पना करने का प्रयास कीजिये कि अन्तरिक्ष-यात्रा में अन्तरिक्ष यात्री कैसा अनुभव करता है। उसके चारों ओर घना अन्धकार रहता है और उस अन्धेरे में वह विभिन्न रंगों, आकारों और रूपों में तारों को जगमगाते देखता है। आपको वैसा ही अनुभव विकसित करना है। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश का अनुभव कीजिये। चेतना का एक भाग आकाश का अनुभव करे और दूसरा भाग उस अनुभव को देखे। तटस्थ भाव से अनुभव का अवलोकन करते जाइये, संवेदनाओं का अवलोकन करते जाइये।

तृतीय चरण– सुषुम्ना दर्शन

सिर के शीर्ष भाग में सजगता रखते हुए वहाँ से नीचे अपने शरीर के अन्दर देखिये। पैर की अँगुलियों तक, हाथ की अँगुलियों तक देखिये। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त सजगता को देखिये। अपनी सजगता को पैर की अँगुलियों में ले जाइये और वहाँ से ऊपर देखिये। ऊपर देखते हुए आकाश का अनुभव कीजिये। अब अपनी सजगता को हाथ की अँगुलियों के अन्तिम पोर तक ले जाइये और वहाँ से अपने चारों ओर अवस्थित आकाश को देखिये। उसी तरह का अनुभव, उसी तरह का बोध जैसा अनुभव आपको रात में होता है। जब आँखें बन्द रहती हैं, बत्तियाँ बुझी रहती हैं और खिड़कियों के पर्दे भी गिरे रहते हैं। घुप अन्धकार की सजगता है। चेतना का एक भाग घने अंधकार का अनुभव करता है, और दूसरा भाग उस अनुभव का अवलोकन करता है। दोनों साथ-साथ हों।

अब अपनी चेतना को कपाल शीर्ष में ले जाइये, और वहाँ से नीचे सुषुम्ना पथ में देखिये जो मेरुरज्जु के मध्य में अवस्थित है। जब आप सुषुम्ना में देखते हैं तो उसके साथ उसमें अवस्थित छः प्रकाश बिन्दुओं को देखिये। यदि आप स्पष्टता से देख सकें तो पहला प्रकाश बिन्दु मेरुरज्जु के निम्न भाग में मूलाधार पिण्ड पर, जहाँ से सुषुम्ना का प्रारम्भ होता है, अवस्थित है। दूसरा प्रकाश बिन्दु पहले के ठीक ऊपर सुषुम्ना में है जहाँ त्रिक (सैक्रल) और अन्नुत्रिक (कॉकिक्स) अस्थियाँ मिलती हैं। तीसरा बिन्दु नाभि के पीछे मेरुदण्ड के कटि क्षेत्र में सुषुम्ना में है। चौथा प्रकाश बिन्दु हृदय के पीछे मेरुदण्ड के वक्षीय क्षेत्र में सुषुम्ना में है। पाँचवाँ प्रकाश बिन्दु कण्ठकूप के पीछे ग्रीवा क्षेत्र में सुषुम्ना में अवस्थित है। छठा प्रकाश बिन्दु मेरुदण्ड के शीर्ष पर सुषुम्ना में अवस्थित है, जो कपाल के मध्य में भ्रू-मध्य के ठीक पीछे है। सातवाँ सिर के उच्चतम क्षेत्र में सुषुम्ना के शीर्ष पर है।

चतुर्थ चरण– चक्र और रंग का मानस दर्शन

आपकी सजगता विभिन्न प्रकाश बिन्दुओं के ऊपर है और आप नीचे की ओर देख रहे हैं। वे अत्यन्त नन्हें तारों के समान हैं, मानो आसमान में टँके हुए हैं। आप उन्हें आन्तरिक रूप से देख रहे हैं। उनका अवलोकन कीजिये। सुषुम्ना को एक प्रदीप्त सुनहले धागे के सदृश देखिये, जो नीचे से ऊपर तक सभी प्रकाश बिन्दुओं को जोड़ता है, मानो एक धागे में मोती पिरोये हुए हैं। चेतना का वह भाग जो इसे देख रहा है किसी भी दिशा में जा सकता है। चेतना के उस भाग को एकदम नीचे प्रथम प्रकाश बिन्दु, मूलाधार चक्र पर ले जाइये और उसे सामने से देखिये। जब आप प्रथम प्रकाश बिन्दु केन्द्र मूलाधार चक्र को देखते हैं, उसी समय अपने ऊपर के अन्य प्रकाश-बिन्दुओं के प्रति भी सजग होइये। अपनी चेतना को एकदम नीचे ले जाइये और प्रथम प्रकाश बिन्दु को देखिये। अपने चतुर्दिक आकाश को देखिये। आपकी चेतना जो अवलोकन कर रही है, वही सूक्ष्म आत्मा है। जो बिन्दु आप देख रहे हैं वह सूक्ष्म आकाश है।

प्रकाश बिन्दु में गहरे उतरिये और रंग की अनुभूति उत्पन्न कीजिये। जैसे ही चेतना मूलाधार क्षेत्र के उस प्रकाश बिन्दु में प्रवेश करती है, रंग बदल जाता है। सारा आकाश लाल हो जाता है। लाल रंग से भरे सम्पूर्ण आकाश को देखिये। लाल रंग के साथ एक रिक्तता का भाव भी रहता है। सम्पूर्ण संरचना में व्याप्त गहरे लाल रंग को देखिये।

अब सजगता को प्रथम प्रकाश बिन्दु से खींच कर दूसरे पर लाइये। जैसे ही आप मूलाधार के प्रकाश से बाहर आते हैं, लाल रंग विलीन हो जाता है। आकाश फिर काला हो जाता है। अपनी सजगता को दूसरे प्रकाश बिन्दु पर ले चलिये, जो स्वाधिष्ठान चक्र के स्तर अनुत्रिक (coccyx) में है। इस बिन्दु का अवलोकन कीजिये। जैसे ही आपकी चेतना इस प्रकाश में पहुँचती है, रंग सिन्दूरी हो जाता है। अपनी सजगता को तीव्र कीजिये और समस्त आकाश में सिन्दूरी रंग को व्याप्त देखिये।

अब दूसरे प्रकाश बिन्दु से निकलिये। जैसे-जैसे आप अपनी चेतना को लौटाते हैं, सिन्दूरी रंग विलीन होने लगता है और आन्तरिक आकाश के अन्धकार में विलुप्त हो जाता है। अपनी सजगता को नाभि के पीछे, मणिपुर क्षेत्र में तीसरे प्रकाश बिन्दु के स्तर पर लाइये। जैसे-जैसे आप मणिपुर के प्रकाश में प्रवेश करते हैं, रंग सुनहला होता जाता है, अग्नि

की लपटों के समान, अग्नि की प्रकृति के समान। समस्त आकाश को सुनहले पीले रंग से व्याप्त देखिये।

जब मणिपुर प्रकाश से वापस होते हैं तो सुनहला पीला रंग विलुप्त होने लगता है, और आन्तरिक आकाश के अन्धकार में विलीन हो जाता है। अपनी सजगता को हृदय के पीछे अनाहत चक्र पर चौथे प्रकाश बिन्दु के स्तर पर ले चलिये। जैसे-जैसे आप अनाहत प्रकाश में प्रवेश करते हैं, आकाश का रंग आसमानी नीला हो जाता है। आसमानी नीले रंग से व्याप्त आकाश की कल्पना कीजिये।

जैसे-जैसे आप अनाहत प्रकाश से निकलते हैं, हल्का नीला रंग आन्तरिक आकाश के अन्धकार में घुलने लगता है और समाप्त हो जाता है। कण्ठ के पीछे विशुद्धि स्तर पर पाँचवें प्रकाश बिन्दु में अपनी सजगता को ले चलिये। इस बिन्दु का अवलोकन कीजिये, आकाश का रंग नील लोहित हो रहा है। समस्त आकाश नील लोहित, बैगनी रंग से भरा है, ऐसी कल्पना कीजिये।

विशुद्धि प्रकाश बिन्दु से अपनी सजगता को वापस करते समय नील लोहित रंग को धूमिल होता और अन्तराकाश के अन्धकार में विलीन होता देखिए। मस्तिष्क के मध्य में आज्ञा चक्र के स्तर पर छठे प्रकाश बिन्दु पर अपनी सजगता को ले चलिये। इस प्रकाश में आप जैसे ही प्रवेश करते हैं, रंग रूपहला हो जाता है। समस्त आकाश में व्याप्त रूपहले प्रकाश की कल्पना कीजिये।

जैसे ही आप आज्ञा से निकलते हैं, रूपहला रंग विलीन होने लगता और चिदाकाश के अन्धकार में विलुप्त हो जाता है। कपाल शीर्ष में सहस्रार स्तर पर सातवें प्रकाश बिन्दु में अपनी सजगता को ले चलिये। यहाँ आकाश का रंग श्वेत हो जाता है। कल्पना कीजिये कि समस्त आकाश चमकीले श्वेत प्रकाश से भर गया है। यथासंभव जितनी देर हो सके इस सजगता को बनाये रखिये।

पंचम चरण– सहज चक्र दर्शन

जैसे ही सजगता सहस्रार से बाहर आती है, सातों प्रकाश बिन्दुओं को एक धागे में पिरोये, रजत-नील प्रकाश विकीर्ण करते रत्नों की तरह देखिये। अब अपने मन को स्वत: किसी एक प्रकाश बिन्दु पर जाने दीजिये, चाहे मूलाधार हो, अनाहत हो, आज्ञा हो, स्वाधिष्ठान हो,

मणिपुर हो या विशुद्धि हो। इससे कोई तात्पर्य नहीं कि मन कहाँ जाता है, आपको उसे सावधानीपूर्वक देखना है।

मन को अपनी दिशा में किसी प्रकाश बिन्दु की ओर, जहाँ वह स्वाभाविक रूप में आकृष्ट हो, जाने दें। मन सहज रूप में जिस प्रकाश बिन्दु की ओर जाता है उस प्रकाश बिन्दु का अवलोकन कीजिये। उस प्रकाश बिन्दु के स्रोत में जाने का प्रयास कीजिये। उस बिन्दु की नाभि में जाइये। प्रकाश की नाभि में अपनी वह छवि देखिये, जैसे आप हैं। उस चक्र को, उस प्रकाश बिन्दु को स्वीकार कीजिये जहाँ आपकी सजगता सहज रूप में जाती है। मन जहाँ भी जाता है, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, या सहस्रार, उसे मात्र स्वीकार कीजिये। मन जहाँ भी जाता है, बिना निर्देश के, बिना प्रयास के जहाँ भी वह स्वाभाविक रूप से आकृष्ट होता है, उस बिन्दु पर जाइये और उसे स्वीकार कीजिये।

षष्ठ चरण– चक्र दर्शन के साथ 'ॐ' उच्चारण

सभी प्रकाश बिन्दुओं को देखिये। सभी चक्रों और सभी प्रकाश बिन्दुओं को एक साथ देखिये। अपने चतुर्दिक आकाश का अनुभव कीजिये। अपने चारों ओर शून्यता का और आकाश में प्रकाश बिन्दुओं के रूप में चक्रों का अनुभव कीजिये। अब ॐ का उच्चारण कीजिये, और जिस समय आप ॐ का उच्चारण करते हैं, आपकी चेतना का वह अंश जो अवलोकन कर रहा है, रुक कर सभी चक्रों में ॐ के स्पन्दन को देखे। जब आप उच्चारण करते हैं, विभिन्न चक्र, विभिन्न प्रकाश बिन्दु अपने प्राणों से स्पन्दित होंगे। इस सजगता का विकास कीजिये। इस स्पन्दन, धड़कन के अनुभव का विकास कीजिये। वे अधिक चमकीले हो जायेंगे, जगमगाना प्रारम्भ करेंगे। चक्रों की स्पन्दित धड़कन को अनुभव कीजिये। सावधान हो जाइये। श्वास लीजिये और ॐ का उच्चारण कीजिये। प्रकाश के सूक्ष्म बिन्दुओं से स्पन्दन, धड़कन, ॐ उच्चारण की ध्वनि का अनुभव कीजिये। ॐ ॐ ॐ ॐ देखते जाइये। ॐ ॐ ॐ।

सप्तम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब अभ्यास बन्द कीजिये और अपनी चेतना को बहिर्मुखी बनाइये। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त अन्तराकाश के प्रति सजग बनिये। ध्यान के आसन में बैठे अपने शरीर का अनुभव कीजिये। बाह्य

वातावरण, बाह्य ध्वनि, अपने आस-पास के व्यक्तियों, विभिन्न वस्तुओं के प्रति सजग होइये। जब आप बाह्य वातावरण के प्रति पूर्णत: सजग हो जायें तब अपने शरीर में धीरे-धीरे हलचल कीजिये और अपनी आँखें खोल लीजिये।

अभ्यास टिप्पणी– पाँचवें चरण में इस बात को देखना होगा कि आपका मन स्वाभाविक रूप से जिस चक्र की ओर आकृष्ट होता है वह उस स्तर को निर्दिष्ट करता है जहाँ पर आप अधिक आसानी से अपने को अभिव्यक्त कर सकते हैं। चक्र के इस गुरुत्वाकर्षी प्रभाव के द्वारा व्यक्तित्व की नैसर्गिक और स्वाभाविक विशेषता का पता चलता है। तथापि इस स्तर का कोई उपयोग नहीं होना चाहिए। जिस चक्र पर आपकी सजगता स्वाभाविक रूप से केन्द्रित होती है, वह आपके स्वाभाविक झुकाव को दर्शाता है, जो अभी सक्रिय है और अपने को अभिव्यक्त कर रहा है।

जहाँ भी अवधान जाता है वही सही चक्र है। चयन करने या समीक्षा करने का प्रयास मत कीजिये। कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, क्योंकि वहीं आप हैं, और उसी क्षमता से आप चीजों का अनुभव करते हैं। एक चक्र में सक्रिय क्षमता से ही आप सुख या दु:ख को देखते हैं, उनका अनुभव करते हैं। यदि आप अनाहत में केन्द्रित हैं, और बड़ी पीड़ा का अनुभव करते हैं तो इसका तात्पर्य है कि यह अनाहत की क्षमता है जो सक्रिय है, और जो आपको पीड़ा का अनुभव करा रही है। यदि मूलाधार वह अनुभव देता है तो वह मूलाधार की क्षमता है। इस प्रकार आप जानिये कि उस चक्र को विकसित करने का प्रयास करना आवश्यक होता है।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश पाँच

चक्र धारणा (ग)

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

सिर और मेरुदण्ड सीधा रखते हुए ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हथेलियों को घुटनों पर ज्ञान या चिन्मुद्रा में रखिये। आँखें बन्द कीजिये और सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कर लीजिये। आन्तरिक रूप से सम्पूर्ण शरीर की सजगता विकसित कीजिये और सभी अंगों को विश्रान्त कर लीजिये। अपने आसन के प्रति भी सजग हो जाइये। जैसे ही आप शरीर की सजगता विकसित करेंगे, अन्दर से निश्चलता, निश्चेष्टता और नीरवता के भाव को प्रकट होता हुआ पायेंगे। शारीरिक निश्चलता के प्रति सजग होइये। अपने बाहर चारों तरफ और अपने अंदर नीरवता का अवलोकन कीजिये। पूरा शरीर एक प्रतिमा की तरह पूर्णतया निश्चेष्ट है। शरीर पूर्णतया निश्चल और निश्चेष्ट है। सम्पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक संरचना में व्याप्त निश्चेष्टता और नीरवता की भावना के प्रति सजग होइये। किसी भी शारीरिक अनुभव से तादात्म्य मत स्थापित कीजिये। दु:ख-सुख, सुविधा-असुविधा का कोई अनुभव आपके अन्दर की नीरवता और निश्चेष्टता के भावों का दमन नहीं करे। शरीर और शरीर के अनुभवों, मन और मन के अनुभवों से अपने को पूर्ण रूप से अलग कर लीजिये।

द्वितीय चरण– वायु स्तम्भ

अब शरीर के अन्दर वायु स्तम्भ के रूप में अपनी श्वास के प्रति सजग होइये, जो मणिपुर से आज्ञा तक विस्तृत है। पूरक और रेचक के समय आपकी चेतना इस स्तम्भ में आरोहण और अवरोहण करती है। पूरक करते

समय चेतना मणिपुर से आज्ञा तक ऊपर जाती है और रेचक करते समय आज्ञा से मणिपुर तक नीचे जाती है।

किसी शारीरिक हलचल के प्रति सजग मत होइये। मणिपुर से आज्ञा तक और आज्ञा से मणिपुर तक इस वायु स्तम्भ के साथ-साथ चेतना के क्रमश: आरोहण और अवरोहण का अवलोकन कीजिये।

तृतीय चरण– मूलाधार मण्डल

अपने समस्त अस्तित्व में व्याप्त विशाल आन्तरिक आकाश के प्रति सजग होइये। स्थूलाकाश, शरीर के आकाश का अनुभव कीजिये। आपके सम्पूर्ण शरीर में जो आकाश व्याप्त है उसकी सजगता विकसित कीजिये। इस आकाश में एक बड़े, पीले चौकोर टुकड़े की कल्पना कीजिये। शरीर के आकाश में चौकोर टुकड़े के पीले रंग और उसकी बहि:रेखा को देखने का प्रयास कीजिये। चौकोर टुकड़ा विशाल और भारी है, जो पृथ्वी का प्रतीक है। पृथ्वी के कम्पन के प्रति सजग होइये। पीले चौकोर के मानस दर्शन के साथ-साथ पृथ्वी तत्त्व का अनुभव कीजिये एवं उसकी गंध लीजिये। ऊर्जा की एक आकार में अभिव्यक्ति होने से, यहाँ प्राण अधिकतम सघन होता है।

पीले चौकोर के भीतर एक अधोमुखी लाल त्रिभुज है, जो शक्ति या सर्जनात्मक सामर्थ्य का प्रतीक है। शरीर के आकाश में एक लाल त्रिभुज को देखिये, जो पीले वर्ग से घिरा हुआ है। लाल त्रिभुज के अन्दर एक धूम्रवर्णी धूसर शिवलिंग, धूमलिंग है, जिसके चारों ओर सोयी हुई सर्पिणी तीन कुण्डल मारे हुई है। यह सुषुप्त सर्पिणी, सुषुप्त कुण्डलिनी या आध्यात्मिक शक्ति को प्रस्तुत करती है। एक पीले वर्ग के अन्दर अधोमुखी लाल त्रिकोण में धूम्रवर्णी शिवलिंग के साथ-साथ कुण्डली मारे सर्पिणी को देखिये।

इस मण्डल से सम्बन्धित एक ध्वनि, बीज मन्त्र है लम्। सम्पूर्ण मण्डल का मानस दर्शन कीजिये और मानसिक रूप से बीज मन्त्र को दुहराइये लं, लं, लं। विशाल पीले वर्ग को देखिये। उसके अन्दर एक अधोमुखी लाल त्रिकोण को देखिये। त्रिकोण के अन्दर धूम्रवर्णी धूसर शिवलिंग को देखिये, जिसमें एक सर्पिणी तीन कुण्डली मारे हुई है। जब आप सम्पूर्ण मण्डल को देखने में समर्थ हो जाते हैं, तब उसे छोटा कीजिये और दहराकाश के भीतर मूलाधार क्षेत्र में नाभि एवं मूत्र नली के बीच चक्र पर उसे स्थापित कीजिये।

चतुर्थ चरण– स्वाधिष्ठान मण्डल

पुनः स्थूलाकाश के प्रति सजग होइये। समस्त शरीराकाश में व्याप्त एक विशाल श्वेत बालचन्द्र की कल्पना कीजिये। बालचन्द्र के अंदर तारों से प्रकाशित अन्धेरी रात में सागर की लहरों को देखिये। अन्धेरी रात में सागर की लहरें अचेतन पहलू एवं घोर निद्रा के क्षेत्र की प्रतीक हैं। यहाँ भी सागर की गहराइयों में कर्माशय, कर्मों का भण्डार है। स्थूलाकाश के भीतर, सम्पूर्ण शरीराकाश में स्वाधिष्ठान मण्डल का स्पष्ट रूप से मानस दर्शन कीजिये।

इस मण्डल के साथ सम्बन्धित ध्वनि, बीज मन्त्र वम् है। आकाश में लटक रहे श्वेत बालचन्द्र को देखिये और बीज मन्त्र को दुहराइये वं, वं, वं। जल तत्त्व के प्रति, उसकी तरलता के प्रति सजग होइये। बालचन्द्र के भीतर तारों से प्रकाशित अन्धेरी रात में सागर की लहरों को देखिये। जब आप सम्पूर्ण मण्डल को एक साथ मानसिक रूप से देखने में समर्थ हो जाते हैं तब उसे छोटा कीजिये और दहराकाश में, त्रिक में, स्वाधिष्ठान क्षेत्र में स्थापित कीजिये।

पंचम चरण– मणिपुर मण्डल

पुनः अपनी सजगता स्थूलाकाश में ले आइये। आन्तरिक आकाश के अन्दर मणिपुर मण्डल का मानस दर्शन कीजिये। एक विशाल आग के समान लाल अधोमुखी त्रिकोण देखिये जो तीनों ओर से काले भूपुर से घिरा है। इस मण्डल का अग्निमान स्पन्दन देखिये। त्रिकोण के मध्य में आग का एक दहकता हुआ गोला है, जो सौर शक्ति के रूप में प्राण केन्द्र का प्रतीक है। काले भूपुर से घिरे अधोमुखी लाल त्रिकोण के मध्य में प्रज्वलित अग्नि पिण्ड को देखिये। इस मण्डल से उत्पन्न ऊर्जा, ऊष्मा, तथा प्रकाश का अनुभव कीजिये।

इस मण्डल से सम्बन्धित ध्वनि, बीज मन्त्र है 'रम्'। मणिपुर मण्डल का मानस दर्शन कीजिये और रं, रं, रं मन्त्र का उच्चारण कीजिये। जब सम्पूर्ण मण्डल को स्पष्टता से देखने लगें तब उसे छोटा बनाइये और दहराकाश में नाभि के पीछे मणिपुर क्षेत्र में स्थापित कीजिये।

षष्ठ चरण– दहराकाश मण्डल

अब दहराकाश में धारणा करते हुए समस्त मूलाधार मण्डल को साफ एवं सुस्पष्ट रूप से देखने का प्रयास कीजिये। बीज मन्त्र को दुहराइये–

लं, लं, लं। तदुपरांत स्वाधिष्ठान मण्डल को देखिये और बीज मन्त्र दुहराइये– वं, वं, वं। पुनः मणिपुर मण्डल को देखिये और उसका बीज मन्त्र दुहराइये– रं, रं, रं। अन्तः श्वसन करते हुए लं वं रं एवं श्वास छोड़ते हुए रं वं लं बीज मंत्रों का मानस उच्चारण कीजिये।

मूलाधार और स्वाधिष्ठान को साथ-साथ देखने का यत्न कीजिये। जब यह सुनिश्चित हो जाये तो स्वाधिष्ठान और मणिपुर को एक साथ देखिये। अन्त में तीनों, मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर को उनके अपने सुनिश्चित स्थानों में एक साथ एक ही दृष्टि में देखिये।

सप्तम् चरण– अनाहत मण्डल

पुनः सम्पूर्ण शरीर-आकाश के प्रति सजग होइये। स्थूलाकाश के भीतर अनाहत मण्डल की कल्पना कीजिये। दो अन्तर्ग्रथित त्रिकोणों से निर्मित नीले आसमानी रंग का एक षट्भुज जैसा प्रतीक देखिये। दो अन्तर्ग्रथित त्रिभुजों को एक षट्भुज बनाते देखिये। उनका रंग नीला आसमानी है। षट्भुज के भीतर एक छोटा-सा चमकीला प्रकाश बिन्दु है। यह शाश्वत, अजन्मा, और अमर स्पन्दन का स्रोत है। आपके अन्दर जो लघु ब्रह्माण्ड है उसके प्रत्येक भाग में यात्रा कर रही तरंगों के स्पंदन को अनुभव करने का प्रयास कीजिये। प्रकाश के स्रोत से आपके अन्दर के समस्त लघु ब्रह्माण्ड तक यात्रा कर रही स्पन्द उर्मियों को अनुभव करने, महसूस करने का प्रयास कीजिये, जो सूक्ष्म और गहरी हैं।

पूर्ण निश्चलता एवं नीरवता के भाव के मध्य आपके लघु ब्रह्माण्ड में उर्मियों का स्पन्द, स्पन्दों का विस्तार वायु तत्त्व को प्रस्तुत करता है। मण्डल षट्भुजाकार है। दो अन्तर्ग्रथित त्रिभुजों को देखिये, जिनका रंग नीला आसमानी है। षट्भुज के केन्द्र पर एक छोटा अतिदीप्त प्रकाश बिन्दु है। मन की पूर्ण तीव्रता के साथ उसे देखिये। अनाहत का एकोन्मुख सजगता के साथ अवलोकन कीजिये।

जीवन के इसी स्पन्द से, इसी स्रोत से, हमारे जीवन में सभी सूक्ष्म कार्य-कलापों का जन्म होता है। वायु तत्त्व मन से सम्बन्धित है। लहरों के रूप में मन के भीतर विचारों का अनुभव होता है। मन में लहरों, उर्मियों की भाँति अपनी अभिलाषाओं की अनुभूति होती है। भावनाओं की अनुभूति लहरों के समान मन में होती है। किसी में तीव्रता अन्यों से अधिक होती है। कुछ में तीव्रता कम होती है, परन्तु सभी की उत्पत्ति इसी प्रकाश बिन्दु

से होती है।जीवन के स्पन्दन के प्रति सजग होइये। यह शाश्वत स्पन्द है, यही अनहद नाद है। इसी स्पन्द से सम्बन्धित एक ध्वनि भी है। इसका बीज मन्त्र यम् है। अनाहत मण्डल का मानस दर्शन कीजिये और यं, यं, यं बीज मन्त्रों को दुहराइये।

अष्टम् चरण– विशुद्धि मण्डल

अब क्रमश: अपनी सजगता को अनाहत की धारणा से हटाइये और विशुद्धि क्षेत्र में ले आइये। विशुद्धि क्षेत्र में, हृदयाकाश और चिदाकाश की सीमा पर एक श्वेत वृत्त देखिये। एक सादा श्वेत वृत्त देखिये। यह श्वेत वृत्त विशुद्धि का मण्डल है। विशुद्धि का अर्थ है 'शुद्ध'। आकाश के प्रतीक श्वेत वृत्त की सजगता विकसित कीजिये। श्वेत वृत्त के प्रति पूर्ण सजगता विकसित कीजिये। आकाश की शुद्धता, आकाश के विस्तार के प्रति सजग होइये। अन्य तत्त्वों की अभिव्यक्ति के आधार के रूप में आकाश के प्रति सजग होइये।

आकाश तत्त्व या विशुद्धि से सम्बन्धित एक ध्वनि-स्पन्द होता है, वह ध्वनि हम् है। श्वेत वृत्त का मानस दर्शन कीजिये और हं, हं, हं दुहराइये।

नवम् चरण– आज्ञा मण्डल

अब अपना मन एवं ध्यान विशुद्धि से हटा लीजिये और पुन: उसे चिदाकाश में ले आइये। चिदाकाश में एक आबनूसी काले चमकीले शिवलिंग को देखिये जिस पर एक सफेद 'ॐ' बना हुआ है। लिंगम् की दाहिनी ओर सूर्य और बायीं ओर चन्द्रमा है। चमकीला काला शिवलिंग मन का, सूक्ष्म मन का, उच्चतर मन के तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है। सूर्य और चन्द्रमा पिंगला और इड़ा के मिलन को प्रस्तुत करते हैं तथा उनका विलय सुषुम्ना है। इस बिन्दु से आगे द्वैत की, अहम् की या निम्नतर मन की सजगता नहीं रहती है।

चिदाकाश में आज्ञा मण्डल पर अपनी समग्र सजगता को संकेन्द्रित कीजिये। इससे सम्बद्ध ध्वनि है, मन्त्र 'ॐ'। चमकीले काले शिवलिंग को देखिये। उसके ऊपर उजले 'ॐ' को स्पष्ट रूप से देखिये और उच्चारण कीजिये– ॐ ॐ ॐ।

मन:तत्त्व, सूक्ष्म मन, उच्चतर मन के प्रति सजग होइये। इसकी सूक्ष्म सजगता का अनुभव कीजिये, जिसका अन्य सभी पर शासन है, नियंत्रण है।

दशम् चरण– हृदयाकाश और चिदाकाश

अब आज्ञा मण्डल से अपनी सजगता को हटाइये। हृदय के पीछे हृदयाकाश के केन्द्र पर अनाहत मण्डल की कल्पना कीजिये। अनाहत मण्डल को उसकी समग्रता में देखिये और दुहराइये– यं, यं, यं। इसके बाद कण्ठकूप के पीछे हृदयाकाश और चिदाकाश के बीच विशुद्धि मण्डल का मानस दर्शन कीजिये और हं, हं, हं मन्त्र दुहराइये। फिर चिदाकाश में आज्ञा मण्डल को देखिये जो भ्रू-मध्य के पीछे है और ॐ ॐ ॐ मन्त्र को दुहराइये। श्वास लेते हुए– यं हं ॐ तथा श्वास छोड़ते हुए ॐ हं यं मंत्रों को दोहराइये।

अनाहत और विशुद्धि मण्डल का एक साथ मानस दर्शन कीजिये। जब यह सिद्ध हो जाये तब विशुद्धि और आज्ञा मण्डलों को एक साथ देखिये। अन्त में तीनों मण्डलों– अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा को एक साथ, एक ही दृष्टि में, एक झलक में स्पष्ट रूप से देखिये।

एकादश चरण– चक्र मण्डल दर्शन

अब बारी-बारी से प्रत्येक चक्र मण्डल का मानस दर्शन कीजिये तथा उसके बीज मंत्र को दोहराइये। चक्रों को क्रमश: देखते हुए मूलाधार में लं, स्वाधिष्ठान में वं, मणिपुर में रं, अनाहत में यं, विशुद्धि में हं तथा आज्ञा में ॐ बीज मन्त्रों को दोहराइये।

मूलाधार और स्वाधिष्ठान का एक साथ मानस दर्शन कीजिये। तत्पश्चात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान और मणिपुर को एक साथ देखिये। अब मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर और अनाहत को एक साथ देखिये। अब मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत और विशुद्धि को एक साथ देखिये। अन्त में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा को एक ही दृष्टि में, एक बार में स्पष्ट रूप से देखिये। चक्र मण्डल का दृश्य जितनी अधिक देर तक संभव हो बनाये रखिये।

द्वादश चरण– अभ्यास का समापन

जब चक्रों का दृश्य विलीन होने लगे तब अपनी सजगता को अन्तराकाश में ले आइये। सिर से पैर तक सम्पूर्ण स्थूलाकाश का अनुभव कीजिये। ध्यान के आसन में निश्चल बैठे अपने स्थूल शरीर का अनुभव कीजिये। जिस कक्ष में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। बाह्य ध्वनियाँ सुनिये। गहरी साँस लेकर 'ॐ' का तीन बार उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश छः

पञ्चकोश धारणा

कोश का शाब्दिक अर्थ है आवरण या शरीर और पंच का अर्थ है पाँच। अत: पञ्चकोश का अर्थ होता है पाँच प्रकार के आवरण या शरीर। योग परम्परा के अनुसार मानव व्यक्तित्व पञ्चकोश या पाँच शरीरों से बना होता है। इन पाँच कोशों का क्षेत्र स्थूल से लेकर अनुभवातीत आयामों तक है और ये दहराकाश अनुभूति के विषय हैं।

अन्नमय कोश

योग में वर्णित प्रथम कोश अन्नमय कोश, पदार्थ शरीर है, जो सजीव या निर्जीव दोनों हो सकता है। एक भवन, एक वृक्ष और एक स्थूल शरीर, सभी के भीतर अन्नमय कोश मानते हैं, अन्तर मात्र इतना है कि भवन निर्जीव है और शरीर सजीव है। अतएव अन्नमय कोश या भौतिक शरीर एक व्यापक अवधारणा है।

पदार्थ अनेक प्रकार के होते हैं। पदार्थ के कुछ रूप पूर्णतया स्वतन्त्र होते हैं और कुछ अपने अस्तित्व हेतु अन्य पदार्थों पर आश्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, जो भोजन हम करते हैं, वह पदार्थ है, और शरीर जो भोजन का उपभोग करता है वह भी पदार्थों से बना है। अत: यहाँ पदार्थों में पारस्परिक क्रिया दिखाई पड़ती है। पदार्थ के एक रूप का उपभोग दूसरे पदार्थ के संधारण एवं सम्पोषण हेतु होता है। यह पदार्थ पर पदार्थ की पराश्रितता है। पत्थर पदार्थ का एक स्वतन्त्र रूप है। आप पत्थर को खा नहीं सकते और यह पदार्थ कोई दूसरा पदार्थ ग्रहण नहीं करता।

योग का मत है कि समस्त सृष्टि पदार्थ की अभिव्यक्ति है, जिसकी तुलना बाह्य पदार्थ से की जा सकती है जिनका उपयोग चेतना और ऊर्जा की

अभिव्यक्ति के निमित्त होता है। विभिन्न वस्तुओं की, चाहे एक पत्थर हो या एक शरीर, बनावट भिन्न है, पर वे चेतना और ऊर्जा द्वारा अनुप्राणित होती हैं। एक पत्थर में भी चेतना और ऊर्जा हैं, परन्तु उसकी संरचना ऐसी है कि वे अभिव्यक्त नहीं होती हैं। वनस्पतियों में भी चेतना और ऊर्जा हैं, पर हम जिस रूप में समझते हैं उस रूप में वे अभिव्यक्त नहीं होती हैं।

सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए चेतना और ऊर्जा को विभिन्न माध्यम या साधन चाहिए। पत्थर मात्र एक जड़ पदार्थ, अन्नमय कोश है। वनस्पति में हम अन्नमय, प्राणमय और कुछ सीमा तक मनोमय कोश का सम्मिश्रण पाते हैं। मानव शरीर में हम सभी पाँचों कोशों का सम्मिश्रण पाते हैं। अत: एक पत्थर में या वनस्पति जीवन में अन्तर्निहित चेतना अभिव्यक्ति हेतु एक भिन्न माध्यम का उपयोग करती है।

जब तक कोश एक इकाई में समन्वित नहीं होंगे, उनके लिए अभिव्यक्त होना सम्भव नहीं होगा। पदार्थ में किस प्रकर की चेतना और ऊर्जा अन्तर्निहित है, इस तथ्य से निरपेक्ष अन्नमय कोश मात्र उसकी अभिव्यक्ति है। किसी कोश विशेष से सम्बन्धित आयाम का अनुभव प्रदान करने हेतु यह एक साधन है। स्थूल या भौतिक जगत् में यह चेतना एवं ऊर्जा की अभिव्यक्ति है।

प्राणमय कोश

अन्नमय कोश के उपरान्त प्राणमय कोश आता है। वही ऊर्जा या प्राण की काया है। वह क्या है जो शरीर को गति प्रदान करता? वह ऊर्जा की शक्ति है। यदि आप शरीर से उस ऊर्जा को हटा दें, तो कौन शरीर को गति प्रदान करेगा? यदि हरी घास के एक तिनके को तोड़ते हैं तो थोड़ी देर बाद वह भूरा हो जायेगा और फिर मर जायेगा। जो शक्ति उसे हरा एवं जीवित रखे हुई थी वही प्राण था।

योगियों ने स्पष्ट रूप से अनुभव किया है कि इस ब्रह्माण्ड में सभी वस्तुओं में ऊर्जा है और बहुत ही सामान्य रूप से उस ऊर्जा को हम प्राण की संज्ञा दे देते हैं। जो प्राण समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है तथा उसका नियंत्रण करता है वह महाप्राण है। जो प्राण शरीर के समान वैयक्तिक इकाइयों को नियंत्रित करता है वह पाँच कोटियों में विभक्त हो जाता है। वैयक्तिक इकाई के विभिन्न कार्य-कलापों के अनुसार वह प्राण पुन: पाँच उपकोटियों में विभक्त हो जाता है। इस प्रकार जीवित प्राणी में विभिन्न कोटि के दस प्राण होते हैं। निर्जीव इकाइयों

में केवल एक ही प्राण होता है। प्राणिक शक्ति या प्राण ही भौतिक शरीर का संधारण एवं सम्पोषण करता है।

अब हम बृहद् ब्रह्माण्डीय दृष्टिकोण से प्राण को देखें। बृहद् ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत जो प्राण समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है वह महाप्राण है, और वही जीवन या चेतना का प्रथम उद्भास है। उदाहरणार्थ, जब आप रात्रि में सो जाते हैं, तब दिक् और काल की कोई अवधारणा नहीं रह जाती। पूर्ण अचेतन की अवस्था रहती है। जब घड़ी का अलार्म बजता है तब चेतना के क्षेत्र में हल्की सी उत्तेजना आती है, वही जब थोड़ी और तीव्र होती है तब सजगता आती है। तब आप शरीर, परिवेश तथा क्या समय हुआ इत्यादि के प्रति सजग होते हैं।

गहरी निद्रा में, जो मृत्यु के समान ही अवस्था है, चेतना के क्षेत्र में जो पहली हलचल होती है, वही व्यक्ति को बहिर्मुखी बनाती है, तथा शरीर और मन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करती है, और वह प्राण की ही क्रिया है। यदि मन और शरीर के मध्य प्राणिक सम्पर्क नहीं रहे, तो मन का सामंजस्य शरीर के साथ नहीं होगा। एक व्यक्ति में शरीर और मन दो अलग-अलग इकाइयाँ कार्य करती हुई हो जायेंगी।

अनेक बार जब हम धारणा या अन्तर्मुखता की गहरी अवस्था में जाते हैं, जहाँ हम बाह्य जगत् के प्रति अचैतन्य होते हैं, हम पाते हैं कि मन सतर्क है पर शरीर पर कोई नियंत्रण नहीं है। प्राणिक सम्बन्ध, जो मानसिक और शारीरिक क्रिया-कलापों में समन्वय स्थापित करता है, वह अस्थायी रूप से शरीर से अलग हो जाता है। अतएव महाप्राण प्रथम आवेग है जो पदार्थ और चेतना में सम्बन्ध बनाता है।

महाप्राण ब्रह्माण्ड में विद्यमान प्रत्येक परमाणु और भूमण्डलीय पिण्डों का स्पन्दन है, जीवन शक्ति है। तारे या पल्सर जो गामा किरण या रेडियो तरंगें प्रसारित करते हैं, वे भी महाप्राण के रूप हैं। यदि आप ब्रह्माण्ड में प्रत्येक तरंग को एक-एक कर समाप्त करते जायेंगे तो अन्ततोगत्वा केवल एक प्रकार की तरंग बचेगी, जो अन्य सभी का उद्गम बिन्दु मानी जा सकती है। वह बिन्दु ही महाप्राण है।

विभिन्न कोशों में महाप्राण विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त होता है। अतीन्द्रिय शरीर में प्राण स्पन्दन स्तर पर अभिव्यक्त होता है। भौतिक और मानसिक शरीरों में यह उद्दीपन और आवेग के रूप में अभिव्यक्त होता है। जब हमें

अपना हाथ उठाने का मन करता है तब जो आवेश शरीर से मस्तिष्क को और मस्तिष्क से शरीर को आता है, वह भौतिक प्राण है।

प्राणमय कोश में प्राण ऊर्जा-प्रवाह की तरंगों के रूप में अभिव्यक्त होता है। प्राण की तरंगें जो प्राणमय कोश से अन्नमय कोश की ओर प्रवाहित होती हैं, वे सदा ऊर्जा प्रवाहिकाओं या नाड़ियों द्वारा धारा के रूप में प्रवाहित होती हैं। भौतिक शरीर में इन प्रवाहों का अनुभव शारीरिक संरचना में प्रकाश, लघु विद्युत प्रवाह, खुजली या चुनचुनाहट के संवेदन के रूप में हो सकता है।

भौतिक शरीर में अनेक प्रकार की ऊर्जा वाहिकायें होती हैं। प्रथम तो रक्त वाहिकायें हैं जो रक्त को एक अंग से दूसरे अंग में ले जाती हैं। दूसरी तन्त्रिकायें हैं जो शरीर से मस्तिष्क में संवेदनायें ले जाती हैं। तीसरी नाड़ी या प्राण वाहिकायें हैं जो प्राण को प्राणमय कोश से भौतिक शरीर में ले जाती हैं।

भारत में पाँच हजार वर्ष पूर्व एक ऋषि थे, जिनका नाम कणाद था। परमाणु सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। उन्होंने वर्णन किया है कि प्राणिक संरचना के साथ प्राण किस प्रकार पारस्परिक क्रिया करता है। वे कहते हैं कि परमाणु की नाभि, जो ऊर्जा से स्पन्दित होती रहती है, वही प्राण का शुद्ध रूप है। वही प्राण चेष्टा का, गति का, जीवन का स्रोत है और वही जीवन हमारी बाह्य शारीरिक संरचना में दिखाई पड़ता है।

मनोमय कोश

मनोमय कोश तीसरा है, जिसमें विवेकी मन के साथ-साथ भावनायें सम्मिलित हैं। मनोमय कोश में मन के अन्य विभिन्न पक्ष भी सम्मिलित हैं। चेतन, अवचेतन और अचेतन अभिव्यक्ति, आचरण और सम्बन्ध– सभी मनोमय कोश के रूप हैं। मन की अवस्थायें, यथा– सुखाभास, सुख, आनन्द, निराशा, अवसाद तथा चिन्ता भी मनोमय कोश के विभिन्न पक्ष हैं। मन की ये विभिन्न अभिव्यंजनायें भी विज्ञानमय कोश के संस्कारों एवं कर्मों से सम्बन्धित हैं।

विज्ञानमय कोश को संस्कार और कर्म का भण्डार समझा जाता है। यही क्षेत्र है जहाँ बुद्धि, चित्त और अहंकार अपने अपरिष्कृत रूप में प्रकट होते हैं। जब इन मन:शक्तियों, क्षमताओं या प्रभावों को बाह्य जगत् का सामना करना पड़ता है तब ये मन के साधनों का उपयोग करते हैं।

सकारात्मक और नकारात्मक विचारों से हमारी पारस्परिक क्रियायें, अपने ही मन से निपटने की समस्याएँ, स्वभाव, कामना, शक्ति, कमजोरियाँ,

महत्त्वाकांक्षाएँ और आवश्यकताएँ मनोमय कोश के विभिन्न पक्ष हैं। ऐसा नहीं है कि केवल विवेकी बुद्धि, वरन् मन की समग्रता भी मनोमय कोश के रूप में जानी जाती है। मानव आचरण और मन की विभिन्न अभिव्यंजनाओं को पारिभाषित करने के लिए मनोमय कोश एक अत्यन्त व्यापक शब्द है।

विज्ञानमय कोश

चतुर्थ है विज्ञानमय कोश, प्रज्ञा का आवरण, विवेक और अनुभूति। विज्ञानमय कोश के दो पक्ष या स्तर हैं। प्रथम या निम्न पक्ष है आन्तरिक और बाह्य ज्ञान तथा द्वितीय पक्ष है कर्म और संस्कार की समझ। इन दो अवस्थाओं से गुजरने के बाद व्यक्ति तीसरी अवस्था या आयाम में पहुँचता है, जो अहंकार की अनुभूति, ज्ञान और बोध है।

विकास के क्रम में जब आत्मा का विकास पदार्थ के रूप में हो रहा था तब उसकी प्रथम अभिव्यक्ति महत् या बोधित्व के रूप में हुई। महत् के इस पक्ष से चार उप पक्ष निकले। इन्हें इस प्रकार जाना जाता है– 1. अहंकार, 2. चित्त, प्रेक्षण की प्रक्रिया, 3. बुद्धि, विवेक एवं बोध की प्रक्रिया, 4. मनस्, मन की संकल्प-विकल्प करने वाली वृत्ति। इन्हीं उप पक्षों से विज्ञानमय कोश का स्वरूप निर्मित हुआ है।

विज्ञानमय कोश को सामान्य रूप से हम बौद्धिक शरीर कह देते हैं, पर ऐसा कहना सही नहीं है। विज्ञान में ज्ञान का अर्थ तो स्पष्ट है, पर उसमें जब 'वि' उपसर्ग लगता है तब उसका अर्थ हो जाता है सूक्ष्म ज्ञान। जिस शरीर में सूक्ष्म ज्ञान की अनुभूति हो, वही है विज्ञानमय कोश।

मनोमय कोश में हमने बुद्धि, चित्त और अहंकार की चर्चा की है, पर अब हम विज्ञानमय कोश के अंगों के रूप में उन पर विचार करेंगे। बुद्धि का अर्थ है ज्ञान, जिसे पुन: दो रूपों में विभक्त करते हैं। बुद्धि का पहला रूप वस्तुओं के बाह्य जगत् से सम्बन्धित है और दूसरा है हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले सिद्धान्तों का आन्तरिक ज्ञान। बाह्य बुद्धि के अतिरिक्त एक अन्य पक्ष भी है जो अब तक अव्यक्त प्रभावी चेतना में बद्धमूल है।

यह चेतना जो अव्यक्त है, उसमें विगत जन्मों के अनुभव और अपने माता-पिता एवं पूर्वजों के माध्यम से डी. एन. ए. के समान प्राप्त अनुभव भी अन्तर्विष्ट हैं। इसमें सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक की सारी सूचनायें हैं। संस्कारों एवं कर्मों के रूप में इस सूचना से सूक्ष्म बुद्धि प्रभावित होती

है। अतएव, संस्कारों और कर्मों का ज्ञान प्राप्त करना बुद्धि को पूर्ण रूप से समझने का एक पहलू है।

महत् का दूसरा क्षेत्र है चित्त, जिसका अर्थ है अवलोकन करना, चिन्तन करना। व्यक्तित्व के अन्दर चेतना का एक पक्ष है जो अनवरत सभी चीजों का अवलोकन करता है। चित्त हमारे भीतर में बैठा एक लघु मानव है जो निरपेक्ष भाव से सभी हो रही चीजों का अवलोकन कर रहा है। योग की भाषा में इसे 'द्रष्टा' कहते हैं।

चित्त के उपरान्त आता है अहंकार। संस्कृत में अहम् का अर्थ है 'मैं' और आकार तो स्पष्ट है। अपनी पहचान से मुक्त आत्मा ही 'अहम्' है। यही अहम् आगे चल कर आत्मा के रूप में जाना जाता है। अत: विज्ञानमय कोश में हम अहम् की चर्चा नहीं कर रहे हैं, वरन् अहंकार की, उस आत्मा की चर्चा कर रहे हैं जो अपनी आत्म-पहचान में खो गया है। जब आत्मा स्व-तादात्म्य में खो जाती है तो वह इसके परे नहीं देख पाती।

हम जानते हैं कि हमारा एक शरीर है, हम देख सकते हैं और उसका अनुभव भी करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि हमारा एक मन है और उसका अनुभव भी करते हैं, पर उसे देख नहीं सकते। हम जानते हैं कि हमारी एक आत्मा है, पर उसका न तो अनुभव कर पाते हैं और न देख पाते हैं। इस प्रकार यह सजगता की न्यून होती अवस्था होती है। पर जब हम विज्ञानमय कोश में साधना की प्रक्रिया में प्रवेश करते हैं, शरीर और मन की सजगता समाप्त हो जाती है और सूक्ष्म मन की सजगता के साथ आत्मा की सजगता आती है।

आनन्दमय कोश

पाँचवाँ है आनन्दमय कोश, परमानन्द शरीर। यहीं पर आत्मा की अनुभूति होती है, जहाँ पर व्यक्ति परम व्यक्तित्व की सत्ता में विलीन हो जाता है। यहाँ आत्मा की अवधारणा एक जीवन्त अनुभूति बन जाती है। समस्त अशुद्धियाँ और मल छूट जाते हैं और आत्मा की प्रभा की अनुभूति होती है। व्यक्ति की नियन्त्री शक्ति के रूप से आत्मा की अनुभूति होती है। जब आनन्दमय कोश की अनुभूति हो जाती है तब व्यक्ति उसके बाद मनुष्य नहीं रह जाता। वह दिव्य हो जाता है, और वही आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर-साक्षात्कार है।

कोशों के माध्यम से विकास

अत: कोश योग मनोविज्ञान के एक पक्ष को प्रस्तुत करता है, क्योंकि स्वाभाविक विकास के क्रम में व्यक्ति अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर अग्रसर होता है। कुछ लोग जीवन भर अन्नमय कोश में ही अटके रह जाते हैं तो कुछ लोग मनोमय कोश में। बहुत कम ही लोग प्राणमय कोश तक पहुँचते हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं होता है कि प्राणमय कोश का अस्तित्व भी है। तथापि, प्राणमय कोश में ही नाड़ी चक्र और कुण्डलिनी में ऊर्जा अवरोध उत्पन्न होते हैं, जो व्यक्तित्व में अगणित समस्यायें उत्पन्न करते हैं।

कभी-कभी हम अशान्त हो जाते हैं और सोचते हैं, "मेरा अपने आप पर नियंत्रण नहीं है, मैं सनकी हो रहा हूँ।" हम बिना यह जाने कि यह सब प्राणमय कोश से आ रहा है, इन उपद्रवों को अन्नमय और मनोमय कोशों से संयुक्त करने लगते हैं। हमारा प्रशिक्षण ही ऐसा हुआ है कि हम अन्नमय और मनोमय कोशों, यानी शरीर और मन को ही स्वीकारते हैं, इनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। यदि कोई व्यक्ति विज्ञानमय कोश में अटक जाता है तो उसे तीव्र अहंकार की समस्यायें अथवा कर्मों और संस्कारों से सम्बन्धित कठिनाइयाँ होंगी, जिनका समाधान नहीं हो सकता है, क्योंकि उस स्तर की समझदारी नहीं है। मानवता के इतिहास में बहुत ही कम लोग हुए हैं जो आनन्दमय कोश तक पहुँचे हैं। वे ही संत और सिद्ध महात्माओं के नामों से जाने जाते हैं।

इस साधना में व्यक्ति के आत्म ज्ञान को बढ़ाने के निमित्त अवधारणा के दृष्टिकोण से पाँचों कोशों के प्रति सजगता क्रमिक रूप से विकसित करते हैं। इस अनुभव से हमें अच्छी जानकारी प्राप्त होती है कि इस शरीर में प्राण और चेतना के विभिन्न आयामों से होते हुए हम किस प्रकार विकास कर रहे हैं और हमारी साधना का क्या उद्देश्य है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड को सीधा एवं सिर को थोड़ा पीछे झुकाते हुए ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हथेलियों को ज्ञान अथवा चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें बन्द कर विश्रान्त हो जाइये। कुछ क्षणों के लिए शरीर के प्रति सजग हो जाइये। अपनी सजगता को सिर से पैर तक अपने शरीर के सभी अंगों में ले जाइये। शरीर की पूर्ण एवं समग्र सजगता को विकसित कीजिये।

द्वितीय चरण– दहराकाश में प्रवेश

एक बार आप जब अपने समस्त शरीर के प्रति सजग हो जाते हैं, तब अपनी सजगता को धीर-धीरे भौतिक शरीर से अलग कर लीजिये। पूरे शरीर को त्वचा से मढ़े एक खोखले कवच के रूप में देखिये जो आकाश तत्त्व से भरा है। सजगता को विकसित करते हुए शरीर की कल्पना एक गुब्बारे के रूप में कीजिए, जिसमें भीतर हवा और आकाश भरा है तथा वह बाहर में भी आकाश और हवा से घिरा है। इसी प्रकार आकाश से भरे एवं आकाश से ही घिरे अपने शरीर की कल्पना कीजिये।

आन्तरिक आकाश के प्रति पूर्ण सजग होइये, आन्तरिक आकाश के अनुभव में पूर्णतया केन्द्रित होइये। शारीरिक उद्विग्नता से सजगता की अवस्था को भंग होने मत दीजिये जो आकाश-शरीर में केन्द्रित है। जैसे-जैसे आप आकाश के प्रति अधिकाधिक सजग होते जायेंगे, आपको शान्ति, नीरवता, और निश्चेष्टता का भाव अवतरित होता हुआ प्रतीत होगा।

कुछ समय बाद व्यापकता का अनुभव होगा। जब आप वायु के प्रति सजग होते हैं तब शरीराकाश में गति का अनुभव होगा। दहराकाश में दो मौलिक अनुभूतियाँ होती हैं– निश्चलता और व्यापकता। प्राण की गति दहराकाश की निश्चलता, नीरवता, और व्यापकता में रंगों एवं प्रकाशों के रूप में देखी जा सकती है। शरीर के गहरे आन्तरिक आकाश के प्रति तथा आकाश के अन्दर गति के प्रति सजग होइये, जो व्यापकता की अनुभूति उत्पन्न करती है।

तृतीय चरण– अन्नमय कोश की सजगता

आकाश में पदार्थ से निर्मित स्थूल शरीर के प्रति सजग होइये। पृथ्वी तत्त्व सहित विभिन्न तत्त्वों की अभिव्यक्ति ही अन्नमय कोश है। ऊर्जा की यह अन्तिम अभिव्यक्ति है जहाँ ऊर्जा पदार्थ में घनीभूत होती है। मांसपेशी, हड्डी, रक्त, श्लेष्मा और त्वचा से निर्मित भौतिक शरीर को अनुभव कीजिये। शरीर के विभिन्न अंगों, तन्त्रों और भागों के प्रति सजग होइये।

शरीर की निश्चलता में ही श्वास की गति को अनुभव कीजिये। पूरक एवं रेचक करते शरीर के प्रति सजग होइये। देखिये कि शरीर श्वसन क्रिया कैसे करता है। हृदय की धड़कनों का अनुभव कीजिये। सम्पूर्ण शरीर में रक्त संचार के लिए उत्तरदायी हृदय के लयबद्ध स्पन्दन का अनुभव कीजिये। शरीर का ढाँचा उपलब्ध कराने वाले पेशी एवं अस्थि तन्त्र का

अनुभव कीजिये, जिससे संसार में हमारे कार्यकलाप चलते हैं। शरीर की पेशियों, अस्थियों, अंगों एवं विभिन्न तन्त्रों के प्रति पूर्ण सजगता का अनुभव कीजिये।

समस्त शरीर का अनुभव कीजिये, इसके भार का, आयतन का अनुभव कीजिये। जिस पृथ्वी पर यह शरीर स्थित है, जिससे अपना पोषण प्राप्त करता है और एक दिन जिसमें इसकी तात्त्विक प्रकृति का विलय हो जायेगा, उसके साथ इसकी समस्वरता एवं सघनता का अनुभव कीजिये।

अपने अस्तित्व में पृथ्वी तत्त्व का भौतिक शरीर के रूप में, अन्नमय कोश के रूप में अनुभव कीजिये। अन्नमय कोश तो केवल पदार्थ की अभिव्यक्ति है, चाहे इसमें जिस भी प्रकार की चेतना या ऊर्जा अन्तर्निहित हो।

चतुर्थ चरण– प्राणिक शरीर की सजगता

अब प्राणमय कोश, ऊर्जा-शरीर की सजगता को जाग्रत कीजिये, जो स्थूल स्तर पर भौतिक शरीर से और सूक्ष्म स्तर पर अतीन्द्रिय शरीर से पारस्परिक क्रिया करता है। ऊर्जा वाहिका, धारा या प्रवाह की संरचना के रूप में प्राणमय कोश को देखिये, जो आपके अस्तित्व के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग को जीवन प्रदान करता है।

प्राणमय कोश में अपनी सजगता को घुमाइये और ऊष्मा, प्रकाश एवं रंग से परिपूर्ण प्रभावशाली शक्ति के रूप में प्राण का अनुभव कीजिये। जिस प्रकार अग्नि कुण्ड से गर्म हवा झिलमिलाती हुई और अशान्त रूप से ऊपर उठती देखी जा सकती है, उसी प्रकार भौतिक शरीर की सूक्ष्मतर अवस्थाओं में प्राण की भी अनुभूति हो सकती है। प्राण के इस अनुभव को तीव्र कीजिये।

ऊर्जा क्षेत्र के प्रति सजग होइये और जीवनी शक्ति को अनुभव कीजिये।

प्राणमय कोश में प्राण ऊर्जा प्रवाह के रूप में प्रकट होता हैं। इन प्रवाहों को स्थूल शरीर में प्रकाश के रूप में अनुभव किया जा सकता है। शारीरिक संरचना में लघु विद्युत तरंगों, झुनझुनी या खुजली की संवेदना के रूप में अनुभव कीजिये।

स्थूल शरीर में विभिन्न ऊर्जा प्रवाहों का अनुभव कीजिये। रक्तवाहिकाओं के प्रति सजग होइये जिनके द्वारा रक्त शरीर के एक अंग से दूसरे अंग में पहुँचता है। तन्त्रिकाओं के प्रति सजग होइये जो शरीर से मस्तिष्क में संवेदनायें ले जाती हैं। प्राणमय कोश से भौतिक शरीर में प्रवाहित प्राणिक प्रवाह के प्रति सजग होइये।

शरीर और मन के मध्य प्राणिक सम्पर्क के प्रति सजगता को बढ़ाइये। मनोकायिक एवं मानसिक ऊर्जा के रूप में प्राण के प्रति अपनी सजगता को बढ़ाइये। प्राण के अभाव में न शरीर में हलचल हो सकती है और न ही मन सोच सकता है। जीवन, जीना, होना, जानना, समझना, अनुभव करना, बोध प्राप्त करना, इत्यादि जो कुछ भी होता है, वह प्राण की शक्ति के द्वारा ही होता है।

जीवन के कारण, तथा अपनी सत्ता के विभिन्न स्तरों या पक्षों के मध्य सम्पर्क के रूप में प्राण के प्रति सजग होइये। जैव, मानसिक, और अतीन्द्रिय ऊर्जा के रूप में प्राणिक क्षेत्र के प्रति सजग होइये। यहाँ तक कि आध्यात्मिक ऊर्जा भी प्राण के आयाम में आती है। प्राण की संरचना को अनुभव कीजिये, जो आपके अस्तित्व में सर्वांग रूप से स्थूल से सूक्ष्म सभी स्तरों पर विद्यमान रहती है। और गहराई में जाइये और अपनी सूक्ष्म प्राणिक शक्ति के बोध को तीव्र कीजिये। प्राण को ज्योति कणों या ऊर्जा परमाणुओं की धारा के रूप में मानसिक रूप से देखिये, जो प्राणमय कोश की संरचना तैयार करते हैं।

पंचम चरण– मनोमय कोश की सजगता

अब आप प्राणमय कोश की सजगता को छोड़कर मानसिक क्षेत्र में प्रवेश कीजिये। मन: शरीर के प्रति सजग होइये, जिसमें मानसिक एवं भावनात्मक अभिव्यक्तियों का प्रत्येक पक्ष सन्निहित है। इस क्षण अन्दर में आप जो भी सोच या अनुभव कर रहे हैं, उसका अवलोकन कीजिये। सावधानी से देखिये कि मानसिक प्रक्रिया किस प्रकार काम करती है। विभिन्न विचार और भाव जो उठ रहे हैं उनके प्रति सजग होइये। ध्यान से देखिये कि वे किस प्रकार स्वयं जटिल एवं अंतर्ग्रथित ढाँचा बना लेते हैं। मनस् के प्रति, चिन्तन और प्रतिचिन्तन प्रक्रिया के प्रति सजग होइये जो बाहर से आने वाले दैनिक प्रभावों का लगातार विश्लेषण करती रहती है और हमारे कर्म की उत्तम राह का निर्णय करने हेतु पूर्व के प्रभावों की स्मृतियों से मिलाती रहती है।

तथापि मनस् अकेले कार्य नहीं कर सकता। संस्कारों एवं कर्मों से सम्बन्धित मन की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ विज्ञानमय कोश में संचित हैं। बाह्य जगत् से पारस्परिक क्रिया हेतु मनस् (तार्किक मन) को बुद्धि, चित्त (सजगता) और अहंकार की, जो विज्ञानमय कोश के क्षेत्र में आते हैं, सहायता लेनी होगी।

सतत् निद्रा में भी चलती रहने वाली मानसिक प्रक्रिया के प्रति सजग होइये। मन की चित्त, बुद्धि एवं अहंकार के साथ पारस्परिक क्रिया का अनुभव कीजिये। देखिये कि मन की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ इन पारस्परिक क्रियाओं के माध्यम से किस प्रकार प्रकट होती हैं। मन का अवलोकन करने हेतु आपको द्रष्टा के रूप में चित्त की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी। चित्त की सहायता से निष्पक्ष भाव से मनोमय कोश से उत्पन्न हो रही अभिव्यक्तियों का अवलोकन करना प्रारम्भ कीजिये।

अन्दर में चल रहे मानसिक संवाद का अवलोकन कीजिये। कौन किससे बातें कर रहा है और किसलिए कर रहा है? किसी निश्चित विचार से किस प्रकार कोई भावना भड़क उठती है, विशेष रूप से ऐसे विचार जिनसे आपका अधिक तादात्म्य होता है, इसका अवलोकन कीजिये। देखिये कि विभिन्न प्रकार के विचार, भावनायें और रंग मानसिक क्षेत्र को किस प्रकार प्रभावित और परिवर्तित करते हैं।

पाँच प्रकार के चिन्तन हैं, जो मानसिक क्षेत्र को विभिन्न प्रकार से परिवर्तित करते हैं। यदि आप मन का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करते हैं तो आप उनको पहचान सकते हैं। ये हैं– यथार्थ चिन्तन (प्रमाण), अयथार्थ चिन्तन (विपर्यय), भ्रान्त चिन्तन (विकल्प), स्मृति प्रभावित चिन्तन (स्मृति) और निद्रा प्रभावित चिन्तन (निद्रा)। मन का खेल देखते समय, यह देखने का प्रयास कीजिये कि आपके विचार इनमें से किस श्रेणी में आते हैं। अवलोकन कीजिये कि कब यथार्थ विचार आते हैं और कब अयथार्थ। अवलोकन कीजिये कि कब भ्रान्त विचार आते हैं और कब स्मृति प्रभावित विचार आते हैं। आपके विचार कब निद्रा से, जैसा कि स्वप्न में होता है, प्रभावित हैं, इसे भी देखिये।

इन पाँचों वृत्तियों (प्रमाण, विपयर्य, विकल्प, स्मृति, निद्रा) का सतत् उठते रहना ही प्रत्येक अनुभव, भावना, विचार, कामना, महत्त्वाकांक्षा, कर्म और आचरण के लिए उत्तरदायी है। मन: क्षेत्र का अवलोकन करने हेतु आपको इन पाँचों वृत्तियों के प्रति और किस प्रकार ये आपकी मानसिक क्रिया-कलापों के रूप में प्रकट होती हैं, इसके प्रति सजग होना पड़ेगा। इन पाँच वृत्तियों के अभाव में मानसिक क्रिया नहीं होगी। मन अचल हो जायेगा।

षष्ठ चरण– विज्ञानमय कोश की सजगता

अब मनोमय कोश की सजगता छोड़ते हुए विज्ञानमय कोश या प्राणिक शरीर के प्रति सजग होइये। शुद्ध ऊर्जा के आयाम में प्रवेश कीजिये, जो अतीन्द्रिय क्षेत्र है। विज्ञानमय कोश या अतीन्द्रिय शरीर सूक्ष्म प्राण शक्ति के माध्यम से कार्य करता है, जिसे अतीन्द्रिय ऊर्जा के नाम से जानते हैं। अतीन्द्रिय शरीर के भीतर में शुद्ध ऊर्जा का अनुभव स्पन्दनों के रूप में कीजिये।

विज्ञानमय कोश न केवल अतीन्द्रिय ऊर्जा का शरीर है, वरन् यह उच्चतर मन से भी सम्बन्धित है। आन्तरिक ज्ञान या विज्ञानमय शरीर के रूप में इसका अनुभव होता है। मनोमय शरीर में मनस् पक्ष की सजगता से चित्त, बुद्धि और अहंकार में पारस्परिक क्रिया होती है। यहाँ पर चित्त, बुद्धि और अहंकार को हम शुद्ध अवस्थाओं में अनुभव करते हैं।

बुद्धि का अर्थ है ज्ञान। निम्न ज्ञान का सम्बन्ध इन्द्रियों एवं विषयों के बाह्य जगत् से है, तथा उच्चतर ज्ञान या विज्ञान का सम्बन्ध हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करने एवं स्वरूप देने वाले सिद्धान्तों की आन्तरिक समझ से है। अपने विवेक द्वारा समझ कर, अवलोकन कर और विश्लेषण कर बाह्य बुद्धि का अनुभव कीजिये। बाह्य बुद्धि या ज्ञान के अनुसार किस प्रकार आपके कर्म और आचरण स्वरूप लेते हैं, उसे देखिये।

इसके अतिरिक्त बुद्धि का एक अन्य पक्ष भी है जो चेतना के प्रभावों में बद्धमूल है, जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ है। इस अव्यक्त चेतना में हमारे विगत जन्मों के अनुभव, हमारे माता-पिता एवं पितामही-पितामह के डी. एन. ए. द्वारा लाये गये अनुभव होते हैं, जिनमें सृष्टि के काल से आज तक की समग्र सूचनायें संग्रहित होती हैं। सूक्ष्म बुद्धि के प्रति सजग होइये।

इसके उपरान्त हम एक अन्य क्षेत्र में प्रवेश करेंगे जिसे चित्त के नाम से जानते हैं। चित्त का अर्थ है 'अवलोकन' करना। मन के अन्दर चेतना का एक पक्ष होता है जो अनवरत सभी चीजों का अवलोकन करता रहता है। अपने अन्दर ऐसे लघु पुरुष चित्त के प्रति सजग होइये जो निष्पक्ष भाव से जो कुछ भी हो रहा है उसका अवलोकन कर रहा है। इस द्रष्टा चित्त का अनुभव कीजिये। जो अपनी पहचान का स्पष्ट अनुभव करता है।

चित्त के बाद अहंकार का अनुभव विकसित कीजिये। अपने आत्माभिज्ञान का, अपने अन्दर की अस्मिता का अवलोकन करने का प्रयास कीजिये,

जो द्वैत उत्पन्न करता, जो स्वयं को दूसरे से, मैं को तुमसे भिन्न करता है। जब आप अपने आत्माभिज्ञान का अवलोकन करते हैं तो समझिये कि इस आत्माभिज्ञान का स्रोत स्वयं आत्मा है, जो बिना किसी विशिष्टता के शुद्ध आत्मा है।

विज्ञानमय कोश में आप शुद्ध 'मैं', शुद्ध आत्मा के प्रति सजग नहीं रहते हैं, वरन् उस आत्मा के प्रति सजग रहते हैं जो अपनी अस्मिता में खो गयी है। अपनी अस्मिता में खोई आत्मा ही 'अहंकार' है। अस्मिता से मुक्त आत्मा केवल अहम् है, 'सोऽहमस्मि, सोऽहमस्मि'।

अब 'अहम्' नहीं, 'अहंकार' के प्रति सजग होइये। उस आत्मा का अनुभव कीजिये जो अपनी अस्मिता में खो गई है। आत्मा जब अपनी अस्मिता में खो जाती है तब वह उससे आगे नहीं देख सकती। जैसे-जैसे आप विज्ञानमय कोश में सजग होते हैं, वैसे-वैसे शरीर और मन की सजगता समाप्त होती जाती है। आत्मा के साथ-साथ सूक्ष्म मन का अनुभव विकसित कीजिये।

सप्तम् चरण– आनन्दमय कोश की सजगता

अन्ततोगत्वा आनन्द और सुख शान्ति के आवरण, आनन्दमय कोश में आइये। यहाँ आत्मा की अवधारणा दिव्यानुभूति है। सजग होइये कि सारे मल और अशुद्धियाँ समाप्त हो रही हैं, और अपनी आत्मा की प्रभा को अनुभव कीजिये। आपके वैयक्तिक जीवन की नियामक सत्ता– आत्मा के प्रति सजग होइये। इस बोध के पश्चात् आप दिव्य हो जाते हैं। यही आत्मानुभूति, ईश्वरानुभूति, या मुक्ति की अवस्था है।

अष्टम् चरण– अभ्यास का समापन

अब अपना अभ्यास समाप्त करने हेतु तैयार हो जाइये। उच्चतर कोशों से अपनी सजगता को हटा लीजिये और पुनः अन्नमय कोश या भौतिक शरीर के प्रति सजग हो जाइये। ध्यान के आसन में बैठे अपने भौतिक शरीर को देखिये। सिर से पैर तक पूरे शरीर का अनुभव कीजिये। जिस कक्ष में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये और धीरे-धीरे अपनी सजगता को बहिर्मुखी कीजिये। श्वास के प्रति सजग होइये। लम्बी गहरी श्वास लीजिये और तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

दहराकाश सात

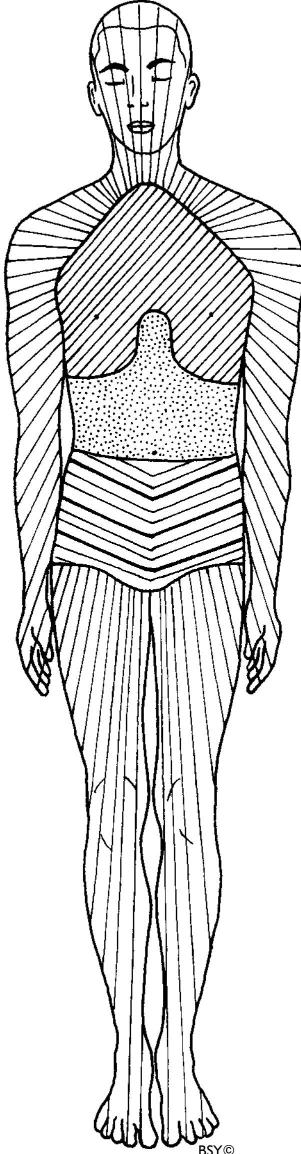
पंचप्राण धारणा

श्वसन पर तथा विभिन्न शरीरों में श्वसन एवं श्वसन की अनुभूति पर ध्यान करना प्राण धारणा है। भौतिक शरीर– वायु श्वसन; मानसिक शरीर– विभिन्न ओजस्विताओं का श्वसन; कारण शरीर– प्राण श्वसन; अतीन्द्रिय शरीर– प्राण का सत्त्व, प्राण का स्पंदन। यही वह कड़ी है जिसे हम लोग भौतिक शरीर से मनोकायिक शरीर तक श्वसन के क्रम में सृजित करते हैं। श्वास लेना और छोड़ना, पूरक और रेचक, विस्तार और शिथिलीकरण, ऊर्जा को बढ़ाना और ऊर्जा को कम करना, ये सभी श्वसन प्रक्रिया के विभिन्न सूक्ष्म पक्ष हैं, जिनकी अनुभव निश्चित रूप से प्राण के बोध हेतु होना चाहिए।

रक्त संचार के प्रति सजगता को विकसित करते हुए इस अनुभूति को आगे बढ़ाते हैं और फिर क्रमश: गहराई में जाते हुए प्राण की गति को अधिक सूक्ष्म स्तर पर अनुभव करते हैं। जब प्राण के बहाव की अनुभूति का जागरण होता है तब हम लोग प्राणिक शरीर के विभिन्न आयामों का अवलोकन करते हैं।

प्राणिक शरीर, भौतिक शरीर में ऊर्जा के प्रवाह का जाल है जो विकिरण बाहर की ओर बिखेरता है, वैसे ही जैसे बल्व से प्रकाश निकलता है। इसका रूप स्थिर नहीं है, बल्कि गत्यात्मक है। यह फैलता एवं संकुचित होता है। इसलिए प्रथम चरण के अभ्यास में हम लोग त्वचा के प्रत्येक रंध्र द्वारा श्वासों के बाहर व भीतर आने-जाने से प्राणिक शरीर के गत्यात्मक स्वभाव का अनुभव करते हैं। प्रत्येक श्वास के लेने पर प्राणिक शरीर फैलता है एवं प्रत्येक प्रश्वास से यह संकुचित होता है। जब प्राण का प्रवाह शरीर में होता है तो प्रत्येक अंग एवं क्षेत्र के अनुसार इसका अनुकूलन एवं रूपान्तरण हो जाता है। प्राण के इन विभिन्न रूपान्तरणों के अनुसार प्राण वायु का वर्गीकरण

पंचप्राण धारणा





किया गया है। ये सभी दस वायु हैं और कहा जाता है कि इन सबमें से पाँच का शरीर की क्रियाओं पर अधिक प्रभाव होता है। ये पाँच प्राण कहलाते हैं– प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान। शेष पाँच प्राण उपप्राण या सहायक प्राण कहलाते हैं।

इस अभ्यास में प्रत्येक प्राण के विकास के प्रति पृथक् सजगता विकसित की जाती है। पहले 'व्यान वायु', सर्वव्यापी प्राण को देखते हैं, जो कि प्राणिक शरीर की सभी दिशाओं में लघु प्रकाश-कणों की तरह भ्रमणशील दिखती है।

तब उदान प्राण का दृश्य शरीर के अग्र भाग में दक्षिणावर्त्त दिशा में घूमता हुआ एक गोलाकार प्रकाश के रूप में व्याप्त दिखाई देता है। उदान से हम लोग प्राण वायु की ओर आते हैं, जो वक्षस्थल में प्रकाश की तरंगों के रूप में ऊपर नीचे हो रही है। अपान वायु श्रोणि प्रदेश में नाभि से मूलाधार तक नीचे की ओर जाती हुई एक प्रकाश की धारा के रूप में दिखाई देती है। समान वायु का उदर प्रदेश के दोनों ओर, दाहिने से बायें व बायें से दाहिने, प्रकाश की धारा जैसा मानस दर्शन किया जाता है।

इस प्रकार प्राणिक शरीर को उसके विभिन्न घटकों के साथ देखा जाता है, जो वस्तुत: एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं और भौतिक शरीर के अन्दर प्राण की विभिन्न अभिव्यक्तियों के पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब हम इन पाँच प्राणों की गति का अवलोकन करते हैं, तब हम वस्तुत: प्राण शरीर की गति को देखते हैं।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड को सीधा एवं सिर को थोड़ा पीछे झुकाते हुए ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हथेलियों को ज्ञान अथवा चिन्मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें बंद कर लीजिये। पूरे शरीर के प्रति सजग हो जाइये। पूरे शरीर के प्रति सजगता को विकसित कीजिये। एक ही दृश्य और एक विचार में पूरे शरीर का निरीक्षण कीजिये। पूरे शरीर के प्रति पूर्ण सजगता को विकसित कीजिये।

भौतिक शरीर के भीतर क्रमश: अतीन्द्रिय शरीर के प्रति सजग होइये। अतीन्द्रिय शरीर को आकाश के रूप में अनुभव कीजिये। खाली कोश के समान अपने शरीर की कल्पना कीजिये। अपने मन को भौतिक शरीर

के विभिन्न अवयवों, जैसे– आंतरिक अंग, हड्डियों एवं मांसपेशियों से हटाइये। केवल आकाश के प्रति सजग होइये। पूरे आंतरिक शरीर के आकाश एवं शरीर के चारों ओर व्याप्त आकाश का अवलोकन कीजिये। शरीर खाली कवच की तरह है, जो त्वचा से आच्छादित है। त्वचा ही कवच है।

कल्पना कीजिये कि आपका शरीर गुब्बारे के समान है जो वायु से भरा है और गुब्बारे के चारों ओर भी वायु है। इसी तरह अतीन्द्रिय शरीर आकाश से भरा है और आकाश अतीन्द्रिय शरीर के चारों ओर भरा पड़ा है। आकाश के प्रति सजगता गहरी कीजिये। "मैं और कुछ नहीं, पूरा का पूरा आकाश हूँ।"

इस सजगता के साथ क्रमश: अपनी चेतना, अपने अनुभव, अपने मन को सुविधा एवं असुविधा या सुख या दु:ख की अनुभूति से अलग रखिये। आपको जानना चाहिए कि "मैं न तो दु:ख हूँ, न सुख, न सुविधा न असुविधा, जिसकी अनुभूति भौतिक शरीर के द्वारा हो रही है। मेरी चेतना अतीन्द्रिय शरीर में केन्द्रित है। मेरा अतीन्द्रिय शरीर मेरे भौतिक शरीर से भिन्न है।"

भौतिक शरीर को भूलने का प्रयास कीजिये और अतीन्द्रिय शरीर के प्रति सजग होइये। आकाश के प्रति सजग होइये, आकाश के सिवा और किसी के प्रति नहीं। यदि आपका भौतिक शरीर हिलता भी है, फिर भी उस क्षण अपनी सजगता को विक्षिप्त मत होने दीजिये। निस्तब्धता के अनुभव और अतीन्द्रिय शरीर की स्थिरता के प्रति सजग होइये।

द्वितीय चरण– वायु का स्तम्भ

अतीन्द्रिय शरीर में श्वास को वायु के स्तम्भ के रूप में देखिये, जो कि मणिपुर से आज्ञा चक्र तक जाता है। चेतना इस वायु स्तंभ के सहारे संचरित होती है। पूरक के समय चेतना श्वासों के साथ वायु स्तंभ के सहारे मणिपुर से आज्ञा तक ऊपर उठती है। रेचक के साथ चेतना आज्ञा चक्र से मणिपुर तक नीचे उतरती है। मणिपुर से आज्ञा तक वायु स्तंभ के सहारे चेतना का प्रत्येक बार चढ़ना-उतरना एवं अतीन्द्रिय शरीर की स्थिरता एवं निस्तब्धता के प्रति सजग रहिये। मणिपुर से आज्ञा तक विस्तृत वायु पथ के सहारे ऊपर-नीचे चढ़ती-उतरती चेतना तथा अतीन्द्रिय शरीर की स्थिरता एवं नीरवता की अनुभूति को तीव्र कीजिये।

तृतीय चरण– श्वास के सूक्ष्म पक्ष

अब आप श्वास की प्रक्रिया के प्रति सजग हो जाइये जो एक ही साथ विभिन्न आयामों में घट रही है। भौतिक शरीर हवा में श्वास लेता है। मानसिक शरीर जीवनी शक्ति में श्वसन करता है। सूक्ष्म शरीर प्राण में एवं अतिभौतिक शरीर शुद्ध ऊर्जा में श्वसन करता है।

भौतिक शरीर, जो कि स्थूल तत्त्वों– हड्डी, मांसपेशी आदि का मिश्रण है, वायु में श्वास लेता है। कुछ क्षणों के लिए भौतिक श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग होइये। एक बार जब चेतना भौतिक शरीर की श्वसन प्रक्रिया में स्थापित हो जाये तो और गहराई में जाइये और तब श्वसन के तीनों सूक्ष्म पक्षों के प्रति सजग होइये। अपनी चेतना को भौतिक शरीर के पार ले जाइये और अनुभव कीजिये कि तीन अन्य शरीर जीवनी शक्ति के साथ श्वास लेते हैं, स्पन्दित होते हैं।

मनः शरीर, जो चार तत्त्वों– मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार का मिश्रण है, जीवनी शक्ति में श्वसन करता है। यही पहला सूक्ष्म शरीर है जिसके प्रति आपको मन की तीव्रता एवं पूरी एकाग्रता के साथ सजग होना है। पहला सूक्ष्म पक्ष, मानसिक शरीर जीवनी शक्ति में श्वसन करता है और यही जीवनी शक्ति मानसिक संरचना के कार्य सम्पादन का कारण भी है।

मनःशरीर वह है जो ज्ञानेन्द्रियों के संसार के साथ पारस्परिक क्रिया करता है। अनुभव कीजिये कि वह जीवन शक्ति में श्वसन कर रहा है। जीवन ऊर्जा जिसे मनः शरीर श्वास में लेता है, वह उस वायु का एक पक्ष, एक गुण है जिसका भौतिक शरीर श्वसन करता है। जीवनी ऊर्जा में श्वसन करते हुए इस मनः शरीर के बोध, सजगता एवं अनुभव की गहराई में उतरिये।

अब सूक्ष्म शरीर के दूसरे पक्ष की ओर चलिये। सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म मन एवं सूक्ष्म जगत् के साथ अन्तःक्रिया करता है। सूक्ष्म शरीर प्राण वायु से अपना जीवन एवं पोषण प्राप्त करता है। सूक्ष्म शरीर मनः शरीर के सूक्ष्मतर पक्ष एवं अतीन्द्रिय शरीर के सतही पक्ष के साथ अन्तःक्रिया करता है।

जो प्राण सूक्ष्म शरीर पूरक करते समय भीतर और बाहर करता है उसका अवलोकन ऊर्जा कणों के रूप में, दृश्य ऊर्जा कणों की धारा के रूप में किया जा सकता है। और गहरे उतरिये तथा इस अनुभूति को तीव्र कीजिए कि सूक्ष्म शरीर प्राण वायु, प्रत्यक्ष प्राण वायु को ग्रहण कर रहा है। प्रत्यक्ष

प्राण का बोध ऊर्जा के कणों, ऊर्जा के अणुओं एवं ऊर्जा कणों की धारा के रूप में होता है।

अतीन्द्रिय शरीर का तीसरा पक्ष, जो शुद्ध ऊर्जा का क्षेत्र है, उसकी ओर जाइये। अतीन्द्रिय शरीर सूक्ष्म प्राण के रूप में श्वसन करता है, जहाँ प्राण केवल दिखाई ही नहीं देता, बल्कि उसमें बल होता है और वह गरमाहट, ताप तथा रंगों से भरा-पूरा होता है। जिस प्रकार गर्म हवा जब अग्नि से ऊपर उठती है तो वह खुले वातावरण में झिलमिलाती और भयानक गति प्रदान करती हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म प्राण को, जो ऊर्जा का शुद्ध रूप है, गरमाहट, प्रकाश, ताप एवं रंग में देखा एवं अनुभव किया जाना है। सजगता की प्रगाढ़ता एवं एकाग्रता के साथ अतीन्द्रिय शरीर की रचना के भीतर ऊर्जा के क्रिया-कलाप का अनुभव करते जाइये तथा द्रष्टा भाव से देखते जाइये।

चतुर्थ चरण– हृदय केन्द्र

अब अतीन्द्रिय शरीर के अन्दर हृदय क्षेत्र के प्रति सजग होइये। शारीरिक हृदय के प्रति सजग होइये तथा हृदय की धड़कन का अनुभव कीजिये। अतीन्द्रिय शरीर में, उसी के सदृश स्थान में, एक प्रकाश बिन्दु का स्पन्दन देखिये। यह प्रकाश बिन्दु हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ फैलता एवं संकुचित होता है। वहीं अतीन्द्रिय शरीर के भीतर प्रकाश बिन्दु को बढ़ते और घटते हुए देखा जाता है। हृदय क्षेत्र में इसी प्रकाश के स्पन्दन के प्रति सजगता को सघन एवं तीव्र कीजिये। प्रकाश का स्पन्दन हृदय की धड़कन के साथ लयबद्ध है। सम्पूर्ण अतीन्द्रिय शरीर प्रत्येक स्पन्दन के साथ प्रकाश से भर जाता है और पुन: अंधकार छा जाता है।

पंचम् चरण– रक्त संचार/प्राण का प्रवाह

अब आप भौतिक शरीर में हो रहे रक्त संचार के प्रति एकचित्त होइये। शरीर में प्रत्येक अंग से होकर रक्त का संचार हो रहा है। उसके प्रति सजग होइये। शरीर के अन्दर रक्त में प्रवाह की ध्वनि को सुनने की चेष्टा कीजिये। शरीर में विभिन्न नाड़ियों, धमनियों एवं रक्त वाहिकाओं के द्वारा बहते हुए रक्त के संचरण के प्रति सजग होइये। इस भौतिक क्रिया को अतीन्द्रिय शरीर में प्राण के प्रवाह के रूप में अनुभव किया जाता है।

ऊर्जा के प्रवाह के प्रति सजग होइये, जो पूरी रचना में व्याप्त है। आकाश के

अन्दर प्राण के सूक्ष्म संचरण की अनुभूति के प्रति सजग होइये। अतीन्द्रिय शरीर के सभी अंगों में प्राण के संचार का अनुभव कीजिये।

यही प्राण का बहाव अतीन्द्रिय शरीर को ऊष्मा, ज्योति एवं जीवनी शक्ति से भरता है। प्राण के प्रति सजगता को प्रगाढ़ कीजिये जो अतीन्द्रिय शरीर के आकाश को उष्मता, ज्योति एवं जीवन्तता से भरता है। इस प्राण के संचरण पर शीघ्र अपनी चेतना को एकाग्रचित बनाइये। इस प्राण की अनुभूति के प्रति सजग होइये।

सम्पूर्ण अतीन्द्रिय शरीर और आकाश के भीतर प्राण के संचरण के प्रति सजग होइये। जिस प्रकार शरीर के सभी अंगों में रक्त के संचरण से सम्पूर्ण शारीरिक संरचना को ऊर्जा, उष्मता और आराम पहुँचता है, उसी तरह प्राणों का संचरण अतीन्द्रिय शरीर के अंगों के सभी स्थानों को उष्मता, प्रकाश, आराम, जीवनी शक्ति और ऊर्जा से परिपूरित करता है। एक झलक में या एक सोच में प्राण के इस संचरण का अनुभव पूरे अतीन्द्रिय शरीर में किया जाता है। प्राण की सजगता को तीव्र कीजिये। अतीन्द्रिय शरीर में आकाश, प्राण एवं ज्योति की सजगता को बनाये रखिये तथा आन्तरिक नि:शब्दता एवं स्थिरता के अनुभव को गहरा कीजिये।

षष्ठ चरण– सम्पूर्ण शरीर द्वारा श्वसन

सम्पूर्ण अतीन्द्रिय शरीर के प्रति और उसके भीतर प्राण के संचरण के प्रति सजगता बनाये रखिये। यह कोई स्थानीकृत आकाश, जैसे– चिदाकाश या हृदयाकाश के प्रति सजगता नहीं है। सम्पूर्ण शरीर की एक पूर्ण आकाश के रूप में सजगता बनाइये। स्थूलाकाश, सम्पूर्ण शरीराकाश के प्रति सजगता को तीव्र कीजिये। इस सजगता में सहज और स्वाभाविक श्वसन का बोध कीजिये। जब आप श्वास लेते हैं तो अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण शरीर श्वास लेता है। वह भी नासिका छिद्रों के द्वारा नहीं, अपितु त्वचा के प्रत्येक रंध्र द्वारा।

अब जैसे ही आप प्रश्वास करते हैं तो अनुभव कीजिये कि प्रत्येक रंध्र से श्वास बाहर जाती है। प्रत्येक पूरक के साथ फैलाव का अनुभव होता है। अनुभव कीजिये कि सम्पूर्ण प्राण शरीर फैल रहा है। प्रत्येक रेचक के साथ शिथिलता का अनुभव होता है। प्राण शरीर को संकुचित होता अनुभव कीजिये। पूरक के साथ जब त्वचा के रंध्रों के सहारे श्वास

शरीर के भीतर जाती है तो अतीन्द्रिय शरीर के अन्दर भरते हुए प्राण का फैलाव होता है।

अतीन्द्रिय आकाश को फैलते हुए एवं प्रकाश की किरणों, प्रकाश कौंध, प्रकाश की चमक से भरते हुए देखिये। ज्यों ही श्वास शरीर से निकलती है त्यों ही स्थूलाकाश शिथिल एवं संकुचित होता है। इस घटना का अवलोकन कीजिये। इस सजगता को तीव्र कीजिये।

सप्तम् चरण– प्राणमय कोश की सजगता

शरीर के सभी भागों में ऊर्जा तथा प्राण की सजगता को बनाये रखिये। यही व्यान वायु प्राण के रूप में शरीर के सभी अंगों में व्याप्त है। हृदयावलोकन की अनुभूति की चेष्टा कीजिये। शरीराकाश, जो एक प्रकाश बिन्दु, प्रकाश कौंध, लघु प्रकाश की धारा से पूरित हो सभी दिशाओं में गतिमान है, उसे देखने की चेष्टा कीजिये। आपका सम्पूर्ण शरीर, सिर से पैर के अँगूठे तक प्रकाश के कणों से भरा हुआ है। शरीर के गतिमान सभी अंग प्रकाश कणों से परिपूर्ण हैं, जो सभी दिशाओं में अनिर्दिष्ट भटक रहे हैं। अब आप उदान वायु के प्रति सजग होइये जो शरीर के अंतिम छोरों में है। उदान वायु को गोलाकार प्रकाश तथा दक्षिणावर्त्त घूमती हुई ऊर्जा के रूप में दोनों पैरों, दोनों हाथों तथा सिर में देखिये। उदान वायु को पैरों के अँगूठों से नितम्बों तक, हाथ की अंगुलियों से कन्धे तक, गले से सिर तक बहते हुए देखिये तथा सजगता को विकसित कीजिये।

एक वृत्ताकार स्वरूप में ऊर्जा को अत्यधिक गति से दक्षिणावर्त्त चलती हुई कल्पना कीजिये। तत्काल दृष्टि एवं अनुभव के द्वारा इस अनुभूति को विकसित करने की चेष्टा कीजिये। आप केवल प्रक्रिया के प्रति सजग रहिये। प्राण वायु, जो शरीर के छोरों पर अबाध रूप से जा रही है, उसके प्रति सजग रहिये।

अब आप उदर प्रदेश में नाभि से मध्य-पटल तक जाती हुई समान वायु की अनुभूति को विकसित कीजिये। समान वायु बगल के रास्ते से चलती है। कल्पना कीजिये की एक प्रकाश की तरंग उदर के आर-पार बाएँ से दाएँ एवं दायँ से बाएँ की ओर चलती है। तात्कालिक कल्पना एवं अनुभव को विकसित कीजिये। उदर में प्राण के तीव्रता एवं एकाग्रता से संचरित होने के प्रति सजग होइये।

अब आप वक्ष प्रदेश में हो रहे प्राणों के संचरण के प्रति सजग होइये। प्राण

वायु की अनुभूति को विकसित कीजिये। रीढ़ की सतह से गले तक ऊपर जाती हुई प्राण वायु की कल्पना कीजिये। अन्त:श्वास के समय मध्य पटल से गले तक ऊपर की ओर चढ़ती हुई प्रकाश की तरंगों को समुद्र की तरंगों जैसा देखिये तथा नि:श्वास के समय इसे नीचे की ओर गिरते हुए देखिये। प्रगाढ़ सजगता एवं एकाग्रता से वक्ष प्रदेश में प्राण वायु के संचरण का अनुभव कीजिये।

अंतत: नाभि से मूलाधार तक निम्न उदर में चलती हुई अपान वायु की कल्पना कीजिये। पूरक के समय नाभि से मूलाधार तक एक प्रकाश ऊर्जा को नीचे की ओर भ्रमण करते हुए देखिये। रेचक के समय यह प्रकाश तरंग ऊपर की ओर भ्रमण करती है। नाभि से मूलाधार तक भ्रमण करती हुई अपान वायु की सजगता को तीव्र कीजिये।

आठवाँ चरण– अभ्यास की समाप्ति

स्थूलाकाश में प्राणिक शरीर के मानस दृश्य को विलीन होने दीजिये। सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त आकाश की अनुभूति कीजिये। भौतिक शरीर के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये कि भौतिक शरीर ध्यान के आसन में बैठा हुआ है। जिस कमरे में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग होइये। धीरे से मन को बहिर्मुखी बनाइये। गहरी लम्बी श्वास लेकर तीन बार ॐ मंत्र का उच्चारण कीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

लय धारणा

आत्मज्ञान के दो मार्ग हैं। पहला चेतना को विस्तार की ओर ले जाता है तथा दूसरा पूर्ण विलय या शून्य की ओर। पहले मार्ग में अनेक आध्यात्मिक अभ्यास मिले हुए हैं और उनकी शिक्षा बहुत से गुरुओं द्वारा दी जाती है। दूसरा मार्ग लय के नाम से जाना जाता है तथा इसकी शिक्षा कम ही लोगों द्वारा दी जाती है। क्रॉस के संत जॉन ने इसी की चर्चा की थी जब उन्होंने कहा था, "भगवान् की कसम, मैं हर एक रात मरता हूँ।" यह मृत्यु तथा यह रात क्या है? जब मन को स्रोत से खींच लिया जाता है तथा जब प्राण एवं शरीर जड़ता की अवस्था में निष्प्राण बने रहते हैं, जैसे मृत हों, तो वही लय है। लय की अन्तिम अवस्था तथा मृत्यु की अनुभूति में केवल यही अन्तर है कि मृत्यु के बाद आप उसी शरीर में वापस नहीं हो सकते, जबकि लय की अनुभूति के बाद आप उसी शरीर एवं मन में वापस हो सकते हैं तथा उसी व्यक्ति के जैसा जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

लय योग एवं कुण्डलिनी

लय का अर्थ है विलय होना। विलय हम किस चीज का करते हैं? विलय मन का नहीं होता, क्योंकि यह तो कुण्डलिनी योग की साधना की सामान्य प्रक्रिया में होता ही है। जब आप मूलाधार से स्वाधिष्ठान और फिर मणिपुर की ओर जाते हैं तो आप धीरे-धीरे मन की विभिन्न परतों का विलयन करते हैं। कुण्डलिनी योग में प्राणों का भी विलयन होता है। कुण्डलिनी योग एवं क्रिया योग का औपनिषदिक रूपान्तरण ही लय योग है। उपनिषदों में कहा गया है कि हठयोग के अभ्यास से आप शरीर में एकत्र दोषों पर विजय पा सकते हैं और इस शुद्धि के उपरान्त आप परम आत्मन् में स्थापित हो जाते हैं जो चैतन्य या दिव्य है। यह मात्र एक अनुभूति नहीं, अपितु सम्पूर्ण विलय

है। इस अवस्था में सभी वायु, ऊर्जा की समस्त गतियाँ, मन की सभी चेष्टाएँ पूर्णरूपेण बन्द हो जाती हैं और व्यक्तित्व का पूर्ण विलय हो जाता है।

यह मात्र दर्शन या अनुभूति प्राप्त करना नहीं है, अपितु अपने आपको ब्रह्माण्डीय आत्मन् में पूर्णतया विलीन कर देना है। इस विलयन को चेतना के सामान्य प्रतिरूपों के रूपान्तरण एवं लोकोत्तर प्रकृति के विकास के रूप में देखा जाता है। इस व्यक्त प्रकृति को अव्यक्त प्रकृति के साथ विलीन हो जाना है। अतएव सम्पूर्ण जीवनी शक्ति का यह विलयन और फिर पुनर्जन्म ही लय योग है।

कुण्डलिनी योग एक तांत्रिक प्रक्रिया है और लय योग वैदिक प्रक्रिया है। तंत्र की साधना में महत्त्व ऊर्जा को, संवेदना को, सजगता को सुग्राही बनाने को दिया जाता है, जिससे कि जीवनी शक्ति की अनुभूति प्राप्त हो सके। कुण्डलिनी एवं लय योग, दोनों ही प्राणों के, चक्रों के जागरण एवं तत्त्वों की उत्तेजना तथा शुद्धिकरण का प्रयास करते हैं, परन्तु लय योग चेतना की सजगता पर भी बल देता है।

लय योग का लक्ष्य है बोध को सुग्राही बनाना, जिससे कि चेतना की अनुभूति हो सके और हमें उस आयाम में हो रहे परिवर्तनों का ज्ञान हो सके। अवलोकन करने और चेतना के क्षेत्र में अनुभूतियों को नियंत्रित करने की क्षमता से अन्ततोगत्वा हम प्राण के जागरण, चक्रों एवं तत्त्वों के जागरण में सक्षम हो जाते हैं। लय एक प्रणाली है जो प्राण एवं चेतना के आकार, दोनों में संतुलन स्थापित कर कुण्डलिनी तथा क्रियायोग की साधनाओं के एक सम्पूरक का काम करती है और इस प्रकार हमारी साधना को और अधिक पूर्णता प्रदान करती है।

अवचेतन में प्रवेश

जब आप लय की अवस्था में प्रथम प्रवेश करते हैं तो व्यक्तिगत चेतना पूर्ण रूप से विखण्डित हो जाती है। वहाँ अहम् का बोध नहीं रह जाता, समय, दिक्, लक्ष्य या वैयक्तिकता का ज्ञान नहीं रहता है। किसी-किसी की तो श्वास भी रुक जाती है। यदि कोई इस लय अवस्था की साधना एवं अनुभूति को बनाये रखता है तो उसका सम्पूर्ण शरीर शव-काठिन्य की अवस्था में चला जाता है। यह अवस्था आधा घण्टा, एक घण्टा या पूरी रात बनी रह जा सकती है, जिस समय शरीर प्राण रहित रहता है। लय की अवस्था में मन अभिव्यक्ति की अवस्था से विघटन की अवस्था में चला जाता है। इस अवस्था में मन सूक्ष्म अवस्था में वापस आ जाता है।

जिस प्रकार एक छोटा पौधा पुन: बीज में आ जाता है उसी प्रकार मन अपनी मूल स्थिति में आ जाता है जिसे मूल प्रकृति कहते हैं। इस अवस्था में कोई सृजन, क्रिया, गति या स्पन्दन नहीं होता है। यह यथावत् की स्थिति होती है जहाँ सभी कुछ निलम्बित अवस्था में रहता है। इस समय न तो कोई विकास होता है और न कोई अवनति, न कोई समय होता है, न कोई स्थान। इस समय आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार, मन अवचेतन शरीर में प्रवेश करता है, या वेदान्त के अनुसार, आनन्दमय कोश में प्रवेश करता है। वहाँ जाकर चेतना तरोताजा बनती है और अचेतन आत्मन् के साथ समर्थ बन जाती है। पतंजलि द्वारा राजयोग सूत्रों में प्रतिपादित अष्टसिद्धियाँ भी वहाँ पर फूलती-फलती हैं, जिससे कि चेतना जब अपनी सामान्य स्थिति में आये तब उसमें आध्यात्मिक शक्तियाँ निहित हो जायें।

कृष्ण रन्ध्र एवं श्वेत रन्ध्र

लय योग के सिद्धान्त के अनुसार हमारी स्वयं की चेतना के अन्दर एक काला रन्ध्र है और एक श्वेत रन्ध्र है। आध्यात्मिक जागरण की प्रक्रिया में हमारे लिए यह स्वाभाविक है कि हम अनाहत के प्रति आसक्त रहें। हम सदा यह मानते आये हैं कि अनाहत विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म मानसिक गतियों, जैसे, भावनाओं एवं संवेदनाओं से सम्बद्ध रहता है। अधिकतम साधनाओं में हम अनाहत तक ही पहुँचते हैं।

अनाहत के आगे एक भिन्न प्रकार का अनुभव घटित होता है, जिसका मन अथवा शरीर से अथवा उन अनुभूतियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता जिन्हें हम जीवन में प्राप्त करते हैं। अनाहत से आगे श्वेत रन्ध्र हैं जहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। विशुद्धि यंत्र, श्वेत वृत्त उस श्वेत रन्ध्र को निरूपित करता है। हमारे व्यक्तित्व का काला रन्ध्र मूलाधार है। हमारे सभी वर्तमान एवं अन्तर्निहित व्यवहार, चेतना, रचनात्मकता, दिव्य शक्तियाँ एवं अनुभवातीत सजगता, सभी इस क्षेत्र में खींच लिये जाते हैं। हममें शक्ति है, क्षमता है और ऊर्जा है, किन्तु एक बार जब वह उच्च सजगता मूलाधार में खिंच जाती है तब हम एक साधारण व्यक्ति होकर रह जाते हैं और संवेदी विकर्षणों, ऐन्द्रिक सुखों की खोज करने लग जाते हैं, उसी प्रकार का जीवन जीने लग जाते हैं जैसा कि पुश्त-दर-पुश्त जीते आये हैं।

अब चूँकि हम इस काले रन्ध्र के, मूलाधार के शक्तिशाली आकर्षण के साथ बँध गये हैं, हमारी मुक्ति का कोई मार्ग नहीं है। यहीं पर जीवन के चक्र और प्रारब्ध, कर्मों के नियम का अनुभव होता है। वर्णक्रम का दूसरा छोर है

विशुद्धि। इस अन्त: शक्ति को विशुद्धि के श्वेत रन्ध्र से मानवीय चेतना के आयाम में अवतरित होना है। यही लय का सिद्धान्त और धारणा है। अतएव, जिस प्रकार 'महत् विस्फोट' तथा ब्रह्माण्ड के बाह्य प्रसरण का सिद्धान्त है उसी प्रकार हमारे अन्दर भी श्वेत रन्ध्र और 'वृहत् विस्फोट' है। श्वेत चक्र, अर्थात् विशुद्धि का प्रतीकात्मक प्रतिरूप आकाश का द्योतक है, जो भौतिक जगत् का मूलतम तत्त्व है। विस्फोट, जो सचेतन रूप से सतत् प्रसारित हो रहा है और सृष्टि कर रहा है, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान से मूलाधार की सतह तक का द्योतक है। ये ही वृहद् विस्फोट की अभिव्यक्ति की चार तरंगें हैं।

उल्टा वृक्ष

वस्तुत: विशुद्धि हमारे जीवन की किसी भी अनुभूति से, जो हमें प्राप्त हुई हों, जुड़ा नहीं है, बल्कि हम कह सकते हैं कि विशुद्धि जीवन का बीज है, कारण शरीर है, जहाँ से अनेक शरीरों की उत्पत्ति होती है। यह बीज ही है जिससे वृक्ष, धड़, शाखाएँ, पत्ते तथा फल आते हैं। भगवद् गीता के पन्द्रहवें अध्याय में, बहुत ही सुन्दर ढंग से श्लोकों में इसका वर्णन मिलता है। एक वृक्ष का उदाहरण दिया गया है जिसकी जड़ ऊपर तथा शाखाएँ नीचे हैं। वह जड़ आकाश तत्त्व है, जो सृष्टि का प्रथम तत्त्व है। दूसरे तत्त्वों की उत्पत्ति आकाश तत्त्व से हुई है। अनाहत धड़ के अनुरूप है। मणिपुर शाखाओं का प्रतीक है, चारों दिशाओं में जाती हुई एवं समस्त अस्तित्व का भरण-पोषण करती हुई जीवनी शक्ति। स्वाधिष्ठान का प्रतिनिधित्व लाखों पत्ते करते हैं। ये पत्ते कर्माशय के प्रतीक हैं, कर्म जो हमारी चेतना के गहरे स्तर पर एकत्र हैं और हमें यह ज्ञात भी नहीं कि ये विभिन्न पत्ते कौन हैं, इनका क्या अर्थ है, तात्पर्य है। मूलाधार वह वर्जित फल है जिसे हम प्रतिदिन हर पल खाते रहते हैं।

शून्य में छलांग

हालाँकि प्रारम्भ में हमें सभी चक्रों के साथ कार्य करना है, परन्तु लय को सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि हम मूलाधार और विशुद्धि के साथ काम करें। शुद्ध वेदान्तिक दृष्टिकोण से ये दोनों चक्र– मूलाधार एवं विशुद्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। जन्म एवं सृष्टि का निरूपण विशुद्धि द्वारा किया जाता है तथा मृत्यु एवं अवरोध मूलाधार द्वारा प्रस्तुत होते हैं। वेदान्तिक दृष्टि में यहाँ हम अन्तिम चरण में पहुँचने का प्रयास करते हैं जहाँ हमारी चेतना मूलाधार

में गोता लगाती और विशुद्धि में आकर निकलती है, जहाँ सब कुछ शुद्ध है, नवीन है, अत्यधिक सृजनशील, लयबद्ध, संतुलित एवं प्रकाशपूर्ण है।

मूलाधार एक विलक्षण मानसिक केन्द्र है, क्योंकि यह अकेला केन्द्र है जिसमें असीम अन्त:शक्ति निहित है। यह किसी व्यक्ति को कर्मों एवं संस्कारों के रज्जुओं से बाँध सकता है, जो इतने शक्तिशाली हैं कि उन्हें तोड़ना असम्भव है। फिर भी यदि इस चक्र को सही ढंग से संचालित किया जाये तो यह आपको गहरे उतर कर अपने आप में पूर्णतया विलीन हो जाने के लिए और पुन: विशुद्धि से जन्म लेने के लिए प्रेरित कर सकता है।

मानस दर्शन एवं कम्पन क्षेत्र

लय धारणा के अभ्यासों में मानस दर्शन एक अहम् भूमिका अदा करता है। व्यक्त जगत् में तथा अव्यक्त आयाम में भी, दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जितनी भी प्रेरणाएँ हमें मिलती हैं, उनमें साठ प्रतिशत स्वभावत: दृष्टिगत होती हैं, अतएव जब हम इन निवेशों को मस्तिष्क में जाने से रोक देते हैं तब दृष्टि की शक्ति का विकास आन्तरिक रूप से होना है। इस अन्तर्दृष्टि के विकास से हमें वह क्षमता प्राप्त होती है जिससे हम अन्ततोगत्वा इच्छा, ध्यान तथा मन की छितराई हुई ऊर्जा को संकेन्द्रित कर चेतना को बदल सकते हैं।

मानस दर्शन हमारे मानसिक व्यक्तित्व के कम्पनीय आयाम को प्रेरित करता है। लय में यह आवश्यक है कि मानस दर्शन की इस शक्ति को सम्पूर्ण क्षमता तक जाग्रत किया जाये, क्योंकि मानस दर्शन के माध्यम से ही हम अपने मानसिक व्यक्तित्व के कम्पन क्षेत्र को नियंत्रित कर ऊर्जा की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण रख सकते हैं। मानस दर्शन की ही इस शक्ति के माध्यम से हम शरीर के कम्पन क्षेत्र पर पुन: नियंत्रण पाकर अन्ततोगत्वा चेतना की परिवर्तित अवस्थाओं पर नियंत्रण रख सकते हैं। शरीर के कम्पन में क्षेत्र ऊर्जा के अनुभव एवं चेतना के अनुभव पर नियंत्रण रखने की क्षमता होती है। इस कम्पन को स्पन्दन कहते हैं। कम्पन या स्पन्दन तत्त्वों से परे का तल है जहाँ तत्त्व, जो ऊर्जा एवं चेतना की पारस्परिक क्रियाओं की प्रस्तुति करते हैं, एक आदिकालीन अवस्था में रहते हैं।

लय– अंतिम योग

लय योग में अभ्यास के चार स्तर होते हैं। प्रथम स्तर भय, मैथुन, आहार एवं निद्रा, इन चार मौलिक वृत्तियों की चेतना का परिशोधन एवं प्रबन्धन है। दूसरा

चक्रों की, चक्र चेतना की अनुभूति करना है। तीसरा पक्ष है तमस, रजस एवं सत्त्व गुणों का तथा गुणों के मानसिक आविर्भाव का प्रबन्ध। चतुर्थ स्तर है चेतना के या लोक के गुणों के भावातीत आयामों को समझना। जिन लोगों ने लय योग को सिद्ध कर लिया है वे अपनी जीवन शक्ति को नियंत्रित करने में सफल होते हैं तथा कुछ मामलों में अपने शरीर एवं अपना स्वयं का कायाकल्प भी कर सकते हैं, क्योंकि वे जीवनी शक्ति को नियंत्रित करने एवं एक दिशा में प्रवाहित कर सकने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी मान्यता है कि लय योग हठ, राज, कर्म एवं भक्ति योगों से भी आगे अन्तिम योग है। वस्तुत: अन्य सभी योगों की अन्तिम अवस्था का लक्ष्य साधक को लय की अनुभूति के निकट पहुँचाना ही होता है।

समाधि क्या है? समाधि संयोग, सम्मिलन की अनुभूति है। यह बाह्य प्रकृति के विघटन की अनुभूति है, जो राजयोग का लक्ष्य है। समाधि में भी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं जो चेतना की परिवर्तित अवस्था, मनुष्यों की प्रवृत्ति, मानवों के व्यवहारों एवं पारस्परिक क्रिया-कलापों को निरूपित करती हैं, जो अन्ततोगत्वा वैयक्तिकता का ब्रह्माण्डीय ऊर्जा में विलय कर देती है। भक्ति योग में भी नौ अवस्थाओं की व्याख्या की गई है और अन्तिम अवस्था में सायुज्य होता है, जिसका अर्थ होता है चिन्तन की विषय-वस्तु के साथ पूर्ण एकात्मता, विषय-वस्तु के साथ विलयन, सायुज्य। अतएव इस सायुज्य में बाह्य प्रकृति का भी विघटन होता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि अन्त में सभी योग जिज्ञासु को ब्रह्माण्डीय, सर्वव्यापी चेतना की ओर ही ले जाते हैं।

लय योग मृत्यु का एक रूप है, ज्ञात की मृत्यु। अतएव लय योग की विधियों को युगों-युगों से आज तक गुप्त रखा गया है। लय योग की साधना के पूर्व प्रत्याहार एवं धारणा में सिद्धि प्राप्त करनी होती है। इन साधनाओं के निर्देश, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के स्वभाव, शरीर, मस्तिष्क, मन, भावना, संवेदनशीलता, सृजनशीलता को रूपान्तरित करने के लिए होते हैं, जिससे कि वह अनुभवातीत चेतना की अनुभूति कर सके। यहाँ लय योग की साधना का एक परिचय दिया गया है जिससे कि आगे सरलता से, स्वाभाविक ढंग से तथा स्वत: लय की गहरी साधना में आगे प्रगति करने की क्षमता प्राप्त हो सके, जिसमें व्योम पंचक शृंखला सम्मिलित है।

हरि ॐ तत्सत्

लय धारणा एक

मूलाधार एवं विशुद्धि दृष्टि

आकाश तत्त्व को अन्य सभी तत्त्वों के विकास का आधार माना गया है। आकाश के भीतर ही मानवता के समस्त भौतिक अथवा आध्यात्मिक विकास क्रम घटित होते हैं। आकाश में विकास की अनन्त संभावनाएँ हैं, साथ ही यह अन्य तत्त्वों की प्रकृति एवं विकास में भी हाथ बँटाता है। विशुद्धि आकाश तत्त्व को दर्शाता है। अनाहत दूसरे तत्त्व, वायु का प्रतिनिधित्व करता है, जो उसी ऊर्जा का सघनतर रूप है। उसी भाँति अग्नि तत्त्व को दर्शाने वाला मणिपुर चक्र और जल तत्त्व को दर्शाने वाला स्वाधिष्ठान चक्र ऊर्जा के अधिक सघनतर स्वरूप हैं। मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्त्व को दर्शाने वाला है, जो उसी ऊर्जा का अधिकाधिक ठोस रूप है। पदार्थ ब्रह्माण्डीय शक्ति की समस्त अन्त:शक्ति का प्रतीक है। उस ब्रह्माण्डीय शक्ति का संकेन्द्रण बालू के एक कण में, एक परमाणु में भी है। अत: पदार्थ की महत्ता हर प्रकार से है।

ऊर्जा का संकेन्द्रित अन्तिम स्वरूप पदार्थ है। इसका प्रतिनिधित्व मूलाधार करता है और आकाश, जिसका प्रतिनिधित्व विशुद्धि चक्र करता है, ऊर्जा का विस्तारित रूप है, जो तत्त्वों और चेतना को अवलम्बन प्रदान करता है। मूलाधार में वह अमित क्षमता है जो आपकी शक्ति को खींच सकती है और अन्य चक्रों को लांघ कर आपको सीधे विशुद्धि के ऊपर धकेल सकती है। अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए यदि आप मूलाधार की साधना करें तो आपको अन्य चक्रों से गुजरने की आवश्यकता नहीं होगी। यदि आप मूलाधार को अच्छी तरह संभाल सकें तो आप सीधे विशुद्धि चक्र पर पहुँच सकते हैं। जैसे ऊर्जा का अभिव्यक्तिकरण आकाश से पृथ्वी तक तत्त्वों के रूप में हुआ है, उसी प्रकार चेतना का अभिव्यक्तिकरण भी आकाश के विविध आयामों

में इन चक्रों के माध्यम से हुआ है। मूलाधार चक्र में पृथ्वी तत्त्व है जो ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है और आकाश तत्त्व गुणरहित है। इस प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए सभी चक्रों, तत्त्वों और चेतना की विभिन्न अवस्थाओं की पूर्ण जानकारी आवश्यक है, जिसकी अनुभूति चक्र-जागरण से प्राप्त होती है। इसके लिए क्रमबद्ध तैयारी की प्रक्रिया तय करनी होगी। हममें से बहुसंख्य लोगों के लिए यह संभव नहीं है कि हम अपने व्यक्तित्व की मानसिक और प्राणिक वृत्तियों की उपेक्षा कर दें। यह कुछ चुने-चुनिन्दे लोगों के लिए ही संभव है जिनके पास निश्चयात्मक बुद्धि और दृढ़ इच्छा-शक्ति है, और जो अपने व्यक्तित्व को अपने में ही लय करने की कठिन प्रक्रिया को स्वीकार कर सकते हों।

विधि 1– मूलाधार और विशुद्धि जागरण

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें। आँखें बन्द, मेरुदण्ड सीधा और सिर भी सीधा रखें। दोनों हाथों को घुटनों पर अथवा शरीर के सामने सुविधानुसार रखें। कुछ क्षणों के लिए अपना सम्पूर्ण अवधान को अपने शरीर के अन्दर केन्द्रित करें। अपने मन को शरीर के विभिन्न अंगों पर घुमायें। प्रत्येक अंग का मानस-दर्शन करें। अंग के अस्तित्व को स्वीकार करें। शरीर की सत्ता को स्वीकार करते हुए और भौतिक स्थिति के प्रति जागरूकता कायम रखते हुए उस अंग में यदि किसी प्रकार का तनाव या कड़ापन हो तो उसे दूर करें। क्रमश: अपनी जागरूकता के क्षेत्र से सभी प्रकार के विक्षेपों को निर्मूल करें। अपने शरीर के अवलोकन में अपने को अधिक-से-अधिक निमग्न करें। जैसे-जैसे आप अवलोकन में निमग्न होंगे, आप देखेंगे कि शरीर अविचल हो रहा है। आप नीरवता और शान्ति का अनुभव करने लगेंगे।

द्वितीय चरण– शक्ति के प्रति जागरूकता

शरीर के भीतर इस प्रकार की नीरवता, अचलता और शान्ति की अवस्था में आप शक्ति के सूक्ष्म प्रवाह के प्रति जागरूक हो जायें। सूक्ष्म प्रवाह का अनुभव मेरुदण्ड के मूल से मेरुदण्ड के शीर्ष तक गति के आरोहण के रूप में होता है। इस प्रवाह का अनुगमन करते जायें और इसके प्रति अपनी जागरूकता को तीव्र करते जायें। स्वाभाविक अभिश्वसन के समय सूक्ष्म

प्रवाह मेरुदण्ड मूल से ऊपर बहते हुए मेरुदण्ड के शीर्ष तक पहुँचता है, जिसे आप अपने भीतर महसूस करें। स्वाभाविक नि:श्वास के समय आप अनुभव करेंगे कि सूक्ष्म प्रवाह शीर्ष से मेरुदण्ड मूल की ओर नीचे उतर रहा है। श्वास और प्रश्वास के समय शरीर के भीतर अनुभूत सूक्ष्म गति के प्रति सजग रहें।

तृतीय चरण– मूलाधार के प्रति जागरूकता

अब आप अपनी एकाग्रता को आरम्भिक बिन्दु पर केन्द्रित करें। मेरुदण्ड के मूल में स्थित मूलाधार चक्र से उठने वाली लहर की आरम्भिक अवस्था पर ध्यान केन्द्रित करें। पुरुषों के मूत्रेन्द्रिय और मलेन्द्रिय के बीच और स्त्रियों के गर्भाशय ग्रीवा के पृष्ठ भाग में स्थित मूलाधार चक्र पर अपना पूर्ण अवधान केन्द्रित करें। मूलाधार पर अपना अवधान केन्द्रित करते समय आप श्वसन के समय सहज एवं स्वाभाविक रूप से अनुभूत होने वाले ऊर्ध्वगामी प्रवाह के दर्शन को अवरुद्ध न होने दें।

शरीर के अन्दर स्थित मूलाधार चक्र के प्रति जागरूक हो जायें। वहाँ एक शक्ति के एक आवर्त का, एक दीप्तिमान केन्द्र का अन्तर्दर्शन करें। मूलाधार स्पन्दनशील और ऊर्जा से कम्पित है। सम्पूर्ण मेरुदण्ड में, मूल से शीर्ष तक आवर्तों के रूप में आरोहण-अवरोहण करते इन स्पन्दनों और कम्पनों का अनुभव करें। श्वास लेते समय ये ऊपर चढ़ते हैं और श्वास छोड़ते समय ये नीचे उतरते हैं।

चतुर्थ चरण– मूलाधार में ॐ का उच्चार

अब आप अपना अवधान विशुद्धि चक्र के क्षेत्र में ले आयें। गहरा श्वसन करें और तीन बार ॐ का उच्चारण करें। ॐ का उच्चारण करते समय अपनी समस्त जागरूकता मूलाधार पर केन्द्रित करें। श्वास ग्रहण करते समय और ॐ के उच्चारण के लिए तैयार होते समय अपनी सम्पूर्ण चेतना को विशुद्धि चक्र पर ले आयें। पुन: ॐ के मन्त्रोच्चार के समय सम्पूर्ण जागरूकता के साथ मूलाधार चक्र में स्पन्दन का अनुभव करें। जैसे ही आप ॐ का उच्चारण करें, मूलाधार चक्र के प्रति सजग हो जायें, और जब मन्त्रोच्चार नहीं कर रहे हों, उस समय श्वास लेते हुए अपनी जागरूकता को विशुद्धि चक्र पर ले जायें।

ॐ के उच्चारण के साथ आपको मूलाधार के खुलने का अनुभव हो सकता है। सामान्यत: तनाव की अवस्था में मूलाधार क्षेत्र की पेशियों

का संकुचन होता है। अन्य समय में उदरीय पेशियों और ग्रीवा-क्षेत्र की पेशियों का संकुचन होता है। ॐ के उच्चारण के समय मूलाधार चक्र के खुलने और निर्बन्ध होने का अनुभव विशेष रूप से करें। महसूस करें कि पेशियों की जकड़न खुल रही है। यह सुनिश्चित करें कि मूलाधार क्षेत्र पूरी तरह विश्रान्त हो रहा है। उस क्षेत्र का तनाव और संकुचन समाप्त हो रहा है।

श्वास लेते समय आपकी जागरूकता विशुद्धि चक्र पर रहती है। ॐ का मन्त्रोच्चार करते समय अपना अवधान मूलाधार पर ले आयें। फिर, आप श्वास लेते, विश्राम करते अथवा किसी की आवाज सुनते समय अपना ध्यान विशुद्धि पर ले आयें। इस अभ्यास में दोनों केन्द्रों का अन्तर्दर्शन करें। जैसे-जैसे आप एक चक्र से दूसरे चक्र पर ध्यान को उन्मुख करते हैं, उसे दीप्तिमान लौ के रूप में देखें। कई मिनटों तक यह क्रिया जारी रखें।

पंचम् चरण– अभ्यास का समापन

अभ्यास समाप्त करने की तैयारी करें। ॐ का उच्चारण बंद कर दें। मूलाधार और विशुद्धि पर से ध्यान को वापस लायें। ध्यान-मुद्रा में बैठे अपने शरीर के प्रति सजग हो जायें। क्रमश: अपने मन और इन्द्रियों को बहिर्मुख करें। धीरे-से अपने शरीर को हिलायें-डुलायें और नेत्रों को खोल लें।

विधि 2– मूलाधार श्वसन

प्रथम चरण– तैयारी

किसी आरामदायक आसन में बैठकर अपने शरीर को तैयार करें, सिर, गर्दन और मेरुदण्ड को एक सीधी रेखा में लायें, हाथों को घुटनों पर रखें, आँखों और मुँह को बंद कर लें। कुछ क्षणों के लिए अपने शरीर का अवलोकन करें और तनाव, कड़ापन अथवा कसावट को मानसिक रूप से दूर करें। ऐसा महसूस करें कि आपका शरीर स्थिर, शान्त और विश्रान्त है। अब हम मूलाधार श्वसन की एक विधि का अभ्यास करने जा रहे हैं। इस क्रिया में हमें मूल बन्ध और नासिकीय श्वसन को जोड़ना होगा। श्वास लेते समय मूलाधार प्रदेश की पेशियों का संकुचन होता है। श्वास को अन्दर रोकते समय मूल बन्ध के संकुचन को कायम रखें। श्वास छोड़ते समय उदरीय प्रदेश के अवरोध को धीरे-धीरे मुक्त करना है।

द्वितीय चरण– मूलाधार में नाड़ी-शोधन और मूल बन्ध

हम नाड़ी-शोधन के सरल अभ्यास से आरम्भ करेंगे। इस अभ्यास में सम्पूर्ण प्रक्रिया की अनुभूति मूलाधार में करनी है। अपने दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा को अपने ललाट पर रखें। दाहिनी अनामिका का उपयोग बायीं नासिका को बन्द करने में और दाहिने अँगूठे का उपयोग दाहिनी नासिका को बन्द करने में करें। अभ्यास का प्रारंभ दाहिनी नासिका से होता है। सर्वप्रथम दाहिनी नासिका से श्वास भरें। इधर पिंगला नाड़ी है। श्वास लेते समय मूलाधार चक्र के प्रति जागरूक हो जायें और बिना तनाव उत्पन्न किये मूलाधार क्षेत्र को अधिक से अधिक संकुचित करें। सात की गिनती तक ली गई श्वास को भीतर ही रोक रखें और मूलबन्ध एवं मूलाधार पर स्थिर लौ के अन्तर्दर्शन को कायम रखें। इड़ा नाड़ी (बायीं नासिका) से श्वास बाहर निकालें। नि:श्वास के समय संकुचन धीरे-धीरे कम होगा। सात की गिनती तक श्वास को बाहर ही रोके रखें। इस बीच शरीर की अन्य पेशियों के संकुचन को ढीला करने का प्रयास करें, उदर एवं कन्धों में आयी जकड़न को मुक्त करें।

पुन: इस प्रक्रिया को दुहरायें। बायीं नासिका से श्वास लें। श्वास को रोक रखें और मूलबन्ध लगायें। फिर, दाहिनी नासिका (पिंगला स्वर) से श्वास को बाहर करें और संकुचन को ढीला करें। श्वास को सात की गिनती तक बाहर (बहिर्कुम्भक) रखें। इस प्रकार तीव्र सजगता के साथ आपको मूलाधार के प्राणों को चालित करना है।

तृतीय चरण– मूलाधार में ज्योति और वर्गाकृति का अन्तर्दर्शन

सम्पूर्ण अवधान को मूलाधार चक्र पर केन्द्रित करें, मूलाधार चक्र का एक ज्योति-स्फुल्लिंग के रूप में मानस दर्शन करें। वह ज्योति एक वर्गाकार चौकोर के भीतर प्रज्वलित है, और सम्पूर्ण प्रतीक मूलाधार-क्षेत्र में अवस्थित है। जितनी स्पष्टता से आप इस छवि को धारित करेंगे, आपकी एकाग्रता उतनी प्रगाढ़ होगी। दायीं नासिका से श्वास लें और धीरे-धीरे मूलबन्ध का अभ्यास करें। श्वास धीमी, गहरी और लम्बी होनी चाहिए। पूरी तरह श्वास भर लेने के बाद नासिका को बन्द कर दें, श्वास को भीतर रोक कर रखें और मन-ही-मन एक से सात तक की गणना करें। बायीं नासिका खोल कर उसी से श्वास को बाहर जाने दें।

श्वास का बहिर्गमन धीमा, गहरा और लम्बा होना चाहिए। एक से सात तक की गिनती तक श्वास को बाहर ही रखें और पेशियों को पूरी तरह विश्रान्त होने दें।

पुन: बायीं नासिका से श्वास लें और मूलबन्ध लगायें। रेचक मन्द, गहरा और लम्बा होना चाहिए। एक से सात तक की गिनती तक श्वास को अन्दर रोक कर रखें। मूलाधार क्षेत्र के संकुचन को बनाये रखें, साथ ही वर्गाकार चौकोर में प्रज्वलित स्फुल्लिंग के प्रति जाग्रत रहें। तब दायीं नासिका खोल कर उसी से धीरे-धीरे लम्बी और गहरी श्वास छोड़ें। बाहर गयी श्वास को सात तक की गिनती तक बाहर ही रहने दें। संकुचन एवं शरीर के अन्य अंगों में अनुभूत तनाव को मुक्त करें।

यह अभ्यास का एक चक्र हुआ। इस प्रकार दो और चक्र पूरा करें। इस बात का ख्याल रखें कि श्वास लेने की प्रक्रिया में किसी प्रकार की उत्तेजना न हो। प्रत्येक चक्र के पूरा होने पर हाथों को नीचे लायें, किन्तु तुरंत मूलाधार से ध्यान को खींच कर विशुद्धि पर ले आयें। अपने ध्यान को मूलाधार पर ठहरने नहीं दें। जैसे ही अभ्यास का एक चक्र पूरा हो, तुरंत विशुद्धि चक्र पर वापस आयें। दूसरा चक्र प्रारम्भ करने पर पुन: मूलाधार चक्र पर लौट आयें। उस चक्र की समाप्ति पर विशुद्धि चक्र पर वापस आयें। जब आप अभ्यास के तृतीय चक्र में प्रवेश करें तो मन को अनावश्यक रूप से अभ्यास के क्षेत्र में भटकने न दें।

चतुर्थ चरण– अभ्यास की समाप्ति

अभ्यास के तीन चक्र पूर्ण करने के बाद उसे समाप्त करने की तैयारी करें। मूलाधार और विशुद्धि पर से अपनी सजगता को हटा लें। अपने श्वसन को सामान्य होने दें। अपने शरीर के प्रति सतर्क हो जायें और मन एवं इन्द्रियों को बहिर्मुख होने दें। धीरे-से अपने शरीर को हिलायें-डुलायें और अपने नेत्र खोल लें।

विधि 3– मूलाधार का गहवर

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी आसन में आराम से बैठ जायें, शरीर सीधा रहे। हाथों को घुटनों पर अथवा गोद में रखें, जहाँ आराम महसूस हो। आराम से अपने नेत्र मूँद लें। कुछ क्षणों के लिए अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो

जायें, साथ ही जिस आसन में बैठे हैं उसके प्रति भी। सम्पूर्ण शरीर के प्रति आपकी सजगता बनी रहे। यह सुनिश्चित कर लें कि आप शारीरिक रूप से विश्रान्त हैं और हर प्रकार के तनाव से मुक्त हैं। कहीं पर कड़ापन नहीं होना चाहिए, आप कहीं भी तकलीफ महसूस नहीं कर रहे हैं। आप बिल्कुल निश्चिन्त-से हैं।

अपने शरीर की आकृति का मानस-दर्शन करें। सिर से पाँव तक शरीर के एक अंग से दूसरे अंग तक अपने ध्यान को घुमायें और सुनिश्चित करें कि हर जगह विश्रान्ति और आराम है। आपके अंग-प्रत्यंग में विश्रान्ति की भावना फैल रही है। सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजगता। जैसे-जैसे आप शरीर की अनुभूति की गहराई में प्रवेश करेंगे, आप शरीर के भीतर स्थिरता एवं शान्ति के प्रति जागरूक होते जायेंगे। अपने शरीर में स्थिरता और नीरवता का अनुभव करें। एड़ी से चोटी तक अपने शरीर के प्रति पूर्ण जागरूकता।

द्वितीय चरण– श्वसन के प्रति जागरूकता

स्वाभाविक श्वसन का मानस-दर्शन करें। श्वास लेते समय नासिका-रन्ध्रों में मृदुल शीतल स्पन्दन का अनुभव करें और श्वास छोड़ते समय मृदुल उष्ण स्पन्दन को महसूस करें। नासिका-पुटों में प्रवाहित श्वास के तापमान के प्रति मानसिक रूप से सजग होकर स्वाभाविक श्वसन-क्रिया का अवलोकन करें। श्वास के प्रति जागरूकता को सघन करें और मेरुदण्ड-मार्ग में चल रहे प्रवाह का अनुभव करना प्रारंभ करें।

श्वास भीतर लेते समय श्वास को मेरुदण्ड मूल से ऊपर उठकर शीर्ष तक प्रवाहित होते महसूस करें। श्वास छोड़ते समय अनुभव करें कि श्वास सिर के शीर्ष से मेरुदण्ड-मूल की ओर प्रवाहित हो रही है। श्वासों के स्वाभाविक आवागमन के साथ मेरुदण्ड-मूल से सिर की चोटी तक अपनी चेतना को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे की ओर घुमायें। श्वास के इस आवागमन का अवलोकन करें और अनुभव में लायें।

तृतीय चरण– सुषुम्ना के प्रति जागरूकता

श्वास की लय के साथ जैसे-जैसे चेतना ऊर्ध्व एवं अधोगमन करती है, मेरु-पथ में, जिससे होकर चेतना गमनागमन करती है, आप एक प्रकाशमान तन्तु का अवलोकन करें। मेरुदण्ड-मूल से शीर्ष-बिन्दु तक एक तेजोदीप्त तन्तु का मानस-दर्शन करें। श्वास के साथ इस प्रदीप्त तन्तु के संग-संग चेतना ऊर्ध्व गमन करती है और फिर अधोगमन करती

है। आपको क्रमश: मानस-दर्शन की शक्ति को विकसित करना होगा। आपको अपनी संकल्प-शक्ति को बढ़ाना होगा। संकल्प-शक्ति एवं मानस-दर्शन के साथ मूलाधार से सहस्रार तक इस चेतना के गमनागमन का अनुभव करें।

इस अभ्यास को कुछ क्षणों तक जारी रखें। हर बार अपनी संवेदना, अपनी जागरूकता और श्वास के गमनागमन के साथ चेतना के आरोहण-अवरोहण एवं दीप्तिमान तन्तु के साथ अपने तादात्मय को बढ़ाने का प्रयास करें। भौतिक शरीर के अनुभवों से अपने अवधान को विक्षिप्त न होने दें। कष्ट और पीड़ा के अनुभव आपकी जागरूकता एवं अन्तर्दर्शन के अभ्यास को बाधित न करें। बस मूलाधार और सहस्रार चक्रों पर ही अपनी चेतना को केन्द्रित करें। मूलाधार मेरुदण्ड के मूल में और सहस्रार मेरुदण्ड के शीर्ष पर है। ये दोनों केन्द्र मेरुदण्ड-मार्ग से प्रवाहित दीप्तिमान सूत्र से जुड़े हुए हैं। श्वास-प्रश्वास के साथ इसी प्रदीप्त पथ से चेतना का आरोहण एवं अवरोहण होता है।

चतुर्थ चरण– मूलाधार का गहवर

आप मूलाधार चक्र के क्षेत्र में अपना ध्यान केन्द्रित करें। मेरुदण्ड-मार्ग के मूल में स्थित मूलाधार चक्र का मानस-दर्शन करें। मूलाधार को एक गुफा, एक गहरी अंधेरी कन्दरा के रूप में परिकल्पित करें। उस कन्दरा-केन्द्र में एक रक्तिम प्रदीप्त ज्योति-खण्ड, एक कृष्णवर्णी रक्तिम प्रकाश-बिन्दु है। जागरूकता को मूलाधार तक नीचे ले जाकर मूलाधार गह्वर का मानस-दर्शन करें। चक्र के स्थान का मानस-दर्शन होना चाहिए, न कि चिदाकाश का मानस-दर्शन। मूलाधार की गुफा का अवलोकन करें। आपकी पूरी चेतना मूलाधार की कन्दरा में केन्द्रित होनी चाहिए। मूलाधार-क्षेत्र अमित शक्ति की पीठ के रूप में महसूस होता है। कन्दरा के मध्य में स्थित फर्श से उत्पन्न प्रकाश-बिन्दु में कम्पन है, धड़कन है, ऊर्जा और सतत् स्पन्दन है।

पंचम् चरण– शिवलिंगम्

जैसे ही आप इस दिव्य दृश्य एवं गुफा की अनुभूति के प्रति अपनी चेतना को समायोजित करेंगे, आप देखेंगे कि जिस बिन्दु से यह गहरा रक्तिम प्रकाश उद्भूत हो रहा है, वह एक पत्थर है, शिवलिंगम् के रूप में एक शिला-खण्ड है। शिवलिंगम् अन्दर से दीप्तिमान है। ज्योति का रंग गहरा

कृष्णवर्णी रक्तिम है। यह वही रक्तिम दीप्ति है जो शिवलिंगम् से प्रकट हो रही है और सारी गुफा को ज्योतित कर रही है। शिवलिंगम् के प्रतीक पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करें। इस रक्तवर्णी शिवलिंगम् का मानस-दर्शन करें। बाह्य ध्वनियों और वातावरण से आपकी जागरूकता में विक्षेप नहीं उत्पन्न होना चाहिए। बाह्य जगत् में कोलाहल होने दें, आप अपना ध्यान उस मूर्ति, (शिवलिंगम के प्रतीक) पर ही लगाये रखें जो मूलाधार चक्र के गह्वर में अवस्थित है।

जब आप शिवलिंगम के प्रतीक को गहराई से देखेंगे तो पायेंगे कि शिवलिंगम् के मूल के इर्द-गिर्द एक सर्प का स्वरूप है, जो शिलिंगम्-मूल को लपेटे हुए है। कोई डर या भय नहीं। सिर्फ मूलाधार के प्रतीक स्वरूप स्वयं ज्योतित शिवलिंगम् के प्रति अपनी जागरूकता बनाये रखें, जिसके मूल को सर्प ने अपने कुण्डल में लपेट रखा है। स्पन्दन का अनुभव करें, दिव्य शक्ति के स्पन्दन की अनुभूति। शिवलिंगम् मूल को जिसने लपेट रखा है वही कुण्डलिनी है, वही आदि शक्ति है। वही सृष्टि का स्रोत है। अपने भौतिक शरीर के आकाश में इस शिवलिंगम् से नि:सृत प्रकाश की तीव्रता और ऊर्जा के तेज का अनुभव करें।

अपने मन को दिग्भ्रमित न होने दें। मानसिक उतार-चढ़ाव को रोक कर रखें। मन को संवेदनशील बनायें। जिस प्रकार आप शिवलिंगम् के प्रतीक और मूलाधार की गुफा में सर्प का मानसिक अवलोकन कर रहे हैं, उसी प्रकार अब आपको उस आदि शक्ति के बल को अवलोकित करना होगा जो मूलाधार चक्र में उपस्थित है। मूलाधार की अनुभूति में अपनी पूरी चेतना को नियोजित कर दें।

षष्ठ चरण– ॐ का उच्चारण

अब ॐ का मन्त्रोच्चार निम्नांकित विधि से करें। एक श्वास में आरामपूर्वक बिना हाँफे जितनी बार हो सके ॐ का उच्चार करें। ॐ का उच्चार करते हुए शिवलिंगम् के प्रतीक पर अपनी चेतना को स्थिर करें। शिवलिंगम् से विकिरित रक्तिम आभा से आलोकित गुफा का अन्तर्दर्शन करें। जैसे शरीर के आकाश में ध्वनि तरंगें भ्रमण करती हैं, मूलाधार से विकिरित ऊर्जा तरंगें भी ऊर्ध्व गमन करती हैं। यद्यपि ॐ का उच्चार शारीरिक अंग मुख के द्वारा होता है, तथापि मन्त्र के स्पन्दन को मूलाधार की गुफा में महसूस करना चाहिए।

गहरी श्वास अन्दर लें और श्वास छोड़ते समय ॐ का उच्चार करें। ॐ ॐ ॐ ॐ। प्रत्येक श्वास के साथ लघु ॐ का उच्चार जारी रखें और शिवलिंगम् के प्रतीक का अन्तर्दर्शन करते जायें। ज्योतित शिवलिंगम् एवं गुफा का दिव्य दर्शन करते रहें और शरीर आकाश में मूलाधार से सहस्रार चक्र तक ॐ के उच्चार से नि:सृत स्पन्दन का अनुभव करें। सम्पूर्ण शरीर को ॐ मन्त्र की शक्ति और उसके स्पन्दन से ओत-प्रोत कर दें। ॐ ॐ ॐ ॐ...।

सप्तम् चरण– अभ्यास का समापन

ॐ का मन्त्रोच्चार बंद कर दें। कुछ क्षणों तक शान्त, निश्चल बने रहें। अब धीरे-धीरे इन्द्रियों को बहिर्मुख करें। अपने इर्द-गिर्द की ध्वनियों की ओर उन्मुख हों, वातावरण के प्रति सजग बनें। मूलाधार से ध्यान हटा लें। प्रतीक से और स्पन्दन से अपने को अलग कर लें। इन्द्रियों एवं मन को बहिर्मुख करें। गहरी श्वास लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण करें। दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में रगड़े और उन्हें बन्द नेत्रों के ऊपर रखें। धीरे से बन्द नेत्र खोलें और शरीर को हिलायें-डुलायें ।

विधि 4– मूलाधार और विशुद्धि धारणा

प्रथम चरण– तैयारी

ध्यान के किसी आसन में शान्तिपूर्वक बैठें। अपनी सजगता को अन्तर्मुखी करें। शरीर के प्रति पूरी जागरूकता। अन्दर ही अन्दर अपने शरीर का सिर से पैर तक अवलोकन करें। स्वाभाविक श्वास के प्रति सजगता बनी रहे। श्वास के अन्दर आने और बाहर जाने की प्रक्रिया का अवलोकन करें। नासिका-रन्ध्रों में श्वास के प्रवाह पर अवधान केन्द्रित करें। नासा-पुटों में स्वाभाविक श्वसन के प्रवाह में तापमान के नगण्य अन्तर का ख्याल करें।

द्वितीय चरण– मेरु-पथ में श्वास का अवलोकन

श्वास का अवलोकन करें और फिर मेरुदण्ड-पथ में उसका अनुभव करना प्रारम्भ करें। श्वास लेते समय श्वास-वायु मेरुदण्ड मूल से उठकर गले के पिछले भाग तक मेरुदण्ड-पथ पर आरोहण करती है और श्वास छोड़ते समय वह मेरुदण्ड-पथ पर ही अवरोहण करती है। श्वास-प्रवाह के मूलाधार तक अवरोहण का अनुभव करें।

जब आप श्वास की गति को मेरुदण्ड-पथ में मूलाधार से विशुद्धि के बीच आते-जाते देखेंगे तो अनुभव करेंगे कि श्वसन की प्रक्रिया क्रमशः गहरी और लम्बी हो रही है। चेतना को श्वास के साथ मूलाधार से विशुद्धि की ओर उठना है और श्वास के साथ ही विशुद्धि से मूलाधार की ओर नीचे उतरना है।

तृतीय चरण– बीज-मन्त्र का जप

जब आप मूलाधार पर वापस आयें तो वहाँ रुक जायें और कुछ क्षणों तक मानसिक रूप से मूलाधार का बीज-मन्त्र पाँच बार दुहरायें– लम् लम् लम् लम् लम् और जब आप विशुद्धि पर पहुँचें तो कुछ क्षणों तक श्वास को रोके रखें। उसके बाद जब आप श्वास लें तो विशुद्धि के बीज-मन्त्र हम् का मानसिक जप पाँच बार करें, हम् हम् हम् हम् हम्। इस प्रकार मेरुदण्ड-पथ में मूलाधार से विशुद्धि के बीच दोनों चक्रों के बीज-मन्त्रों के साथ श्वास के प्रति सजगता को कायम रखें।

जब आप अभ्यास में एकचित्त हो जायेंगे, आपकी शरीरगत चेतनता क्रमशः समाप्त हो जायेगी। आप मूलाधार और विशुद्धि के बीच मेरुदण्ड-पथ में अपने श्वास-प्रवाह, चेतना के साथ श्वास की गतिविधि, मूलाधार और विशुद्धि के बीज-मन्त्रों लम् और हम् के जप और उसके गुंजन के प्रति जागरूक हो जायेंगे। अपनी चेतना को सघन बनायें, मन्त्र के साथ चेतना के आरोहण और अवरोहण की प्रक्रिया में अपने को लय कर दें।

मूलाधार में मन्त्र का जप करते हुए मूलाधार से शरीर के उर्ध्व भाग में गतिमान कम्पन और स्पन्दन की तरंगों का अनुभव करें। विशुद्धि में मन्त्र का जप करते समय मन्त्र के स्पन्दन को शरीर के निम्न भाग में संचरण करते हुए महसूस करें। मूलाधार और विशुद्धि में लम् और हम् बीज मन्त्रों के प्रति पूर्ण जागरूकता बनाये रखें।

चतुर्थ चरण– कृष्ण आकाश और शुभ्र आकाश की अनुभूति

अब आपको मूलाधार क्षेत्र को पूर्णतः कालिमायुक्त गहरे आकाश के रूप में और विशुद्धि-क्षेत्र को तीव्र देदीप्यमान शुभ्र आकाश के रूप में अनुभव करने की योग्यता का विकास करना होगा। श्वास के साथ चेतना को गहरे कृष्ण आकाश से देदीप्यमान, द्युतिमान आकाश की ओर गतिशील बनायें।

अतीन्द्रिय पथ, मेरुदण्ड-पथ में प्रवाहमान श्वास का ख्याल करें। मूलाधार और विशुद्धि में मन्त्र के प्रति सजग बनें। मूलाधार और विशुद्धि के आकाश का ख्याल करें, कृष्ण आकाश और शुभ्र आकाश। मूलाधार में गहरे, काले आकाश और लम् मन्त्र के गुंजन तथा विशुद्धि में स्वच्छ धवल, दीप्तमान आकाश एवं हम् मन्त्र के गुंजन के ख्याल के सिवा वहाँ और कुछ नहीं है। अपनी गहराई में बिना किसी प्रतिबन्ध, दुविधा या भय के प्रवेश करें, और अधिक गहरे जायें।

मूलाधार और विशुद्धि, गुंजन, आकाश, मेरुदण्ड-पथ पर चेतना के प्रवाह की अनुभूति के लिए मन को संवेदनशील बनायें, जागरूकता को तीव्रतर करें। चेतना पर पूर्ण नियन्त्रण रखें, आन्तरिक सजगता बनाये रखें, अन्तर्मुख न बनें। अपनी मानसिक शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखें।

पंचम् चरण– अतीन्द्रिय पथ पर ॐ जप

अब चक्रों के बीज-मन्त्रों का जप बन्द करें। मेरुदण्ड-पथ पर मूलाधार से विशुद्धि तक चेतना के ऊर्ध्व-गमन के साथ ॐ का मानसिक-जप प्रारम्भ करें और विशुद्धि से मूलाधार की ओर चेतना के अधोगमन के साथ भी ॐ का मानस जप करें। मूलाधार में गहरे, काले आकाश और विशुद्धि में प्रदीप्त धवल आकाश का ख्याल करें। जैसे ही आप मूलाधार की ओर नीचे गमन करें, महसूस करें कि किसी शक्ति द्वारा आप मूलाधार के आकाश की गहराई में धकेले जा रहे हैं, एक अविश्वसनीय खिंचाव। वही खिंचाव चेतना को ॐ मन्त्र के साथ विशुद्धि में अवतरित होने के लिए धक्का देता है। प्रारम्भ में यह एक मानसिक प्रक्रिया है, किन्तु कालक्रम से, एकाग्रता में वृद्धि होने पर शक्ति और चेतना मूलाधार और विशुद्धि के खिंचाव को महसूस करने लगेंगी।

षष्ठ चरण– मूलाधार और जालन्धर बन्ध

अब यह अभ्यास बन्द करें। चेतना को शरीर की आन्तरिक अनुभूति में निरत रखें और मूल एवं जालन्धर बन्ध लगायें। श्वास लेते समय सजगता को विशुद्धि-क्षेत्र के आकाश की अनुभूति कराते हुए मेरुदण्ड-पथ पर गहरा श्वसन करें। तब श्वास को अन्दर रोकते हुए मूलबन्ध लगायें, अवरोधनी पेशियों को तब तक संकुचित करें जब तक आप अनुत्रिक और मूलाधार क्षेत्र में हल्की उत्तेजना का अनुभव न करने लगें। मूलबन्ध के अभ्यास के साथ ठुड्डी को झुकाकर उसे गले की जड़

में सटाते हुए और गले पर हल्का दबाव बनाते हुए जालन्धर बन्ध का अभ्यास करें। श्वास को भीतर ही रोकते हुए जितनी देर आराम से रह सकें, इस भंगिमा में रहें।

जब आप महसूस करें कि इस भंगिमा में रहना संभव नहीं है तो धीरे-धीरे पहले जालन्धर-बन्ध को हटायें और बाद में मूलबन्ध को शिथिल करें। ॐ मन्त्र के साथ मूलाधार से विशुद्धि तक अपनी सामान्य श्वास के साथ दस श्वास तक चेतना के आरोहण-अवरोहण का अभ्यास करें। ग्यारहवीं श्वास के साथ मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध का अभ्यास करें और दोनों बन्धों को बिना किसी दबाव के जितनी देर संभव हो, आराम से कायम रखें।

तब दोनों बन्धों को शिथिल कर दें और ॐ मन्त्र के साथ दस श्वासों तक मूलाधार और विशुद्धि के बीच चेतना के आरोह-अवरोह को जारी रखें। ग्यारहवीं श्वास के साथ फिर दोनों बन्धों का अभ्यास करें। बन्धों का अभ्यास अभिश्वसन के साथ होता है, अपश्वसन के साथ नहीं। अपनी गति से अभ्यास की कुल तीन आवृत्तियाँ करें।

सप्तम् चरण – अभ्यास की समाप्ति

अब अभ्यास बन्द करें। शरीर के प्रति सजग होकर चेतना को क्रमश: बहिर्गत करें। बाह्य वातावरण के प्रति सजग होकर इन्द्रियों को बहिर्मुख करें। गहरी श्वास लें और तीन बार ॐ का उच्चारण करें।

हरि ॐ तत्सत्

लय धारणा दो

लोक दृष्टि

ऋतम् एवं सत्यम्– अनित्य एवं नित्य सत्तायें

योगियों ने दो प्रकार की सत्ताओं की चर्चा की है। एक परिवर्तनशील, क्षणस्थायी और विकासमान सत्ता है जिसे ऋतम् कहा गया है और दूसरी निश्चित, सर्वव्यापी, नित्य और शाश्वत सत्ता है जिसे सत्यम् कहा जाता है। शक्ति का प्रवाह ऋतम् से सत्यम् की ओर होता है और यही जीवनी-शक्ति है जो हमें अनुभूति की एक अवस्था अथवा स्तर से दूसरी अवस्था अथवा स्तर पर जाने के लिए प्रेरित करती है, धक्का देती है चेतना की गति भी ऋतम् से सत्यम् की ओर होती है। इस सन्दर्भ में रेंगनेवाली इल्ली का उदाहरण दिया जा सकता है, जो रेंगते-रेंगते एक दिन आकाश में विचरण करने वाली तितली हो जाती है। उसी प्रकार मानव के रूप में हम इल्ली की तरह अपनी पत्ती, अपनी डाल और अपने पेड़ पर रेंग रहे हैं।

दृश्य जगत् में हम जीवन के ऋतम् में भटकते रहते हैं। जन्म से मृत्यु पर्यन्त हमारा शरीर निरन्तर रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया में रहता है। हमारी धारणायें और हमारी कार्य-क्षमताएँ भी निरन्तर रूपान्तरण की प्रक्रिया में रहती हैं, जिसे हम चक्रों की अनुभूति में देखते हैं। चेतना के विलय, उदात्तीकरण अथवा रूपान्तरण के साथ मानव के विकास की, अति मानव बनने की सम्भावना है, ऋतम् से सत्यम् में उर्ध्वगमन की संभावना है।

निम्नतम स्तर पर मूलाधार अपने में ऋतम् और सत्यम् दोनों की अनुभूतियों को धारण करता है, नित्य और अनित्य दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ। अन्य चक्रों में यह क्षमता नहीं है। अन्य चक्र शक्ति के रूपान्तरण और उसकी

प्रगतिगामी प्रकृति को दर्शाते हैं, जबकि मूलाधार, जो शक्ति का विश्राम स्थल है, नित्य सत्य को दर्शाता है। शक्ति घनत्व के रूप में, पदार्थ के रूप में विश्राम करती है, जबकि पदार्थ की प्रकट अनुभूतियाँ परिवर्तनशील रहती हैं। विशुद्धि-चक्र में भी क्रम-विकास की क्षमता है। यह चक्र आकाश तत्त्व के रूप में व्यक्त और ब्रह्माण्डीय शक्तियों के मध्य द्वार को निरूपित करता है। विशुद्धि चक्र के ऊपर आज्ञा चक्र तक के केन्द्र अन्य द्वारों को दर्शाते हैं, जो साधक को अनुभूति के विभिन्न आयामों की ओर प्रेरित करते हैं।

लोकों के प्रति जागरूकता

जिस प्रकार भौतिक आयाम में चक्रों के माध्यम से हम चेतना के रूपान्तरण और विभिन्न स्तरों की अनुभूतियाँ प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सत्यम् में प्रतिष्ठित हो जाने पर हम अस्तित्व के अन्य आयामों के प्रति जागरूक हो जाते हैं, जो प्रकट तत्त्वों के आयाम के परे है। इन्हें लोक कहा जाता है।

लोकों के धरातल क्रम-विकास अथवा चेतना की उच्चतर अवस्थाओं के आगे के सोपानों को दर्शाते हैं। चक्रों के स्तर पर शक्ति की अनुभूति को समझने के लिए शक्ति सक्रिय और चेतना निष्क्रिय आलम्बन है। लोकों में चेतना का ज्ञान और उसकी अनुभूति सक्रिय है और शक्ति उस अनुभूति के लिए निष्क्रिय आलम्बन है। इस प्रकार चक्रों से लोकों में शक्ति और अनुभूति की भूमिकायें बदल जाती हैं। लोकों का ज्ञान, उनकी समझ और अनुभूति तथा पूर्णता की विभिन्न अवस्थायें और हमारे जीवन में सृजनशीलता की विविध अभिव्यक्तियों को ही लय की प्रक्रिया में देखा और अनुभव किया जाता है।

चेतना के आयाम

चेतना के अट्ठाइस आयाम हैं। मानव चेतना पन्द्रहवें तल पर है। उसके नीचे चौदह और तल हैं जो पाताल कहे जाते हैं, आठवें से चौदहवें तक पाताल और पहले से सातवें तल तक नरक कहे जाते हैं। पाताल का तल पशु जीवन में प्रकट होता है जहाँ प्रत्येक क्रिया और स्थिति के प्रति प्रत्येक प्रतिक्रिया मूलप्रवृत्ति द्वारा शासित होती है। अपनी समझदारी के लिए हम नरक को उद्भिजों के जीवन में देख सकते हैं। इन तलों पर मूल प्रवृत्ति भी पूर्णत: सक्रिय नहीं रहती है, मात्र प्रसुप्त चेतना अवस्था।

पन्द्रहवें से अठारहवें तक के तल– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर और अनाहत मूल प्रवृत्ति-जन्य चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्नीसवें से इक्कीसवें तक के तल– विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार, तमस, रजस और सत्त्व गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सप्त लोक

तब सप्त लोक– भुः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य लोक आते हैं। भुः लोक, भौतिक, पार्थिव जगत् मूलाधार चक्र से सम्बन्धित है, जो मूल प्रवृत्तियों के परिष्कार के बाद चेतना की परिशुद्ध अवस्था है। भुवः लोक सूक्ष्म तल है, जो स्वाधिष्ठान का तल है। स्वः लोक दिव्य तल है जो मणिपुर चक्र से सम्बन्धित है। महः लोक, जो अनाहत से सम्बन्धित है, सन्तुलन का तल, साधु-संतों का तल कहलाता है। जनः लोक, जो मानव-तल अथवा ऋषियों-मुनियों का तल कहलाता है, विशुद्धि चक्र से जुड़ा है। तपः लोक तपस्या-जगत्, आज्ञा-चक्र से सम्बन्धित है। सत्य लोक सहस्रार चक्र से सम्बन्धित है और उस तल या आयाम का प्रतिनिधि है जहाँ सत्ता अपने सच्चे स्वरूप में अनुभूत होती है। यह चेतना की अन्तिम, स्थायी अवस्था है। लय योग के लोकों की यही अवधारणा है।

विधि– लोक ध्यान

प्रथम चरण– तैयारी

शरीर को इस प्रकार तैयार करें कि कम-से-कम बीस मिनट तक ध्यान के आसन में आराम से बैठ सकें। सुनिश्चित करें कि कहीं किसी प्रकार का तनाव नहीं है, यह भी सुनिश्चित करें कि आप शरीरिक और मानसिक रूप से विश्रान्त अवस्था में हैं। कहीं पर कड़ापन नहीं होना चाहिए। अन्तर्मुख होकर स्वयं का अवलोकन करें। सिर से पैर तक अपने शरीर का अवलोकन करें। अपने को शरीर में ही केन्द्रित करें। आराम और विश्रान्ति की अवस्था के प्रति जागरूक हो जायें।

द्वितीय चरण– आकाश के प्रति सजगता

शरीर के भीतर के बृहत आकाश के प्रति सजग हो जायें। शरीर को एक खोखले आवरण के रूप में महसूस करें। इस खोखले आवरण के भीतर आकाश की अनुभूति विकसित करें। वह आकाश जो सिर के शीर्ष से पैरों की अंगुलियों तक फैला हुआ है। पूर्ण सजगता के साथ स्वयं का अवलोकन

करें। शरीर के भीतर आकाश का अवलोकन करें। जैसे ही आप आकाश की अनुभूति की गहराई में प्रवेश करते हैं, क्रमशः बाह्य नाम-रूप, वातावरण के प्रति सजगता और अपने आस-पास के जागतिक अस्तित्व को भूल जायें, इतना ही नहीं, अपने भौतिक शरीर की चेतना को भी अपने से असंपृक्त कर दें। सर्वव्यापी आकाश के प्रति जागरूक रहें। जब आप अपना तादात्म्य आकाश के साथ अधिक और भौतिक शरीर के साथ न्यून कर देंगे, आपको हवा में तैरने का संवेदन होगा। वायु में संचरण के संवेदन के साथ आन्तरिक शान्ति और नीरवता की अनुभूति होगी। अभ्यास के दौरान यदि आप शरीर को हिलाना-डुलाना चाहें तो आप वैसा कर सकते हैं, पर शारीरिक हलचल धीमी हो और जागरूकतापूर्वक हो। इस बीच अभ्यास पर ध्यान जमा रहे। ध्वनि से आपके भीतर विक्षेप उत्पन्न न हो। शारीरिक अनुभव आपके अवधान को विक्षिप्त न करें। निरन्तर जागरूकता को कायम रखें। प्रति पल अपने भीतर अधिक गहराई में उतरते जायें, शरीर के आकाश के भीतर।

तिरने के संवेदन के प्रति जागरूक रहें। क्रमशः आराम और कष्ट, दर्द और पीड़ा, विश्रान्ति और चैन की शारीरिक अनुभूति से अपना विलगाव करते जायें। सिर्फ आन्तरिक अन्तरिक्ष में तिरने के प्रति जागरूक रहें, अन्तराकाश की गतिहीनता, भीतर के आकाश की नीरवता के प्रति सजगता। शरीर चर्म के आवरण के साथ मात्र एक खाली कोश है।

तृतीय चरण– चेतना का अन्तरावलोकन

जिस आकाश का अनुभव हो रहा है वह चेतना है। चेतना-क्षेत्र के प्रति जागरूकता बनाये रखें। मन के साथ तादात्म्य स्थापित न करें। मानसिक अनुभवों के साथ तादात्म्य मत रखें। विचारों, बुद्धि और भावनाओं के साथ अपनी पहचान मिटा दें। बस जागरूक रहें। चेतना क्षेत्र का अवलोकन करें जो लघु जगत् में अनन्त है और विराट् विश्व के तल पर भी अनन्त है। एक द्रष्टा, एक साक्षी के रूप में जागरूकता रह जाती है। सजगता, जो व्यक्ति-चेतना का अंश है, द्रष्टा का अंश है, वैयक्तिक धारणा का प्रतीक है। चेतना-क्षेत्र को साक्षी भाव से देखें जो दृश्य जगत् और अदृश्य जगत् के दिग-दिगन्त में व्याप्त है।

चतुर्थ चरण– ॐ का उच्चारण

हम लोग ॐ मन्त्र के जप के साथ ध्यानाभ्यास आरम्भ करने जा रहे हैं। प्रत्येक प्रश्वास के साथ लघु ॐ का उच्चारण। जैसे ही संक्षिप्त मन्त्र का

उच्चारण करते हैं, मन्त्र के स्पन्दन को शारीरिक और सूक्ष्म आयामों की चेतना के आकाश में अनुभव करें। सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्पन्दित है। ॐ का उच्चारण सम्पूर्ण व्यक्तित्व में गूँज रहा है।

ॐ का गुँजन अन्तराकाश के हर अंश में प्रतिध्वनित हो रहा है, आप उसका अनुभव करें। यह चेतना का सूक्ष्म आकाश है, चेतना-क्षेत्र की सभी दिशाओं में स्पन्दन की लहरियों का अनुभव द्रष्टा कर रहा है। हम लोग आरम्भ करते हैं। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ .... सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त चेतना के आकाश में जो भी संवेदन घटित हो रहा है उसका अनुभव करें, अवलोकन करें। शान्त रहें और शक्ति के खेल का, शक्ति की संगति अथवा असंगति का अवलोकन करें। चेतना के क्षेत्र में जो भी संवेदन हो रहा है, उसे अनुभव में लायें।

पंचम् चरण– भुः लोक और जनः लोक की सजगता

जिस आकाश का आप अवलोकन कर रहे हैं उसमें अब शक्ति के दो केन्द्रों का अन्तर्दर्शन करने जा रहे हैं। एक मूलाधार में और दूसरा विशुद्धि में है। मेरुदण्ड मूल में एक प्रदीप्त केन्द्र है और गले के क्षेत्र में दूसरा केन्द्र। एक-एक कर अन्तराकाश में शक्ति केन्द्रों के प्रति जागरूकता पैदा करें। मूलाधार में अपने मन को केन्द्रित करें और मूलाधार क्षेत्र में देदीप्यमान, ज्योति शक्ति-केन्द्र का अवलोकन करें।

मूलाधार-केन्द्र के प्रति अपनी सजगता को तीव्र करें। भू: लोक द्वारा चेतना के आयाम में मूलाधार का प्रतिनिधित्व होता है। दूसरा शक्ति-केन्द्र विशुद्धि है– तेजपूर्ण, द्युतिमान, चमकदार प्रकाश। चेतना के क्षेत्र में यह केन्द्र जन: लोक कहलाता है। चेतना के आकाश में ये दो केन्द्र हैं– भु: लोक और जन: लोक। अब आप इनका अवलोकन करें। मूलाधार-क्षेत्र में भू: लोक चक्र नहीं है, यह चक्र के अन्दर चेतना के आकाश को दर्शाता है। विशुद्धि क्षेत्र में स्थित जन: लोक विशुद्धि-चक्र नहीं है, बल्कि विशुद्धि-चक्र के भीतर चेतना का आकाश है।

षष्ठ चरण– आरोहण और अवरोहण

दोनों लोक दो मार्गों द्वारा परस्पर सम्बद्ध हैं। एक मार्ग मूलाधार क्षेत्र, भू: लोक से निकलता है और सामने की ओर से विशुद्धि क्षेत्र, जन: लोक की ओर जाता है। दूसरा मार्ग मेरुदण्ड में जन: लोक से भु: लोक की ओर नीचे जाता है। इन दोनों केन्द्रों के बीच श्वास और प्रश्वास की सहायता से

सजगता का आरोहण और अवरोहण होता है। श्वास लेते समय मेरुदण्ड-मार्ग पर चेतना भु: लोक से जन: लोक की ओर आरोहण करती है। श्वास छोड़ते समय मेरुदण्ड-मार्ग पर चेतना जन: लोक से भु: लोक की ओर अवरोहण करती है।

मूलाधार-क्षेत्र से विशुद्धि-क्षेत्र और विशुद्धि-क्षेत्र से मूलाधार-क्षेत्र में, भु: लोक एवं जन: लोक के बीच चेतना के आरोहण-अवरोहण के प्रति सजगता बनाये रखें। मेरुदण्ड पथ में ऊपर की ओर जाती हुई चेतना को आरोहण और मेरुदण्ड-पथ में नीचे की ओर आती हुई चेतना को अवरोहण कहते हैं। भु: लोक से जन: लोक और जन: लोक से भु: लोक में आरोहण-अवरोहण की सजगता को गहन करें।

शक्ति की कोई गतिविधि नहीं है, शक्ति के संचरण की कोई अनुभूति नहीं है, सिर्फ श्वास-प्रश्वास की सहायता से चेतना के संचरण, सजगता, द्रष्टा के एक लोक से दूसरे लोक में गमनागमन की अनुभूति हो रही है। इस प्रक्रिया के प्रति सजग रहें और चेतना की गतिविधि की अनुभूति में अपनी जागरूकता को अधिक-से-अधिक विलीन करने का प्रयत्न करें।

सप्तम् चरण – अभ्यास की समाप्ति

इस तल पर हम अभ्यास का विसर्जन करने जा रहे हैं। लोकों के प्रति द्रष्टा-भाव की जागरूकता को समाप्त कर दें, दोनों लोकों के बीच सेतु-निर्माण करने वाले मार्गों को भी बन्द कर दें। अपने अस्तित्व के भाव के प्रति जागरूक हो जायें। अपने शरीर के प्रति, अपने शरीर के ठोसपन के प्रति धीरे-धीरे जागरूक हो जायें। अपने शरीर के विभिन्न अंगों के प्रति जागरूक हो जायें और धीरे-धीरे अपने भौतिक शरीर और बाह्य वातावरण के प्रति अपनी चेतना को बहिर्मुख करना प्रारम्भ कर दें। गहरी श्वास लें और तीन बार ॐ मन्त्र का उच्चारण करें। धीरे से अपने हाथों को एक-दूसरे से रगड़ें और हथेलियों को अपने नेत्रों के ऊपर रखें और फिर धीरे से अपने नेत्रों को खोल लें।

हरि ॐ तत्सत्

व्योम पंचक धारणा

व्योम, अंतरिक्ष, आकाश या महाव्योम वैदिक शास्त्रों के अनुसार देवताओं का स्थान माना जाता है। अतीन्द्रिय दृष्टि से व्योम चेतना की चरम स्थिति का द्योतक है, जिसे अनिबाध, ओरुलोक तथा बृहद् के रूप में जाना जाता है। अनिबाध शब्द का अर्थ है चेतना का अबाध निरन्तर विस्तार, जो कि जीवन का मुख्य लक्ष्य है। चेतना के विस्तार के साथ ही आध्यात्मिक साधक को बह्माण्डीय ज्ञान की प्राप्ति भी होती है, इसलिए इसे ओरुलोक के नाम से जाना जाता है। आगे चलकर व्योम की व्याख्या बृहत कहकर की जाती है, जिससे इसकी विशालता, लयबद्धता आदि का बोध होता है। चमकता, असीम तथा ज्योतिर्मय आकाश, जो दिन में सूर्य की तेज किरणों तथा रात में चन्द्रमा तथा तारों के मृदुल प्रकाश से प्रकाशित है, यह इसकी अनन्तता का प्रतीक है। इसी कारण से आकाश या अन्तरिक्ष का उच्चतर ध्यान के प्रतीक के रूप में चयन किया जाता है। बादल घिर सकते हैं, आँधियाँ आ सकती हैं, सूर्य अन्तर्धान हो सकता है। परन्तु आकाश हर समय तथा हर स्थिति में रहेगा।

चिदाकाश, हृदयाकाश एवं दहराकाश, इन तीनों स्थूलाकाशों के बाद हम व्योम पंचक धारणा के मध्य चरण में पाँच सूक्ष्म आकाशों का अभ्यास करते हैं। इस अवस्था में भी मन सजगता से कार्य करता रहता है, लेकिन अनुभूति की क्षमता धीरे-धीरे सूक्ष्म होती जाती है। इन पाँचों सूक्ष्म आकाशों की अनुभूति अवचेतन तथा उसके परे जगत् की होती है। दहराकाश, हृदयाकाश एवं चिदाकाश की अनुभूति चेतन एवं अवचेतन अवस्था में होती है। ये पाँच मानसिक आकाश– गुण रहित आकाश, परमाकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश तथा सूर्याकाश हैं।

व्योम पंचक एक

गुण रहित आकाश

गुण रहित आकाश का अर्थ है बिना किसी गुण या विशेषता का आकाश। सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि के आरम्भ में दो ही प्राणी अव्यक्त आयाम में विद्यमान थे। पहला प्राणी या कारण था पुरुष, ब्रह्माण्डीय आत्मा, जो प्राकृतिक रूप से गुणरहित था। दूसरी थी प्रकृति, गुणों से युक्त ब्रह्माण्डीय प्रकृति या ऊर्जा, जिससे काल, दिक् एवं पदार्थ के अभिव्यक्त आयाम की उत्पत्ति हुई।

संसार की सृष्टि तीन गुणों की पारस्परिक अन्त:क्रियाओं का ही प्रतिफल है। वे ही व्यक्तिगत या ब्रह्माण्डीय अस्तित्व के मूलभूत आधार हैं। विभिन्न अनुपातों में मिलाने पर इन तीनों गुणों से संसार की सभी स्थूल एवं सूक्ष्म वस्तुओं की उत्पत्ति होती है। वे पदार्थों का निर्माण या नियंत्रण ही नहीं करते, अपितु प्रत्येक वस्तु को दूसरी से भिन्न भी बनाते हैं। इन्हीं तीनों गुणों के सहारे अविनाशी आत्मा शरीर से और संसार में बँधता है।

इन तीनों गुणों का अव्यक्त से व्यक्त में रूपान्तरण होता रहता है। ये ब्रह्माण्ड में कार्बनिक, अकार्बनिक, भौतिक, मानसिक एवं अतिभौतिक आयामों का निर्माण करते हैं। गुणों की आंतरिक क्रिया से ही ब्रह्माण्ड, समाज तथा सम्पूर्ण मानवीय स्वभावों का संचालन होता है। नक्षत्र मण्डलों एवं सूक्ष्म लोकों में भी इन गुणों का वास है। जब कोई व्यक्ति अपने को अपने मौलिक स्वभाव में स्थापित कर लेता है तभी वह इन तीनों गुणों के प्रभावों से मुक्त होता है।

वैज्ञानिक शब्दों में इन तीनों गुणों को कम्पन, गति एवं जड़ता कहा जाता है। अगर हम चाहते हैं कि ब्रह्माण्डीय गुणों के स्वरूप को जानें तो यह

आवश्यक है कि हम इन तीनों गुणों को समझें। स्पन्दन प्रकाश या ज्योति है, जो एक प्रकार की लय है। स्पन्दन सत्त्व है, गति रजस है तथा जड़ता तमस है। जब रजस तथा तमस के बीच संतुलन होता है तो सत्त्व का विकास होता है। अत: सत्त्व कोई स्वतंत्र गुण नहीं है, अपितु यह रजस एवं तमस में अपने स्वभावों के बीच संतुलन और सामंजस्य के सिद्धान्त से उत्पन्न प्रभाव है। इस प्रकार तमस तथा रजस के बीच की समरसता से सत्त्व का उदय होता है।

सत्त्व का स्वभाव

प्रबोधन, समचित्तता एवं निर्मलता सतो गुण की विशेषताएँ हैं। सत्त्व, बिना किसी धूल या दाग के, निर्मल है तथा भौतिक शरीर से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह प्रसन्नता एवं विद्या के प्रति आसक्ति के द्वारा आत्मा को शरीर और संसार से बाँधता है। यही सत्त्व का अन्तर्निहित सहज स्वभाव है। जब सत्त्व गुण श्रेष्ठ तथा प्रबल हो जाता है तो यह ज्ञान एवं विद्या के लिए दमित न की जा सकने वाली इच्छा को उत्पन्न करता है, और सुखद अनुभूति के प्रति रुचि बढ़ाता है। जब सत् गुण की अधिकता होती है तो व्यक्ति असुखद अनुभवों, अविद्या एवं जड़ता को टालता है। सतो गुण मोक्ष, मुक्ति तथा सत्य को पाने के लिए सहायक होता है। सात्त्विक मन सदा स्थिर होता है तथा अपने अन्तर में आनन्दित रहता है। यह एक जगह, एक काम या एक लक्ष्य के लिए अनन्तकाल तक स्थिर रह सकता है। यह लम्बे समय तक दोस्ती को निभा सकता है। यह घण्टों तक धर्म ग्रन्थों को पढ़ सकता है। यह एक साधारण, नरम आहार पर बिना किसी कठिनाई के रह सकता है।

रजस का स्वभाव

जिस तरह सतो गुण मन को स्थिर एवं शान्त बनाता है, रजो गुण मन को सक्रिय एवं चंचल बनाता है। यह किसी व्यक्ति को शान्त बैठने नहीं देगा, यह उस पर कार्य करने के लिए दबाव डालेगा। रजो गुण का स्वभाव राग एवं द्वेष का है। इसकी उत्पत्ति तृष्णा से हुई है। सतो गुण आत्मा को खुशी एवं विद्या से बाँधता है तो रजो गुण तृष्णा एवं काम के लिए आसक्ति उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप रजस की प्रधानता होने पर अधिक कर्म या क्रिया होती है। एक सात्त्विक मनुष्य सदा खुशी एवं ज्ञान की खोज करता है, जबकि राजसिक मनुष्य सदा संतोष एवं आनन्द की खोज करेगा। जब कोई व्यक्ति सतो गुण से

परिपूर्ण रहता है तो वह कभी आनन्द की परवाह नहीं करता, वह केवल ज्ञान की खोज में रहता है। जब सत्त्व की प्रधानता होती है तो रजस भी वहाँ होता है, परन्तु दुर्बल अवस्था में। जब कभी काम तथा तृष्णा का विचार आयेगा तो वह उससे प्रसन्न नहीं हो सकेगा। यह सत्त्व गुण के विकसित होने का संकेत है।

सात्त्विक मन मिलाता एवं जोड़ता है, जबकि राजसिक मन विभाजित करता है, अलग करता है तथा विविधता उत्पन्न करता है। राजसिक मन सदा नवीन संवेदनाओं एवं विविधता की खोज करता है। यह किसी एक विशेष व्यक्ति, वस्तु एवं स्थान को कुछ दिनों तक के लिए ही पसंद करता है, फिर उससे ऊब जाता है और साथ के लिए नये लोग, खाने के लिए नये भोजन, पढ़ने के लिए नयी पुस्तकें, व्यवहार के लिए अत्याधुनिक बिजली के सामान तथा देखने हेतु नयी जगहों की इच्छा करता है।

रजो गुणी का मन सदा संगत चाहता है, बातें करना चाहता है। उनकी रुचि दूसरों की कमजोरियों एवं अवगुणों की आलोचना करने में होती है। वे सदा दूसरों के द्वारा किये गये गलत काम को याद करते रहते हैं तथा उनके द्वारा किये गये अच्छे काम तथा उनके गुणों को भूलते जाते हैं। इसलिए वे क्रोध तथा घृणा के प्रति उन्मुख रहते हैं तथा उनका मन आसानी से व्याकुल हो जाता है। रजो गुणी दूसरे की खुशी के प्रति न तो सदय होता है और न उसका ध्यान ही रखता है जब तक कि किसी भी तरह उससे अपना कोई लेना-देना न हो। वह केवल अपने में तथा अपनी उपलब्धि में रुचि रखता है। चूँकि वह सतत् बाहरी लक्ष्यों की खोज में रहता है, उसे कोई आन्तरिक संतोष या तृप्ति नहीं होती है।

तमस का स्वभाव

तमो गुण की उत्पत्ति अविद्या से होती है। यह आत्मा की नकारात्मक स्थिति है। जब कोई व्यक्ति तमो गुण के प्रभाव के वशीभूत हो जाता है तो वह आलस्य एवं निद्रा के अधीन होता तथा टाल-मटोल करता है। जब तमो गुण की प्रधानता दूसरे दोनों गुणों को दबाकर होती है तो संसार में कुछ भी नहीं बचता जो उसे क्रियाशील, आध्यात्मिक या आनन्दमय बना सके। व्यक्तित्व पर तमस का ऐसा ही प्रभाव होता है। जब तमस की प्रबलता होती है तो मन निष्क्रियता की स्थिति में आ जाता है। परिणामस्वरूप, चिन्तन की गति धीमी हो जाती है तथा कभी-कभी तो चिन्तन एकदम अवरुद्ध हो जाता है।

जब ऐसी अवस्था गहरी हो जाती है तब मानसिक निष्क्रियता और भी तीव्र हो जाती है, जिसकी अभिव्यक्ति गहरे उन्माद के रूप में होती है। यह मन की मन्द अवस्था है।

गुणों की प्रबलता

साधारणतया प्रत्येक व्यक्ति में तीनों गुण सतत् क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। हम सब के जीवन में सभी स्तरों पर, शरीर, दिमाग, मन, भावना, सूक्ष्म, मानसिक और आध्यात्मिक स्तरों पर ये गुण क्रियाशील रहते हैं। ये तरंगें ऐसे व्यक्ति देख सकते हैं जो उच्च अतीन्द्रिय संवेदी हों। किसी व्यक्ति में किस गुण की प्रधानता है उसका संकेत उसके प्रभा मण्डल से मिलता है। इसलिए हर एक व्यक्ति का प्रभा मण्डल सतत् परिवर्तनशील रहता है। जब रजस की प्रधानता होती है तब प्रभा मण्डल बिखरा, छितरा, टूटा-फूटा होता है, जो एक खण्डित व्यक्तित्व को दर्शाता है। जब तमस की प्रधानता होती है तो प्रभा मण्डल मंद एवं अव्यक्त होकर निष्क्रियता एवं जड़ता का द्योतक हो जाता है। जब सत्त्व की प्रधानता होती है तो प्रभा मण्डल अधिक देदीप्यमान, विनियमित एवं विस्तृत हो जाता है।

किसी व्यक्ति में एवं समाज में भी इन तीनों गुणों में निरन्तर पारस्परिक अन्त:क्रिया चलती रहती है। जब किसी व्यक्ति या समाज में रजो गुण की प्रधानता होती है और अन्य दोनों गुण उसके आज्ञाकारी बन जाते हैं तो वहाँ गतिशीलता, क्रियाशीलता, समृद्धि तथा भौतिक विकास होता है। जब सत्त्व गुण की प्रधानता किसी व्यक्ति या समाज पर रहती है तब कला, दर्शन तथा आध्यात्मिक संस्कृति विकसित होती है। भौतिक विकास के बदले ज्ञान की माँग होती है और भौतिक चाहर-दिवारी के आगे जाने के रास्ते की खोज होती है। लेकिन जब तमस की प्रबलता होती है और अन्य दो गुण दबे होते हैं तब वहाँ आलस्य, पिछड़ापन तथा शोषण दिखाई देता है। उस तरह के समाज का शीघ्र पतन होता है तथा वैसे व्यक्ति न तो समृद्ध हो पाते हैं और न विकसित ही।

ध्यान में गुण

जब तमस की प्रबलता होती है तो यह सम्भव नहीं हो पाता कि बिना निद्रा में गये आप ध्यान का अभ्यास कर सकें। मन मन्द अवस्था में होता है, जिसे मूढ़

कहा जाता है। जहाँ चेतना क्रियाशील नहीं रहती। जब रजस की प्रधानता होती है तो मन बिखर कर एवं खण्डित होकर अशान्त एवं बेचैन हो जाता है। यहाँ पर कोई न तो एकाग्रचित्त हो सकता है और न स्थिर होकर बैठ सकता है। यह मन की क्षिप्त अवस्था है। जब रजस सत्त्व की ओर बढ़ता है तो विक्षिप्त की स्थिति आती है। यह दोलायमान स्थिति है, जिसमें व्यक्ति की चेतना स्थिरता एवं विकर्षण के बीच झूलती रहती है। विक्षिप्त अवस्था साधक की सामान्य मनोदशा होती है जब वह धारणा के लिए बैठता है। गुणों की पारस्परिक अन्त:क्रियाओं से मन कुछ समय के लिए अस्थिरता एवं विकर्षण से प्रभावित होता है। जब सत्त्व से उत्पन्न धारणा का प्रवाह रजस से उत्पन्न अस्थिरता से अवरुद्ध होता है तो व्यक्ति धारणा की विक्षिप्त अवस्था में आ जाता है। इस अवस्था में आंतरिक दृष्टि का उदय होता है तथा व्यक्ति अपनी मन:स्थिति के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

जब सत्त्व को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है तब एकचित्तता का उदय होता है। जब रजस की प्रबलता होती है तब मन खण्डित हो जाता है। जब तमस प्रधान होता है तब वहाँ न एकचित्तता होती है और न छितराव, अपितु वहाँ केवल मन्दता एवं जड़ता होती है। ध्यान में यह आवश्यक है कि गुणों की प्रबलता का विश्लेषण किया जाये और इसके प्रति सजग बना जाये कि किस क्षण किस गुण का आधिपत्य है। विरले क्षण ही ऐसा होता है जब तीनों गुण का समान रूप से किसी व्यक्ति पर प्रभाव हो। सामान्यत: एक गुण ही अन्य दो गुणों पर हावी होता है, जबकि अन्य दो गुणों को भी बराबर रूप से क्रियाशील होने का अवसर रहता है। उदाहरणस्वरूप, जब रजस प्रभावी होता है तब सदा दूसरे गुणों का प्रतिघात होता है, जिसके परिणामस्वरूप एकाग्रता तथा बिखराव की अवस्था एक के बाद एक आती रहती है।

इसलिए व्यक्ति को अनुभूति होनी चाहिए कि कौन-सा विशेष गुण किस क्षण पूर्ण शक्तिशाली रहता है तथा किस तरह विरोधी क्रियाएँ होती रहती हैं। जब अधिक छितराव और कम एकाग्रता हो तब रजस की बढ़त रहती है। जब एकाग्रता एवं छितराव की न्यूनता हो और निद्रालुता की अधिकता हो तब तमस की प्रबलता होती है। चेतना के ऊपर इन तीनों गुणों के प्रभाव का विश्लेषण करने के बाद कोई व्यक्ति किसी विशेष गुण के नकारात्मक प्रभावों को दूर करके सकारात्मक प्रभाव की वृद्धि कर सकता है। उदाहरणार्थ तमोगुण

को योग तथा कर्मयोग के द्वारा कम किया जा सकता है तथा रजोगुण को भक्तियोग तथा जपयोग से घटाया जा सकता है।

जब आप पाते हैं कि सतो गुण प्रबल है, यद्यपि एक के बाद एक दूसरे गुणों का भी परिचालन होता रहता है, तब आपको सतो गुण का वर्धन करना होगा, क्योंकि वही वांछनीय है। तमोगुण एवं रजो गुण ध्यान के समय अवांछनीय हैं, अत: उन्हें कम करना चाहिए। रजस को सबल कर तमस को कम किया जा सकता है तथा सतोगुण को सबल बना कर रजस को कम किया जा सकता है। सतो गुण को धारणा के अभ्यास से, सत्संग, स्वाध्याय, सामान्य भोजन एवं शान्त वातावरण द्वारा बढ़ाया जा सकता है।

यदि आप पाते हैं कि किसी समय मन एकाग्र है, परन्तु बीच-बीच में डगमगाहट एवं दोलायमान की स्थिति है तो यह विक्षिप्त अवस्था है। ध्यान के अभ्यास के समय आपको इस पर ध्यान देना है कि किस गुण की प्रधानता है। यदि तमो गुण अधिक प्रबल है तो आप को ऐसे प्रारम्भिक अभ्यास को चुनना होगा जो प्रेरित करते हैं एवं क्रियाशील बनाते हैं। परन्तु जब रजस की प्रधानता हो तो आप ऐसे अभ्यास करें जिनसे मन शिथिल एवं शान्त हो जाये। कभी सीधे धारणा का अभ्यास प्रारम्भ नहीं करना चाहिए, जब तक कि मन सात्त्विक स्थिति में न आ जाये या रजस तथा सत्त्व के बीच दोलायमान नहीं हो। जब सत्त्व गुण की प्रधानता होती है तब आपका मन बिना प्रयास के धारणा में आ जाता है और आप बिना मन पर दबाव डाले सीधे ध्यान की अवस्था में जा सकते हैं।

गुणों से परे जाना

कहा जाता है कि जब मन की विक्षिप्तावस्था हस्तक्षेप करती है तब योग का प्रारम्भ होता है। क्षिप्त एवं मूढ़ अयौगिक हैं। एकाग्रता एवं एकचित्तता की अवस्था में तमो गुण तथा रजो गुण अनुपस्थित रहते हैं तथा सतो गुण की अधिकता होती है। जब एकचित्तता प्राप्त हो जाती है तब निरोध, अर्थात् पूर्णरूपेण चेतना की वृत्ति का अवसान उसका लक्ष्य होना चाहिए। इसी प्रकार गुणों से ऊपर उठा जाता है। निरोध की अवस्था में न तो सत्त्व कार्य करता है और न रज अथवा तमस। मन की इसी अवस्था को त्रिगुणातीत कहते हैं, जो तीनों गुणों के परे हैं, जहाँ चेतना तीनों गुणों से पूर्णतया मुक्त हो जाती है। जब आपकी चेतना एकान्त में बिना किसी गुण से मिले या उन

पर अनिर्भर रहती है तब चेतना की उस अवस्था को गुणों से परे या गुणों से मुक्त कहा जाता है।

गुणों की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दो ही उद्देश्य हैं– पुरुष के लिए अनुभवों की उत्पत्ति करना तथा अन्ततः मुक्ति दिलाना। जब इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है तब सभी गुण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में आ जाते हैं। प्रकृति में दो तरह की क्रियाएँ हो सकती हैं– विकास क्रम एवं अन्तर्वलय। विकास क्रम में अनुभव के पदार्थ अस्मिता (स्मृति), तन्मात्रा (इन्द्रिय), भूत (तत्त्व) आदि की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्त होते हैं। अन्तर्वलय की प्रक्रिया ठीक इसके विपरीत होती है। वस्तुएँ क्रमशः विलीन होती जाती हैं, जिससे अन्ततः गुण निर्विघ्न अवस्था में बने रह जाते हैं। यह तब होता है जब गुणों का उद्देश्य पूरा हो जाता है, अर्थात् पुरुष को आनन्द एवं मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

योग में पुरुष को चेतना की उच्चतम अभिव्यक्ति की संज्ञा दी गयी है, जो सभी वृत्तियों, गुणों एवं प्रकृति की उलझनों से पूर्णतः मुक्त है। सामान्यतः हमारी चेतना ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि के द्वारा काम करती है, जो प्रकृति से निर्मित हैं तथा गुणों के सीधे प्रभाव में हैं। ध्यान की अवस्था में चेतना अधिक गहराई में काम करती है, परन्तु फिर भी वहाँ भी प्रत्यय अथवा मन का बीज या अंश बचा रहता है जो गुणों से प्रभाव में होता है। वहाँ अहम् की छाप या अहंकार की उलझन भी रहती है। ध्यान के अन्त में प्रत्यय अलग हो जाता है तथा अहंकार या अहम् की भावना भी हट जाती है। वहाँ बचती है मात्र विशुद्ध चेतना या पुरुष। यही परम चेतना, जो प्रकृति के बन्धन से रहित है, तीनों गुणों से अलग होकर मुक्ति के लिए ऊपर उठती है।

साधना के सोपान

पहले चरण में प्रारम्भिक काया स्थैर्यम् की उपलब्धि हो जाती है। उसके बाद इन तीनों गुणों की भौतिक, मानसिक तथा भावनात्मक रूपों में अनुभूति की जाती है। यह प्रक्रिया अति प्रारम्भिक स्तर पर होती है जिससे कि आप इन गुणों की अनुभूति से परिचित हो सकें।

उसके बाद सावधानीपूर्वक दोनों नासिका रन्ध्रों में श्वसन के प्रवाह की निगरानी कर गुण एवं स्वर के बीच सम्बन्ध विकसित किया जाता है। यहाँ स्वर का तात्पर्य नासिका रंध्रों से आती-जाती श्वासों से है। बायाँ स्वर या श्वास का प्रवाह इड़ा नाड़ी के तथा दाहिना स्वर पिंगला नाड़ी के अनुरूप होता है एवं

जब दोनों स्वर एक साथ चलते हैं तो यह सुषुम्ना नाड़ी के अनुरूप होता है। इसलिए बाँयें स्वर की प्रबलता अर्न्तमुखता या तमस के लिए उत्तरदायी होती है। दाहिने स्वर की प्रबलता बहिर्मुखता या रजस के लिए उत्तरदायी होती है तथा जब एक साथ दोनों स्वरों की प्रबलता होती है तब यह संतुलन या सतो गुण प्रदान करती है। इस प्रकार स्वर का विश्लेषण आपको विविध गुणों एवं अवस्थाओं के साथ तादात्म्य स्थापित किये बिना, निरपेक्ष भाव से गुणों के प्रभाव एवं उनकी अन्त: क्रियाओं को समझने योग्य बनाता है।

इसके बाद गुण एवं तत्त्व के बीच के सम्बन्ध की खोज की जाती है। यहाँ मुख्य बिन्दु विविध रंग होते हैं जो सहज ही आकाश में दिखाई देते हैं तथा क्रियाशील तत्त्व को निर्दिष्ट करते हैं। पृथ्वी तथा जल तत्त्व तमस के अनुरूप होते हैं, अग्नि तत्त्व रजस के अनुरूप तथा वायु एवं आकाश तत्त्व सत्त्व के अनुरूप होते हैं। चूँकि रंगों को मिश्रित होते और बिखरते देखा जाता है इसलिए निरपेक्ष स्तर पर गुण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। स्वर तथा तत्त्व के माध्यम से गुणों का अवलोकन एवं विश्लेषण गुणों के ऊपर नियन्त्रण प्राप्त करने तथा क्रमश: उनके प्रभाव को समाप्त करने हेतु एक उत्तम विधि है।

अब दूसरे चरण में, गुणों की आपसी अन्तर्क्रियाओं का अवलोकन करने हेतु प्रत्यक्षदर्शी चेतना को प्रक्षेपित किया जाता है, जिससे कि उनको समझने, उन पर स्वामित्व जमाने और उनसे ऊपर उठने के लिए गुणों की अन्त: क्रियाओं का अवलोकन किया जा सके। किसी वस्तुगत आधार, जैसे स्वर या तत्त्व के बिना द्रष्टा अन्त:करण के अवयवों के गुणों को परिमार्जित या अलग-अलग करने के लिए उनका अवलोकन करता है। जैसे-जैसे विभिन्न विचार एवं भावनायें उठती हैं, उस समय यदि पूर्ण अनासक्ति एवं विरक्ति का भाव बनाकर न रखा जाये तो इस बिन्दु पर मन के साथ बहुत आसानी से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है। गुणों की पारस्परिक क्रियाओं से सतत् अलग रहकर आत्मन् या द्रष्टा अन्तत: मानसिक स्तर पर इस योग्य हो जाता है कि उसके प्रभाव से दूर रह सके। भौतिक एवं मानसिक स्तरों पर गुणों की पारस्परिक अन्तर्क्रियाओं का अवलोकन करने के पश्चात् हम सगुण ध्यान के चरण में प्रवेश करते हैं।

सगुण का अर्थ है गुण सहित। यह एक अन्य स्तर का प्रतिनिधित्व करता है जो शरीर और मन से परे है तथा जहाँ जीवन के निर्मल गुणों का अनुभव किया जाता है। सगुण ध्यान का तात्पर्य है निर्मल गुणों की

सजगता को विकसित करना। जिन गुणों का अनुभव हमारे जीवन में होता है वे सभी अशुद्ध गुण हैं। इन दूषित गुणों पर ध्यान प्रारम्भिक अवस्था में होता है जहाँ हम तामसिक, राजसिक तथा सात्त्विक स्वभाव से और हमारे व्यक्तिगत जीवन, स्वभाव, अभिव्यक्ति, अन्तर्क्रिया इत्यादि पर पड़ने वाले उनके प्रभाव के प्रति सजग होते हैं। इन स्तरों पर अपने जीवन को बदलने के लिए गुणों की प्रवृत्ति का परीक्षण एवं सुधार का प्रयास किया जाता है। फिर भी निर्मल गुण जो अव्यक्त आयाम में स्थित होते हैं उनका सगुण ध्यान में अनुभव किया जाता है। सगुण ध्यान की अवस्था की परिणति निर्गुण ध्यान की अनुभूति में होती है।

निर्गुण का अर्थ होता है गुण रहित। यहाँ तीनों गुणों का बोध या ज्ञान एक प्रकाश में विलीन हो जाते हैं। इसे सूर्य के प्रकाश के एक पूर्ण छल्ले या आग की लौ के जैसा देखा जा सकता है, जो ज्योतिर्मय शरीर का द्योतक है। प्रकाश का यह छल्ला व्यक्त गुणों के ज्ञात लक्षणों के परे है। इस दृष्टि का विकास करना गुण रहित आकाश का अनुभव है।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड को सीधा रखते एवं सिर को थोड़ा पीछे झुकाते हुए ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। हथेलियों को ज्ञान या चिन् मुद्रा में घुटनों पर रख लीजिये। आँखें बन्द कर सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कीजिये। अपनी सजगता को अन्तर्मुखी बनाइये। अनुभव कीजिये कि आपका ध्यान का आसन स्थिर एवं निश्चल हो रहा है। शरीर की स्थिरता पर अपने अवधान को केन्द्रित कीजिए। जब शरीर और अधिक शान्त एवं अचल हो जाये, आप अपनी आन्तरिक नीरवता के प्रति सजग होइये। शरीर एवं निश्चलता के प्रति सजग बनिये।

द्वितीय चरण– गुण की सजगता

शरीर और मन की स्थिरता में गुणों की क्रिया के प्रति सजग होइये। क्या आपका शरीर भारीपन या हल्कापन, गर्मी या ठण्ढ, विश्रान्ति या तनाव, असुविधा या आराम का अनुभव कर रहा है? भौतिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए वर्तमान गुणों की पहचान कीजिये। प्रतिक्षण बदलते हुए गुणों एवं उनकी अन्त:क्रियाओं के प्रति सजग होइये।

अब मानसिक अवस्था का अवलोकन कीजिये। मन को, उसकी धारिता अथवा मनोदशा में बिना कोई परिवर्तन लाये, सावधानीपूर्वक देखते जाइये। केवल देखते जाइये कि मन क्रियाशील है या निष्क्रिय, सुस्त है या जागरूक, खण्डित है या एकचित्त, उत्तेजित है या शान्त। भावनाओं का भी अवलोकन कीजिये। आप खुशी का अनुभव कर रहे हैं या उदासी का, सुरक्षित या असुरक्षित, चिन्तित या आश्वस्त?

पल-पल मन में उठने वाले विभिन्न तरह के विचारों के प्रति सजग होइये। क्या वे भूत, वर्तमान या भविष्य से सम्बन्धित हैं? वे दु:खद है या सुखद? वे मात्र आपके चारों तरफ केन्द्रित हैं या दूसरे के चारों तरफ भी? आप विचारों एवं अनुभवों का अवलोकन कर पा रहे हैं या फिर वे आपकी सजगता के बिना अर्धस्वप्नावस्था में चलते जा रहे हैं? भौतिक एवं मानसिक अवस्था का अवलोकन एवं विश्लेषण करते जाइये। प्रधान गुण या एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए गुणों को साक्षी भाव से देखने का प्रयास कीजिये। जैसे ही आप मानसिक शक्तियों का अवलोकन एवं निर्देशन करना प्रारम्भ करते हैं तो अभ्यास के समय गुणों में जो परिवर्तन होता है उसके प्रति सजग रहिये।

तृतीय चरण– स्वर तथा गुण

धीरे-धीरे आप अपनी चेतना को शरीर से हटा कर श्वास पर ले जाइये। भीतर, बाहर आती-जाती सहज श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग होइये। हर एक श्वसन का सावधानीपूर्वक ख्याल कीजिये। नासाग्र पर धारणा कीजिये तथा नासिका रन्ध्रों में ऊपर जाती एवं नीचे आती श्वास का ख्याल कीजिये। जब आप श्वसन प्रक्रिया को दाहिने तथा बाएँ नासारन्ध्रों के मध्यम से इड़ा तथा पिंगला से जोड़ते हैं तब श्वास के प्रवाह को स्वर कहा जाता है। दाहिनी नासिका में प्रवाह पिंगला नाड़ी के अनुरूप, बायीं नासिका में प्रवाह इड़ा नाड़ी के अनुरूप तथा जब दोनों नासिकाओं में समान प्रवाह हो तो वह सुषुम्ना के अनुरूप होता है।

बाएँ स्वर के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिये कि श्वास बायीं नासिका में चल रही है। मानसिक रूप से बाएँ नासारन्ध्र से श्वास को ऊपर-नीचे चलने के लिए निर्देशित कीजिए। फिर दाहिने स्वर के प्रति सजग बनिये। दायें नासारन्ध्र में श्वास के प्रवाह के प्रति सजग बनिये। मानसिक रूप से श्वास को दाहिने नासारन्ध्र से चलने के लिए निर्देशित कीजिए। कुछ

समय के लिए बाएँ एवं दाहिने स्वर की सजगता को विकसित कीजिये। तब अनुभव कीजिये कि एक साथ ही दोनों स्वर चल रहे हैं। अनुभव कीजिये कि दोनों नासा रन्ध्रों से श्वास बराबर ऊपर-नीचे अबाध गति से चल रही है।

सावधानीपूर्वक देखने की चेष्टा कीजिये कि इड़ा, पिंगला या सुषुम्ना में कौन-सा स्वर प्रबलता से चल रहा है। यदि दाहिने नासारन्ध्र को बंद कर दें तथा बायाँ नासारन्ध्र अबाधित चलता रहे तो यह इड़ा की प्रबलता को इंगित करता है। यदि बायाँ नासारन्ध्र बन्द हो तथा दायाँ अबाधित चल रहा हो तो वह पिंगला की प्रबलता तथा रजो गुण की क्रियाशीलता का द्योतक है।

यदि दोनों नासारन्ध्र खुले हों तथा एक या दो मिनटों के लिए समान रूप से चल रहे हों तो यह प्रवाह के इड़ा से पिंगला या पिंगला से इड़ा में बदलने के समय को इंगित करता है, और इसलिए रजस से तमस या तमस से रजस गुण में बदलाव होता है। हालाँकि यदि दोनों नासारन्ध्र कई मिनटों या अधिक समय के लिए खुले हों तो यह सुषुम्ना के चलने का सूचक है तथा इसमें सतोगुण क्रियाशील रहता है।

जब आप स्वर का अवलोकन करते हैं तो संगामी मानसिक तथा शारीरिक अवस्थाओं के प्रति सजग रहिये, जो प्रबल नाड़ी एवं गुण से सम्बद्ध रहती हैं। यदि बायाँ स्वर चल रहा हो तो आलस्य, तन्द्रा तथा स्वप्नावस्था के प्रति सजग होइये, जो यह दर्शाता है कि इड़ा के द्वारा तमो गुण परिचालित है। यदि दाहिना स्वर चल रहा हो तब आप अशान्त तथा मानसिक बिखराव का अनुभव करेंगे, क्योंकि पिंगला के द्वारा रजो गुण का परिचालन होता रहता है। जब दोनों नासारन्ध्र चल रहे हों, लेकिन एक थोड़ा बंद हो और दूसरा अधिक सुचारु रूप से चल रहा हो तो वहाँ स्वरों एवं गुणों के बीच पारस्परिक अन्तर्क्रियाएँ होंगी। कौन-सा स्वर अधिक स्वतन्त्रता से चल रहा है उसके आधार पर वहाँ रजस और तमस या तमस और रजस के बीच अन्तर्क्रियाएँ होंगी। ऐसी अवस्था में आलस्य और बिखराव या बिखराव और एकाग्रता के बीच सजगता दोलायमान रहेगी। मन स्थिर नहीं होगा।

जब दोनों स्वर खुले हों तथा मुक्त रूप से चल रहे हों तभी आलस्य तथा बिखराव लुप्त होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय सुषुम्ना चल रही

होती है उस समय ध्यान सहजता से होता है। मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाएँ ध्यान के लिए बहुत ही अनुकूल होती हैं। मन बिना किसी प्रयास के निर्द्वन्द रूप में स्थिर एवं एकचित्त रहता है तथा वहाँ शरीर अथवा बाहरी वातावरण की सजगता नहीं रहती।

स्वर का अवलोकन करते रहने से आप धीरे-धीरे गुण पर नियंत्रण पा सकते हैं। श्वास के विश्लेषण और क्रियाशील स्वर एवं गुण के निर्धारण के बाद आप निर्णय ले सकते हैं कि किसी विशेष समय में आपको किस गुण की क्रियाशीलता की आवश्यकता है और तब उस श्वसन तथा स्वर को कुशलता से बदलकर उस गुण में परिवर्तन लायें। गुण पर स्वर के प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित कीजिये। उनके सम्बन्ध की प्रत्यक्ष अनुभूति कीजिये।

चतुर्थ चरण– तत्त्व तथा गुण

अब श्वास की सजगता का त्याग कीजिये तथा अन्तराकाश के प्रति, जो सम्पूर्ण शरीर में सिर से पैर तक व्याप्त है, सजग होइये। शरीर के अन्दर आकाश के प्रति सजगता को विकसित कीजिये। अपने व्यक्तित्व के रंग की खोज कर इस आकाश के अन्दर मूल पंच तत्त्वों का अनुभव करने का प्रयास कीजिये।

इन तीनों गुणों के कारण शरीर में पाँचों तत्त्व सतत् प्रवाहित एवं परिवर्तित होते रहते हैं। ये पाँचों तत्त्व तीन गुणों से नियंत्रित होते हैं। जब कोई विशेष गुण शरीर में क्रियाशील होता है तो उसके अनुरूप तत्त्व का निर्माण होगा तथा उसके रंग दिखाई देंगे। उदाहरण के लिए, जब रजो गुण संचारित होता है तो लाल रंग दिखाई देता है और अग्नि तत्त्व क्रियाशील हो जाता है।

अन्तराकाश का अवलोकन कीजिये। शरीराकाश में रंग या किसी रंग की अभिव्यक्ति के प्रति सजग होइये। रंग का ख्याल कीजिये, जितने समय तक आप देख सकते हैं सहजता से उसे देखते जाइये। गुणों का प्रभाव निरंतर बदलता रहता है, इसलिए रंग भी बदलते रहते हैं। पीला और उजला रंग पृथ्वी तथा जल के सदृश है और तमो गुण के विभिन्न स्तरों का सूचक है। लाल अग्नि के अनुरूप है तथा रजो गुण का सूचक है। नीले, भूरे या काले रंगों के विभिन्न छाया-भास वायु तथा आकाश के अनुरूप हैं तथा सतो गुण को इंगित करते हैं। जब ये रंग नारंगी, गुलाबी, बैंगनी, हरा, कत्थई इत्यादि का छायाभास देते हैं तो इसका अर्थ होता है कि दो गुणों की पारस्परिक क्रिया हो रही है।

जब आप इस साधना को आरंभ करते हैं तो रंग सदा स्पष्ट नहीं होता तथा कभी-कभी तो आप बिल्कुल कोई रंग नहीं देखेंगे। रंग किसी विशेष आकार में दिखाई दे सकते हैं, जैसे एक वृत्त या एक त्रिभुज। या फिर हो सकता है कोई आकार नहीं हो, मात्र रंगों की एक पट्टी हो। जब तत्त्वों में परिवर्तन हो रहा होता है तब वह संक्रमण की एक अवधि होती है। तब आप एक ही साथ अनेक रंगों का सम्मिश्रण देख सकते हैं। कुछ समय तक आप अभिव्यक्त हो रहे तत्त्वों एवं उनके सुसंगत गुणों का अन्तराकाश में अवलोकन करते जाइये।

बदलते रंगों का अवलोकन करते जाइये तथा सुसंगत गुणों का या आत्मा से व्यक्त हो रहे गुणों का अनुभव करते जाइये। जब आप तत्व और गुण के बीच के सम्बन्ध को समझ जायेंगे तब आप आसानी से तत्त्वों को परिवर्तित कर गुण पर नियंत्रण पाने में सक्षम हो जायेंगे। उदाहरण के लिए, यदि आप तमस को रजस गुण में बदलना चाहते हैं तो पीले रंग को बदलकर प्रज्वलित अग्नि की तरह लाल रंग की कल्पना कीजिये तथा अपनी मानस दृष्टि को उसी लाल रंग पर जमाये रखिये। या आप रजस को सतो गुण में बदलना चाहते हैं तो वर्णक्रम में नीले से काले तक विभिन्न रंगों का मानस दर्शन कीजिए तथा उसको अपनी दृष्टि में पकड़े रहिये। तब सुसंगत गुण का संचालन होने लगेगा। जब आप इस ज्ञान को प्रयोग में लाने में समर्थ हो जायेंगे तब आप तत्त्वों एवं गुणों के निरंतर बदलते चक्र से प्रभावित नहीं होंगे।

पंचम् चरण – द्रष्टा एवं गुण

अब आप पंच तत्त्वों के प्रति सजगता का त्याग कीजिए तथा अंत:करण, आन्तरिक यंत्र या मन:क्षेत्र के प्रति सजग होइये, जहाँ मानस तत्त्व परिवर्तनशील गुणों के साथ अनवरत पारस्परिक क्रिया करते रहते हैं। अन्त:करण की अनुभूति कीजिये, जिसकी उत्पत्ति महत्, अर्थात् वृहतर मन से हुई है। अन्त:करण चार तत्त्वों या खण्डों से मिलकर बना है– मनस, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार।

अन्दर के द्रष्टा या साक्षी को जगाइये, जो सदा गुणों के बदलते प्रभाव के प्रति सजग रहता है। सजगता की यह शक्ति एक अलग ही साक्षी चेतना है जो गुणों के बदलते प्रभावों से भिन्न है। सजगता की यह क्षमता साक्षी भाव की एक पृथक् चेतना है जो गुणों की अभिव्यक्तियों से विलग है। जब यह

द्रष्टा गुणों से अपने को जोड़ कर चेतना की ओट में आ जाता है तब आप दास बन जाते हैं। जब यह द्रष्टा परदे में नहीं होता और गुणों से अनासक्ति रहती है तब यह सजग रहता है और आप स्वामी बन जाते हैं।

अपने भीतर देखने की चेतना को मानसिक प्रक्रिया का अनासक्त भाव से अवलोकन करने तथा मानसिक क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील तीन गुणों की पारस्परिक क्रिया का अवलोकन करने के लिए प्रशिक्षित कीजिए। द्रष्टा के साथ अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कीजिये और तब मन, बुद्धि और अहंकार की पारस्परिक क्रिया का अवलोकन कीजिये। जब रजो गुण की प्रधानता होती है तो मन में अहंकार का संचार होता है और इसलिए पीड़ा और दु:ख तीव्र हो जाता है। जब सतो गुण की प्रबलता होती है तो दु:ख तो रहता ही है, परन्तु इसका विश्लेषण किया जा सकता है तथा समुचित रूप से समझा जा सकता है। इस तरह इसके प्रभाव को बुद्धि के द्वारा संतुलित किया जा सकता है। जब तमो गुण संचारित होता है तब पीड़ा रहती है, परन्तु मन निष्क्रिय रहता है, इसलिए आप इसके प्रति सजग नहीं होते हैं।

मन का अवलोकन करते जाइये। दर्शक सजगता को विकसित कीजिये और इसे मन:क्रिया से अलग कीजिये। मन को दूरदर्शन के परदे के जैसा देखिये, जो आपको सब कुछ प्रदर्शित करता है। विचारों एवं भावनाओं की मानसिक क्रिया में गुणों की अन्तर्क्रियाओं को देखते जाइये जो शरीर, मन एवं ज्ञानेन्द्रियों पर नियंत्रण रखती हैं। यदि आप अपने भीतर इस स्तर की चेतना का विकास कर सकने के योग्य हो जायें तो यह एक चमत्कारिक अनुभूति होगी। इस विधि द्वारा बिना किसी औषधि की सहायता के आप अपने को देखने की कला सीख सकते हैं। जब यह सजगता अनवरत, अकम्पित तथा सहज हो जाये तो गुणों के प्रभाव का आसानी से रूपान्तरण किया जा सकता है। हर एक क्षण आप अपने को देखना सीखिये; देखिये कि आप क्या कर रहे हैं; देखिए, आप क्या सोच रहे हैं; देखिए, आप क्या अनुभव कर रहे हैं?

षष्ठ चरण– सगुण ध्यान

सगुण ध्यान गुणों के साथ ध्यान है, परन्तु ये गुण वे नहीं हैं जिनकी अनुभूति पिछले चरणों में की गयी है। इस स्तर पर हम विशुद्ध गुणों के प्रति सजगता को विकसित करेंगे जो कि एक अधिक आत्मपरक अनुभूति

होगी। जिन गुणों को हम सात्त्विक, राजसिक और तामसिक की संज्ञा देते हैं वे सभी मिलावटी एवं परिवर्तनीय हैं। यहाँ अव्यक्त आयामों में स्थित विशुद्ध गुणों का अवलोकन किया जाता है।

गुणों के मौलिक रूप को प्रकाश, गति तथा स्थायित्व के रूप में अनुभव करते हैं। तीनों गुणों के स्वत: देदीप्यमान स्वभाव के प्रति सजग होइये। तीनों प्रकाश के प्रतिमान हैं और स्वयं ज्योतिर्मय हैं। सभी गुणों की विशेषता है कि वे प्रकृति के आकर्षण के अनुरूप व्यक्त होते हैं तथा साथ ही उनमें यह गुण भी है कि वे स्थिर बने रह सकें और परिवर्तन या रूपान्तरण की प्रक्रिया में नहीं चले जायें।

इन तीनों गुणों के प्रति स्वतंत्र रूप से एक शक्ति के रूप में सजग होइये, जो एक स्वयं देदीप्यमान प्रकाश है। इन गुणों का अनुभव एक शक्ति के रूप में कीजिये, जिसमें सभी वस्तुओं का रूपान्तरण करने तथा पुन: स्थिर, अचल एवं शान्त होने की क्षमता है। यहाँ जिस दृष्टि को विकसित करना है वह मानसिक या तटस्थ दृष्टि नहीं है। यह स्व-अभिव्यक्ति की एक प्रक्रिया है जो ज्ञान या सजगता से जुड़ी है।

सप्तम् चरण– निर्गुण ध्यान

निर्गुण ध्यान गुण रहित ध्यान है। सगुण ध्यान में तीनों गुणों के स्वतंत्र एवं स्वत: देदीप्यमान अस्तित्व की सजगता या बोध विद्यमान रहता है, लेकिन निर्गुण ध्यान में सभी गुण एक प्रकाश या शाश्वत जीवन ज्योति में समाविष्ट हो जाते हैं, जिसे चैतन्य ज्योति के नाम से जाना जाता है।

सम्पूर्ण स्थिरता के प्रति सजग होइये। सम्पूर्ण सृष्टि को अन्दर में अनुभव कीजिए। यह अनुभव अज्ञात है, तथा बौद्धिक अवधारणा या समझ से परे है। अनुभव कीजिए कि आप पूर्ण दिव्य प्रकाश से आपूरित हैं जो विशुद्ध, अनन्त, स्थिर, शाश्वत, आकाश के परे, अपरिमेय, रंगहीन, रूपहीन तथा स्वादहीन है।

इस रूपान्तरित अवस्था की अनुभूति कीजिये जो आनन्दमय और अमर है, जो सभी कारणों का कारण है, सभी का सहायक है, संसार जिसका रूप है तथा जो अदृश्य एवं सर्वव्यापी है। अपनी सजगता को इसी मूल तत्त्व में विलीन कीजिए जो गुणों के परे है, दिक्, काल और पदार्थ के परे है, तथा द्वैत के अनुभव के परे है।

अपने आपको मानसिक रूप से एक पूर्ण गोलाकार सूर्य प्रकाश या आग की ज्वाला के अन्दर बैठा हुआ देखिये। इस दृष्टि को विकसित करते जाइये जब तक कि प्रकाश/ज्वाला तीव्र न हो जाये। अपने शरीर को गोलाकार प्रकाश में समाहित होते देखिये जो चैतन्य ज्योति, शाश्वत जीवन ज्योति का प्रतीक है। यह गोलाकार ज्वाला या सूर्य प्रकाश व्यक्त आयामों के गुणों के परे है। यह शारीरिक एवं मानसिक गुणों के जगत् के परे है।

गोलाकार प्रकाश पर दृष्टि को बनाये रहिये और किसी चीज पर नहीं। यहाँ कोई साक्षी या द्रष्टा नहीं है, केवल गोलाकार प्रकाश, सिर्फ विशुद्ध सजगता का प्रकाश। जिस तरह आप अपने इच्छानुसार एक गुलाब की या किसी अन्य वस्तु की कल्पना करते हैं उसी तरह यह गोल प्रकाश भी एक स्वैच्छिक दृश्य होता है। लम्बे समय तक इस दृश्य या दृश्यमान अनुभूति को बनाये रखना ही गुण रहित आकाश की अनुभूति है।

अष्टम् चरण– साधना की समाप्ति

गोल प्रकाश की सजगता का अब त्याग कीजिए तथा साधना की समाप्ति के लिए तैयार हो जाइये। धीरे-धीरे अपनी सजगता को रूपान्तरित आयामों से वापस कीजिए और रूपों एवं वस्तुओं के संसार में वापस आइये। अपने शरीर को ध्यान की अवस्था में बैठा हुआ देखिए। सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर का ख्याल कीजिए। जिस कमरे में आप बैठे हैं उसके प्रति सजग बनिये। अपने बैठे हुए शरीर को कमरे में देखिये। विभिन्न बाहरी ध्वनियों को सुनिये। गहरी लम्बी श्वास लीजिये तथा तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिए।

हरि ॐ तत्सत्

व्योम पंचक दो

परमाकाश

परमाकाश की व्याख्या टिमटिमाते तारों के प्रकाश सहित एक गहरे, अंधेरे आकाश के रूप में की गयी है। वहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान की जो अवस्था है उसे 'शून्य' कहा जाता है। यहाँ पर प्रकाश, बोध एवं ज्ञान के पूर्ण अभाव की अनुभूति होती है, केवल एक छोटे से तारे या प्रकाश-बिन्दु के रूप में सजगता बची रहती है। यह स्वत: पूर्ण सजगता है, छितरायी या विस्तृत सजगता नहीं, अपितु सजगता का निश्चित, दीप्तिमान बिन्दु है। यहाँ से ध्यान की एक प्रक्रिया विकसित की गई है जो शून्य ध्यान के नाम से जानी जाती है। उसके बाद एक ऐसा बिन्दु आता है जब बाहरी एवं भीतरी सजगता का पूर्ण अभाव रहता है, किन्तु अविच्छिन्न सजगता सक्रिय रहती है। यही अवस्था परमाकाश की अनुभूति है। परम यानी सर्वोच्च, अत: परमाकाश सर्वोच्च आकाश है।

शून्य धारणा

शून्य ध्यान की साधना धारणा की अवस्था से ध्यान की अवस्था में प्रवेश कराती है। ध्यान की प्रक्रिया में ध्यान में प्रवेश करने से पहले एक समय आता है जब मन का शरीर से, मन का बुद्धि से, बुद्धि का भावना से भावना का बाहरी वस्तु, दिक् तथा काल से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद होने की अनुभूति के बीच से हम गुजरते हैं। अनुभूति की यह विशेष अवस्था ही शून्य धारणा की अवस्था है जो कि वास्तविक ध्यानावस्थित मन में प्रवेश का प्रथम चरण है।

स्थूल मन का सूक्ष्म मन में रूपान्तरण हो जाता है। संत कबीर ने अपने मुक्त कण्ठ से इस अवस्था की व्याख्या यह लिखते हुए की है–

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है
बाहर भीतर पानी
फूटहि कुम्भ जल जल ही समाना
बात कहें ये ज्ञानी

"जल का एक घड़ा एक जल राशि में है, उस घड़े के अन्दर जल है। घड़े के चारों तरफ भी जल है। अब मात्र उस घड़े को फोड़ना है जिससे घड़े के अन्दर का जल घड़े के बाहर चारों ओर फैले जल के साथ मिल जाये, विलीन हो जाये।"

यही शरीर के अन्दर समाविष्ट ऊर्जा तथा चेतना की अवधारणा है, जो यौगिक साधना के अन्त में ब्रह्माण्डीय चेतना एवं ऊर्जा के साथ अन्तर्लीन हो जाती है। यही शून्य धारणा का उद्‌देश्य है। पूर्ण शून्य, रिक्ति, अबाध अवपात के समय सब कुछ बदल जाता है। शरीर बदल जाता है, बोध बदल जाता है, अनुभूतियाँ बदल जाती हैं, संसार एवं ब्रह्माण्ड बदल जाता है। दहराकाश के अन्तिम बिन्दु एवं हृदयाकाश के अन्तिम बिन्दु का अत्यन्त गहरा और आन्तरिक सम्बन्ध होता है। पूर्व में प्रतिभा सम्पन्न ऋषि-मुनि, कृत संकल्प साधक इस विधि का प्रयोग करते थे– खड़ी चट्‌टान से शून्य में छलांग लगाते थे।

विधि

प्रथम चरण– तैयारी

सुविधानुसार बैठ जाइये। ध्यान के किसी आसन को चुन लीजिये जिसमें शरीर को लम्बवत् एवं सीधा रखा जा सके। पद्मासन या सिद्धासन इस अभ्यास के लिए अनुशंसित किये गये हैं। घुटनों के ऊपर हाथों को ज्ञान या चिन् मुद्रा में रखिये। आश्वस्त हो जाइये की रीढ़ की हड्‌डी सीधी, लम्बवत् है। सिर सीधा है, मुँह तथा आँखें सहजता से बन्द हैं। इस आसन में अपने को आराम की स्थिति में लाइये और पूर्णरूपेण आश्वस्त होइये कि शरीर के किसी भाग में तनाव या कड़ापन नहीं है। एक बार जब अभ्यास प्रारम्भ हो जाता है तो शरीर में किसी तरह हलचल नहीं होनी चाहिए। अत: आसन का चुनाव सावधानीपूर्वक कीजिए तथा उस आसन में अपने को व्यवस्थित कर लीजिये।

आँखें बन्द रखते हुए मानसिक रूप से पूरे शरीर के प्रति सजग होइये। आंतरिक रूप से शरीर का अनुभव कीजिये। शरीर की स्थिति एवं भंगिमा की

पूर्ण स्वीकृति होनी चाहिए। पीड़ा का, असुविधा या आसन का प्रतिवाद नहीं होना चाहिए। तेजी से अपने मन को सम्पूर्ण शरीर में घुमाइये, सभी अंगों के प्रति सजग होइये तथा आश्वस्त हो जाइये कि आप सुखद स्थिति में हैं।

तृतीय चरण– मानसिक दर्पण

मानसिक रूप से कल्पना कीजिये कि आपके सामने एक आदमकद दर्पण है। अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखने की चेष्टा कीजिये। सम्पूर्ण शरीर मानसिक दर्पण में प्रतिबिम्बित हो रहा है। मानसिक रूप से शरीर की प्रतिछाया को देखिये। जब आप अपने शरीर का अवलोकन करते हैं तो पैरों की स्थिति, हाथों की स्थिति, पीठ की स्थिति को देखिये। आन्तरिक रूप से सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग बनिये। मन को भूल जाइये, विचारों को भूल जाइये, पीड़ा तथा सुख की अनुभूति को भूल जाइये। केवल सिर से पैर तक शरीर का ख्याल कीजिये। सम्पूर्ण शरीर की सजगता, पैर के अँगूठे से हाथों की अँगुलियों एवं सिर के शीर्ष तक बनी रहें। सम्पूर्ण शरीर की आन्तरिक अनुभूति को विकसित कीजिये।

तृतीय चरण– खाली आवरण

शारीरिक अनुभवों के प्रति पूर्ण सजग होइये और अपने को पूर्णरूप से निश्चल एवं स्थिर बनाइये। पूर्ण अचल एवं स्थिर होने के बाद शारीरिक अवस्था, नीरवता की अनुभूति, स्थिरता एवं अचलता के प्रति सजग होइए, जिसका अनुभव तभी होगा जब शरीर पूर्ण आराम, सुविधाजनक विश्रान्ति एवं अचलता की स्थिति में होगा। आन्तरिक रूप से शान्ति की अनुभूति को विकसित कीजिए। शरीर का ख्याल कीजिए। शरीर का अनुभव एक खाली ढाँचे के रूप में कीजिए, जो अन्दर से खोखला है। अन्दर में कुछ भी नहीं है। शरीर अन्दर से पूर्णत: खाली है। मात्र त्वचा का एक आवरण है।

इस सजगता को विकसित एवं तीव्र करने का प्रयास कीजिए। मांसपेशियों, हड्डियों, स्नायु तंत्रों तथा आन्तरिक अंगों की सजगता को विलीन होने दीजिये। शरीर को एक गुब्बारे के रूप में, खाली आवरण के रूप में अनुभव कीजिए। शरीर का बाहरी आवरण केवल त्वचा है और त्वचा की अनुभूति आपको विकसित करनी है, मात्र त्वचा की और कुछ नहीं, शरीर पूर्ण रूप से खोखला है, भीतर खाली है।

इस अनुभूति में आकाश की सजगता विकसित कीजिए, जो शरीर में निहित है। ख्याल को शरीर के किसी विशेष क्षेत्र या किसी अंग पर केन्द्रित

नहीं कीजिए, अपितु पूरे शरीर का अनुभव कीजिए। आकाश का अनुभव कीजिए– आकाश जो शरीर के अन्दर है और जो शरीर के कोमल खोल के चारों ओर व्याप्त है।

चतुर्थ चरण– मैं कौन हूँ?

आप अपने से प्रश्न कीजिए, "मैं कौन हूँ? क्या मैं भौतिक शरीर हूँ? नहीं मैं यह नहीं हो सकता, क्योंकि भौतिक शरीर निरंतर परिवर्तन की स्थिति में रहता है। गत वर्ष मेरा शरीर आज की अपेक्षा भिन्न था। मैं जब बच्चा था उस समय से अभी मेरा शरीर भिन्न है। मेरा शरीर सतत् परिवर्तन, बदलाव की स्थिति में रहता है। यह मेरा वास्तविक स्वरूप हो नहीं सकता। क्या मैं मन हूँ? नहीं। मेरा आन्तरिक स्वरूप मन हो नहीं सकता, क्योंकि वह भी सतत् परिवर्तनशील है। एक क्षण यह प्रसन्न रहता है। दूसरे क्षण यह दु:खी हो जाता है। इसके मिजाज में निरन्तर उतार-चढ़ाव आता रहता है। मन मेरा असली स्वरूप कैसे हो सकता है? क्या मैं एक हिन्दू, इसाई, जैन, बौद्ध, अंग्रेज या भारतीय हूँ? नहीं। ये तो सभी परिचय के गौण रूप हैं। ये मेरे आन्तरिक स्वरूप को नहीं दर्शाते हैं।"

आप अपने से इस तरह के प्रश्न करते जाइये, तब फिर प्रश्न कीजिये, "मैं कौन हूँ?" याद रखिये ब्रह्माण्डीय घटना के पीछे आप एक साक्षी हैं। आप एक अस्तित्व हैं, अपरिवर्तनीय अस्तित्व हैं। आप चैतन्य, विशुद्ध चैतन्य हैं। आप अविनाशी शक्ति हैं। आपका स्वभाव 'हाँ' में निहित यानी धनात्मक है। आप वही हैं जो आप हैं, "मैं हूँ।" शान्ति एवं नीरवता की अनुभूति के साथ आप इस भाव को विकसित कीजिए।

पंचम् चरण– ऊर्जा एवं चेतना

आकाश तत्त्व की सजगता के साथ अपने भीतर शान्ति एवं स्थिरता के अनुभव को विकसित कीजिए। शरीर, जिसके अन्दर कुछ नहीं है, मात्र त्वचा का बाहरी खोल है, उसका पूर्ण रूप से अनुभव कीजिए। त्वचा रूपी आवरण के भीतर ऊर्जा मौजूद है, वहाँ चेतना विद्यमान है। शरीर के भीतर अवस्थित ऊर्जा एवं चेतना के प्रति सजग होइये। शरीर को हिलाइये नहीं। शरीर को पदार्थ के रूप में अपने से मत जोड़िये। आप आकाश तत्त्व हैं और आकाश में ऊर्जा एवं चेतना निहित है। आपको यही स्मरण रखना है।

आपको उस अनुभव से जुड़े रहना है। हिलिए नहीं, किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं हो। केवल आकाश तत्त्व का ख्याल रखिये। शरीर के खोल

में निहित चेतना एवं ऊर्जा के प्रति सजग रहिये। शरीराकाश और शरीर के चारों तरफ मात्र चेतना एवं ऊर्जा व्याप्त हैं, और कुछ भी नहीं। वहाँ न मन है न विचार, न अनुभव न भावना, और न इच्छा है। केवल चेतना एवं ऊर्जा का अनुभव आपके अंदर तथा आपके चारों ओर व्याप्त है। प्रत्येक चीज का अनुभव दिव्य ऊर्जा एवं शुद्ध चेतना के रूप में कीजिये– असीम, झिलमिलाती, स्पन्दित एवं प्रवाहित।

षष्ठ चरण– शून्यता

सम्पूर्ण शरीर भीतर से ब्रह्माण्ड के साथ समस्वरित हो स्पन्दित हो रहा है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दैहिक लय के साथ स्पन्दित हो रहा है। असीम ऊर्जा एवं चेतना के इस समुद्र में स्नान कीजिए। नीरवता में तैरिये। शान्ति में तैरिये। कालातीत में तैरिये। सभी कुछ ऊर्जा है। शून्य का अनुभव कीजिए। शरीर के अन्दर का आकाश तत्त्व शरीर के बाहर में फैले आकाश तत्त्व के साथ समन्वित है। शारीरिक शान्ति, नीरवता, स्थिरता तथा अचलता का शरीर के चारों तरफ की शान्ति, स्थिरता तथा अचलता से सामंजस्य है।

शरीर के खोल के अन्दर जिस खोखलेपन का अनुभव होता है वह समयातीत अनुभूति है। वहाँ समय तथा वस्तु की अवधारणा नहीं होती। केवल आकाश की अवधारणा और आकाश के अन्दर स्पन्दित, प्रवाहित, झिलमिलाती ऊर्जा की सजगता है। इसी तरह का अनुभव शरीरावरण के बाहर भी होता है। आपको केवल अनुभव बनना है। आप कुछ नहीं हैं, मात्र पूर्ण शून्यता, रिक्तता, असारता, परिशून्यता की अनुभूति हैं। शून्यता का अनुभव शरीर के भीतर तक ही सीमित नहीं है, अपितु शरीर के बाहर भी वह प्रक्षेपित होता है।

सभी तरह के अहंकार के बन्धनों को आसानी से टूट जाने दीजिये। हर प्रकार का बन्धन निरर्थक है, कम से कम अभी वर्तमान में आपके लिए उसकी कोई सार्थकता नहीं है। केवल शून्यता, अनन्तता, खोखलेपन के अनुभव को प्रतिष्ठित कीजिए। आप मात्र प्रेक्षक हैं। आप साक्षी हैं। आप विशुद्ध चेतना का अनुभव करने वाले हैं। आपको इसी का अनुभव करना है।

सप्तम् चरण– महाकाश

आप पूर्ण शून्यता, रिक्तता, असारता एवं खोखलेपन की अनुभूति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। अनन्त में समयातीत शून्यता के फैलते हुए अनुभव को प्रतिष्ठित कीजिए। अपनी चेतना को गहरे अंधेरे आकाश में

प्रवेश करने दीजिए। शून्य, गहरे काले आकाश की अनुभूति कीजिये, जो टिमटिमाते तारों जैसे प्रकाश से प्रकाशित है। आप कालातीत आकाश में तैर रहे हैं, जो अंधेरी रात से घिरा है और तारों से प्रकाशित है।

अब अपने ध्यान को तारे के एक प्रतीक पर केन्द्रित कीजिए। अन्धकारपूर्ण, काला आकाश चेतना को और तारे की तरह टिमटिमाता प्रकाश बिन्दु चेतना के दीप्तिमान स्वरूप को चित्रित करता है। आप कितनी भी असुविधा या कष्ट का अनुभव कर रहे हों, अपने आपको अपने शरीर के साथ मत जोड़िये। अपने आप को बारम्बार स्मरण दिलाते रहिए कि मैं यह शरीर नहीं हूँ, शरीर में हो रहे अनुभव मेरे नहीं हैं, मैं इन पीड़ाओं, सुविधा और असुविधाओं से अप्रभावित हूँ। अपनी सजगता परमाकाश में स्थित उस छोटे से तारे के प्रतीक पर टिकाये रखिये।

आकाश के प्रति, फैलती हुई सजगता के प्रति, जो आकाश के साथ विलीन हो रही है, सजग बनिये। दूरस्थ तारे के टिमटिमाते प्रकाश के प्रति सजग बनिये और उस तारे के प्रतीक को नीचे लाकर अपने शरीर में स्वाधिष्ठान के स्तर पर ले जाकर स्थापित कीजिए। अपना ध्यान तारे के प्रतीक पर केन्द्रित रखते हुए ॐ ॐ ॐ मंत्र का जप आरम्भ कीजिए। अपने अन्दर और बाहर परमाकाश का अनुभव कीजिए। यह अनुभव आपके आन्तरिक अस्तित्व तक ही सीमित नहीं है। यह बाहर, प्रत्यक्ष ज्ञान के आयाम के परे, दिक्, काल के परे अनन्त में भी प्रक्षेपित होता है। आपको इसी की उपलब्धि, सिद्धि करनी है। इसी का अनुभव आपको इसकी समस्त भव्यता के साथ करना है।

अष्टम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

इस सजगता को कुछ और पल तक बनाये रखिये। अब धीरे-धीरे सामान्य शरीर के प्रति सजगता को विकसित करना प्रारम्भ कीजिए। धीरे से शून्यता के अनुभव से मन को बहिर्मुखी बनाइये। अब वापस शरीर की भौतिक बनावट पर आइये। हड्डियों, मांसपेशियों, आंतरिक अंगों तथा सुसंहित शरीर के आकार के प्रति सजग होइये। मन एवं मन की अनुभूतियों के प्रति सजग होइये। ज्ञानेन्द्रियों एवं उनसे प्राप्त अनुभूतियों के प्रति सजग होइये। वातावरण के प्रति सजग बनिये। गहरी लम्बी श्वास लीजिए तथा तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिए।

हरि ॐ तत्सत्

व्योम पंचक तीन

महाकाश

महाकाश का वर्णन करते हुए कहा जाता है, 'यह एक जाज्वल्यमान सूर्य के मध्य भाग के समान है जिसे कोई आँखें नहीं देख सकती हैं।' आप देदीप्यमान सूर्य के मध्य में जाकर उसकी दीप्ति को नहीं देख सकते। यह शून्य अवस्था क्रमिक रूप से विकसित हो रही है। प्रारंभ में पूर्ण अंधकार था, जिसमें सजगता के प्रतीक के रूप में केवल एक प्रकाश बिन्दु था। उस प्रकाश बिन्दु की पहचान ही सजगता का अवलोकन करता हुआ द्रष्टा है। परन्तु यहाँ द्रष्टा का सजगता के साथ विलय हो जाता है जिससे कि समस्त व्यक्तित्व सम्पूर्ण सजगता में निमग्न हो जाये। सम्पूर्ण व्यक्तिगत अस्तित्व को दीप्ति में, केवल प्रकाश में विलीन हो जाना है। यह दीप्ति, प्रभा एवं प्रकाश से घिरे होकर सूर्य केन्द्र में रहने के समान है। यही 'महा' के नाम से जाना जाता है।

विधि

प्रथम चरण– आकाशी मुद्रा

किसी स्थिर ध्यान के आसन में हाथों को घुटनों पर रखते हुए बैठ जाइये। जीभ को खेचरी मुद्रा में पीछे मोड़ लीजिए ताकि उसकी निचली सतह से ऊपर के तालु पर दबाव पड़ सके। उज्जायी प्राणायाम एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास कीजिए। अपने सिर को पीछे की ओर झुकाइये, परन्तु बहुत अधिक नहीं। सिर के पीछे का भाग कन्धों पर टिकना नहीं चाहिए। अपनी केहुनियों को कसते हुए भुजाओं को सीधा कीजिए तथा दोनों हाथों से घुटनों को दबाइये। उज्जायी में धीमी और लम्बी श्वास लीजिए।

आरम्भ में इस झुकी हुई अवस्था में श्वास लेने में आप गले में कुछ उत्तेजना का अनुभव कर सकते हैं, परन्तु अभ्यास करने के साथ यह और भी सुविधाजनक हो जायेगी। इस विधि का प्रयोग करते समय अन्तराकाश के प्रति सजग रहिये। आकाश के रूप में चेतना का अनुभव कीजिए। अन्तिम अवस्था ज्यादा से ज्यादा समय तक बनाये रखिये। तदुपरान्त प्रारम्भिक अवस्था में वापस आइये, एक या दो मिनट विश्राम कीजिए तथा पुन: अभ्यास की पुनरावृत्ति कीजिए।

द्वितीय चरण– अन्तराकाश

ध्यान के किसी सुखद आसन में बैठ जाइये। आँखों को बन्द कर लीजिए तथा अपनी सजगता को अन्तर्मुखी बनाइये, शरीर के संतुलन एवं स्थिरता पर धारणा कीजिए। स्थिर शरीर के भीतर अन्तराकाश के प्रति सजग होइये, जो सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। शरीराकाश में अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिये।

शरीर को पूर्णतया खोखला तथा भीतर से शून्य जैसा अनुभव कीजिए। इस अनुभूति में आकाश की सजगता विकसित कीजिए जो शरीर में व्याप्त है। अपनी सजगता किसी विशेष क्षेत्र या शरीर के किसी अंग विशेष पर केन्द्रित नहीं कीजिए, अपितु पूरे शरीर का अनुभव कीजिये। शरीर के भीतर एवं शरीर के बाहर, शरीर के आवरण के चारों तरफ आकाश का अनुभव कीजिये।

तृतीय चरण– प्रदीप्त आकाश

आकाश की सजगता के अन्दर ही आप अपने भीतर नीरवता एवं स्थिरता की अनुभूति को विकसित कीजिए। शरीर की समग्र अनुभूति को विकसित कीजिए, जिसमें आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, मात्र एक खोखला आवरण है। त्वचा के आवरण के अन्दर, अन्तराकाश में ऊर्जा है। शरीराकाश के उस ऊर्जा क्षेत्र के प्रति सजग होइये। शरीर को हिलाइये नहीं। पदार्थ के रूप में अपने को शरीर से मत जोड़िये। आप आकाश हैं तथा आकाश में ऊर्जा है, शुद्ध ऊर्जा।

आकाश तत्त्व की स्थिरता के अन्दर आपको उस अनुभूति को जाग्रत करना है। हिलिए मत, किसी प्रकार की कोई शारीरिक हलचल नहीं। मन को इधर-उधर विचरण करने या स्वप्न देखने की अनुमति नहीं दीजिए। बस, आकाश तत्त्व के प्रति सजग बने रहिए। आवरणित शरीर के खोल

में व्याप्त ऊर्जा का अनुभव कीजिए। वहाँ मात्र ऊर्जा की अनुभूति है, जो समस्त शरीराकाश में व्याप्त है। वहाँ उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहाँ कोई मन, कोई विचार, कोई अनुभव, कोई भावना तथा कोई कामना नहीं है। आपके भीतर तथा आपके चारों तरफ केवल व्याप्त ऊर्जा की अनुभूति है। सभी चीजों को अनन्त, दिव्य, स्पन्दित दैविक शक्ति के रूप में अनुभव कीजिए।

आकाश के अन्दर समय या वस्तु की कोई अवधारणा नहीं है। व्यक्तिगत पहचान का प्रकाश में विलय हो गया है। महत्, अर्थात उच्चतर मन का प्रकाश में विलय हो गया है। शिव तथा शक्ति, पुरुष या प्रकृति के मायामय जगत् का प्रकाश में विलय हो गया है। राग तथा द्वेष का आकर्षण भी प्रकाश में विलीन हो चुका है। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण चेतना प्रकाश में विलीन हो गयी हैं। तत्त्वों का अस्तित्व तथा न होने का अनुभव भी प्रकाश में विलीन हो गया है।

यहाँ पर चेतना एवं ऊर्जा के बीच की पारस्परिक अन्तर्क्रियायें समाप्त हो चुकी हैं। जब मायिक तथा संवेदी जगत् विलीन हो जाता है तो मात्र एक स्व-ज्योतिर्मय अनुभूति बची रहती है। यह प्रकाशमान आकाश ही चेतना के सर्वज्ञ क्षेत्र का आधार है। जिसकी कोई सीमा रेखा नहीं, कोई दीवाल नहीं, कोई परिभाषा नहीं है। वह द्वैत के अनुभव से पूर्णत: मुक्त है। आत्मा का शरीर तथा मन से कोई स्व-तादात्म्य नहीं है। केवल आकाश की अवधारणा बनी हुई है और उस आकाश के भीतर ऊर्जा तथा प्रकाश की सजगता है।

आप अपनी सजगता को अनन्त ज्योति में समाविष्ट कर दीजिए। ज्योति की उच्च तरंगों में अपने को समाहित देखिये। जहाँ तक आपकी दृष्टि जाती है वहाँ तक सभी दिशाओं में फैले स्पन्दन एवं ज्योति के इस विशाल समुद्र में झाँकिये।

कल्पना कीजिए कि पूरे ब्रह्माण्ड में प्रकाश की अनन्त तरंगे स्पन्दित एवं प्रतिबिम्बित हो रही हैं। इस दृष्टि पर धारणा कीजिए, जब तक आपकी सजगता ब्रह्माण्डीय प्रकाश क्षेत्र में पूर्णत: समाहित नहीं हो जाती। आपके भीतर एवं आपके चारों तरफ प्रकाश के सिवा कुछ नहीं है। प्रकाश के असीमित प्रसार के साथ मिलकर एक हो जाइये। ब्रह्माण्डीय प्रकाश क्षेत्र को अपने चारों तरफ तथा अपने अन्दर में अनुभव कीजिए। शुद्ध ऊर्जा,

शुद्ध प्रकाश के अनन्त में स्पन्दित एवं प्रतिबिम्बित होने की दृष्टि का विकास कीजिए। आप कुछ नहीं हैं, केवल प्रकाश की अनुभूति हैं। आपके भीतर प्रकाश है, आपके बाहर में प्रकाश है। जहाँ आप देखते हैं वहाँ प्रकाश है। कालातीत ज्योतिर्मय आकाश, जो व्यक्त तथा अव्यक्त है, दिखता है तथा नहीं भी दिखता है, उसका अनुभव कीजिए। सभी चीजें दैविक प्रकाश हैं– असीमित, कान्तिमय और दीप्त।

चतुर्थ चरण– महाकाश

सभी प्रकार के अहंकार के बन्धनों को सहजता से हट जाने दीजिए। यहाँ आपके लिए बन्धन का कोई मतलब नहीं है, कोई प्रासंगिकता नहीं है। केवल दीप्ति, चमक, प्रभा के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को दीप्ति के मानस दर्शन में स्थापित कीजिए। आप शुद्ध प्रकाश के साक्षी हैं, प्रेक्षक एवं अनुभवकर्ता हैं। कालातीत शाश्वतत्व में फैले शुद्ध प्रकाश की अनुभूति के अतिरिक्त आप कुछ नहीं हैं।

मानस दर्शन को, चेतना को, प्रकाश की समग्र अनुभूति को तीव्र बनाइये। सूर्य की एक किरण की भाँति धीरे-धीरे अपनी सजगता को चारों ओर से समेटिये तथा उसे उद्‌गम बिन्दु पर ले जाइये। जैसे-जैसे आप चमकते, दहकते हुए सूर्य के गोले के निकट आते जाते हैं, प्रकाश तथा ऊर्जा की तीव्रता का मानस दर्शन कीजिए। अनुभव कीजिए कि आप उष्मा एवं प्रकाश के अग्निकुण्ड में, जिससे सूर्य बना है, खिंचे चले जा रहे हैं। आपको इस अनुभव एवं दृष्टि का जागरण करना है।

जब आप सौर क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो प्रकाश की तीव्रता इतनी बढ़ जाती है कि इसका अनुभव करने के लिए दष्टि के एक अन्य आयाम को खोलना होगा। यह आकाश जो मध्य सूर्य के समान दहकता हुआ है तथा जिसे कोई आँखों से देख नहीं सकता, 'महाकाश' के नाम से जाना जाता है। अपनी समस्त सजगता इस आकाश में विलीन कर दीजिए। महाकाश की प्रभा का अनुभव कीजिए जिसमें इतनी तीव्रता है कि इसकी कांति का प्रत्यक्ष बोध नहीं हो सकता है।

शून्यता के स्व-ज्योतिर्मय आकाश में प्रकाश की तीव्रता का अनुभव कीजिए। अपनी चेतना को पूर्ण रूप से इस ज्योतिर्मय आकाश में विलीन होने दीजिए, जो कि प्रभा एवं प्रकाश में निमग्न सूर्य के मध्य भाग में अवस्थित होने के समान है। आपकी सम्पूर्ण चेतना महाकाश के कान्तिमय

चमकीले आकाश में निमग्न है। यही वह दृष्टि है जिसकी अनुभूति आपको उसकी सम्पूर्ण प्रभा एवं भव्यता के साथ करनी है।

महाकाश के ज्योतिर्मय आकाश में पूर्ण रूप से अपनी सजगता का विलय हो जाने दीजिए। महाकाश का अनुभव कीजिए, जिसकी दीप्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता है। अपने समस्त अस्तित्व को आकाश के चमकीले देदीप्यमान विस्तार के साथ एकाकार होते देखिए, जिसे 'महा' की संज्ञा दी गयी है। महाकाश शून्य की अनुभूति कीजिए, उस विशाल ज्योतिर्मय शून्य की, जिसमें सम्पूर्ण सजगता, सम्पूर्ण दृष्टि प्रकाश में निमग्न है।

आप देदीप्यमान महाकाश में तैर रहे हैं जो दोपहर के सूर्य जैसा चमक रहा है। उस आकाश में कोई गति नहीं हैं। मात्र स्थिरता एवं दीप्ति, चकाचौंध करने वाली दीप्ति। और उस दीप्ति में शून्यता है। चमकते महाकाश की अनुभूति कीजिए जिसके केन्द्र में शून्यता है।

पंचम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब आप धीरे-धीरे अपनी सजगता को महाकाश की कालातीत दिशाओं से वापस कीजिए। पुन: अपने भौतिक शरीर के प्रति, जो ध्यान की अवस्था में बैठा है, सजग होइये। सिर से पैर तक अपने शरीर का ख्याल कीजिए। बाहरी वातावरण के प्रति सजग बनिये। बाहरी ध्वनियों को सुनिये। गहरी लम्बी श्वास लीजिए और तीन बार 'ॐ' का उच्चारण कीजिए। धीरे से आँखों को खोल लीजिये।

हरि ॐ तत्सत्

व्योम पंचक चार

तत्त्वाकाश

आधुनिक विज्ञान के अनुसार पदार्थ की तीन अवस्थाएँ हैं– ठोस, द्रव तथा गैस। ठोस अवस्था में अणु घनीभूत एवं सुसम्बद्ध होते हैं। गर्म करने पर वे टूटकर अलग-अलग होने लगते हैं तथा उनके कम्पन की गति बढ़ जाती। इस स्तर पर ठोस पदार्थ द्रव रूप में बदल जाता है। और भी अधिक ताप देने पर कम्पन बढ़ जाता है तथा तत्त्व का आयतन बढ़ जाता है। फलत: गैसीय तत्त्व की एक छोटी मात्रा भी उस पात्र के सम्पूर्ण आयतन को घेर लेती है जिसमें वह रखी होती है।

इस व्याख्या में हम पाँच मौलिक तत्त्वों में चार को पाते हैं– पृथ्वी का घनत्व, जल की तरलता, अग्नि की ऊष्मता, तथा वायु की प्रसरणशीलता। ताप परिवर्तन एवं रूपान्तरण की आधारभूत ऊर्जा है। जब तक शरीर तथा मन कार्यशील रहेंगे तब तक ये चारों गुण सक्रिय रहेंगे। जब शरीर तथा मन शून्यावस्था में आयेंगे तब पाँचवें गुण, रिक्तता या आकाश की अभिव्यक्ति होगी। हमारी रचना इन्हीं पाँच तत्त्वों से हुई है तथा जब इनमें से एक या दूसरे तत्त्व की प्रधानता होती है तब हम अपने भीतर इसका अनुभव करते हैं। हर समय तत्त्वों की प्रधानता में परिवर्तन होता रहता है और इस परिवर्तन के फलस्वरूप शरीर तथा मन क्रियाशील रहते हैं, यद्यपि हम उस रूप में इसका अनुभव नहीं करते हैं।

तत्त्वों की पारस्परिक अन्तर्क्रियाएँ

तत्त्वाकाश का अनुभव होने के क्रम में पहले यह आवश्यक है कि तत्त्वों की अधिक स्पष्ट अनुभूति हो जाए तथा उनके द्वारा हमारी बाहरी एवं भीतरी जिन्दगी में अदा की जाने वाली सूक्ष्म भूमिका की समझ विकसित हो जाये।

यह देखना आवश्यक है कि बदलती हुई घटनाओं, परिस्थितियों, अवस्थाओं तथा विचारों के अनुसार किस तरह तत्त्वों का क्रम परिवर्तन एवं संयोजन होता है। आंतरिक रूप में तत्त्वों का अनुभव करना बहुत अधिक कठिन है, क्योंकि उनका कोई अलग या स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वे मुख्यतया उस समय के प्रबल तत्त्वों से मिश्रित होते हैं।

पाँचों तत्त्वों के अन्त:संयोग से ही स्थूल, भौतिक शरीर और अति सूक्ष्म मनोशरीर का निर्माण होता है। हम श्वसन तंत्र में तत्त्वों की वास्तविक भूमिका को देख सकते हैं, जो वायु के द्वारा नियंत्रित होता है, परन्तु ज्योंही यह वायु शरीर में प्रवेश करती है इसकी अन्तर्क्रियाएँ ताप या ऊष्मता से होती हैं। फिर जब यह रक्त में प्रविष्ट करायी जाती है तब पानी से इसकी अन्तर्क्रिया होती है तथा जैसे ही यह एक कोश से दूसरे कोश तक एवं शरीर के अंगों में प्रेषित होती है तब पृथ्वी से इसकी अन्तर्क्रिया होती है।

हमारे अन्दर हो रही तत्त्वों की अन्त: क्रियाओं का दूसरा अच्छा उदाहरण हमारी पाचन प्रणाली है। हम ठोस भोजन (पृथ्वी) तथा द्रव (पानी) का उपभोग करते हैं। वे सभी एन्जाइम (ताप तथा पानी) द्वारा पचाये जाते हैं। पाचन प्रणाली में उदर वायु की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार हम प्रत्येक दैहिक कार्य-कलाप में तत्त्वों की विभिन्न अन्त: क्रियाओं का अवलोकन कर सकते हैं।

हम मानसिक एवं भावनात्मक रूपों में भी तत्त्वों की सूक्ष्म भूमिका का अवलोकन कर सकते हैं। कुछ लोग अपने शुष्क विनोद के लिए जाने जाते हैं। बरसाती दिन का हमारी मनोदशा पर नम कारक प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति बहुधा क्रुद्ध हो जाता है वह गर्म मिजाज होता है। एक व्यक्ति जो अपनी भावनाओं या कामनाओं की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता, वह ठण्ढा या मन्दकाम होता है। जो बातें अधिक करता है वह बातूनी होता है। जो व्यक्ति अपने पास-पड़ोस के प्रति सजग नहीं होते वे स्वप्न लोक में रहते हैं।

बाह्य तत्त्वों का मनन

एक बार यदि हम अपने भीतर के विभिन्न तत्त्वों की पारस्परिक क्रियाओं का अवलोकन एवं विश्लेषण कर चुके हैं तो हम दैनिक जीवन में तत्त्वों की पारस्परिक अन्त: क्रियाओं पर अपना अध्ययन आगे बढ़ा सकते हैं। यह पारस्परिक अन्त: क्रिया सतत् होती रहती है तथा हमें इन कार्यरत तत्त्वों का अवलोकन करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सकता है। हम बाहर में घूमते,

प्रकृति का रस लेते, सूर्यास्त को देखते या तूफान के घिरने का अवलोकन करते हो सकते हैं। हम फुलवारी में घूम सकते हैं, झील में नाव चला सकते हैं। पहाड़ पर चढ़ सकते हैं, या किसी पहाड़ी की चोटी से फिसलते हो सकते हैं। बाहर में मूल तत्त्व अधिक प्रत्यक्ष हैं और जो कुछ भी हम देखते या करते हैं उन सभी चीजों में तत्त्वों की सजगता विकसित करना कठिन नहीं है।

तत्त्वाकाश

जब हमारे बाह्य एवं आन्तरिक जीवन में तत्त्वों की अवधारणा समन्वित हो जाती है तथा उसे समझ लिया जाता है तब हम धीरे-धीरे तत्त्वाकाश, यानी तत्त्वों से व्याप्त सूक्ष्म आकाश की अनुभूति कर सकते हैं। यही तत्त्वाकाश बीज या सत्त्व है, जिससे तत्त्वों का अंकुरण होता है।

इस विधि को पाँच अभ्यासों में बाँटा गया है, प्रत्येक तत्त्व के लिए एक तथा प्रत्येक अभ्यास के चार चरण हैं। यह विशेष तत्त्वों की अनुभूति को और भी विकसित करने के लिए है जिससे कि धीरे-धीरे उन्हें अपने उद्‌गम स्थान, यानी तत्त्वाकाश में वापस किया जा सके।

प्रत्येक अभ्यास के चारों चरण एक ही प्रारूप का अनुकरण करते हैं। प्रत्येक चरण की अनुभूति में एक-एक करके दक्षता पायी जा सकती है। पहला चरण चेतना के वास्तविक तत्त्व के परिचय से सम्बन्धित है। दूसरे चरण में तत्त्व के चिह्न तथा मंत्रों पर धारणा कर और भी अधिक सूक्ष्म सजगता प्रेरित की जाती है। तीसरे चरण में चिह्न के साथ पूरा तादात्म्य हो जाता है। अन्तत: चौथे चरण में बीज या तत्त्वाकाश में प्रतीक का विलय तथा चेतना का संयोजन हो जाता है, जो सभी अभिव्यक्तियों का स्रोत है तथा अन्त भी है।

यही तत्त्वाकाश धारणा की विधि है। यह एक विस्तृत अभ्यास है जो हमारे अस्तित्व के तात्त्विक पदार्थो को शुद्ध करता है तथा सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय शरीर को बृहद् ब्रह्माण्डीय शरीर में रूपान्तरित करता है। पाँचों तत्त्वों एवं तत्त्वाकाश पर स्वामित्व पूर्ण ज्ञान एवं उच्चतर आत्मन् को जाग्रत करता है।

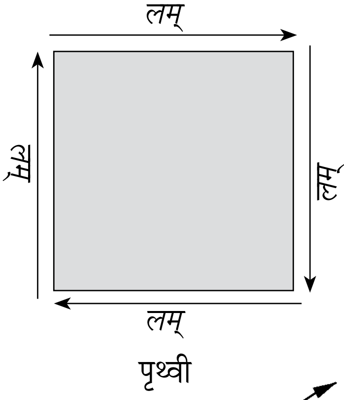
अभ्यास 1– पृथ्वी तत्त्व

प्रथम चरण– पृथ्वी शरीर

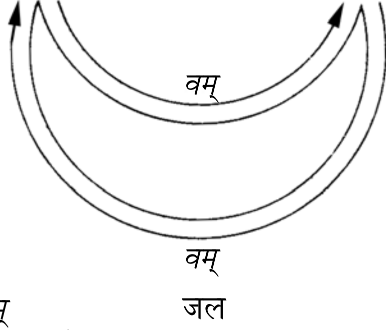
पृथ्वी तत्त्व तथा पृथ्वी के विभिन्न प्रकार– बालू, मिट्टी, कीचड़, कंकड़, चट्टान, पत्थर के टुकड़े, पहाड़, वादियाँ, मरूभूमि, खेत आदि की

व्योम पंचक चार

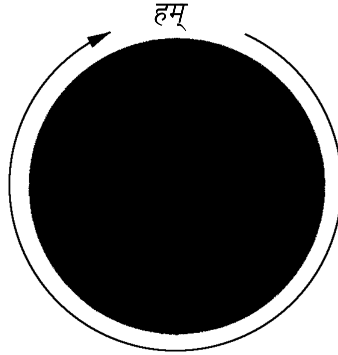
तत्त्वाकाश



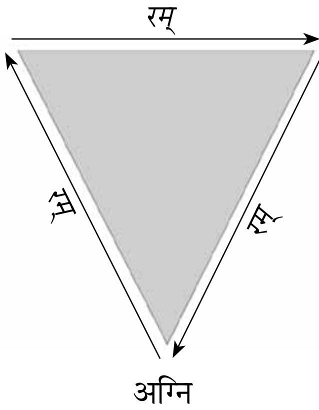
पृथ्वी



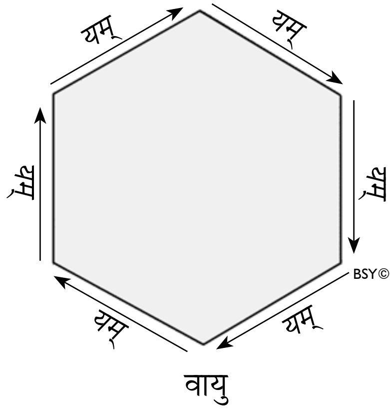
जल



आकाश



अग्नि



वायु

कल्पना कीजिए। आप अपनी चेतना को पृथ्वी के इन प्रत्येक पक्षों के साथ विलीन कीजिए जिससे कि आप उसके साथ एकाकार हो जायें। आपका तादात्म्य पूर्ण होना चाहिए।

अपने चारों ओर के तथा अन्दर के आकाश के प्रति, चट्टान या पर्वत के समान ही सजग होइये। अपनी सजगता को पृथ्वी की ओर गहराई में ले जाइये जिससे कि आप चारों ओर से पृथ्वी से घिर जायें। मात्र पृथ्वी है, और कुछ नहीं। आप पृथ्वी बन जाइये।

अनुभव कीजिए कि आपका शरीर मिट्टी का एक लोंदा बन गया है। आपका शरीर ठोस होकर पत्थर में परिवर्तित हो चुका है। अपने समस्त अस्तित्व में पदार्थ के ठोसपन का, घनत्व का अनुभव कीजिए। अपने आपसे मानसिक रूप से कहिए, "मैं पृथ्वी हूँ, मेरा स्वभाव जड़ तथा सघन है, चट्टान की तरह अचल या स्थिर है।"

जब यह अनुभव शरीर चेतना में अभिव्यक्त होगा तो पृथ्वी तत्त्व के महीन, सूक्ष्म गुणों की अनुभूति होगी। एक निश्चित बिन्दु पर आप अपने सम्पूर्ण शरीर की सजगता खो देंगे और अनुभव करेंगे कि एक दूसरा शरीर अस्तित्व में आ गया है। यह शरीर मिट्टी या चट्टान का है। अपनी समस्त अनुभूति इस सजगता में केन्द्रित कीजिए। पृथ्वी बन जाइये। अपने शरीर का अनुभव पृथ्वी के रूप में, चींटियों के पहाड़ या चट्टान के रूप में कीजिए।

द्वितीय चरण– प्रतीक एवं मंत्र

अपनी चेतना अपने पृथ्वी शरीर के मूलाधार क्षेत्र में ले जाइये। कुछ क्षणों तक इस क्षेत्र में धारणा कीजिए। मूलाधार शरीर के प्रति, सम्पूर्ण श्रोणि प्रदेश के प्रति सजग होइये, जो मूलाधार एवं घुटनों के बीच है। मूलाधार एवं घुटनों के बीच एक बड़े से पीले वर्ग की धुँधली आकृति को उभरते हुए देखिये। उस वर्ग की चारों भुजाओं का मानस दर्शन कीजिए। मिट्टी के समान पीले रंग को देखिये। जब आप पीले वर्ग को एकटक देखेंगे तो प्रतिछाया उत्तरोत्तर साफ होती जायेगी।

जब आप इस वर्ग के आकार एवं रंग को स्पष्ट रूप से बिना धुँधलाहट के देखने में सक्षम होते हैं तब मन ही मन लं, लं, लं मंत्र का उच्चारण कीजिए। अपनी सजगता को वर्ग भुजाओं के साथ चारों तरफ घुमाइये। दो-तीन मिनटों तक मंत्र का उच्चारण जारी रखिये, जब तक कि आपकी

चेतना एवं धारणा आपके भू-शरीर के मूलाधार क्षेत्र में स्थित पीत वर्ग पर निश्चित रूप से केन्द्रित नहीं हो जाती।

तृतीय चरण– प्रतीक का विस्तारण

अब मंत्र का उच्चारण छोड़ दीजिये, किन्तु पीले वर्ग पर दृष्टि जमाए रखिये। जैसे-जैसे आप उसे देखते जायेंगे, वर्ग का आकार क्रमश: बढ़ना प्रारम्भ हो जायेगा। पहले उस पीत वर्ग को सम्पूर्ण मूलाधार एवं घुटनों के बीच आवृत्त होता देखिये। फिर वह धीरे-धीरे ऊपर की ओर फैलता है। श्रोणि प्रदेश, उदर प्रदेश, वक्ष प्रदेश, गले तथा सिर तक बढ़ता जाता है, जब तक कि वह पूरे शरीर में न फैल जाये। इस दृश्य को साफ-साफ देखिये।

इस पीले वर्ग के प्रति सजग होइये जो आपके पूरे शरीर को घेरे हुए है तथा शरीर से बाहर की ओर बढ़ रहा है। इस प्रसरणशील वर्ग की सम्पूर्ण लम्बाई-चौड़ाई का मानस दर्शन कीजिए, जैसे कि आप उसके अन्दर बैठे हुए हों। अपनी चेतना को उसमें समाहित कर दीजिए। पीला वर्ग बन जाइये। आप का सम्पूर्ण अस्तित्व इस बृहद् वर्ग में विलीन हो रहा है। सजग बनिये। इस दर्शन एवं अनुभूति को बनाये रखिये।

चतुर्थ चरण– पृथ्वी आकाश

प्रसरणशील पीत वर्ग पर दृष्टि जमाए रखिये जो आपको पूर्णरूपेण आवृत्त किये हुए है तथा जो आपके मानसिक एवं अतीन्द्रिय बोध की परिधि से बाहर तक जाता है। जब आप पीत वर्ग पर स्थिरता से दृष्टि जमाते हैं तो उसका सघन रूप धीरे-धीरे बिखरना शुरू हो जाता है। पीत वर्ग को ढहते और बिखरते हुए देखिये। जैसे-जैसे पीत वर्ग धीरे-धीरे घटता एवं अदृश्य होता जाता है आपका सम्पूर्ण अस्तित्व भी उसके साथ अदृश्य होता जाता है जब तक कि वहाँ रिक्त आकाश एवं सजगता को छोड़ और कुछ नहीं बचता।

शून्य आकाश के प्रति सजग होइये जिसमें पीत वर्ग के रूप में पृथ्वी तत्त्व स्थित था। इस आकाश में अपनी सम्पूर्ण सजगता केन्द्रित कीजिए। आकाश का अनुभव कीजिए, जहाँ से बीज या पृथ्वी तत्त्व का सूक्ष्म रूप अंकुरित होता है। अपनी सारी सजगता को इस आकाश में विलीन कर दीजिए। आप तत्त्वाकाश हैं, जिससे पृथ्वी तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है तथा जिसमें वह पुन: अव्यक्त आयाम में वापस चली जाती है। इस

आकाश का अनुभव कीजिए जिसमें पृथ्वी तत्त्व सुषुप्तावस्था में स्थित है। इस आकाश में न कोई गति है और न कोई बाहरी फैलाव। पूर्ण स्थिरता एवं पूर्ण शान्ति के प्रति सजग होइये। यहाँ किसी भी कामना का बीज नहीं बचा है जो क्रिया की उत्पत्ति करता हो।

यहाँ द्वैत की अवधारणा पूर्ण रूप से अनुभवातीत हो जाती है। नाम, रूप तथा विचार से सम्बन्धित सभी अनुभव लुप्त हो जाते हैं। आकाश, विशुद्ध तत्त्वाकाश के सिवा यहाँ कुछ नहीं है। इस आकाश का अनुभव कीजिए जो पृथ्वी आकाश के नाम से जाना जाता है।

आकाश के भीतर पूर्ण स्थिरता, शून्यता, रिक्तता के प्रति सजग होइये। अपनी चेतना को तत्त्वाकाश में समाविष्ट कीजिए। यह वही आकाश है जो काल के प्रारम्भ के समय स्थित था, सृष्टि के पूर्व स्थित था और काल के अन्त समय भी स्थित रहेगा। पृथ्वी आकाश का अनुभव कीजिए, जहाँ पृथ्वी तत्त्व सुषुप्त, अव्यक्त अवस्था में स्थित रहता है।

अभ्यास 2 – अपः तत्त्व

प्रथम चरण – जल शरीर

जल तत्त्व तथा सभी विभिन्न प्रकार के जलों, जैसे, बादल, ओस, वर्षा, झरना, नदी, झील, समुद्र के प्रति सजग होइये। प्रत्येक जल रूप में अपनी सजगता को डुबो दीजिए, जिससे कि आपकी सजगता अन्य सभी चीजों से हटते हुए जल शरीर में मिलकर एकरूप हो जाये। आप समुद्री तरंग हैं, शान्त सरोवर, कल्लोलित जल धारा, बहती नदी, स्वच्छ झरना, गहरा कुआँ हैं।

जल तत्त्व में अपनी सजगता को समाहित कीजिए। अपनी सजगता को सागर की गहराइयों में ले जाइये। अपने चारों ओर तरल वातावरण का अनुभव कीजिए, जो आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को घेरे हुए है। जल की पूर्ण सजगता को विकसित कीजिए, तरल बन जाइये। अनुभव कीजिए की आपका सम्पूर्ण अस्तित्व जल में समाहित हो गया है। आप जल के सिवा कुछ नहीं हैं। आप अपने समस्त अस्तित्व में जल की प्रवाहमान, तरल प्रकृति का अनुभव कीजिए।

हालाँकि, प्रवाह की इस स्थिति में भी ठोसपन का पृथ्वी गुण बना रहता है। आपको ऐसी अनुभूति होती है जैसे लहरें एक चट्टान के साथ खेल

रही हैं। एक तरफ शरीर अचल एवं ठोस है तो दूसरी ओर यह पूर्ण रूप से तरल, विश्रान्त, लचीला एवं आरामपूर्वक है। तरलता एवं दृढ़ता के भाव का एक साथ अनुभव कीजिए। तत्त्वों के सभी गुणों को, जैसे-जैसे वे उत्पन्न होते और अपनी भूमिका विकसित करते हैं, एक अनुदृश्य में रखना आवश्यक है।

जब जल की यह अनुभूति होती है तो लचीलेपन के गुण में भी वृद्धि होती है। शरीर अपनी समस्त कठोरता खो देता है। मन भी घुलता तथा प्रवाहित होता प्रतीत होता है। फलत: आप आसानी से दूसरों के अनुभव और भावनाओं में प्रवेश कर सकते हैं। यही मन की तरल प्रवाहित अवस्था है।

द्वितीय चरण– प्रतीक एवं मंत्र

अब आप अपनी चेतना को अपने जल शरीर के स्वाधिष्ठान क्षेत्र में ले जाइये। कुछ क्षणों तक इस क्षेत्र के श्रोणि तल तथा नाभि के बीच धारणा कीजिए। धीरे-धीरे आप श्वेत बाल चन्द्र की तरल बाह्य रेखा को देखना प्रारम्भ करेंगे। अपना सम्पूर्ण ध्यान इस आकृति पर केन्द्रित कीजिए। सफेद रंग देखिए। जब आप बाल चन्द्र पर दृष्टि ले जाते हैं तो वह स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता है। उसे अपने श्रोणि प्रदेश में शीतल श्वेत प्रकाश से आप्यायित होता हुआ देखिये।

जब आप श्वेत बालचन्द्र को स्पष्ट रूप से देखने में सक्षम हो जाते हैं तब आप मानसिक रूप से बीज मंत्र 'वं-वं-वं' का उच्चारण करना प्रारम्भ कीजिए। मंत्र के प्रत्येक उच्चारण के साथ अपनी सजगता को ऊपरी वक्र पर बाँये से दाँयें और तब फिर निचले वक्र पर दायें से बाएँ घुमाइये। जब आप बीज मंत्र का उच्चारण करते हैं तो श्वेत बाल चंद्र को स्पष्ट रूप से देखते रहिये। दो-तीन मिनट तक उच्चारण करते जाइये जब तक कि आपकी सजगता जल शरीर के स्वाधिष्ठान क्षेत्र में अवस्थित श्वेत बाल चन्द्र पर पूर्ण रूप से केन्द्रित न हो जाये।

तृतीय चरण– प्रतीक का विस्तार

अब मंत्रोच्चारण बन्द कीजिए, परन्तु श्वेत बालचन्द्र पर दृष्टि बनाये रखिये। जब आप स्थिर होकर एकटक दृष्टि बनाये रखते हैं तो श्वेत बाल चन्द्र फैलना प्रारम्भ करता है। पहले यह सम्पूर्ण उदर प्रदेश में छा जाता है। फिर धीरे-धीरे तब तक बाहर फैलता है जब तक यह अपने

घुमाव के अन्दर आपको पूर्णरूप से आवृत्त न कर ले। शीतल श्वेत प्रकाश को अपने चारों तरफ देखिये।

कल्पना कीजिए कि आप श्वेत बालचन्द्र के मध्य में बैठे हुए हैं और उसकी दोनों भुजाएँ आपके चारों ओर मुड़ रही हैं। अनुभव कीजिए कि आप पूर्ण रूप से शीतल बालचन्द्र की श्वेत किरणों से आवृत्त हैं। अपने चारों ओर नरम मोहक बालचन्द्र के प्रति सजग होइये। तरल, श्वेत, बाल चन्द्र के प्रसार का मानस दर्शन करें, मानो आप उसके अन्दर बैठे हुए हैं। अपनी चेतना को उसमें अन्तर्विष्ट कीजिए। श्वेत बालचन्द्र बन जाइये। अनुभव कीजिए कि आप पूर्ण रूप से श्वेत बालचन्द्र की तरलता में समाहित हो गये हैं। इस दृश्य एवं अनुभव को बनाये रखिये।

चतुर्थ चरण– अपः आकाश

श्वेत बालचन्द्र को देखते जाइये, जो आपको आवृत्त किये हुए है और जो आपके मानसिक एवं अतीन्द्रिय ज्ञान के परे भी प्रसारित है। जब आप स्थिर रूप में श्वेत बालचन्द्र पर अपनी दृष्टि रखते हैं तो धीरे-धीरे तरल स्वरूप विलीन होना शुरू करता है और फिर लुप्त हो जाता है।

श्वेत बालचन्द्र को जल तत्त्व के विशाल, रिक्त आकाश में पिघलते तथा विलय होते हुए देखिये। जैसे-जैसे श्वेत बालचन्द्र धीरे-धीरे घट कर अदृश्य होता है वैसे-वैसे आपका सम्पूर्ण अस्तित्व भी अदृश्य होता जाता है। अन्ततः शून्य आकाश और सजगता को छोड़कर वहाँ कुछ नहीं बचता। शून्य आकाश के प्रति सजग होइये, जिसमें श्वेत बालचन्द्र के रूप में जल तत्त्व विद्यमान था। इस आकाश में आप अपनी पूर्ण सजगता केन्द्रित कीजिए। इस आकाश का अनुभव कीजिए जिससे बीज या सूक्ष्म जल तत्त्व की उत्पत्ति हुई है। इस आकाश में अपनी सजगता को विलीन कर दीजिए। आप ही तत्त्वाकाश हैं, जिससे जल तत्त्व व्यक्त होता है तथा पुनः अव्यक्त आयाम में वापस चला जाता है।

इस आकाश में सुषुप्त अव्यक्त अवस्था में जल तत्त्व के अस्तित्व का अनुभव कीजिए। वहाँ कोई क्रिया, गति या बाहरी विस्तार नहीं है। इस आकाश के अन्दर शुद्ध निश्चलता एवं सम्पूर्ण नीरवता का अनुभव कीजिए। किसी भी रूप में वहाँ कामना का बीज नहीं है जो क्रिया हेतु प्रेरित कर सके। यहाँ द्वैत की कल्पना पूर्ण रूप से समाप्त हो गई है। नाम, रूप, विचार सम्बन्धी सभी अनुभव अदृश्य हो गये हैं।

यहाँ आकाश, शुद्ध तत्त्वाकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस आकाश का अनुभव कीजिए जो अप: आकाश के नाम से जाना जाता है। आकाश के अन्दर असीम निश्चलता के प्रति सजग होइये। समयातीत आकारहीन तत्त्वाकाश में अपनी सजगता को विलीन कर दीजिए। यह वही आकाश है जो काल के प्रारम्भ से था, सृष्टि के पूर्व से था और जो काल के अन्त तक रहेगा, जब सम्पूर्ण विघटन होगा। अप: आकाश की अनुभूति कीजिए जहाँ जल तत्त्व सुषुप्त एवं अव्यक्त अवस्था में अवस्थित है।

अभ्यास 3– अग्नि तत्त्व

प्रथम चरण– तेजस शरीर

जल शरीर के बाद तेजस शरीर प्रकट होगा। अग्नि जल से उत्पन्न होती है। अग्नि तत्त्व के प्रति सजग होइये। अग्नि की कल्पना उसके सभी रूपों, जैसे, मोमबत्ती की लौ से ज्वालामुखी की शक्ति एवं विभीषिका तक में कीजिए। सभी चीजों को छोड़कर अपनी चेतना को अग्नि में डुबो दीजिये। अग्नि के सम्बन्ध में, इसके सृजनात्मक एवं विनाशात्मक पक्षों पर विचार कीजिए। एक अलाव, एक प्रचण्ड दावाग्नि, बज्रपात, विद्युत जनित अग्नि, गैस अग्नि, एक परमाणु विस्फोट– सबके प्रति सजग बनिये। सूर्य के प्रति सजग बनिये, जो एक दहकता हुआ आग का गोला है और जो समस्त ताप, ऊर्जा एवं प्रकाश का उद्‌गम है।

अग्नि के विभिन्न पक्षों में अपनी सजगता को समाहित कीजिए जिससे आप उनके साथ एकाकार हो सकें। आपका तादात्य सम्पूर्ण होना चाहिए। जैसे ही आपका अग्नि तत्त्व से तादात्य स्थापित हो जायेगा तो आपका शरीर यौगिक ताप से जलता हुआ प्रतीत होगा; मन भी प्रज्वलित एवं कान्तिमय होगा। आपका सम्पूर्ण अस्तित्व प्रज्वलित है। ऊर्जा, ताप, आग की लपटों के प्रति सजग होइये। एक प्रज्वलित अग्नि के रूप में अपने शरीर का अनुभव कीजिए।

द्वितीय चरण– प्रतीक एवं मंत्र

अपनी सजगता अपने तेजस शरीर के मणिपुर क्षेत्र में लाइये। कुछ क्षणों तक इस क्षेत्र में ध्यान केन्द्रित कीजिए। नाभि तथा हृदय के बीच एक बड़ा लाल उलटा त्रिकोण का आकार उभरते हुए देखिये। त्रिकोण की तीनों भुजाओं का मानस दर्शन कीजिए, जिसका शीर्ष बिन्दु नाभि पर है।

दहकते हुए लाल रंग को देखिये। जब आप लाल उलटे त्रिकोण पर दृष्टि जमाए रखते हैं तो छाया स्पष्ट तथा विशिष्ट हो जाती है।

जब आप बिना किसी बाधा या धुँधलेपन के त्रिकोण के आकार एवं रंग को स्पष्ट रूप से देखने में सक्षम हो जाते हैं तब मानसिक रूप से मंत्र 'रं-रं-रं' का उच्चारण कीजिए। प्रत्येक मंत्रोच्चारण के साथ अपनी चेतना को उलटे त्रिकोण की तीनों भुजाओं में घुमाइये। दो-तीन मिनट तक मंत्रोच्चारण करते रहिये जब तक कि तेजस शरीर के मणिपुर क्षेत्र में उलटे त्रिकोण पर आपकी सजगता पूर्णत: केन्द्रित न हो जाये।

तृतीय चरण– प्रतीक का विस्तार

अब मंत्रोच्चार छोड़ दीजिए, परन्तु उलटे लाल त्रिकोण पर अपनी दृष्टि जमाए रखिये। जब आप आंतरिक आकृति पर दृष्टि डालते हैं तो धीरे-धीरे उसकी लम्बाई-चौड़ाई बढ़ने लगती है। पहले वह नाभि तथा हृदय के बीच के पूरे क्षेत्र को आच्छादित करती है। फिर धीरे-धीरे ऊपर-नीचे बढ़ती हुई सम्पूर्ण उदर, वक्ष, गले तथा सिर को आपूरित करती है। अन्तत: दहकता हुआ लाल उलटा त्रिकोण आपके सम्पूर्ण शरीर को घेर लेता है। विस्तृत आकृति का मानस दर्शन कीजिए, जैसे कि आप उसके अन्दर में बैठे हों।

दहकते लाल उलटे त्रिकोण के प्रति सजग रहिये जो आपके सम्पूर्ण शरीर को घेरे हुए है तथा शरीर से बाहर भी फैल रहा है। लाल त्रिकोण की फैली हुई लम्बाई-चौड़ाई पर धारणा कीजिए। अपनी सम्पूर्ण सजगता को उसमें विलीन कर दीजिए। दहकता हुआ लाल त्रिकोण बन जाइये। सजग रहिये। इस दृश्य तथा अनुभूति को बनाए रखिये। कोई विक्षेप नहीं होना चाहिए।

चतुर्थ चरण– अग्नि आकाश

प्रसरित लाल उलटे त्रिकोण पर दृष्टि जमाए रहिए जो आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को आवृत्त किये हुए है तथा जो बाहर की ओर आपकी मानसिक एवं अतीन्द्रिय सीमा के आगे तक प्रसारित है। जब आप अचल हो अपनी दृष्टि लाल उलटे त्रिकोण पर जमाए रहते हैं तो उसके दहकते रूप का विखण्डन प्रारम्भ हो जाता है और वह धुआँ बन कर निकल जाता है। देखिये कि लाल त्रिकोण धीरे-धीरे घटते हुए धुएँ के बादल में अदृश्य होता जा रहा है। जब लाल त्रिकोण विलीन और अदृश्य होता है तो आपका

समस्त अस्तित्व भी उसके साथ ही अदृश्य हो जाता है और वहाँ शून्यता एवं सजगता के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचता है।

सम्पूर्ण रिक्त आकाश के प्रति सजग बनिये, जिसमें लाल त्रिकोण के रूप में अग्नि तत्त्व विद्यमान था। इस आकाश में अपनी सम्पूर्ण सजगता को संकेन्द्रित कीजिए। अपार शून्य आकाश की अनुभूति कीजिए, जिससे बीज या अग्नि तत्त्व के सूक्ष्म रूप का अंकुरण होता है। अपनी सम्पूर्ण सजगता को इसमें विलीन कर दीजिए। आप तत्त्वाकाश हैं जिसमें अग्नि तत्त्व का प्रसार होता है तथा वह पुन: उसी अव्यक्त अवस्था में वापस हो जाता है।

इस आकाश का अनुभव कीजिए जिसमें अग्नि तत्त्व सुषुप्त, अव्यक्त अवस्था में होता है। वहाँ कोई क्रिया या गति नहीं है, कोई बाहरी विस्तार इस आकश में नहीं है। पूर्ण स्थिरता, पूर्ण शान्ति के प्रति सजग होइये। वहाँ कोई कामना का बीज नहीं है जो क्रिया उत्पन्न करे।

यहाँ द्वैत की परिकल्पना पूर्णत: अनुभवातीत हो जाती है। नाम, रूप तथा विचार से सम्बन्धित सभी अनुभूतियाँ अदृश्य हो जाती हैं। यहाँ कुछ नहीं, मात्र आकाश, विशुद्ध तत्त्वाकाश शेष रहता है। इस आकाश का अनुभव कीजिए जो अग्नि आकाश के नाम से जाना जाता है। इस आकाश के अन्दर पूर्ण नीरवता, शून्यता का अनुभव कीजिए। समायातीत, रूपहीन तत्त्वाकाश में अपने को विलीन कर दीजिए। यह वही आकाश है जो काल के प्रारम्भ में था, सृष्टि के पहले भी था तथा काल के अन्त में, जब सभी चीजों का विलय होगा, उस समय भी विद्यमान रहेगा। अग्नि आकाश का अनुभव कीजिए, जहाँ अग्नि तत्त्व सुषुप्त, अव्यक्त रूप में अवस्थित है।

अभ्यास 4 – वायु तत्त्व

प्रथम चरण – वायु शरीर

भू-जगत्, आकार का जगत् केवल इसी बिन्दु तक आता है। इसके परे तेजस शरीर के माध्यम से वायव्य शरीर प्रकट होता है। इस बिन्दु पर व्यक्ति में अग्नि व्यापक हो जाता है। यही वह वायव्य शरीर है जो ब्रह्माण्डीय चेतना का पात्र एवं वाहक है। यहाँ आकार आकारहीन हो जाता है तथा सतत् गतिमान ऊर्जा का सर्वव्यापी ज्ञान शेष बचता है।

वायु तत्त्व में अपनी चेतना को ले जाइये। वायु का उसके सभी रूपों में विचार कीजिए। शीतल मन्द वायु के प्रभाव का अनुभव कीजिए। या आँधी की शक्ति एवं प्रकोप का अनुभव कीजिए। कल्पना कीजिए कि आपके पंख हैं, अत: आप गरुड़ के समान ऊँची उड़ान भर सकते हैं और अपने अस्तित्व के इस नये आयाम की स्वतंत्रता का आनन्द उठा सकते हैं।

वायु तत्त्व में अपने को तल्लीन कर दीजिए। अनुभव कीजिए कि आपके शरीर में न घनत्व है और न कोई प्रतिबन्ध। यह एक बुलबुले के समान वायु से निर्मित है। पूरे शरीर में हलकेपन एवं वायु की गति का अनुभव कीजिए। मानसिक रूप से कहिये, "मैं वायु हूँ, मेरा स्वभाव वायु के जैसा गतिशील एवं दोलायमान है।" वायव्य शरीर का अनुभव कीजिए। इस अनुभूति में अपनी सम्पूर्ण सजगता को केन्द्रित कीजिए।

द्वितीय चरण– प्रतीक एवं मंत्र

अपने वायव्य शरीर के अनाहत क्षेत्र में अपनी सजगता को ले आइये। इस क्षेत्र पर कुछ समय तक धारणा कीजिए। हृदय प्रदेश पर ख्याल कीजिए, सम्पूर्ण वक्ष प्रदेश पर, हृदय से गले तक। धीरे-धीरे आप अपने वायव्य शरीर के वक्ष प्रदेश में आकाशीय नीले षड्भुज के धुँधले आकार को देखेंगे। इस ज्यामितिक आकार की छ: भुजाओं का मानस दर्शन कीजिए। नीले आकाश को देखिये।

जैसे ही आप नीले षड्भुज पर दृष्टि जमाते हैं, चित्र स्पष्ट से स्पष्टतर होता जाता है। मानस दर्शन के लिए कठिन प्रयास नहीं कीजिए। जब आप तैयार होंगे तो चित्र आपके समक्ष प्रकट होगा। जब आप षडभुज के आकार एवं रंग को साफ-साफ देखने में सक्षम हो जायें तो मानसिक रूप से मंत्र 'यं-यं-यं' का उच्चारण कीजिए।

प्रत्येक मंत्र उच्चारण के साथ अपनी सजगता को नीले षड्भुज की छ: भुजाओं पर घुमाइये। दो-तीन मिनटों तक उच्चारण करते रहिये, जब तक कि आपकी सजगता एवं धारणा पूर्ण रूप से वायव्य शरीर के अनाहत क्षेत्र में नीले षड्भुज पर पूर्णतया केन्द्रित न हो जाये।

तृतीय चरण– प्रतीक का विस्तार

अब आप मंत्रोच्चारण बन्द कीजिए, किन्तु नीले षड्भुज पर दृष्टि जमाए रखिये। जैसे ही आप स्थिर होकर षड्भुज के आकार पर दृष्टि केन्द्रित करेंगे, वह धीरे-धीरे प्रसारित होगा। पहले वह आपके सम्पूर्ण वक्ष प्रदेश

को आपूरित करेगा, फिर धीरे-धीरे बढ़ते हुए उदर, गले तथा सिर में फैल जायेगा। अन्ततः पूरे शरीर को वह षड्भुजाकार आकृति घेर लेगी। फैले हुए नीले षड्भुज को स्पष्ट रूप से देखिये, जैसे आप उसके अन्दर में बैठे हुए हैं।

आकाशीय नीले षड्भुज के प्रति सजग होइये जो आपके पूरे शरीर को घेरे हुए है तथा जो शरीर से बाहर भी फैला हुआ है। नीले षड्भुज के विस्तृत आयामों पर धारणा कीजिए। इसे अपने में देखिये तथा अपने चारों तरफ देखिये। अपनी सारी सजगता को इसमें समाहित कर दीजिए। सजग बनिये। इस दृश्य तथा धारणा की तीव्रता को बनाये रखिये। अपनी सजगता को बिखरने नहीं दीजिए।

चतुर्थ चरण– वायु आकाश

आकाशीय नीले षड्भुज पर दृष्टि को बनाये रखिये जो आपके पूरे अस्तित्व को घेरे हुए है तथा आपके प्रत्यक्ष ज्ञान के परे भी फैला हुआ है। जब आप स्थिरता से नीली षड्भुजाकार आकृति पर नजर टिकाए रखेंगे तो देखेंगे कि वायु रूप धीरे-धीरे वाष्प होकर अदृश्य हो रहा है। जैसे ही नीला षड्भुज विलीन तथा अदृश्य होता है, उसी के साथ आपका पूरा अस्तित्व भी छिप जाता है और अन्त में कुछ नहीं बचता, केवल शून्य तथा सजगता ही बचती है। रिक्त आकाश के प्रति सजग होइये, जिसमें आसमानी नीले रंग के षड्भुज के रूप में वायु तत्त्व अवस्थित था। अपनी पूरी सजगता को आकाश में लगाइये। इस आकाश की अनुभूति कीजिए जिससे बीज या वायु तत्त्व के सूक्ष्म रूप का निर्माण होता है। आप अपनी सारी सजगता को इस आकाश में विलीन कर दीजिए। आप तत्त्वाकाश हैं, जिसमें वायु तत्त्व प्रकट होता है तथा पुनः अव्यक्त आयाम में वापस हो जाता है।

इस आकाश में वायु तत्त्व की अनुभूति उसकी सुषुप्तावस्था एवं अव्यक्तावस्था में कीजिए। यहाँ कोई क्रियाशीलता, गति या बाहरी फैलाव नहीं है। इस आकाश के अन्दर पूर्ण स्थिरता एवं शान्ति का अनुभव कीजिए। कामना का कोई बीज किसी भी रूप में नहीं है जो किसी कर्म को प्रेरित करे। द्वैत की धारणा पूर्ण रूप से विलीन हो चुकी है। नाम, रूप एवं विचार से सम्बन्धित सभी अनुभव अदृश्य हो गये हैं।

वहाँ आकाश, शुद्ध तत्त्वाकाश के सिवा और कुछ नहीं है। इस आकाश का अनुभव कीजिए जो वायु आकाश के नाम से जाना जाता है, इस

आकाश के अन्दर पूर्ण स्थिरता, शून्यता, रिक्तता का अनुभव कीजिए। अपनी सजगता को कालातीत, रूपातीत, तत्त्वाकाश में समाहित कीजिए। यह वही आकाश है जो काल के आरम्भ से, सृष्टि के पूर्व से विद्यमान था और जो काल के अन्त तक, जब सब कुछ विलीन होगा, सब कुछ समाप्त हो जायेगा, तब भी विद्यमान रहेगा। वायु आकाश का अनुभव कीजिए, वह आकाश जहाँ वायु तत्त्व प्रसुप्त एवं अव्यक्त अवस्था में वर्तमान रहता है।

अभ्यास 5 – आकाश तत्त्व

प्रथम चरण – आकाश शरीर

आकाश सबसे अधिक सूक्ष्म तत्त्व है। यह अन्य चार तत्त्वों का आधारभूत पक्ष है। जब वायु तत्त्व स्थिर तथा गतिहीन हो जाता है तो यह आकाश में परिवर्तित हो जाता है। आकाश शुद्ध ऊर्जा है। यह स्थूल पदार्थ के छोटे कणों के बीच का स्थान हैं। जब मन आकाश तत्त्व में स्थिर हो जाता है तो केवल चेतना बचती है। शरीर के प्रति सजगता नहीं रहती है। आप अपने भौतिक शरीर की बनावट से मुक्त हो जाते हैं।

आप अपनी सजगता को इस आकाश में लाइये तथा उस ऊर्जा का अनुभव कीजिए जो सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। यह आकाश समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। इस आकाश के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कीजिए, जो स्पन्दन, ध्वनि एवं दृश्य से परिपूर्ण है, जिसमें से कुछ तो हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान की सामान्य परिधि से परे हैं। इसी आकाश के माध्यम से आप अपने चारों तरफ की ध्वनियों को सुनते हैं तथा सूक्ष्म स्पन्दन को चुन लेते हैं।

अपने को पूर्ण रूप से आकाश तत्त्व में विलीन कर दीजिए, उस आकाश में, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अविश्वसनीय गति से स्पन्दित हो रहा है। आपकी चेतना सभी पदार्थों, शुद्ध ऊर्जा तथा अकल्पनीय परिमाण की शक्ति के पार्श्व में स्थित आकाश के प्रति सजग है। जैसे ही आप अपने मन को आकाश तत्त्व पर संकेन्द्रित करते हैं, आप अपने को अनन्त ब्रह्माण्डीय आकाश में बढ़ते एवं फैलते हुए अनुभव करेंगे।

अनुभव कीजिए कि आप कायारहित हैं। आपका अस्तित्व मात्र चेतना है। आपकी प्रकृति मात्र आकाश की है, जो किसी भी शारीरिक अनुबन्ध द्वारा

न तो बाधित है और न ही अवलम्बित है। आपकी चेतना स्वतंत्र रूप से आकाश में बिना किसी बाधा या रुकावट के गतिमान है। आकाश तत्त्व का अनुभव कीजिए। आप स्वयं से मन ही मन कहिये, "मैं आकाश हूँ, मेरी प्रकृति है स्थिरता।" आप अपने को शुद्ध चेतना जैसा अनुभव कीजिए, जिसमें न कोई कम्पन है न उतार-चढ़ाव, जो किसी भी स्थूल सह-बन्धन से स्वतंत्र है। आप अपनी सारी सजगता को इसी अनुभूति में केन्द्रित कीजिए।

द्वितीय चरण– प्रतीक एवं मंत्र

आप अपनी सजगता अपने आकाशीय शरीर के विशुद्धि क्षेत्र में लाइये। कुछ क्षणों के लिए इस क्षेत्र में धारणा कीजिए। कण्ठ के प्रति सजग होइये, कण्ठ से भ्रू-मध्य के बीच के सम्पूर्ण क्षेत्र के प्रति सजग होइये। धीरे-धीरे आपको कण्ठ प्रदेश में एक बड़े वृत्त का धुँधला आकार दिखाई देगा। यह वृत्त अनेक रंगों के बिन्दुओं से भरा है जो आकाश को, आकाश तत्त्व को निरूपित करता है।

वृत्त का मानस दर्शन कीजिए तथा उसके भीतर बहुरंगी बिन्दुओं को देखिये। जैसे ही आप वृत्त पर दृष्टि डालेंगे, बिम्ब की धारणा साफ होगी। वृत्त के अन्दर देखिये और रिक्त आकाश, शून्य की अनुभूति कीजिए। जब आप आकाश तत्त्व के वृत्त को साफ-साफ देखने में सक्षम हो जाते हैं तब मानसिक रूप से मंत्र 'हं-हं-हं' का उच्चारण कीजिए।

प्रत्येक मंत्रोच्चारण के साथ अपनी सजगता को वृत्त के चारों तरफ, दाहिने से बायें घुमाइये। जब आप मंत्रोच्चारण करते हैं तो स्पष्ट रूप से वृत्त का मानस दर्शन कीजिए। केन्द्र में आकाश के प्रति सजग होइये। दो-तीन मिनट तक मंत्रों का उच्चारण कीजिए जब तक कि आपकी सजगता तथा धारणा पूर्णरूप से विशुद्धि क्षेत्र में स्थित आकाश के वृत्त पर केन्द्रित नहीं हो जाती है।

तृतीय चरण– प्रतीक का विस्तार

अब मंत्रोच्चारण छोड़िये, परन्तु शून्य वृत्त पर अपनी दृष्टि को बनाये रखिये। जब आप स्थिरता से वृत्ताकार चित्र पर दृष्टि बनाये रखेंगे तो वह धीरे-धीरे विस्तृत होगा। पहले यह गले तथा भ्रू-मध्य के बीच पूरे क्षेत्र को आपूरित करेगा। फिर यह धीरे से नीचे तथा बाहर की ओर फैलते हुए वक्ष, उदर तथा अन्त में पूरे शरीर को आच्छादित करेगा।

विस्तारित आकाश वृत्त का मानस दर्शन कीजिए जो आपके पूरे शरीर को घेरे हुए है। पूरे शरीर को स्पष्ट रूप में देखिये, जैसे कि आप इसके भीतर बैठे हुए हों। रिक्त वृत्त के प्रति सजग होइये जो आपके पूरे शरीर में व्याप्त है तथा इसके बाहर की ओर भी फैल रहा है। फैले हुए वृत्त के आयामों पर धारणा कीजिए जो प्रकाशीय बिन्दुओं या बहुरंगी चिह्नों से भरा पड़ा है। आकाश के वृत्त के प्रति सजग होइये जो आप में तथा आपके चारों तरफ है। अपनी सम्पूर्ण सजगता को वृत्त में विलीन कर दीजिए। आकाश के साथ एकाकार हो जाइये। आप वृत्ताकार शून्य हैं। सजग होइये। एकटक दृष्टि तथा अनुभूति को बनाये रखिये। अपनी धारणा को शिथिल नहीं होने दीजिए। स्थिरता निर्बाध, असीम होनी चाहिए, एकात्मता सम्पूर्ण।

चतुर्थ चरण – तत्त्वाकाश

शून्य के वृत्त पर अपनी दृष्टि बनाये रखिये जो आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को घेरे हुए है तथा आपके सीमित प्रत्यक्ष दर्शन के बाहर भी फैला हुआ है। जब आप वृत्ताकार चित्र पर स्थिरता से दृष्टि रखते हैं तो इसे धीरे-धीरे फैलता तथा और भी फैलता हुआ देखिये, जब तक कि यह व्यापक अनुपात में नहीं पहुँच जाता है।

जैसे वृत्ताकार शून्य अनन्त में फैल जाता है, आपका अस्तित्व भी उसी प्रकार प्रसरित होता है जब तक कि आपका अपनी वैयक्तिकता का ज्ञान खो नहीं जाता है। धीरे-धीरे आपकी सम्पूर्ण चेतना कालातीत, अनन्त शून्य में समाहित हो जाती है। वहाँ कुछ नहीं बचता, केवल आकाश, अंतहीन आकाश, अनन्त में फैला हुआ आकाश ही बचता है।

अनन्त आकाश का अनुभव कीजिए जिसमें आकाश तत्त्व का अपना अस्तित्व है। अपनी सम्पूर्ण सजगता को इस आकाश में विलीन कर दीजिए। आकाश तत्त्व के साथ एकाकार हो जाइये, जिससे अन्य सभी तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। बीज या तत्त्वाकाश से ही सृष्टि का सब कुछ प्रकट होता और पुन: इसमें ही व्यक्त आयाम में वापस हो जाता है।

इस आकाश में सभी अन्य तत्त्व – पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु आदि अपनी प्रसुप्त अव्यक्त अवस्था में विद्यमान हैं। यहाँ कोई कार्य, गति या बाहरी विस्तारण नहीं है। इस आकाश में पूर्ण स्थिरता एवं शान्ति है। द्वैत धारणा यहाँ पर अस्तित्वहीन है। नाम, रूप तथा विचार सम्बन्धी सभी अनुभूतियाँ यहाँ पूर्णरूप से छँट जाती हैं।

यहाँ कुछ नहीं है, केवल आकाश, शुद्ध तत्त्वाकाश ही है। इस आकाश का अनुभव कीजिए जो अन्य सभी तत्त्वों का उद्गम तथा अन्त है तथा जो सृष्टि का आरंभ तथा अन्त भी है। इस आकाश के भीतर पूर्ण स्थिरता, रिक्तता तथा शून्यता के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को कालातीत, रूपातीत तत्त्वाकाश में विलीन कर दीजिए। तत्त्वाकाश का अनुभव कीजिए, उस आकाश का जहाँ अन्य सभी तत्त्व प्रसुप्त, अव्यक्त अवस्था में विद्यमान हैं।

पंचम चरण – अभ्यास की समाप्ति

अब आप अभ्यास समाप्ति के लिए तैयार हो जाइये। धीरे-धीरे तत्त्वाकाश की अनुभूति से अपनी सजगता खींचिये। मानसिक तथा भौतिक आयामों के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिए कि आपका भौतिक शरीर ध्यान की मुद्रा में बैठा हुआ है। धीरे से अपनी सजगता को बहिर्मुखी बनाइये। बाहरी ध्वनियों को सुनिये। जिस कमरे में आप बैठे हुए हैं उसके प्रति सजग होइये। अपने सहज श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग होइये। मानसिक रूप से तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिए तथा आँखों को खोलिये।

हरि ॐ तत्सत्

व्योम पंचक पाँच

सूर्याकाश

सूर्य का अर्थ है, 'वह जो कर्मण्यता में प्रवृत्त करे।' सूर्य शुद्धिकरण का प्रतीक है, क्योंकि यह सभी बुराइयों एवं अशुद्धियों को जला देता है तथा यह कभी अशुद्ध नहीं किया जा सकता है। आदि काल से सभी महादेशों के लोग पाप के विनाश हेतु एवं सुरक्षा, समृद्धि एवं धन की प्राप्ति हेतु सूर्य की उपासना करते आये हैं। वैदिक देवताओं में सूर्य सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। महाभारत में चर्चा है कि जब युधिष्ठिर वन में रहते थे तो अपने दल में सब के लिए भोजन हेतु सूर्य की उपासना किया करते थे। सूर्य ने उन्हें 'अक्षय पात्र' दिया था, जो कभी खाली नहीं होता था, जिससे कि वे अपने आवश्यकतानुसार जितना चाहें भोजन प्राप्त कर सकें।

सूर्य का वर्णन स्वर्गाकाश, तपस एवं प्रकाश के संरक्षक के रूप में किया गया है, जो सबसे ऊँचा एवं शुद्धतम स्वर्ग का क्षेत्र माना गया है। सात कान्तिवान अश्वों से, जो सातों लोकों में उनकी पहुँच के द्योतक हैं, जुते अपने अति सुन्दर सुनहरे रथ पर सवार होकर वे समस्त आकाश में विचरण करते हैं और अपनी सुनहरी भुजाओं को फैलाकर अपने तेज से समस्त संसार को आलोकित करते हैं। सूर्य यूनान के जीयुज (द्युज) के पुत्र हैं, जो प्राचीनतम देवताओं में से हैं, जो महाकाश पर शासन करते हैं।

वैदिक परम्परा में सूर्य को अनेक नामों से जाना जाता है, जो उनके तेज एवं सार्वभौमिक गुणों का वर्णन करते हैं। उनमें से कुछ अधिक प्रचलित नाम हैं–(1) मित्र (2) रवि, जो चमकता हुआ है (3) भानु, जो प्रकाशित करता हो (4) खग, जो आकाश में तत्काल उड़ सकता है (5) पुष, जो शक्तिदायक है, (6) हिरण्यगर्भ जो स्वर्णिम ब्रह्माण्डीय आत्मा है (7) मारीच, जो प्रभात का

देवता है (8) आदित्य, अदिति का पुत्र (9) सविता, करुणामयी माँ (10) अर्क, जो वन्दना, आराधना के योग्य है (11) भास्कर, जो हमें ज्ञानोदय कराये।

आत्मा का लेंस

कम से कम हमारे जीवनकाल में सूर्य का अस्तित्व एक स्थायी वास्तविकता है। हम लोग तो केवल एक जीवन काल के बारे में सोचते हैं, क्योंकि हम इस जीवन के बाद क्या होंगे तथा इस जीवन के पूर्व क्या थे, यह देखने में अक्षम हैं। यहाँ तमस के घूँघट में आत्मज्ञान छिपा हुआ है। सूर्य धारणा का उद्देश्य तेजोमय आत्मा के ज्ञान एवं अनुभूति को प्राप्त करना है। एक बार यह ज्ञान प्राप्त हो जाये तब यह कहा जाता है कि अमरत्व प्राप्त हो गया, जो अध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों है।

योग की एक शाखा सूर्य विज्ञान के नाम से जानी जाती है। तंत्र की भी एक शाखा है जिसे हम सूर्य तंत्र कहते हैं। सूर्य तंत्र सिद्धि का एक मार्ग है जिसके माध्यम से सूर्य में छिपी हुई जीवनी शक्ति एवं ऊर्जा को हम देख एवं समझ सकते हैं। ये दोनों परम्पराएँ एक ही अवधारणा से सम्बन्ध रखती हैं। कहते हैं कि सूर्य वह तेजोज्जवल (लेंस) है जिसके माध्यम से दीप्त आत्मा के अंश को देखा जा सकता है।

जब प्राचीन योगियों एवं तांत्रिकों ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा सूर्य की अन्त: शक्ति की सिद्धि करने के अभ्यास का निरूपण किया तो उन्होंने बाहरी सूर्य को प्रवेश द्वार या लैंस नहीं माना, जिससे कि आत्मा की कान्ति, उसके विकिरण का अवलोकन किया जाता है। उन लोगों ने सूर्य को एक उदाहरण के रूप में, प्रकाश, जीवनी शक्ति एवं ऊर्जा के स्रोत के प्रतीक के रूप में माना।

तत्त्व का शुद्ध रूप

उनके मतानुसार सूर्य, जिसे वे दीप्तिमान कहते थे, अपने रासायनिक अवयवों, जैसे, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा अन्य गैसों के कारण दीप्तिमान नहीं है। यह तत्त्वों के कारण दीप्तिमान है। प्राचीन यौगिक दर्शन या गोपनीय तंत्र बताता है कि आत्मा सभी जीवों का दीप्तिमान केन्द्र है। सूर्य सदा दीप्तिमान, प्रकाशमान आत्मा की द्वितीय अभिव्यक्ति है। तीसरा पक्ष तत्त्व है, जो आत्मा की सभी ज्ञात एवं अज्ञात अनुभूतियों पर नियंत्रण रखता है।

तत्त्व के मूलत: दो भेद हैं, पहला है देव तत्त्व तथा दूसरा मृत्यु तत्त्व। इन दो तत्त्वों के मिलने से जो प्रतिक्रिया होती है उसी से तीसरे तत्त्व का प्रादुर्भाव होता है। यही प्राण तत्त्व है। जब ये तत्त्व एक-दूसरे के साथ मिलते हैं तथा इनमें जोड़-घटाव होता है तब इससे भिन्न सूक्ष्म तथा भौतिक तत्त्वों का निर्माण होता है। ये सूक्ष्म तथा स्थूल तत्त्व संख्या में छत्तीस होते हैं।

सूर्य इन तत्त्वों की सृष्टि के समय इनके शुद्ध रूप का निरूपण करता है। तत्त्व अनवरत रूप से निर्मित होते रहते हैं तथा अपने घनत्व के अनुसार जीवन के विभिन्न रूप पाते हैं। मनुष्य का जीवन उनमें से एक है तथा सभी जीव रूपों के मूल आत्मा तथा तत्त्वों की अनुभूति इस मनुष्य रूप में की जा सकती है। जिस प्रकार आत्मा अनुभव के सबसे अधिक लोकोत्तर पक्ष को प्रस्तुत करती है उसी प्रकार मनुष्य जीव रूप अनुभूति के सबसे अधिक गतिशील पक्ष को प्रस्तुत करता है।

इन जीव रूपों का अनुभव शरीर के भीतर चक्रों तथा उप चक्रों, बड़े तथा छोटे अतीन्द्रिय केन्द्रों के रूप में किया जाता है। सूर्य परम्परा बताती है कि इन अतीन्द्रिय केन्द्रों के अतिरिक्त मेरुदण्ड में तैंतीस कशेरूकायें हैं तथा प्रत्येक कशेरूका जीव रूपों की एक निश्चित संख्या का अनुभव देती है। ऊर्जा का वह पक्ष जो नियंत्रण करता है या जो इन जीव रूपों में प्रकट होता है, वह देवी-देवता, ज्योति या दिव्यता के नारी तथा पुरुष पक्ष के नाम से जाना जाता है।

दृष्टि की शक्ति

जिस तरह गोपनीय ज्ञान के रूप में सूर्य की अवधारणा को स्वीकार किया गया है कि यह एक लेन्स है, जिसके माध्यम से आत्मा की दीप्ति को देखा जा सकता है, उसी तरह आँखों को भी लेन्स के रूप में देखा जा सकता है, जिसके माध्यम से आत्मा के स्वभाव तथा रूप को मनुष्य शरीर में देखा जा सकता है। आँखों के पास देखने की क्षमता है, किन्तु वे स्वत: निर्णय नहीं ले सकतीं, कार्यशील या गतिमान नहीं हो सकतीं। उनका मुख्य कार्य केवल देखना, अवलोकन करना है। ऐसा मानना है कि यह अवलोकन आत्म दीप्ति की सजगता को बढ़ाता है।

सूर्य परम्परा बताती है कि एक लौ पर, जो प्रकाश को विकरित कर रही है दृष्टि केन्द्रित करने से सम्पूर्ण दृश्य अवधारणा को बदला जा सकता है जिससे

सूर्य देवता



कि पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थ के जैसा नहीं, अपितु ऊर्जा के जैसा हो। एक बार जब पदार्थ का ऊर्जा के रूप में अनुभव हो जाये तब तत्त्वों के सूर्य को जाना जा सकता है तथा आत्मा का अनुभव किया जा सकता है। दृष्टि की शक्ति को बढ़ाने हेतु तृतीय नेत्र सम्बन्धी कुछ विधियाँ विकसित की गई थीं।

त्रिनेत्र वह अवधारणा है जो चेतना जगत् में हो रही प्रक्रिया का वर्णन करती है। इस प्रक्रिया में दृष्टि, जो पदार्थ, नाम तथा रूप को देखती है, वह परासंवेदी दृष्टि में बदल जाती है तथा पदार्थ, नाम तथा रूप के परे ऊर्जा को देखती है। इस स्तर तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि दृष्टि की संवेदी शक्ति को नियंत्रित किया जाये। संवेदी शक्ति के नियंत्रण से दृष्टि की परासंवेदी शक्ति को जाग्रत करना सम्भव है।

इस शक्ति को नियंत्रण में रखना सीखने के लिए विभिन्न अभ्यास विकसित किये गये हैं। त्राटक उनमें से एक अभ्यास है। सूर्य परम्परा सूर्य या लौ जैसी किसी दीप्तिमयी वस्तु पर त्राटक करने पर बल देती है। मोमबत्ती की लौ पर त्राटक का अभ्यास, मणिपुर चक्र का जागरण तथा त्रिनेत्र का जागरण, ये सब विभिन्न विधियाँ हैं, जिनका प्रयोग संवेदी तथा परासंवेदी क्षमताओं में परिवर्तन हेतु किया जाता है। इस विधि के अभ्यास के दौरान मुख्य तौर पर सजगता पर तथा मन के नियंत्रण पर बल दिया जाता है। अभ्यास की पूर्णाहुति सूर्य देवता, सूर्य मण्डल तथा सूर्याकाश के दिव्य दर्शन के साथ होती है जो शुद्ध आत्मा के आयाम में प्रवेश करने के पूर्व दीप्ति के तीन सूक्ष्मतर स्तरों का चित्रण करते हैं।

अभ्यास 1 – आग की ज्वाला पर त्राटक

प्रथम चरण – तैयारी

एक मोमबत्ती, दिया या थोड़ा जलावन हो तो जलाइये। यदि आपके पास अग्नि-कुण्ड न हो तो इसके लिए आप एक धातु की ट्रे प्रयोग में ला सकते हैं।

लौ के सामने एक आरामदायक ध्यान के आसन में बैठ जाइये। कुछ मिनटों के लिए आँखें बन्द कर लीजिए तथा अपनी सजगता को शरीर पर केन्द्रित कीजिए। अपनी स्थिति के प्रति सजग होइये। अनुभव कीजिए कि आपका सम्पूर्ण शरीर स्थिर एवं शान्त हो रहा है। शरीर की स्थिरता पर ध्यान केन्द्रित कीजिए।

द्वितीय चरण– एकाग्रता

अपनी आँखों को खोलिये तथा अग्नि की लौ पर दृष्टि जमाइये। लौ के तल पर, बत्ती के ठीक ऊपर या जलती हुई लकड़ी के ठीक ऊपर स्थिरता से देखिये। लौ के नीले भाग पर ध्यान केन्द्रित कीजिए। पलक झपकाने की चेष्टा नहीं कीजिए। अपने शरीर के किसी भाग को हिलाइये नहीं। जलती हुई लकड़ी या मोमबत्ती चटचटा सकती है, किन्तु आपकी दृष्टि लौ के तल पर स्थिर बनी रहती है।

तृतीय चरण– मेरुदण्ड का परिक्रमण

अपनी दृष्टि को आग की लौ पर स्थिरता से बनाये रखिये। अपनी चेतना को श्वास लेते समय मूलाधार से आज्ञा तक मेरु-पथ में ऊपर जाते तथा श्वास छोड़ते समय आज्ञा से मूलाधार तक नीचे जाते हुए, परिभ्रमण कराइये।

आँखों को खुली रखते हुए इस अभ्यास को करते रहिये, अग्नि की लौ पर तीन मिनटों तक दृष्टि को स्थिरता से बनाये रखते हुए। जब आप आँखों में जलन महसूस करें या आँसू गिरें तब आँखों को बन्द कर उन्हें विश्रान्त कीजिए। जब आँखें बन्द हों तो श्वासों के परिभ्रमण को बनाये रखिये तथा भ्रू-मध्य में लौ की प्रतिछाया पर धारणा करते रहिये।

अभ्यास के दौरान किसी भी समय आपकी सजगता धारणा बिन्दु से इधर-उधर नहीं भटकनी चाहिए। ज्योंही लौ की प्रतिछाया अदृश्य होती है, पुनः आँखें खोलकर अग्नि की लौ पर दृष्टि जमाइये। श्वासों का परिभ्रमण लगातार तथा अन्ततः प्रयास रहित जारी रहना चाहिए। धारणा का बिन्दु अग्नि की लौ है। दस-पन्द्रह मिनट तक अभ्यास करते रहिये, जब तक कि धारणा की ज्योतिर्मय वस्तु आपकी सजगता क्षेत्र में पूर्ण रूप से समाहित न हो जाये।

अभ्यास 2– अग्नि मण्डल का जागरण

प्रथम चरण– समान की सजगता

ध्यान के एक स्थिर आसन में बैठ जाइये। आँखों को बंद कीजिए तथा सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कीजिए। अपनी सजगता को मणिपुर क्षेत्र में नाभि पर ले जाइये। मन्द तथा गहरे उदर श्वसन का अभ्यास कीजिए। जब आप श्वास लेते हैं तो नाभि के प्रसरण का तथा जब आप श्वास छोड़ते हैं

तो नाभि के संकुचन का अनुभव कीजिए। नाभि तथा मध्यपटल के बीच के क्षेत्र, समान के प्रति अपनी सजगता को बढ़ाइये। पाँच मिनट तक अभ्यास को जारी रखिये।

द्वितीय चरण– अपान का उत्क्रमण

निचले उदर प्रदेश में मणिपुर तथा मूलाधार के बीच के क्षेत्र के प्रति सजग बनिये। यह अपान की अधोगामी ऊर्जा है। जब आप श्वास लेते हैं तो श्वास एवं अपनी सजगता को स्वभावत: मणिपुर से मूलाधार तक नीचे जाता हुआ अनुभव कीजिए। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो आपकी श्वास तथा सजगता मूलाधार से मणिपुर तक ऊपर जाती है।

अब अपान शक्ति, जो सामान्यत: श्वास लेते समय नीचे की ओर प्रवाहित होती है, उसे अब एक अभिप्राय से पलट कर ऊपर की ओर प्रवाहित कराया जाता है। यह उत्क्रमण इड़ा मार्ग द्वारा किया जाता है। पहले इड़ा मार्ग का मानस दर्शन करें, जो मूलाधार से निकल कर बाएँ मुड़कर ऊपर जाती हुई स्वाधिष्ठान को पार करती है। पुन: दायें तरफ घूमती है और मणिपुर को पार करती है।

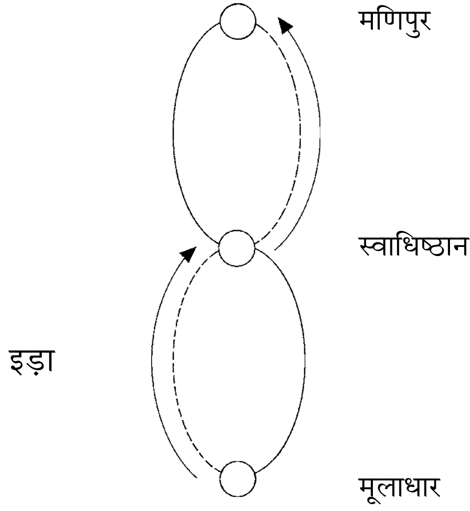
अब अपनी सजगता नीचे मूलाधार में ले जाइये। धीरे से श्वास लीजिये तथा अपान के प्रवाह को उलटिये और इड़ा नाड़ी के मार्ग से ऊपर की दिशा में श्वास के साथ उसे भेजिए। अपान के प्रवाह को पलटते और इड़ा मार्ग से मूलाधार से मणिपुर तक ऊपर जाते अनुभव कीजिए। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो स्वभावत: श्वास तथा सजगता मणिपुर से मूलाधार तक सीधे नीचे जाती हैं। पाँच मिनट तक अभ्यास जारी रखिये।

तृतीय चरण– प्राण की दिशा उलटना

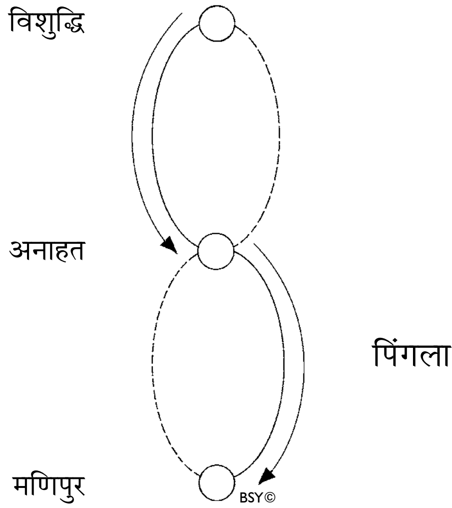
अनाहत तथा विशुद्धि के बीच वक्ष पर अपनी सजगता को ले जाइये। यह प्राण का क्षेत्र है, जो ऊर्ध्वगामी शक्ति है। जब आप श्वास लेते हैं तो अनुभव कीजिए कि श्वास तथा सजगता स्वत: अनाहत से विशुद्धि की ओर उर्ध्वगामी होती हैं। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो श्वास विशुद्धि से अनाहत की ओर नीचे उतरती है।

अब प्राण शक्ति, जो सामान्यत: प्रश्वास के समय ऊपर की ओर प्रवाहित होती है, उसकी दिशा को स्वेच्छया उलटकर नीचे की ओर प्रवाहित किया जाता है। यह उत्क्रमण पिंगला मार्ग के माध्यम से किया जाता है। अब मानस दर्शन कीजिए कि पिंगला नाड़ी विशुद्धि से निकल कर बायीं ओर

चित्र 1 : अपान का उत्क्रमण



चित्र 2 : प्राण का उत्क्रमण



मुड़ती हुई अनाहत को पार करती है। और फिर दाहिनी ओर मुड़कर मणिपुर को पार करती है।

अब अपनी चेतना को विशुद्धि के पीछे लाइये। धीरे से श्वसन कीजिए तथा प्राण के प्रवाह को पलट कर उसे पिंगला नाड़ी के माध्यम से श्वास के साथ नीचे की दिशा में भेजिये। अनुभव कीजिए कि प्राण का प्रवाह उलट रहा है तथा पिंगला मार्ग से विशुद्धि से मणिपुर में नीचे जा रहा है। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो श्वास तथा चेतना सीधे मणिपुर से विशुद्ध में सीधी रेखा में सामान्य रूप से वापस ऊपर आती है। पाँच मिनट तक इस अभ्यास को करते रहिये।

अभ्यास टिप्पणी– यह विधि अत्यन्त सीधी एवं सरल है। फिर भी उस स्तर तक पहुँचने में महीनों लग सकते हैं, जहाँ आप अपनी सजगता को सुग्राही बना सकें, जिससे कि मूलाधार से मणिपुर तक अपान के उर्ध्वगामी प्रवाह का और विशुद्धि से मणिपुर तक प्राण के अधोगामी प्रवाह का अनुभव कर सकें।

चतुर्थ चरण– तीनों प्राणों का संगम

तीनों प्राणों– अपान, प्राण एवं समान का मणिपुर में संगम होता है। जब प्राण तथा अपान की शक्तियों का समान के क्षेत्र में विलय होता है तब अग्नि के क्षेत्र में अग्नि मण्डल के रूप में मणिपुर प्रकट होता है।

अब श्वास लेते समय, एक साथ ही अपान को इड़ा मार्ग से ऊपर की ओर तथा प्राण को पिंगला मार्ग से नीचे की ओर सीधे प्रवाहित कीजिए। अभिश्वसन के अन्त में अंतर्कुम्भक कीजिए तथा अनुभव कीजिए कि दो ऊर्जाएँ मणिपुर में समान से टकरा रही हैं।

ऊर्जाओं की टकराहट से सुषुम्ना नाड़ी तथा कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है। मणिपुर में तीनों ऊर्जाओं के प्रभाव का अन्तर्कुम्भक लगाते हुए अनुभव कीजिए। तब नि:श्वास करते हुए सजगता एवं श्वास को अलग होने तथा मणिपुर से विशुद्धि और फिर मूलाधार में एक साथ वापस जाने दीजिए। प्रारम्भ में इसका अनुभव विद्युत के एक झटके के समान हो सकता है।

पंचम् चरण– ऊर्जा की उत्पत्ति

पूर्ण सजगता एवं एकाग्रता के साथ अभ्यास जारी रखिये। श्वास लेने के साथ ही प्राणिक प्रवाह को भी पलटिये। पूरक के बाद अन्तर्कुम्भक कीजिए

तथा मणिपुर में तीनों प्राणों के विस्फोटक मिलन का अनुभव कीजिए। जब ये शक्तियाँ एक-दूसरे से टकराती हैं तो वहाँ ताप, ज्वाला, विद्युत एवं प्रकाश की भयानक रूप से उत्पत्ति होती है।

इस समय जहाँ तक अनुभव हो सके मणिपुर में ऊर्जा विस्फोट के ऊपर धारणा का अभ्यास करते रहना चाहिए। जैसे ही आप अन्तर्कुम्भक करते हुए धारणा करते हैं, तीनों प्राण मिलकर एक हो जाते हैं, जिससे दूसरे दो प्राण– उदान तथा व्यान क्रियाशील बनते हैं और कुण्डलिनी का सुषुम्ना मार्ग से जागरण होता है।

जब सुषुप्त कुण्डलिनी कालातीत सुषुम्ना मार्ग में ऊपर चढ़ना प्रारम्भ कर देती है तब समस्त शरीर में प्राणिक झटके का अनुभव होता है। जब कुण्डलिनी मणिपुर में पहुँचती है तो अग्नि एवं प्रकाश का एक जबरदस्त विस्फोट होता है, जो तीव्रता में चकाचौंध उत्पन्न करने वाला होता है। यही अग्निमण्डल, अग्नि प्रक्षेत्र का जागरण है। इस अनुभव के साथ जाग्रत कुण्डलिनी मणिपुर में जाकर स्थिर हो जाती है तथा फिर कभी यह अपनी सुषुप्तावस्था में मूलाधार में वापस नहीं होती है।

अभ्यास 3– त्रिनेत्र का खुलना

द्वितीय चरण– प्राण की शुद्धि

भ्रू-मध्य में आज्ञा चक्र के प्रेरक बिन्दु पर अपनी सजगता को लाइये। एक या दो मिनट इस बिन्दु पर धारणा कीजिए। इस बिन्दु पर कुछ ताप, प्रकाश, दबाव या धड़कन की उत्तेजना का अनुभव कीजिए। पहले यदि आप कुछ भी अनुभव नहीं करते तो अधीर होने की बात नहीं है। अनुभूति निश्चित रूप से होगी।

चेतना को नीचे नासाग्र पर लाइये। इड़ा तथा पिंगला मार्गों से श्वास को ऊपर-नीचे जाते हुए अनुभव कीजिए। श्वास लेने के साथ श्वास नासिकाग्र से भ्रू-मध्य तक ऊपर जाती है तथा नि:श्वास के समय भ्रू-मध्य से नासिकाग्र तक नीचे जाती है। प्रत्येक श्वास के बाद अन्तर्कुम्भक करते हुए भ्रू-मध्य में धारणा कीजिए। प्रकाशीय बिन्दु या एक छोटे से चमकते हुए तारे को देखने का प्रयास कीजिए। तब धीरे से नि:श्वास करते हुए बहिर्कुम्भक के साथ नासिका छिद्रों में नीचे अपनी चेतना को ले जाइये। पाँच मिनट तक इस अभ्यास को करते रहिये।

द्वितीय चरण– अनुलोम-विलोम

बारी-बारी से दोनों नासिकाओं से श्वास लीजिए। पहले धीरे से बायीं नासिका से श्वास लीजिए। कुछ सेकेण्ड तक भीतर में श्वास को भ्रू-मध्य पर रोकिये तब नि:श्वास दाहिनी नासिका से कीजिए। फिर, दाहिनी नासिका से श्वास लीजिए, भ्रू-मध्य पर कुछ सेकेण्ड अन्तर्कुम्भक कीजिए, तब बायीं नासिका से नि:श्वास कीजिए।

यह एक आवृत्ति हुई। इस प्रकार चार आवृत्तियों तक अभ्यास कीजिए तथा पाँचवी आवृत्ति में प्राण शुद्धि कीजिए। इस अभ्यास में हर एक पाँचवीं आवृत्ति, जैसे, 10, 15, 20, 25 आदि में प्राण शुद्धि की जाती है। प्रत्येक बार जब आप भ्रू-मध्य पर श्वास को रोकते हैं तो इस अतीन्द्रिय केन्द्र को या तो रंगों के रूप में या प्रकाश, धड़कन या किसी अन्य संवेदना के रूप में अनुभव करने का प्रयास कीजिए।

तृतीय चरण– त्रिकुटी ध्यान

अब भ्रू-मध्य में धारणा कीजिए, जो त्रिकुटी के नाम से जाना जाता है, जो तीनों अतीन्द्रिय मार्गों– इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम है। इस बिन्दु के माध्यम से श्वास को अन्दर एवं बाहर कीजिए। प्रत्येक बार जब आप श्वास लेते हैं तो अनुभव कीजिए कि आप इस केन्द्र को अपने श्वासों से बेध कर खोल रहे हैं। श्वास लेने के बाद कुछ क्षणों के लिए श्वास को अन्दर में रोकिये। जब आप इस पर धारणा करते हैं तब इस बिन्दु से निकलते हुए कम्पन एवं धड़कन का अनुभव कीजिए।

त्रिकुटी से श्वासों को आने-जाने दीजिए। अन्य सभी जगहों से अपना अवधान हटाकर उसे इस बिन्दु पर तीव्रता से एकाग्र कीजिए। अन्तर्कुम्भक के समय इस बिन्दु का एक बन्द छोटी आँख के रूप में मानस दर्शन कीजिए।

हालाँकि यह आँख बाह्य मुखी नहीं होती, अन्दर की ओर होती है। यही वह आँख है जो चेतना एवं प्रकाश के अन्र्ततम के आयामों को देखती है, जहाँ बाहर की आँखें नहीं पहुँच सकती हैं। यह आँख पौराणिक तीसरी आँख, ज्ञान चक्षु या अन्तर्ज्ञान है, जिसका वर्णन सभी आध्यात्मिक परम्पराओं में है।

वास्तविक रूप से यह आँख आज्ञा चक्र का जागरण होने पर खुलती है। फिर भी यदि यह मात्र एक दरक जैसी भी खुले तो हम आन्तरिक जगत्

का अकल्पित रूप से अनुभव कर सकते हैं, जो साधारण दृष्टि के ज्ञान से परे है। हम अनन्त ज्ञान की प्राप्ति करते हैं, जिसका संज्ञान अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्ज्ञान या स्वत: स्फूर्त रूप में बिना तर्क या विश्लेषण के होता है।

जब आप त्रिकुटी मध्य से धीरे-धीरे श्वास लेते एवं श्वास छोड़ते हैं तब उस छोटी बन्द आँख पर धारणा कीजिए। छोटे से, मांसल उभार को देखिये जो धीरे-धीरे खुल रहा है।

ज्योंही तीसरी आँख खुलती है, वह आंतरिक जगत् को प्रकाशित करती है, जो ज्ञात बाह्य जगत् से अधिक विशाल है। आपकी दृष्टि के समक्ष अनन्त जगत् के प्रकाश, रूप एवं ज्ञान प्रकट होते हैं। आपका प्रत्यक्ष ज्ञान काल, दिक् एवं वस्तु से अबाधित एवं अनन्त होता है। तीसरी आँख के खुलने से आप ज्योतिर्मय जगत् के उच्चतर क्षेत्र में प्रवेश हेतु सक्षम हो जाते हैं। आप एक द्रष्टा बन जाते हैं।

अभ्यास 4– सूर्याकाश

प्रथम चरण– सूर्य स्तुति

ध्यान के किसी भी आरामदायक आसन में उगते हुए सूर्य की दिशा में बैठ जाइये। आँखों को बन्द कीजिए तथा अपनी स्थिति को स्थिर कीजिए। अपनी चेतना को भ्रू-मध्य में ले जाइये। उगते हुए सूर्य का मानस दर्शन कीजिए, जब वह क्षितिज पर प्रकट होता है। कुछ मिनटों तक इस आकृति पर धारणा कीजिए। वह लाल गोल सूर्य आपके सम्पूर्ण शरीर में प्रविष्ट हो व्याप्त हो रहा है तथा उसे ऊर्जा, प्रकाश एवं जीवन से आपूरित कर रहा है।

अपनी चेतना को प्रकाश के मूल तत्त्व में विलीन कर दीजिए। मानस दर्शन एक प्रकार के मानसिक चुम्बक का कार्य करता है और ब्रह्माण्डीय प्रकाश क्षेत्र को आपकी ओर अधिकाधिक दीप्त-तरंगों के साथ खींचता है।

जब आप आभा पर दृष्टि जमाये रखते हैं, जो आपके अन्त: चक्षु के सामने सभी दिशाओं में फैली हुई है, तब ज्योतिर्मय गगन में सुनहले रथ पर सवार सूर्य देवता का दर्शन कीजिए।

सूर्य के राजोचित एवं कान्तिमय स्वरूप का मानस दर्शन कीजिए, जिनका प्रकाश-जगत् के ऊपर आधिपत्य है। कान्तिमय रूप में सूर्य देवता को देखिये जो अपनी प्रकाश किरणों को चारों दिशाओं में फैला रहे हैं,

निस्सरित कर रहे हैं, अपनी सुनहरी भुजाओं से समस्त जगत् को प्रकाशित कर रहे हैं। सूर्य को देखिये, जो अपने चमकते हुए उड़न खटोले पर बैठे हैं, जिसमें सात देदीप्यमान घोड़े जुते हैं और जिनकी गति प्रकाश की गति से भी अधिक तेज है।

सूर्य देवता के रूप में ज्योतिर्मयता के दिव्य पक्ष पर धारणा कीजिए। उनके कान्तिमय रूप पर दृष्टि जमाए रखिये जब तक कि आपकी सम्पूर्ण चेतना उसमें समाहित न हो जाये।

सूर्य के साथ एक हो जाइये, जो प्रकाश एवं ऊर्जा के उद्गम हैं। आप अपने को उनके ब्रह्माण्डीय रूप के एक अंश के रूप में अनुभव कीजिए। क्रमश: अपने समस्त अस्तित्व का सूर्य की आभा में विलय कर दीजिये।

द्वितीय चरण– सूर्य मण्डल

जब तक आपका सम्पूर्ण अस्तित्व उसमें विलीन नहीं हो जाये, सूर्य की प्रतिछाया पर एकाग्रता बनाये रखिये। आपकी सम्पूर्ण चेतना प्रकाश के ब्रह्माण्डीय रूप में अन्तर्लीन हो जायेगी। आभा के प्रति सजग होइये जो आपके शरीर के भीतरी आकाश में व्याप्त है। अपने सम्पूर्ण शरीर को प्रकाश के रूप में देखिये। यह प्रकाशमय शरीर कारण शरीर है।

आपके अन्दर तथा आपके चारों ओर कुछ भी नहीं है, मात्र प्रकाश ही है जो उस घड़े की तरह है जो पानी में डूबा है, जिसके भीतर पानी है तथा बाहर भी पानी है। उसी तरह आप अपने अन्दर तथा बाहर फैले प्रकाश क्षेत्र को बिना विक्षेप के अनुभव करने में सक्षम हैं। यही सूर्य मण्डल की अनुभूति है।

ब्रह्माण्डीय प्रकाश मण्डल, सूर्य मण्डल पर धारणा कीजिए। अनन्त में स्पन्दित एवं विकरित होते प्रकाश के असीम प्रसार के साथ एकाकार हो जाइये। आपके चारों तरफ अनन्त स्पन्दन एवं अनन्त प्रकाश का समुद्र है। जहाँ कहीं भी आप देखते हैं, सभी दिशाओं में अनन्त ज्योति के सिवा और कुछ नहीं है, जो पूरे आकाश में आपूरित है। सूर्य मण्डल का अनुभव कीजिए। सूर्य मण्डल के प्रति सजग होइये।

तृतीय चरण– सूर्याकाश

सूर्य मण्डल पर अपनी दृष्टि को बनाये रहिये जब तक कि यह क्रमश: अव्यक्त ज्योतिर्मय आकाश में विलीन न हो जाये, जहाँ से यह प्रकट हुआ था। सूर्याकाश के प्रति, सूर्य या आत्मा के प्रति सजग होइये, जो शुद्ध एवं

निर्मल है। सूर्य या आत्मा के इस आकाश को प्रकाश का उद्‌गम स्थान माना जाता है, जो सृष्टि की सभी दृश्य तथा अदृश्य वस्तुओं में व्यक्त है। यह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों है।

सूर्याकाश चिर सत्य है। यह अक्षय एवं अपरिवर्तित है। यह काल, दिक् एवं वस्तु के व्यक्त आयामों से अप्रभावित है। यह आकाश सभी तत्त्वों का मूलाधार है, अत: यह सृष्टि तथा जीवन दोनों का उद्‌गम स्थान है। प्रलय के समय, सृष्टि के पूर्व यह तत्त्वों के शुद्ध रूप को प्रस्तुत करता है।

अपनी चेतना को सूर्याकाश के शुद्ध, अव्यक्त, ज्योतिर्मय आकाश में विलीन कर दीजिए। यह आकाश अबाध एवं अभिन्न है। यह द्वैत से परे है। यहाँ किसी गति, क्रिया या विस्तार का अनुभव नहीं किया जा सकता है। यहाँ मात्र स्थिरता, पूर्ण स्थिरता है। स्थिरता में ज्योति, पूर्ण ज्योति है और ज्योति के अन्दर है शून्यता, रिक्तता, पूर्ण खालीपन। पूर्ण नीरवता, पूर्ण ज्योति, शून्य का अनुभव कीजिए।

चतुर्थ चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब धीरे-धीरे सूर्याकाश से अपनी चेतना को वापस कीजिए। अपने भौतिक आयामों में वापस आइये, जहाँ आप का शरीर ध्यानावस्था में बैठा हुआ है। अपने भौतिक शरीर के प्रति सजग होइये। बाहरी ध्वनियों को सुनिये। जिस कमरे में आप बैठे हुए हैं उसका मानस दर्शन कीजिए। गहरी श्वास लीजिए तथा तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिए। धीरे-से अपनी आँखों को खोलिये।

हरि ॐ तत्सत्

नादानुसंधान धारणा

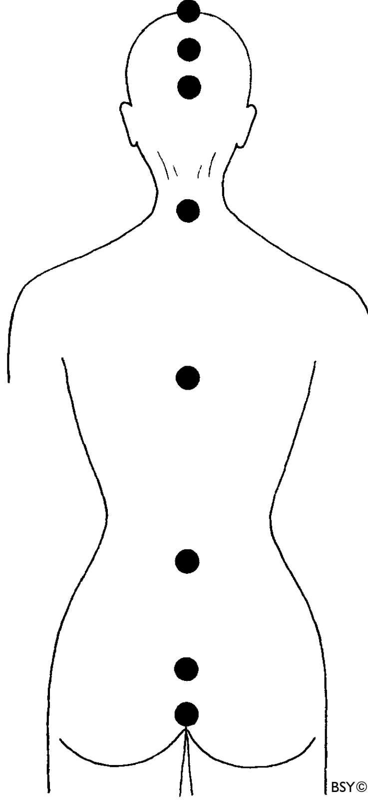
संस्कृत शब्द 'नाद' का अर्थ ध्वनि या व्युत्पत्ति के हिसाब से 'चेतना का प्रवाह' होता है। नाद मौलिक कम्पन, दैविक, सर्वव्यापी, सर्जनात्मक ध्वनि है। यह आध्यात्मिक अभ्यास का मूल तत्त्व है। अनुसंधान शब्द का अर्थ होता है खोज। स्थूल से सूक्ष्म, बाह्य से आन्तरिक, मानसिक से कारण तथा उससे परे, ध्वनि के कम्पन की खोज धारणा का सम्पूर्ण भाग है, जिसे नादानुसंधान कहते हैं, गोपनीय आत्मिक संगीत की कला।

जहाँ ऊर्जा है, वहाँ गति होगी, वहाँ कम्पन होगा तथा कम्पन से ध्वनि होगी। कुछ ध्वनियाँ हैं जो हमारे कानों के श्रवण परास से नीचे हैं तो कुछ उस परास से ऊपर। जब हम हवा में अपने हाथों को घुमाते हैं तो हवा में घर्षण उत्पन्न होता है और एक ध्वनि की उत्पत्ति होती है। आपको इस तरह ध्वनि का ज्ञान होता है। परन्तु ध्वनि तो वहाँ कम्पन के रूप में, गति या ऊर्जा के स्पन्दन के रूप में रहती है। ये कम्पन भौतिक या प्राणिक शरीर तक ही सीमित नहीं होते हैं, ये मन, भावना एवं बुद्धि जगत् में भी विद्यमान होते हैं।

जब कभी हम चिन्तन भी करते हैं तो मन के अन्दर तरंगें उत्पन्न होती हैं जो कम्पन तथा ध्वनियाँ पैदा करती हैं। हम अपने मन, विचार तथा अनुभवों को भीतर दिशान्तरित करते हुए अन्तर्मुखी होते हैं तब उस ध्वनि का अनुभव होता है जिसे नाद, निजी ध्वनि, आत्म ध्वनि, स्व-ध्वनि आदि के नाम से जानते हैं। यह नाद सबसे अधिक सूक्ष्म है जिसे हम इस आयाम में अनुभव कर सकते हैं। यह खण्डित होने वाली ध्वनि नहीं है, अपितु यह अनवरत ध्वनि है। यौगिक भाषा में इन ध्वनियों को 'अक्षर' कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'वह ध्वनि जो अमर है।' मानव जाति के जन्म से अब तक हम अपने को व्यक्त करने के लिए ध्वनि का उपयोग करते आ रहे हैं। हम ध्वनि का उपयोग बाहरी तौर पर करते आ रहे हैं। हम ध्वनि के गुण, शक्ति तथा प्रभाव का अनुभव

नादानुसंधान

स्वर धारणा



बाहरी तौर पर करते आ रहे हैं। इस अभ्यास में हम ध्वनि के गुण, प्रभाव तथा शक्ति का अनुभव आन्तरिक रूप से करते हैं।

एक समस्वरित यंत्र

इन आन्तरिक सूक्ष्म ध्वनियों को सुनने के लिए वास्तव में मानसिक तल पर और भी अधिक संवेदनशील बनने तथा बाह्य एवं आंतरिक चेतना में संतुलन बनाने की प्रक्रिया निहित है। जब हमारा मन बहिर्मुखी होता है तो हम आन्तरिक कम्पनों, स्पन्द तथा ध्वनियों को नहीं सुनते। जब हम गहरे ध्यान में अन्तर्मुखी हो जाते हैं तो बाह्य कम्पन या ध्वनियों का अनुभव नहीं करते। नादानुसंधान का लक्ष्य इन ध्वनियों की सूक्षतम अवस्था की खोज, शुद्धिकरण तथा नियंत्रण करना है। फलस्वरूप अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को अपने असली स्वभाव के अनुरूप बनाते हैं। एक समस्वरित यंत्र की तरह अपने शरीर तथा मन को बनाते हैं, जिससे कि सबसे अधिक सुव्यवस्थित तरीके से जिन्दगी के संगीत को गाया जा सके।

सभी धार्मिक ग्रंथों में नाद का संदर्भ सृजनात्मक स्पन्द के रूप में पाया जाता है। किसी व्यक्ति को इसकी कोई बौद्धिक कल्पना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यदि इस नाद का प्रत्यक्ष दर्शन किया जाना है तो इसे आन्तरिक शक्तियों के साथ किया जाना है, जो सतही विचार के परे है। नाद को जीवन के सार तत्त्व के रूप में समझा जाना चाहिए, जहाँ से सृजन के सभी पक्ष जीवनी शक्ति तथा गति प्राप्त करते हैं। यह आप में है, मुझमें है, चट्टान तथा पत्थर में है।

नादानुसंधान का अभ्यास प्राय: सभी व्यक्ति कर सकते हैं, परन्तु यह विशेषकर संगीतज्ञों तथा वैसे लोगों के लिए लाभदायक है जिनका संगीत तथा सृजनात्मक कार्यों के प्रति झुकाव है। नाद योग के सिद्ध पुरुषों ने इस विधि के क्रमबद्ध विकास की प्रक्रिया निरूपित की है, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे साधक को नये संवेदी बोध से अभ्यस्त कराते हैं, जो उन्हें आगे बढ़ने में सहायक होता है। जो व्यक्ति सांसारिक कार्यों में संलिप्त है, वह अपने सभी नादों को, जो कि नाद से ही उत्पन्न हुए हैं, बाहरी रूपों में मिला देता है। जबकि कोई व्यक्ति जो अपने ही नादों के कम्पन में स्थापित है, सभी सांसारिक रूपों को अपने आत्म-नाद में ही मिला देता है।

एक भ्रमित मस्तिष्क में नाद सिर से होकर बहती हुई एक आँधी के समान है। नादयोग की तकनीकों से इस असंगत शक्ति को लेजर किरणों के रूप

में संकेन्द्रित किया जाता है, जो भीतर जाकर निशाने पर लगती हैं। साधक को भीतर खींच कर नाद व्यक्ति की वर्तमान चेतना की अवस्था, और उसकी आन्तरिक शक्ति के बीच एक कड़ी बनाता है। यह स्वर चेतना की क्रमिक विकास प्रक्रिया तथा उसका प्रशिक्षण प्रदान करता है, जो कि इतना सूक्ष्म है कि व्यक्ति अपने बाहर के बजाए भीतर के प्रत्यक्ष बोध पर विश्वास करने लगता है। मन, जो साधारणतया अपना सुख तथा सुरक्षा बाहरी वस्तुओं में पाता है, वह आन्तरिक वस्तुओं में शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करना प्रारम्भ कर देता है। किसी चीज को छाँटकर अलग नहीं किया जाता। मन का स्थूल पहलू वृक्ष के सूखे पत्ते के समान गिर कर अलग हो जाता है।

स्वर के स्तर

1. *परा नाद,* अनुभवातीत नाद का प्रारम्भ बिन्दु है। यह वह नाद है जो उच्चतर चेतना की अवस्था में सुना जाता है। यह प्रत्यक्ष अनुभवों के सामान्य स्तर से कहीं परे है। यह नाद वैसी तीव्र आवृत्तियों वाली ध्वनि है, जो कम्पन से परे जाती है तथा इसकी तरंगदैर्ध्य अनन्त होती है। उपनिषद् इसे ॐ कहता है और कहता है इसका स्वभाव ज्योति या प्रकाश है। अन्तत: ॐ नीरवता है। ध्यान में प्रकाश तथा नीरवता एक ही हैं। ॐ को सामान्य नाद से अलग करने के लिए और यह बताने के लिए कि यह अकारण एवं स्वत: स्फूर्त्त मूल का है, इसे अनहद कहते हैं। ॐ अनहद है, जिसकी कोई सीमा-रेखा या गुण नहीं है, जो नि:शब्दता का संकेत है। यह भीतरी खामोशी है, मूल स्वर या स्वर सम्भावना है। परा नाद समाधि के पूर्व की अन्तिम अवस्था है।
2. *पश्यन्ति,* मनस् स्वर आपके कानों की अपेक्षा मन के अधिक नजदीक है। इस नाद को देख सकते हैं, किन्तु सुन नहीं सकते। इसके अनेक विशिष्ट रंग होते हैं जो आन्तरिक दृष्टि से देखे जा सकते हैं। यह मन के गहरे तल पर श्रवणीय नाद की सीमा से परे होता है और इसे स्वर के रूप में या फिर वैसे संगीत के रूप में सुना जा सकता है जो आपके दिल को छूता हो या जैसा स्वप्न में सुनायी पड़ता हो।
3. *मध्यमा,* स्वरों की मध्यम पंक्ति। यह बैखरी या श्रव्य स्वर से अधिक सूक्ष्म होती है। मध्यमा का शाब्दिक अर्थ है बीच में। इसे मध्यमा इसलिए कहते हैं कि यह स्थूलतम नाद एवं सूक्ष्मतर नाद के बीच में आती है। यही

वह अवस्था है जब नाद आकार ग्रहण करता और नाद के आकारहीन सूक्ष्म स्तरों से एक स्पष्ट निश्चित रूप धारण करना प्रारम्भ करता है। इसे फुसफुसाहट वाला नाद कहा जा सकता है, जिसका प्राय: सुनने पर कोई प्रभाव नहीं होता है। नादानुसंधान में हमारा लक्ष्य इन सूक्ष्मतर स्तर से सम्बन्धित स्वरों को सुनने का होता है।

4. *बैखरी,* सुनने योग्य नाद, नाद का स्थूलतम रूप है जिसे हम संसार में चारों तरफ सुनते हैं। इसकी उत्पत्ति दो वस्तुओं के टकराने से होती है तथा इसके भेदों का भौतिक विज्ञान में वर्णन किया गया है। यह उच्चारित शब्दों का जगत् है। श्रवणीय स्वर नादानुसंधान अभ्यास का आरम्भ बिन्दु है, जिस नाद के सूक्ष्मतर आयामों के मार्ग से सभी को गुजरते हुए आगे बढ़ना पड़ता है।

संगीत का स्वर

यह धारणा कि ब्रह्माण्ड मात्र स्वर के कम्पनों का प्रक्षेप है, वास्तविक अनुभव के आधार पर निरूपित थी। भारतीय देव कुल में स्वर का अंतिम अनुभवातीत परा नाद उसी स्तर पर है जिस स्तर पर ब्रह्माण्डीय स्रोत या परब्रह्म है। मुस्लिम संतों ने कहा है कि संसार की उत्पत्ति स्वर एवं आकार से हुई है तथा इसाइयों का बाइबिल भी कहता है, "आरम्भ में शब्द (स्वर) था तथा शब्द भगवान् के साथ था तथा शब्द भगवान् था।"

पूर्व में संगीत शास्त्र का विकास नाद योग साधना की युक्ति के पूर्णत: अनुरूप था। नाद की विभिन्न तरंगे चेतन सजगता के विभिन्न स्तरों के लिए आकर्षक होती हैं। कुछ निश्चित नाद दिन के किसी विशेष समय या किसी व्यक्ति के लिए अनुकूल होते हैं तो दूसरे समय में या दूसरे व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होते हैं। संगीत में ये नाद स्पन्द विभिन्न स्वरग्राम तथा लय में रचित राग कहलाते हैं। भारत का प्रात:कालीन छोटे स्पन्दनों वाला संगीत कुछ को सुहाता है, सभी को नहीं। संध्या तथा अर्धरात्रि के समय के अनुरूप राग अधिक लोकप्रिय प्रतीत होते हैं। इस संगीत के प्रभाव को जानने हेतु इसे पूरे मनोयोग से सुना जाना आवश्यक है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण तथा गोपियों की कथा नाद योग का वर्णन करती है। कृष्ण उच्चतर चेतना के प्रतीक हैं तथा उनकी बाँसुरी की धुन नाद साधना है। ज्ञानेन्द्रियाँ, गोपियाँ अपने बाह्य अस्तित्व को, अपने पति को

भूल जाती हैं तथा अपनी ज्ञानेन्द्रियों से अपने को विलग कर दिव्य स्वर या बाँसुरी की धुनों के चतुर्दिक नृत्य करने लगती हैं। बाँसुरी की धुन पश्यन्ति अवस्था जैसी है। इन अवस्थाओं में वास्तविक स्वर सुनाई नहीं पड़ता, अपितु स्वर की आवृत्तियाँ, जो बाँसुरी एवं घण्टी की धुन से मिलती-जुलती हैं, उनका ही ज्ञान होता है।

नाद के दस प्रकार

योग दस प्रकार के नाद या आन्तरिक स्वर भेद को स्वीकार करता है, जो आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी जागरण के मील के पत्थर के रूप में जाने जाते हैं। जो क्रमश: निम्नांकित हैं–

1. *चिनि नाद*– चिनि शब्द की ध्वनि
2. *चिनि-चिनि नाद*– चिनि-चिनि शब्द की ध्वनि
3. *घण्ट नाद*– बजते हुए घण्टे की ध्वनि
4. *शंख नाद*– शंख के बजने की ध्वनि
5. *तंत्री नाद*– वीणा या तंत्री की ध्वनि
6. *ताल नाद*– करताल, मंजीरे की ध्वनि
7. *बाँसुरी नाद*– बाँसुरी की ध्वनि
8. *भेरी नाद*– ढोल की गूँजती हुई ध्वनि
9. *मृदंग नाद*– मृदंग की ध्वनि
10. *मेघ नाद*– बादलों के गर्जन की ध्वनि, अन्तिम ध्वनि।

बाँसुरी की धुन सुनते समय अनेक लोगों ने चिदाकाश में छाया को श्वेत, चमकते रंगों में परिवर्तित होते देखा है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो इन कम्पायमान रंगों को सुंदर, त्रिआयामी कलाकृति के रूप में पुनर्चित्रित कर सकते हैं या बाँसुरी के संगीत को दिव्य संगीत रचना के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। ये स्वर अतीन्द्रिय हैं, अत: इनके मात्र एक संकेत का ही आप अनुभव कर सकते हैं। आप अवश्य ही स्वयं इस स्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करें। जो स्वर आप सुनेंगे वह इस बात पर निर्भर रहता है कि आपके अस्तित्व रूपी सागर में आपकी सजगता ने कितनी गहराई तक प्रवेश किया है।

कुछ लोग अंतिम स्वर का वर्णन 'ॐ' के रूप में करते हैं। दूसरों का कहना है कि यह मधुमक्खी के स्वर के जैसा अनवरत है। नाद योग के अनुसार यह आनन्दमय कोश की सतह से या चेतना के तीसरे आयाम

से आता है, जो पूरे आनन्द से भरा शरीर है। इसी बिन्दु पर व्यक्ति नाद में अपनी चेतना की उच्चतम अवस्था का अनुभव करता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्वर के रूप में देखता है।

नाद योग अस्तित्व को पाँच क्षेत्रों में विभक्त करता है– शारीरिक, मानसिक, प्राणिक, अधिमानसिक तथा आनन्द या आत्मिक। प्रत्येक क्षेत्र का नाद एक प्रतीक है जो मन को चेतना की गहराइयों में प्रवेश करने योग्य बनाता है। भौतिक शरीर का नाद हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, रक्त संचार तथा चयापचय की प्रक्रिया के नाद या कम्पन है। जब भौतिक तल को पार कर लेते हैं तब प्राणिक चेतना की गति के सूक्ष्म स्वर सुनाई पड़ते हैं। नाद योगी सदा सूक्ष्मतर नादों की कड़ी का अनुसरण अपने अन्तर्तम के एक बिन्दु के समान केन्द्र तक करते हैं। भक्तों के लिए यह केन्द्र अनाहत में; योगी के लिए यह आज्ञा चक्र (त्रिनेत्र) में, वेदान्तियों के लिए यह सहस्रार में होता है। नाद योगी नाद या निरंतर अश्रवणीय एवं स्वैच्छिक नाद बिन्दु में पाते हैं।

अभ्यास के चरण

नादानुसंधान की तकनीकें स्वर को माध्यम के रूप में उपयोग करते हुए मन के गहन तल में पहुँचाने की विधियाँ हैं। योग विज्ञान तथा विभिन्न दर्शन एवं धर्म नाद को इस व्यक्त संसार का मूलाधार बताते हैं। विज्ञान भी इससे सहमत है कि संसार की सभी चीजें कम्पनीय ऊर्जा की सतत् आन्तरिक क्रियाएँ हैं। नाद स्पन्दन के एक विशेष रूप के सिवा और कुछ नहीं है। योग का मत है कि मन तथा शरीर के विभिन्न स्थूल एवं सूक्ष्म तल भी और कुछ नहीं, बल्कि असंख्य एवं विभिन्न नाद कम्पनों के बहुल क्रम परिवर्तनों एवं संयोगों की अभिव्यक्ति मात्र है।

इसलिए, नादानुसंधान नाद के मार्ग का पुनरावलोकन करने का साधन है, जो कि व्यक्तिगत विकास एवं जीवन का मूल आधार है। सघन अभ्यास के बाद हमारी अनुभूति अधिकाधिक परिष्कृत एवं सम्वेदनशील बनती है। फलत: हमारे सूक्ष्म नाद का अनुभव इतना संवेदनशील हो जाता है कि वह बिन्दु के प्रति भी सजग हो जाता है। यह शुद्ध चेतना का प्रवेश द्वार है। यही नाद योग साधना का सत्त्व है।

प्रारम्भिक अभ्यासी उस समय अभ्यास किया करें जब चारों तरफ बिलकुल शान्ति का वातावरण हो। यह बाहरी स्वरों को भीतरी स्वरों के अनुभव में

दखलंदाजी करने से रोकता है। रात्रि के उत्तरार्द्ध या अहले सुबह का समय इसके लिए अनुशंसित किया जाता है। जैसे ही आप बिना बाधा के सूक्ष्म स्वर को पकड़ने के योग्य हो जाते हैं, नाद योग का अभ्यास आप किसी भी समय, किसी स्थान पर तथा बिना आँखें बन्द किये भी कर सकते हैं। विश्वसनीय अनुभव प्राप्त करने के लिए नित्य अभ्यास करना आवश्यक है। प्रारम्भ में पन्द्रह मिनट या उससे अधिक इस विधि में लगाइये। अनुभव होने के बाद आप अपने सुविधानुकूल समय बढ़ा सकते हैं।

नादानुसंधान का अभ्यास अभ्यासी को क्रमबद्ध तरीके से स्थूल से सूक्ष्म, बाह्य स्वरों से गहन तथा अधिक सूक्ष्म स्तरों तक पहुँचने हेतु दिशा निर्देश करता है। यद्यपि सभी साधनायें किसी को भी सबसे अधिक सूक्ष्म स्तरों पर ले जा सकती हैं, फिर भी प्रत्येक साधना अन्य स्तरों की अपेक्षा एक स्तर विशेष पर केन्द्रित होती है।

स्वर साधना के पहले अभ्यास में संगीत का उपयोग अपनी सजगता को भीतर खींचने हेतु किया जाता है तथा भीतरी अनुभव को प्रखर किया जाता है। यह अभ्यास बैखरी के रूप में किया जाता है। जैसे ही साधक स्वरग्राम में ऊपर-नीचे चढ़ता-उतरता है, ध्यानपूर्वक अपने गीतों को सुनता है। उसी समय वह अपनी सजगता को चक्रों के माध्यम से गतिशील बनाता है तथा अतीन्द्रिय केन्द्रों के भीतर संगीत द्वारा सृजित कम्पनों का अनुभव करता है। स्वर साधना चक्रों की सजगता को संवेगी बनाने में सहायक होती है, जिससे कि ऊर्जा के बहाव को अधिक तीव्रता से अनुभव किया जा सके। इस प्रकार जैसे-जैसे आप अपनी साधना में आगे बढ़ते हैं, आप उतनी ही सरलता से मानसिक स्वर का अनुभव कर सकते हैं।

दूसरे अभ्यास में भ्रामरी प्राणायाम में आँखों को बन्द करके गुंजन स्वर उत्पन्न किया जाता है। पिछले अभ्यास में जिस संगीत के माध्यम का उपयोग किया गया उसकी अपेक्षा यह गुंजन स्वर मधुर एवं आन्तरिक होता है। इस अभ्यास में सजगता बाहरी स्वर के गुंजन पर एकाग्रता तथा इस भीतरी स्वर के प्रभाव के अनुभव के बीच बँट जाती है। यह गुंजन स्वर बाहरी स्वर से सम्बन्ध विच्छेद करने में सहायता करता तथा मन को शान्ति पहुँचाता है। यह भीतर में नि:शब्द आकाश का सृजन करता है, जहाँ साधक किसी भी भीतरी ध्वनि को सुनना एवं उसका बोध करना आरम्भ कर सकता है। जब अभ्यास प्रारम्भ करते हैं तो सामान्य तथा भीतरी शारीरिक ध्वनि सुनते हैं, जैसे कि हृदय की

धड़कन या चयापचय की प्रक्रिया। इन ध्वनियों को अनसुना नहीं किया जा सकता या दबाया नहीं जा सकता, अपितु इसका अनुभव किया जा सकता है और आपको इसके ऊपर धारणा करते रहनी है जब तक कि ये सहज ही आपकी चेतना से लुप्त नहीं हो जाते। उसके बाद आप सूक्ष्म स्वरों की ओर बढ़ सकते हैं।

जब किसी की धारणा एवं सजगता अधिक एकचित्त हो जाए, तब दूसरा अभ्यास षण्मुखी मुद्रा का करना चाहिये। षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास में बाहरी ज्ञान के सातों द्वारों को बन्द कर दिया जाता है। ये हैं– दो नेत्र, दो कान, दो नासिका छिद्र तथा मुख। सजगता आन्तरिक ध्वनियों पर केन्द्रित की जाती है। सबसे अधिक प्रबल स्थूल ध्वनि पहले सुनी जाती है, फिर जब सूक्ष्मतर ध्वनियों का बोध होता है तो सजगता वहाँ स्थानान्तरित कर दी जाती है। इस प्रकार भीतर की गहराई में सजगता कर्षित की जाती है, जिससे चेतना के गहनतर जगत् का बोध हो सके।

नाद-संचालन के अभ्यास के लिए साधक को ध्यानावस्था में पूर्णत: गतिहीन रहना पड़ेगा तथा सजगता को पूर्णत: अन्तर्मुखी करना होगा। अभ्यास का पूर्ण लाभ पाने हेतु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई शरीर की असुविधा के कारण या बाहरी ध्वनियों के कारण विक्षेपित है तो इस अन्तराकाश की यात्रा कठिन होगी, जहाँ सूक्ष्मतम स्पन्दों का बोध होता है। इस अभ्यास में ॐ मंत्र को मानसिक अवरोहण एवं आरोहण पथ में भ्रमित कराया जाता है। निम्नलिखित 'ॐ' उच्चारण का अभ्यास इस अर्थ में समान है कि 'ॐ' मंत्र का उपयोग विभिन्न प्रकार के गहन प्रभावों को उत्पन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार से किया जाता है। ॐ मंत्र, जो कि मूल स्वर है, पूरे शरीर में स्पन्दित होता हुआ सजगता एवं बोध को सूक्ष्मतर बनाता है, जिससे कि यह स्वर की बाहरी परत को भेद कर स्वर के उद्‌गम का प्रत्यक्ष दर्शन करना प्रारम्भ कर देता है।

पहले की सभी साधनाओं की पराकाष्ठा वास्तविक नादानुसंधान अभ्यास में जाकर होती है। यह अभ्यास शरीर तथा मन के स्पन्दों, विचार तरंगों, कामनाओं, भावनाओं तथा अभिव्यक्तियों का एक साथ अनुभव प्रदान कराता है। इस तरह अभ्यास स्वर के चार स्तरों से होकर गुजरता है। साधक को खुला एवं ग्रहणशील होना चाहिए तथा अपने को स्पन्द के कम्पनों के साथ एकाकार कर स्वर से परे के चरणों की ओर अग्रसर होना चाहिए।

विधि 1– स्वर साधना

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड को सीध में रखते हुए ध्यान के किसी सुविधापूर्ण आसन में बैठ जाइये। सिर को लम्बवत् रखिये तथा कन्धों को थोड़ा-सा पीछे झुका लीजिये, ज्ञान या चिन् मुद्रा में हाथों को घुटनों पर रखिये। आँखों को बन्द कीजिये तथा पूरे शरीर का ख्याल कीजिये। सुव्यवस्थित होकर आश्वस्त हो जाइये कि शरीर पूर्णरूपेण विश्रान्त एवं आराम में है। यदि किसी तरह की असुविधा हो या पीड़ा हो तो अपनी सजगता को शरीर के उस भाग में ले जाइये तथा सजगतापूर्वक उस अंग को विश्रान्त करने की चेष्टा कीजिए। अनुभव कीजिए कि आपका शरीर ध्यानावस्था में स्थिर हो रहा है। सम्पूर्ण शरीर में स्थिरता के प्रति सजग होइये। भौतिक शरीर की स्थिरता एवं निश्चलता का अनुभव कीजिए।

द्वितीय चरण– श्वास की सजगता

सहज श्वास पर सजगता को लाइये। श्वास को किसी तरह बदलिये नहीं, केवल श्वास की सहज लय-ताल के साक्षी बने रहिये। अन्दर आती तथा बाहर जाती प्रत्येक श्वास के प्रति सजग होइये। जब आप श्वासों को लगातार देखते जायेंगे तो वे धीमी तथा गहरी होती जायेंगी। अपनी सजगता को नीचे उदर में ले जाइये तथा उदर प्रदेश में श्वासों के प्रति सजग बनिये। प्रत्येक श्वास तथा नि:श्वास के साथ उदर प्रदेश को ऊपर उठते और नीचे आते अनुभव कीजिए। जब आप श्वास लेते हैं तब उदर के प्रसार का अनुभव कीजिए। जब आप नि:श्वास करते हैं तो उदर को संकुचित होता अनुभव कीजिए। हर एक श्वास के प्रति सजग होइये। जब श्वास धीमी तथा स्थिर होती है तो उसी अनुपात में मन भी शान्त तथा शीतल होता है। अनुभव कीजिए कि प्रत्येक श्वास के साथ निस्तब्धता गहरा रही है तथा सम्पूर्ण शरीर एवं मन में प्रसारित हो रही है।

तृतीय चरण– सुषुम्ना की सजगता

अब आप अपनी सजगता को मूलाधार में लाइये। अनुभव कीजिए कि जब आप श्वास लेते हैं तो सुषुम्ना मार्ग के सहारे श्वास मूलाधार से ऊपर सहस्रार में प्रवेश करती है। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो श्वास सिर के शीर्ष, सहस्रार चक्र से सुषुम्ना मार्ग होते हुए नीचे की ओर मूलाधार क्षेत्र में मूलाधार चक्र में आ जाती है। इस मानसिक पथ के प्रति सजगता को तीव्र

कीजिए। सुषुम्ना पथ से श्वासों के आरोहण एवं अवरोहण का अनुभव कीजिए। स्वर साधना में मूलाधार से सहस्रार तक ऊपर चढ़ते हुए सरगम को आरोहण तथा नीचे आते हुए सरगम को अवरोहण कहते हैं।

चतुर्थ चरण– चक्रों की सजगता सहित गायन

सुषुम्ना पथ के प्रति सजगता को बनाये रखते हुए सरगम के आरोहण एवं अवरोहण के अनुसार गाना प्रारंभ कीजिए। जब आप सरगम की प्रत्येक स्वर श्रेणी को गाते हैं तो उसके अनुरूप चक्रों पर अपनी सजगता को ले जाइये। चक्र में स्वर स्पन्द का अनुभव कीजिए। चक्र बिन्दु पर उस स्वर की अवधि तक सजगता को बनाये रखिये। प्रत्येक स्वर की लय नि:श्वास की अवधि के अनुसार होनी चाहिए। फिर दूसरे स्वर पर बढ़िये तथा अपनी सजगता को भी उस दूसरे चक्र बिन्दु पर ले जाइये। चक्रों के प्रति अपनी सजगता को प्रत्येक सरगम के साथ समकालिक कीजिए।

जब आप सरगम का आरोहण करते हैं तो निम्नलिखित क्रम में स्वरों एवं चक्रों के प्रति सजग होइये– सा (मूलाधार), रे (स्वाधिष्ठान), ग (मणिपुर), म (अनाहत), प (विशुद्धि), ध (आज्ञा), नि (बिन्दु), सा (सहस्रार)।

जैसे ही आप अवरोहण करते हैं तो निम्नांकित क्रम में सरगम एवं चक्रों के प्रति सजग होइये– सा (सहस्रार), नि (बिन्दु), ध (आज्ञा), प (विशुद्धि), म (अनाहत), ग (मणिपुर), रे (स्वाधिष्ठान), सा (मूलाधार)।

यह एक चक्र हुआ। अब तुरंत आप दूसरा चक्र आरोहण के साथ प्रारम्भ कीजिए।

इस तरह आप अपनी सजगता को ऊपर तथा नीचे प्रत्येक चक्र बिन्दु को छूते हुए सुषुम्ना में घुमाइये। प्रत्येक स्वर को चक्र को खोलते तथा निर्मल करते हुए अनुभव कीजिए। प्रत्येक चक्र बिन्दु में कम्पन की अपनी सजगता को तीव्र कीजिए।

पंचम् चरण– ॐ मंत्र के साथ गायन

जब आप सरगम के अभ्यास में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं तब ॐ मंत्र व्यक्तिगत स्वरों के बदले प्रतिस्थापित किया जा सकता है। ऐसा सरगम के स्थान पर ॐ मंत्र के गायन से किया जाता है। इस तरह, अपनी सजगता को आरोहण के द्वारा ऊपर तथा अवरोहण में नीचे घुमाया जा सकता है, साथ ही सावधानीपूर्वक चक्र बिन्दुओं की सजगता पहले की तरह बनाये रखनी चाहिए। प्रत्येक चक्र में ॐ के कम्पन के प्रति सजग होइये। प्रत्येक

चक्र बिन्दु पर सरगम एवं ॐ मंत्र के कम्पन के प्रति पूर्ण सजगता होनी चाहिए। पाँच-दस मिनटों तक इस अभ्यास को करते रहिये। गले को तनावग्रस्त नहीं कीजिए।

षष्ठ चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब आप अभ्यास की समाप्ति हेतु तैयार हो जाइये। सरगम को पूरा कीजिए जिसे आप गा रहे हैं। तब कुछ क्षणों के लिए आप शान्त बैठिये तथा पूरे शरीर में व्याप्त ॐ के कम्पन का अनुभव कीजिए। अपने भौतिक शरीर पर सजगता को वापस लाइये। शरीर एवं जमीन के संयोग का अनुभव कीजिए। जमीन के ऊपर अपने शरीर के भार का अनुभव कीजिए। बाहरी वातावरण की ध्वनियों को सुनिये। गहरी श्वास लीजिए तथा धीरे से आँखों को खोलिये।

अभ्यास 2– भ्रामरी प्राणायाम

प्रथम चरण– तैयारी

एक आरामदायक आसन में बैठिये। मेरुदण्ड सीधा रहे, सिर सीधा रहे और हाथ घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में। इस अभ्यास के लिए सर्वोत्तम आसन पद्मासन या सिद्धासन/सिद्ध योनि आसन है। मुँह को बन्द रखिये। ऊपरी तथा निचला होठ एक-दूसरे को छूता हुआ रहे, किन्तु दाँत थोड़े अलग रहें। केहुनियों को मोड़ते हुए भुजाओं को बगल में उठाइये तथा हाथों को कानों के पास लाइये। तर्जनी या मध्यमा से कानों को बन्द कीजिए। अँगुलियों को कानों के अंदर घुसाये बिना कर्ण पटल पर दबाव डाला जा सकता है।

द्वितीय चरण– स्वर तथा गुंजित ध्वनि की सजगता

मेरुदण्ड के मूल में अपनी सजगता को ले जाइये तथा मेरुदण्डीय मार्ग के अन्दर श्वास को मूलाधार से आज्ञा चक्र तक ऊपर चढ़ते अनुभव कीजिए। जब आप आज्ञा चक्र पर पहुँचते हैं तो अन्त:श्वसन समाप्त हो जाना चाहिए। पाँच सेकेण्ड तक श्वास को अन्दर रोकिये। धीमी एवं गहरी, एक भौंरे की तरह लगातार गुंजन की ध्वनि उत्पन्न करते हुए लम्बी श्वास छोड़िये। लम्बे म्-म्-म्-म् स्वर पर धारणा कीजिए तथा अनुभव कीजिए कि यह आज्ञा से मूलाधार चक्र तक मेरुदण्ड के सहारे नीचे जा रहा है। रेचक की पूरी लम्बाई तक लगातार गुंजन का स्वर होना



चाहिए। जब आप एक चक्र पूरा कर लेते हैं तो पुन: धीरे से अन्त:श्वास कीजिए। अनुभव कीजिए कि श्वास मेरुदण्ड के पथ से मूलाधार से आज्ञा चक्र तक ऊपर चढ़ती है। आज्ञा चक्र पर धारणा करते हुए कुछ क्षणों के लिए श्वास को रोकिये। फिर गुंजन की ध्वनि के साथ धीमी एवं गहरी नि:श्वास छोड़िये। आज्ञा से मूलाधार तक मेरुदण्ड पथ द्वारा नीचे जाते हुए स्वर के कम्पन स्पन्दन के प्रति सजग होइये। गुंजन की ध्वनि बहुत अधिक ऊँची नहीं होनी चाहिए। आपकी एकाग्रता बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक स्वर पर है।

तृतीय चरण– कम्पनों की सजगता

अब समस्त शरीर में गुंजन के स्वर के स्पन्द का अनुभव कीजिए। अन्त:श्वास करते हुए मेरुदण्डीय पथ में श्वास एवं सजगता को मूलाधार से आज्ञा तक ऊपर जाने दीजिए। फिर नि:श्वास करते हुए गुंजन-सी ध्वनि उत्पन्न कीजिए तथा पूरे शरीर में उसके कम्पनों का अनुभव कीजिए। सुषुम्ना पथ से अन्त:श्वास के प्रवाहित होने के प्रति सजग होइये तथा नि:श्वास करते हुए स्वर कम्पनों पर धारणा कीजिए। पाँच-दस मिनटों तक अभ्यास जारी रखिये।

चतुर्थ चरण– आन्तरिक स्वर

अब गुंजन बन्द कीजिए। आँखों को बन्द रखिये तथा आन्तरिक स्वर को सुनिये। जब आप एक स्वर के प्रति सजग हो जाते हैं तो उसी एक स्वर

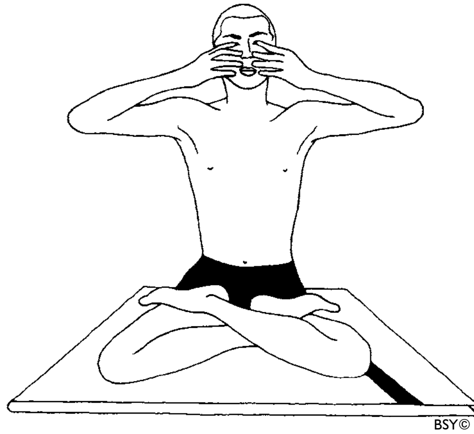
पर अपनी सजगता को केन्द्रित कीजिए। अन्य सभी स्वरों को अलग कर केवल एक ही पर तथा इसी स्वर पर अपना ध्यान बनाये रखिये। प्रारम्भ में सम्भव है कि वह स्वर स्पष्ट न हो, परन्तु जब आप लगातार उसे सुनेंगे तो वह और भी तेज और सुस्पष्ट प्रतीत होगा। पूर्णरूप से उस स्वर के प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को सभी स्वरों एवं विचारों को छोड़ते हुए इस स्वर की ओर प्रवाहित होने दीजिए।

जैसे-जैसे आन्तरिक स्वर के प्रति संवेदनशीलता बढ़ेगी, आपको नेपथ्य में एक दूसरे सूक्ष्म स्वर का बोध होना प्रारम्भ हो जायेगा। यह स्वर पहले स्वर की अपेक्षा क्षीणतर होगा। अब आप अपना ध्यान इस दूसरे स्वर पर स्थानान्तरित कीजिए। पहले स्वर की सजगता का त्याग कीजिए तथा दूसरे स्वर पर पूर्ण रूप से एकाग्र होइये। पुन: जैसे-जैसे आपकी संवेदना स्वर के प्रति बढ़ती है, स्वर ऊँचा तथा स्पष्टतर होता जाता है। अब आप पुन: एक दूसरे स्वर, सूक्ष्मतर स्वर के बोध की चेष्टा कीजिए तथा कुछ क्षणों के लिए अपनी सजगता को इस स्वर पर लाइये।

कुछ मिनटों तक इसी प्रकार अभ्यास करते रहिये। अपनी सजगता को गहन एवं गहनतर होने दीजिए तथा मुख्य स्वरों के पार्श्व में सूक्ष्मतम स्वरों का अनुभव कीजिए। आप जितना ही सूक्ष्मतम स्वर का बोध करेंगे, उतना ही अधिक मन की गहराइयों में जायेंगे। किसी एक स्वर से विक्षेपित नहीं हों। जैसे ही एक विशेष स्वर स्पष्ट तथा भिन्न होता है, आप अधिक गहराई में जाइये तथा दूसरे सूक्ष्मतर स्वर को सुनिये। अनुभव कीजिए कि आप स्वयं की गहराइयों में उतर रहे हैं और प्रत्येक नये शब्द के साथ और भी अधिक गहराइयों में जा रहे हैं। अपनी सजगता को स्थिर एवं अनवरत बनाये रखिये।

पंचम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब आन्तरिक स्वरों के प्रति सजगता का त्याग कीजिए। कानों को खोलिये। शान्तिपूर्वक कुछ क्षणों तक बैठिये तथा सभी स्तरों पर इस क्षण आप क्या अनुभव कर रहे हैं, केवल उसके प्रति सजग होइये। अपनी सजगता को श्वास पर वापस लाइये। सहज श्वसन क्रिया के प्रति सजग होइये। अपने ध्यान की अवस्था के प्रति सजग होइये। धीरे से मन को बहिर्मुखी बनाइये। कमरे की ध्वनियों एवं कमरे के बाहर की ध्वनियों को सुनिये। तब धीरे से अपने शरीर को हिलाइये तथा आँखों को खोलिये।



अभ्यास 3– षण्मुखी मुद्रा (सातों द्वारों को बन्द करना)

प्रथम चरण– तैयारी

मेरुदण्ड को सीधा एवं लम्बवत् रखते हुए किसी सुविधापूर्ण आसन में बैठ जाइये। हाथों को घुटनों पर या शरीर के सामने जहाँ सुविधा हो रखिये। आँखों को बन्द कीजिए। सम्पूर्ण शरीर को विश्रान्त कीजिए। कुछ मिनटों के लिए कायास्थैर्यम् का अभ्यास कीजिए। अनुभव कीजिए कि शरीर स्थिर एवं शान्त है तथा श्वास की गति धीमी तथा लयबद्ध हो रही है। सम्पूर्ण स्थिरता के प्रति सजग होइये।

द्वितीय चरण– मुद्रा का अभिनय

अब आप अपने चेहरे के सामने हाथों को उठाइये तथा केहुनियों को बगल में कीजिए। दोनों कानों को अँगूठों से, दोनों आँखों को तर्जनियों से, दोनों नासिका छिद्रों को मध्यमा से, मुँह को होठों के ऊपर तथा नीचे क्रमश: अनामिकाओं एवं कनिष्ठिकाओं को रखकर बन्द कीजिए। अँगुलियों से सहजता, परन्तु दृढ़तापूर्वक सातों द्वारों को बन्द कीजिए। अभ्यास के दौरान मध्यमा उँगलियाँ नासिका छिद्रों को खोलने तथा बन्द करने के लिए प्रयुक्त होंगी।

तृतीय चरण– आन्तरिक स्वरों की सजगता

गहराई से और धीरे-धीरे श्वास लीजिए। अन्त:श्वास के अन्त में मध्यमा से नासिका छिद्रों को बन्द कीजिए तथा कुछ क्षणों के लिए अन्तर्कुम्भक कीजिए। जब आप अन्तर्कुम्भक करते हैं तो भीतर की आवाजों को सुनिये

जो बिन्दु चक्र के क्षेत्र में, सिर के ऊपरी भाग में, सिर के मध्य में या दाहिने कान में उत्पन्न हो रही हैं। हो सकता है प्रारम्भ में आप बहुत सारी आवाजों को सुनेंगे या सम्भव है कोई भी आवाज नहीं सुनाई दे। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, जो कुछ भी प्रकट हो रहा है केवल आप सजगतापूर्वक उसके प्रति सजग रहिये।

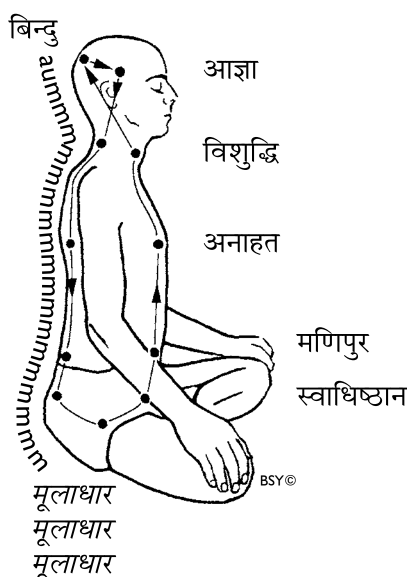
जितनी देर हो सके अन्तर्कुम्भक कीजिए। फिर मध्यमा ऊँगलियों के दबाव को हटाते हुए श्वास लीजिए। यह एक चक्र हुआ। तत्क्षण दूसरा चक्र धीमी तथा गहरी अन्त: श्वास से प्रारम्भ कीजिए। नासिका छिद्रों को बन्द करते हुए अन्तर्कुम्भक कीजिए, पुन: भीतरी आवाजों को सुनिये। कुछ समय के बाद नासिका छिद्रों को खोलिए तथा धीरे से नि:श्वास कीजिए।

चतुर्थ चरण– सूक्ष्म स्वरों का दर्शी बनना

पिछले अभ्यास की तरह आन्तरिक सूक्ष्मतर स्वरों पर धारणा कीजिए। यह विश्रान्त तरीके से किया जाना चाहिए, जो सजगता को अधिक गहराई में ले जाने में सहायक होगा। किसी स्वर की जाँच-परख नहीं कीजिये या किसी एक स्वर पर भटकिये नहीं। केवल साक्षी भाव से देखते जाइये कि आप लगातार चेतना के सूक्ष्मतर क्षेत्र में प्रवेश करते जा रहे हैं। पाँच-दस मिनटों तक इस अभ्यास को जारी रखिये।

अब आप अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। हाथों को घुटनों पर रखिये। कुछ और मिनटों तक आन्तरिक सजगता को बनाये रहिये। अब आप मन को बहिर्मुखी बनाइये। पूरे शरीर के प्रति तथा शरीर की संवेदनाओं के प्रति सजग बनिये। वातावरण की ध्वनियों के प्रति सजग बनिये। जब आप तैयार हो जायें तो शरीर को हिलाइये तथा आँखों को खोल लीजिये।

टिप्पणी– षण्मुखी मुद्रा का अर्थ सातों द्वारों की मनोवृत्ति। इसे इसलिए षण्मुखी कहा जाता है कि अभ्यास दो के समय आँखें, दोनों कान, दोनों नासिका छिद्र एवं एक मुँह बन्द होते हैं। ये सातों बाह्य प्रत्यक्ष दर्शन के द्वार हैं। यही वे द्वार हैं जिनके माध्यम से हम बाहरी दुनिया की सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। अपनी सजगता को अन्तर्मुखी बनाने हेतु, नाद के उद्‌गम की ओर उन्मुख करने हेतु इन द्वारों को बन्द कर दिया जाता है।



अभ्यास 4 – नाद संचालन

प्रथम चरण – तैयारी

पद्मासन, सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठ जाइये। ज्ञान या चिन् मुद्रा में हाथों को घुटनों पर रखिये। आँखों को बन्द कीजिए। सम्पूर्ण भौतिक शरीर के प्रति सजग होइये। सजगतापूर्वक शरीर के सभी अंगों को विश्रान्त कीजिए तथा अनुभव कीजिए की शरीर धीरे-धीरे शान्त तथा स्थिर हो रहा है। स्थिरता की इस सजगता को तीव्र कीजिए। सम्पूर्ण शरीर में गतिहीनता का अनुभव कीजिए। शरीर पूर्णत: स्थिर एवं निश्चल है।

द्वितीय चरण – श्वास की सजगता

अब सजगता को श्वासों पर लाइये। श्वास की धीमी, लयबद्धता के प्रति सजग होइये। उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ कीजिए तथा प्रत्येक अन्त:श्वास एवं नि:श्वास के मृदुल, सूक्ष्म स्वर के प्रति सजग होइये।

तृतीय चरण – अभ्यास को करना

अब आँखों को खोलिये। यद्यपि आँखें खुली हुई हैं, परन्तु आपका अवधान भीतर में होना चाहिए। गहनता से श्वास छोड़िये तथा अपने सिर को आगे की ओर झुकाइये। ठुड्ढी को सीने पर मत दबाइये या गरदन को

कड़ा नहीं कीजिए। सिर की अवस्था इस प्रकार से हो कि वह सामने की ओर झुका हुआ हो, जैसे कि आप बैठे-बैठे सो रहे हों।

अपनी सजगता को मूलाधार चक्र में केन्द्रित कीजिए तथा अन्तर्कुम्भक करते हुए और शरीर को पूर्णत: स्थिर रखते हुए एकाग्रतापूर्वक मानसिक रूप से मूलाधार, मूलाधार का उच्चारण करते जाइये। उज्जायी प्राणायाम के साथ सामने के आरोहण पथ से ऊपर की ओर अन्त:श्वसन कीजिए। जैसे ही आपकी चेतना क्षेत्रम् होते हुए ऊपर की ओर बढ़ती है, प्रत्येक चक्र के नाम का मानसिक उच्चारण करते जाइये– स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि। अनुभव करने की चेष्टा कीजिए कि प्राण के द्वारा प्रत्येक केन्द्र को बेधते हुए आपकी चेतना आगे बढ़ती जा रही है। जैसे ही आपकी चेतना विशुद्धि से बिन्दु की ओर बढ़ती है, आप धीरे से सिर को उठाइये। जब आपकी सजगता बिन्दु पर पहुँचती है तो आपका सिर सीध में तथा सामने होना चाहिए। कुछ क्षणों के लिए अन्तर्कुम्भक कीजिए। सजगता को बिन्दु पर केन्द्रित करते हुए मानसिक रूप से बिन्दु, बिन्दु, बिन्दु का उच्चारण कीजिए। याद रखिये कि जब बिन्दु का उच्चारण करें तो सिर निश्चल, शरीर स्थिर तथा धारणा सम्पूर्ण होनी चाहिए।

चतुर्थ चरण– ॐ स्वर का विस्फोट

बिन्दु पर दबाव के अत्यधिक जमाव का अनुभव कीजिए, तब ॐ के विस्फोटक स्वर के साथ नि:श्वास कीजिए। यह इस तरह हो जैसे कि बिन्दु के दबाव का ॐ के रूप में विस्फोट हुआ हो। अपनी सजगता एवं ॐ मंत्र को मेरुदण्ड में अवरोहण पथ से बिन्दु से मूलाधार तक नीचे जाने दीजिए, जैसे ही आपकी चेतना बिन्दु से आज्ञा तक जाती है, ॐ के 'ओ' स्वर का अचानक विस्फोट होता है। 'म्-म्-म्-म्' स्वर आज्ञा से मूलाधार तक धीरे-धीरे सूक्ष्मतर होते हुए बढ़ना चाहिए, जिससे कि जब आपकी चेतना मूलाधार में पहुँचे तो यह गुंजन के जैसा स्वर हो जाये। चक्रानुक्रम से सभी चक्रों का नाम दुहराते जाइये, जैसे-जैसे आपकी चेतना उनसे होकर गुजरती हैं– आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान। जब आपकी चेतना अवरोहण के क्रम में चक्रों के मध्य से गुजरती है तो धीरे से आँखों को बन्द कर लीजिए। जब आपकी चेतना मूलाधार में पहुँचती है तो सहजता से सिर को सामने झुका लीजिए। आँखों को हल्के से बन्द कर लेना चाहिए। यह एक चक्र की समाप्ति हुई।

तत्क्षण दूसरा चक्र प्रारम्भ कीजिए। आँखों को खोल लीजिए तथा सजगता को मूलाधार में स्थिर रखते हुए, मूलाधार, मूलाधार, मूलाधार दुहराइये। उज्जायी प्राणायाम के साथ अपनी सजगता को आरोहण पथ से, हर एक चक्र के नाम को दुहराते हुए बढ़ने दीजिए। विशुद्धि से बिन्दु पर अपनी सजगता के पहुँचने पर सिर को उठाइये। तीन बार, बिन्दु-बिन्दु-बिन्दु दुहराइये। अनुभव कीजिए कि इस बिन्दु पर दबाव बढ़ता जा रहा है तथा जैसे ही आप श्वास छोड़ते हैं, ॐ मंत्र के रूप में इसका विस्फोट होता है। ॐ स्वर छोटा तथा विस्फोटक है तथा बिन्दु से आज्ञा तक जाता है। म्-म्-म् स्वर आपकी सजगता के साथ अवरोहण पथ द्वारा आज्ञा से नीचे मूलाधार तक जाता है। जैसे-जैसे आपकी चेतना नीचे बढ़ती है, मानसिक रूप से प्रत्येक चक्र का नाम दुहराते जाइये। जब आपकी चेतना नीचे की ओर जाती है तो आँखें बन्द कर लीजिए। जब चेतना मूलाधार में हो तो धीरे से सिर को सामने झुकाइये। इस तरह अभ्यास करते जाइये।

ॐ स्वर शक्तिशाली एवं बेधक होना चाहिए। इस प्रकार इसमें चक्रों को संवेदनशील बनाने की सबसे अधिक शक्ति होती है। मंत्र के स्वर की अनुभूति कीजिए जो प्रत्येक चक्र को क्रमानुसार बेध रहा है और उनमें भण्डारित प्राण को जाग्रत एवं मुक्त करता जा रहा है।

ॐ मंत्र के कम्पन के प्रति सजगता को तीव्र कीजिए। अनुभव कीजिए कि यह अतीन्द्रिय पथों से निकल कर फैल रहा है तथा आपके सम्पूर्ण अस्तित्व की गहराई में जाकर स्पन्दित हो रहा है। अभ्यास की प्रत्येक आवृत्ति के साथ अनुभव कीजिए कि आप मन्त्रों के स्पन्दों में अन्तर्लीन होते जा रहे हैं। जब बिन्दु चक्र से ॐ मंत्र का विस्फोट होता है तो उसके साथ अपनी सजगता को बहने दीजिए। वहाँ निरंतर, अनवरत सजगता बनी रहनी चाहिए।

पंचम् चरण– अभ्यास की समाप्ति

अब आप अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। ॐ मंत्र के उच्चारण एवं उज्जायी प्राणायाम को रोक दीजिए। पूर्णतः स्थिर एवं शान्त चित्त होकर बैठ जाइये तथा केवल अनवरत चल रहे आन्तरिक कम्पनों की सजगता को बनाये रखिये। प्रकट हो रहे स्वरों, रंगों आदि का अनुभव कीजिए। उसी दत्तचित्तता का अनुभव कीजिए जैसा आप अभ्यास के दौरान कर रहे थे।

अब इस सजगता का त्याग कीजिए तथा अपनी सजगता को भौतिक शरीर पर लाइये। जिस ध्यानावस्था में आप बैठे हैं उसका ख्याल कीजिए। शरीर की संवेदनाओं के प्रति सजग होइये। जिस कमरे में आप बैठे हैं तथा जो ध्वनियाँ बाहरी वातावरण से आ रही हैं, उनके प्रति सजग होइये। अपने को पूर्णतः बहिर्मुखी बनाइये। गहरी लम्बी श्वास लीजिए एवं तीन बार ॐ मंत्र का उच्चारण कीजिए। तब धीरे से शरीर को हिलाइये तथा आँखों को खोल लीजिए।

अभ्यास 5– ॐ उच्चारण का प्रकारान्तर

रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए ध्यान के किसी आसन में बैठिये। हाथों को घुटनों पर रखिये तथा आँखों को बन्द कर लीजिये। भौतिक शरीर के प्रति सजग बनिये। सभी तरह के तनावों को शरीर से दूर कीजिए। अनुभव कीजिए कि शरीर स्थिर एवं शान्त है। आन्तरिक रूप से सम्पूर्ण शरीर का ख्याल कीजिए। आपकी सजगता का केन्द्र बिन्दु अन्तराकाश की अनुभूति होनी चाहिए। अन्तराकाश की विशालता का ख्याल कीजिए। इस स्थिर अन्तराकाश की विशालता में अतल नीरवता के प्रति सजग बनिये।

इस अनन्त आकाश में एक वायु के खम्भे का मानस दर्शन या कल्पना कीजिए। यह वायु का खम्भा, जितनी दूर तक आपका बोध जाता है उतने ही ऊपर तथा उतने ही नीचे तक है। चेष्टा कीजिए कि इस वायु के खम्भे में श्वसन चल रहा है। जब आप अन्तः श्वसन करते हैं तो श्वास वायु के खम्भे के शीर्ष तक चढ़ती है। जैसे ही आप निःश्वास करते हैं तो वायु के खम्भे के सहारे श्वास नीचे उतरती है। पूर्ण सजगता के साथ कुछ क्षणों तक इसका अवलोकन कीजिए। देखिये कि श्वसन क्रिया वायु के खम्भे के भीतर हो रही है।

प्रथम चरण– विस्फोटक मंत्रोच्चारण

अब श्वास की सजगता को छोड़िये तथा अनन्त नीरव आकाश में हृदय के क्षेत्र में प्रकाश बिन्दु के प्रति सजग होइये। इस प्रकाश के बिन्दु का हृदय के क्षेत्र में मानस दर्शन कीजिए। इसे एक रूपहली ज्योति के रूप में देखिये, जो देदीप्यमान होती और धीमी पड़ जाती है, पुनः देदीप्यमान होती है और फीकी पड़ जाती है। प्रकाश के स्पन्द के प्रति सजग होइये। प्रत्येक स्पन्द के साथ सम्पूर्ण आकाश एक क्षण के लिए प्रकाशमान, दीप्तिमान हो जाता है तथा पुनः दीप्ति घट जाती है। ज्योति बिन्दु के प्रति पूर्णतः सजग होइये

जो विस्फोटित एवं अन्त: विस्फोटित हो रही है तथा सम्पूर्ण अस्तित्व को ज्योति से आपूरित कर देती है।

अब सजगता के साथ ॐ मंत्र को जोड़िये। ॐ का उच्चारण प्रसारण एवं संकुचन, प्रकाश के प्रस्फुटन एवं अवमन्दन के साथ लयबद्ध होकर करना चाहिए। मंत्रोच्चारण लगातार तेजी से तीक्ष्ण एवं विस्फोटक विधि से किया जाता है, परन्तु इस तरह से नहीं जिससे कि गले में कष्ट हो। जब आप ॐ का उच्चारण करते हैं तो इसके तीव्र स्पन्दों के प्रति सजग होइये, जिन्हें यह शरीराकाश में ज्योति के प्रस्फुटन की लय पर उत्पन्न करता है। इस तरह पाँच मिनटों तक अभ्यास जारी रखिये।

द्वितीय चरण– त्वरित ॐ उच्चारण

ॐ के विस्फोटक उच्चारण को बन्द कीजिए, किन्तु आन्तरिक स्वर कम्पनों के प्रति सजगता को बनाये रखिये। आप पुन: नि:श्वास के साथ मंत्र का उच्चारण प्रारम्भ करेंगे। धीमी एवं गहरी श्वास लीजिए और जब आप नि:श्वास करते हैं तो मौखिक रूप से ॐ मंत्र का उच्चारण कीजिए तथा इसे लगातार करते जाइये जब तक आप सुविधापूर्वक कर सकते हैं। आपकी श्वास टूटनी नहीं चाहिए। मंत्रोच्चार का स्वर उच्च हो यह आवश्यक नहीं है, परन्तु प्रत्येक उच्चारण में समान बल होना चाहिए, ऐसा नहीं कि जब आप नि:श्वास समाप्त करें तो वह मन्द हो जाये। पाँच मिनट तक इस प्रकार उच्चारण करते रहिये।

मंत्र के कम्पन का अनुभव कीजिए। इस त्वरित उच्चारण के द्वारा उत्पन्न विभिन्न प्रभावों के प्रति सजग बनने की चेष्टा कीजिए। अनुभव कीजिए कि अन्दर में मंत्र स्पन्दित हो रहा है। त्वरित उच्चारण के साथ अनुभव कीजिए जैसे कि लहरें मंत्र के स्वर को बढ़ाती हुईं तथा स्पन्द को तीव्र करती हुईं बाहर की ओर सदा फैलते हुए वृत के रूप में उत्पन्न हो रही हैं। अब वहाँ और कुछ नहीं, केवल मंत्र है।

तृतीय चरण– मध्यम गति में ॐ का उच्चारण

अब ॐ का त्वरित उच्चारण बन्द कर दीजिए। अपनी सजगता को भीतर ले जाइये तथा अनुभव कीजिए कि आपके पूरे शरीर में स्वर स्पन्दित हो रहा है। ॐ का उच्चारण धीमी गति से करना चाहिए। मंत्र का उच्चारण नि:श्वसन के साथ होता है। अन्त:श्वसन एवं नि:श्वसन की लम्बाई लगभग समान होनी चाहिए, जिससे मंत्र के साथ लय का एक स्थिर प्रवाह

हो। जब आप श्वास छोड़ते हैं तो अनुभव कीजिए कि ॐ मंत्र सहज रूप से स्वत: आता है। अभ्यास में दम नहीं फूलना चाहिए।

पुन: सजगता को मंत्र के कम्पन में अन्तर्लीन हो जाने दीजिए। कोई दूसरा स्वर या रंग या छाया, जो उस समय उभरती है, उसे आने एवं जाने दीजिए तथा उससे विभ्रान्त नहीं होइये। आप अपनी सजगता को केवल स्वर ॐ द्वारा उत्पन्न स्पन्द पर बनाये रखने का प्रयास कीजिए। जैसे आप एक स्तर से दूसरे स्तर तक बढ़ते हैं, इन स्पन्दों की बढ़ती हुई तीव्रता का अनुभव कीजिए। पाँच मिनट तक इसे जारी रखिये।

चतुर्थ चरण– दीर्घ ॐ उच्चारण

क) अब आप ॐ उच्चारण बन्द कीजिए। पूर्णत: निश्चल एवं सजग बने रहिये। मंत्र का उच्चारण अब लम्बा तथा धीमा होगा। श्वास को गहरा एवं लम्बा होने दीजिए। धीमे एवं लयबद्ध श्वसन के प्रवाह के प्रति सजग होइये। अपने अगले नि:श्वास के साथ ॐ का उच्चारण प्रारम्भ कीजिए, जिसमें एक लम्बा 'ओ' स्वर हो जो नि:श्वास के अन्त में 'म' स्वर के साथ समाप्त हो। तब धीमा तथा गहरा अन्त: श्वसन कीजिए तथा पुन: मंत्र उच्चारण कीजिए, जो लम्बा 'ओ' स्वर उत्पन्न करे तथा सहजता से 'म' स्वर में मिल जाये। लम्बे 'ओ' स्वर के प्रभाव का अनुभव कीजिए। पूरे अभ्यास के दौरान अनवरत स्थिर सजगता बनी रहनी चाहिए। स्पन्द के प्रति अपनी सजगता को तीव्र कीजिए। इसे पाँच मिनट तक जारी रखिये।

ख) पुन: मंत्रोच्चारण बन्द कीजिए। यद्यपि आप उच्चारण की विभिन्न विधियों से होकर गुजर रहे हैं, फिर भी आपकी सजगता सतत् रूप से समान बनी रहती है। इस स्तर पर ॐ का 'ओ' स्वर छोटा तथा 'म' स्वर लम्बा तथा खिंचा हुआ होना चाहिए। गहरी एवं धीमी श्वास लीजिए। नि:श्वास के साथ ॐ का उच्चारण कीजिए, जिसमें 'ओ' स्वर कुछ क्षणों तक चलता रहे तथा उसके बाद लम्बा धीमा 'म' स्वर होना चाहिए। मंत्र के स्वर उच्च नहीं हों, अपितु मृदुल एवं आकर्षक होने चाहिए। भीतर में 'म' स्वर के प्रभाव का अनुभव कीजिए। अनुभव कीजिए कि आप चेतना के गहन से गहनतर तलों पर खिंचे चले जा रहे हैं। यहाँ सुस्पष्ट एवं बहुत सूक्ष्म स्पन्दों का अनुभव कीजिए। इसे पाँच मिनट तक जारी रखिये।

ग) अब मंत्रोच्चारण बन्द कीजिए। अनुभव कीजिए कि आपके सम्पूर्ण शरीर में एवं शरीर के चारों ओर भी लगातार कम्पन हो रहा है। अब ॐ के

अगले उच्चारण में 'ओ' तथा 'म' के स्वरों की लम्बाई तथा बल समान हैं। इसलिए अब अगले उच्चारण में आधी श्वास की लम्बाई तक 'ओ' तथा बची हुई आधी श्वास में 'म' स्वर को दुहराएँ। अधिक बाह्याकारक 'ओ' स्वर एवं आंतरिक 'म' स्वर के बीच इस संतुलन के प्रभाव के प्रति सजग होइये। ऐसा प्रतीत होता है जैसे बाहरी तथा भीतरी आयाम, दोनों एक-दूसरे की ओर खिंचे चले आ रहे हैं और एकाकार हो रहे हैं। पाँच मिनट तक पूर्ण सजगता के साथ इसे जारी रखिये।

पंचम् चरण– मानसिक ॐ उच्चारण

पुनः उच्चारण बन्द कीजिए। निश्चल एवं सजग बने रहिए। इस अन्तिम चरण में ॐ का उच्चारण मानसिक होगा। अपनी सजगता को श्वसन पर लाइये। केवल निःश्वास के साथ उज्जायी प्राणायाम करना प्रारम्भ कीजिए। उज्जायी श्वास के साथ सामान्य रूप से अन्तःश्वसन कीजिए तथा धीमी गति से, परन्तु गहरा निःश्वसन कीजिए। उज्जायी श्वसन की फुसफुसाती ध्वनि को सुनिये। उज्जायी श्वास नियंत्रित, मृदुल तथा सहज होनी चाहिए। प्रत्येक निःश्वास के साथ मानसिक रूप से ॐ का उच्चारण कीजिए। ॐ का मानसिक उच्चारण जारी रखिये। साथ ही साथ वायु के उस स्तम्भ का अवलोकन कीजिए जो आपके शरीराकाश में है।

अनुभव कीजिए कि वायु के स्तम्भ के अन्दर श्वसन क्रिया चल रही है। उज्जायी में श्वास स्तम्भ के शीर्ष से नीचे स्तम्भ के तल की ओर जा रही है। अन्तःश्वास के साथ सामान्य चेतना स्तम्भ के शीर्ष की ओर वापस आती है। पुनः उज्जायी निःश्वास के साथ मानसिक रूप से ॐ उच्चारण कीजिए, जो स्तम्भ के आधार की ओर नीचे जा रहा है। वायु के स्तम्भ एवं मंत्र की गति के प्रति अपनी चेतना को प्रखर कीजिए। अपने सम्पूर्ण शरीर के प्रत्येक अणु के भीतर ॐ मंत्र के स्पन्द का अनुभव कीजिए। जब मंत्र निःश्वास के साथ गतिमान होता है, तो उसके साथ एकाकार हो जाइये।

मंत्र तथा उज्जायी प्राणायाम की पुनरावृत्ति को समाप्त कीजिए। स्थिर एवं शान्त बने रहिये। अभी आप जो कुछ अनुभव कर रहे हैं, उन सभी वस्तुओं के प्रति सजग रहिये। स्वर, रंग, छाया, जो कुछ भी हो उसके प्रति सजग रहिये। सभी चीजों को आने दीजिए, केवल प्रत्येक का अवलोकन करते रहिए। किसी भी स्वर या रंग से प्रभावित मत होइये, अपितु सभी चीजों को साक्षी भाव से देखते जाइये। अपनी विभिन्न अवस्थाओं को देखने की

चेष्टा कीजिए। इस प्रकार कुछ मिनटों तक स्थिर एवं ग्रहणशील सजगता के साथ अभ्यास जारी रखिये।

अब आप अपनी सजगता को श्वास पर लाइये। श्वास की ध्वनि एवं गति का ख्याल कीजिए। भौतिक शरीर एवं ताप तथा शीतलता, सुविधा या असुविधा के अनुभव का ख्याल कीजिए। धीरे से मन को बहिर्मुखी बनाइये तथा अपने चारों तरफ की ध्वनियों को सुनिये। वातावरण के प्रति सजग होइये। गहरी श्वास लेकर तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिए। अब आप शरीर को हिलाइये तथा आँखों को खोलिये।

हरि ॐ तत्सत्

अभ्यास 6– नादानुसंधान

प्रथम चरण– तैयारी

अन्त:श्रवण की विधि को सहज बनाने के क्रम में हम नादानुसंधान आसन का इस अभ्यास में व्यवहार करते हैं। घुटनों को ऊपर उठाकर गोलाकार मुड़े कम्बल या गद्दे पर बैठ जाइये। गद्दे या गोल किये गये कम्बल के दोनों ओर अपने एक-एक पैर को रखें। पैर का तलुआ सीधे जमीन पर होना चाहिए। या गद्दे की ऊँचाई को इस तरह व्यवस्थित कीजिए कि आपकी बैठने की अवस्था सुविधाजनक हो एवं रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। कम्बल या गद्दा कड़ा एवं गोलाकार हो, जिससे कि वह मूलाधार क्षेत्र को दबाये रहे। केहुनियों को घुटनों पर रखिये तथा हाथों की हथेलियों को सिर के दोनों तरफ इस तरह रखिये कि अँगुलियाँ दोनों तरफ सिर के शीर्ष की ओर हों, अँगूठे सहजता, परन्तु दृढ़ता से कानों के बाहरी भाग को दबाये रहें। आसन बिल्कुल सुविधाजनक हो। कम्बल या गद्दे की ऊँचाई में आवश्यक हेर-फेर किया जा सकता है, जिससे आप पूरे अभ्यास के दौरान स्थिर एवं निश्चल रह सकें।

सम्पूर्ण भौतिक शरीर के प्रति सजग होइये। शरीर के सभी तनावों एवं कड़ेपन को दूर कीजिए। अपनी चेतना को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाइये तथा सजगतापूर्वक प्रत्येक अंग को शिथिल बनाइये। अनुभव कीजिए कि आपका शरीर ध्यानावस्था में सूखपूर्वक विश्रान्त होता जा रहा है। सम्पूर्ण शरीर में निश्चलता का अनुभव कीजिए। शरीर को पूर्णत: गतिहीन होने दीजिए।



श्वास का ख्याल कीजिए। श्वसन क्रिया को मत बदलिये, अपितु श्वसन में स्वाभाविक, सहज लय को देखना प्रारम्भ कीजिए। अनुभव कीजिए कि श्वास की गति धीमी एवं गहरी होती जा रही है। प्रत्येक अभिश्वसन एवं अपश्वसन के साथ श्वास को शरीर के भीतर जाते एवं बाहर आते देखिये। शरीर की स्थिरता एवं धीमी, निरंतर लयबद्ध श्वास के साथ मन भी शान्त एवं शीतल होता जा रहा है। मानसिक क्रियाएँ समाप्त होती हैं।

द्वितीय चरण– भौतिक स्वर

अब किसी आन्तरिक स्वर के प्रति सजग होइये। भौतिक स्वरों में भेद करने की चेष्टा कीजिए। शरीर के हर एक अंग की अपनी एक लय तथा स्वर होता है। यद्यपि लयें भिन्न होती हैं, तथापि वे एक-दूसरे के साथ समस्वरित होकर काम करती हैं, जिससे कि सम्पूर्ण शरीर सही ढंग से कार्य करता रहे। अपनी सजगता को शरीर के विभिन्न अंगों में घुमाइये तथा उस अंग या भाग के स्वर एवं लय का बोध करने की चेष्टा कीजिए। अपनी सजगता को और भी निकट लाइये जिससे कि आप स्पष्ट रूप से उस को सुन सकें। जब आपको स्वर का प्रत्यक्ष बोध हो तब कुछ क्षणों तक उसके प्रति सजग होइये। फिर अगले स्वर पर बढ़िये।

दिल की धड़कन के प्रति सजग बनिये। दिल की धीमी एवं स्थिर धड़कन को सुनिये। यह धड़कन जो ध्वनि उत्पन्न कर रही है उसका बोध करने का प्रयास कीजिए। कल्पना कीजिए कि आप दिल के भीतर में हैं तथा इस

स्वर को सुन रहे हैं एवं लय का अनुभव कर रहे हैं। अन्य सभी स्वरों को हटा कर केवल दिल की धड़कन के प्रति सजग बनिये। अपनी सजगता को इस स्वर के निकटतर ले जाइये। तब स्वर को विलीन होने दीजिए।

वायु नली तथा फेफड़ों के अन्दर अपनी चेतना को ले आइये। वहाँ श्वसन के स्वर को सुनिये। प्रत्येक अन्त:श्वसन एवं नि:श्वसन को सुनने की चेष्टा कीजिए। जिस प्रकार आप कानों से सुनते हैं उस प्रकार नहीं, अपितु अन्दर से। कुछ क्षणों तक इसके प्रति सजग बने रहिये। तब पुन: स्वर-सजगता का त्याग कीजिए।

इस प्रकार अपनी सजगता को विभिन्न भौतिक स्वरों में घुमाइये। स्थूल भौतिक ध्वनियों, जैसे, वायु, तेज हवा, गुड़गुड़ाना, डकारना, हिचकी उठना, श्वास लेना आदि के प्रति सजग होइये। हर एक को कुछ क्षणों तक अनुभव कीजिए, फिर अधिक सूक्ष्म शारीरिक स्वरों पर जाइये। इस तरह अभ्यास करते जाइये जब तक कि स्थूल शरीर में स्वर के प्रति आपकी चेतना अन्दर प्रवेश करने लायक एवं गहरी न हो जाये। मांसपेशियों, अंगों, रक्त एवं हड्डियों की संरचना में भी आपको घुसना चाहिए। विभिन्न शारीरिक स्वरों के पार्श्व में उत्पन्न हो रहे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर स्पन्दों के प्रति सजग बनिये। तब एक-एक करके उन पर ध्यान संकेन्द्रित कीजिए। इस चरण को सिद्ध करने के बाद मानसिक स्तर पर जाइये।

तृतीय चरण– मानसिक स्वर

अब सभी भौतिक स्वरों को लुप्त होने दीजिए। अपनी सजगता को मानसिक स्तर पर लाइये। लगातार अपने मन में चल रहे स्वरों को पहचानने की चेष्टा कीजिए। अधिकतर समय ये स्वर आपकी अनभिज्ञ सजगता में चलते रहते हैं। अब आप निश्चित रूप से मानसिक स्वरों पर ख्याल करने की चेष्टा कीजिए तथा उसे स्पष्टता से सुनिये, न कि अस्त-व्यस्त गुंजन की तरह।

मानसिक वार्तालाप के प्रति सजग बनिये, जो इस क्षण आपके सिर के भीतर चल रहा है। आपका एक पक्ष दूसरे पक्ष के साथ वार्तालाप कर रहा है। आप अपनी सजगता को मानसिक वार्ता के स्वरों पर टिकाइये, जो मन के भीतर चल रही है। भीतर में अभिव्यक्त हो रहे सूक्ष्म विचार स्वरूपों को सुनिये। विचार कम्पन उत्पन्न करते हैं और ये कम्पन सूक्ष्म स्वर हैं। प्रत्येक विचार एक प्रकार का स्वर है। प्रत्येक विचार को स्वर के रूप में सुनिये।

कभी-कभी आप मन के भीतर संगीत का स्वर भी सुन सकते हैं। कोई एक विशेष संगीत या सुरीली ध्वनि हो या सम्भवत: एक समय में अनेक संगीत चल रहे हों। आप संगीत को उत्पन्न कर सकते हैं या मात्र उसके प्रति सजग रह सकते हैं जो पहले से चल रहा हो। संगीत के स्वर को स्पष्टता एवं बारीकी से कुछ क्षणों तक सुनिये। फिर उसे छोड़ दीजिए।

मानसिक स्तर पर स्वर रंगों के रूप में भी उत्पन्न हो सकता है। इसलिए, अब किसी रंग के प्रति सजग होइये जिसे आप मन के भीतर में देख सकते हैं। पहले सबसे गहरे रंग का चयन कीजिए और उसके प्रति सजग होइये। उसे स्पष्टता से देखिये। उस पर धारणा कीजिए जब तक कि उसके पार्श्व में दूसरा रंग न दिखाई देने लगे। इस तरह, मानसिक स्तर पर विभिन्न स्वर स्पन्दों को पहचानने की चेष्टा कीजिए। विभिन्न मानसिक स्वरों के पीछे उत्पन्न हो रहे सूक्ष्मतर स्वर कम्पनों के प्रति सजग होइये। तब उन पर एक-एक करके एकाग्र होइये। इस चरण के अभ्यास को जारी रखिये जब तक कि आप इसको सिद्ध नहीं कर लेते हैं। इसके बाद प्राणिक स्तर पर जाइये।

चतुर्थ चरण– प्राणिक स्वर

मानसिक स्पन्दन को लुप्त होने दीजिए। कुछ क्षणों तक पूर्ण स्थिरता का अनुभव कीजिए। इस चरण के अभ्यास में सूक्ष्म तथा अधिक एकचित्त सजगता की आवश्यकता है, जिसमें आप प्राणिक स्तर के स्वर को पहचानना प्रारम्भ करते हैं। पहले के चरणों की अपेक्षा इस स्तर पर अधिक सूक्ष्म स्वरों को सुनते हैं। यह नाड़ियों तथा चक्रों के विशुद्धिकरण, खुलने एवं जागरण से सम्बन्धित है।

आप झिंगुर की आवाज या फिर वृक्ष की शाखाओं एवं पत्तों से होकर चल रही हवाओं की आवाज सुन सकते हैं। आप सागर के गर्जन की आवाज, धीमी वर्षा या अधिक वर्षा की आवाज सुन सकते हैं। वहाँ मेंढक की टर्र-टर्र या दूसरे पशु की आवाज सुन सकते हैं।

प्राणिक स्तर के नीरव आकाश के भीतर जाइये तथा वहाँ सूक्ष्म स्वरों को पहचानने की चेष्टा कीजिए। तीव्र प्रयास मत कीजिए। अन्दर से आ रहे किसी भी स्वर को केवल सुनिये। स्वर वहाँ पर पहले से हैं, आप केवल उसके प्रति सजग बनिये। आप अपनी सजगता को प्राणिक आयामों में गहराई से प्रेषित कीजिए।

इस आकाश के भीतर स्वरों का अनुभव करने की चेष्टा कीजिए। प्रत्येक स्वर को आने दीजिए तथा उसके प्रति कुछ क्षणों तक सजग रहिये। जब दूसरा सूक्ष्मतर स्वर आता है तो अपनी सजगता को उस स्वर पर ले जाइये। इस स्तर पर अभ्यास को जारी रखिये जब तक कि आप इसमें सिद्ध न हो जाएँ। फिर आप दूसरे चरण में आगे बढ़िये।

पंचम् चरण– उच्चतर मानसिक स्वर

अब आप प्राणिक स्वरों को विलीन हो जाने दीजिए। सजगता को उससे भी अधिक गहरे मानसिक स्तर पर ले जाइये। उस स्तर पर स्वर अधिक सूक्ष्म होते हैं तथा उन्हें पहचानने में कठिनाई होती है। यही वह स्थिति है जहाँ सन्तों, सिद्धों, आध्यात्मवादियों तथा पैगम्बरों को दर्शन या दैवी प्रेरणा के रूप में अन्तर्बोध होता और रहस्योद्घाटन का स्वर सुनाई देता है। यहाँ सजगता पूर्णत: एकचित्त तथा निरंतर होनी चाहिए।

जैसे ही आपकी सजगता गहनतर तथा तीक्ष्ण होगी, इस आयाम के सूक्ष्म स्वरों का प्रकट होना प्रारम्भ हो जायेगा। जब आप इस स्तर पर अभ्यस्त हो जाते हैं तब आप तारों वाले वाद्य यंत्रों, बाँसुरी का संगीत, घण्टियों या मंजीरे की ध्वनि को सुन सकते हैं। ये स्वर इतने मीठे तथा सुरीले होते हैं कि आपको बाहरी ज्ञानेन्द्रियों से विलग कर आत्मा की अधिक गहराई के निकट ले जाते हैं।

सर्वोच्च आयाम में सूक्ष्मतम स्तर, जहाँ अभी भी मानसिक बोध है, वहाँ प्रकट होते किसी स्वर के प्रति सजग बनिये। इस स्वर के साथ पूर्णत: एकाकार हो जाइये। स्वर के स्पन्द का पूर्ण रूप से अनुभव कीजिए। जितने समय तक संभव हो सके अपनी चेतना को इन स्वरों पर बनाए रखिये। जब पहले स्वर के पार्श्व में कोई दूसरा स्वर आता है तो उस नये स्वर के प्रति सजग बनिये तथा अपनी सजगता को उसमें मिल जाने दीजिए। इस अभ्यास को तब तक जारी रखिये जब तक आप इसे सिद्ध नहीं कर लेते। फिर आप अंतिम अवस्था में आगे बढ़िये।

षष्ठ चरण– अनुभवातीत स्वर

अपनी सजगता को और भी अधिक गहराइयों में जाने दीजिए। पूर्ण स्थिरता के प्रति सजग बनिये। अन्दर में सम्पूर्ण सृष्टि का अनुभव कीजिए जो बौद्धिक बोध के परे है। अनुभव कीजिए कि आपका सम्पूर्ण अस्तित्व दिव्य कम्पनों से, ब्रह्माण्डीय स्वरों से परिपूर्ण है। अनुभवातीत क्षेत्र के

संगीत को सुनिये। यह संगीत बिना आदि के तथा बिना अन्त के है। इसका कोई कारण नहीं है। यह अनहद है, जिसे नाद कहते हैं।

चेतना के ब्रह्माण्डीय स्तर पर स्वर या नाद के प्रति सजग होइये। इस स्तर पर स्वरों को पहचानने की चेष्टा कीजिए। आप मृदंग, तबला, ढोल या मेघ गर्जन की आवाज को सुन सकते हैं। इन स्वरों की उत्पत्ति तब होगी जब आपकी सजगता व्यक्तिगत अहंकार की चहारदिवारी को पार करेगी तथा ब्रह्माण्डीय स्पन्दों को पहचानने योग्य होगी।

आपकी सजगता पूर्णत: निश्चल तथा सतत् होनी चाहिए। अपने अन्दर में स्थित शान्त एवं विशाल आकाश के प्रति सजग होइये। इस विशाल आकाश में जो भी स्वर उत्पन्न हो रहा है उसको सुनिये। जब आप मृदंग या मेघ गर्जन की ध्वनि को सुन सकेंगे तो आप उस स्वर के परे जाने में सक्षम होंगे तथा परम नाद को सुनेंगे जिसे अनहद नाद कहते हैं।

सप्तम् चरण – अभ्यास की समाप्ति

अब आप अभ्यास समाप्त करने के लिए तैयार हो जाइये। अपनी सजगता को वापस शारीरिक आयाम में ले आइये। धीमी, निरंतर चलती हुई श्वास के प्रति सजग हो जाइये। भौतिक शरीर में हो रही हलचलों के प्रति सजग होइये। ताप या शीतलता, सुविधा या असुविधा तथा शरीर में हो रहे दूसरे सभी अनुभवों के प्रति सजग होइये। धीरे-धीरे अपने मन को बहिर्मुखी बनाइये। बाह्य वातावरण के स्वरों को सुनिये। अपने आस-पास के वातावरण के प्रति सजग होइये। अब गहरी श्वास लीजिए तथा तीन बार ॐ का उच्चारण कीजिए। धीरे-से शरीर को हिलाइये तथा आँखों को खोलिये।

हरि ॐ तत्सत्

नोट

नोट

नोट



स्वामी निरंजनानन्द का जन्म छत्तीसगढ़ के राजनाँदगाँव में सन् 1960 में हुआ। जन्म से ही उनकी जीवन-दिशा उनके गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा निर्देशित रही। चार वर्ष की अवस्था में वे गुरु-सान्निध्य में रहने बिहार योग विद्यालय आये, जहाँ उनके गुरु ने योग निद्रा के माध्यम से उन्हें योग एवं अध्यात्म का गहन प्रशिक्षण प्रदान किया। सन् 1971 में वे दशनामी संन्यास परम्परा में दीक्षित हुए, तत्पश्चात् 12 वर्षों तक विभिन्न देशों की यात्राएँ कर विभिन्न संस्कृतियों की गहरी समझ प्राप्त की और सब जगह अपने गुरु के योग-प्रचार कार्य को आगे बढ़ाया।

सन् 1983 में गुरु-आज्ञानुसार भारत लौटकर वे बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द मठ तथा योग शोध संस्थान की गतिविधियों के संचालन में संलग्न हो गए। सन् 1990 में वे परमहंस-परम्परा में दीक्षित हुए और 1993 में स्वामी सत्यानन्द के उत्तराधिकारी के रूप में उनका अभिषेक किया गया। सन् 1994 में उन्होंने विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय, बिहार योग भारती; सन् 2000 में योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा सन् 1995 में बच्चों के एक बृहत् योग आन्दोलन, बाल योग मित्र मण्डल का शुभारम्भ किया। मुंगेर में विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने के साथ उन्होंने दुनियाभर के साधकों का मार्गदर्शन करने हेतु व्यापक रूप से यात्राएँ कीं। सन् 2009 में उन्हें अपने गुरु से संन्यास जीवन का एक नया अध्याय शुरू करने का आदेश प्राप्त हुआ।

सन् 2010 में उन्होंने साधकों को भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के मौलिक स्वरूप का अनुभव कराने के प्रयोजन से संन्यास पीठ की स्थापना की। इसी वर्ष से उनके जीवन में उच्च साधनाओं एवं तीर्थयात्राओं का दौर शुरू हुआ।

सन् 2013 में उन्होंने मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में विश्व योग सम्मेलन आयोजित किया और यौगिक पुनर्जागरण का शंखनाद किया। इसी वर्ष से उन्होंने दु:साध्य पंचाग्नि तपस्या प्रारम्भ की। सन् 2014 में उन्होंने देशभर में योग का प्रसाद वितरित करने हेतु योग-यात्राओं का क्रम प्रारम्भ किया। तब से वे यौगिक शिक्षण के उस नए अध्याय को विकसित करने में संलग्न हैं, जिसके माध्यम से लोग अपने यौगिक अनुभव को गहन कर सकेंगे। साथ ही वे भारत की अनेक प्राचीन विद्याओं एवं परम्पराओं की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु प्रयासरत हैं। सन् 2017 में योग के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाओं के लिए भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया।

स्वामी निरंजनानन्द योग दर्शन, अभ्यास एवं जीवनशैली की गहन जानकारी और समझ रखते हैं तथा योग, तंत्र एवं उपनिषदों पर अनेक प्रमाणिक पुस्तकों के प्रणेता भी हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन परम्पराओं का सुन्दर सम्मिश्रण करते हुए वे इस समय मुंगेर में अपने गुरु के मिशन को आगे बढ़ाने के कार्य में संलग्न हैं।



प्रस्तुत पुस्तक में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा सिखायी गयी यौगिक, तान्त्रिक और औपनिषदिक धारणा की अनेक संतुलित साधनायें दी जा रही हैं। इन उन्नत विधियों का गुरु-शिष्य परंपरा में सीधे सम्प्रेषण के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शिक्षण नहीं होता था। ये साधनायें प्रशिक्षण के उच्चतर स्तर की हैं, जिन्हें आज तक सामान्य लोगों के समक्ष प्रकट नहीं किया गया है। अभी इन्हें यहाँ देने का एक कारण है कि अनेक उच्च एवं गम्भीर साधकों ने ध्यान के गहन आयामों में मार्ग-दर्शन की आवश्यकता प्रकट की है।

इस संस्करण में प्रमुख विषय हैं– धारणा का महत्त्व, अभ्यास की विधियों का विस्तृत कक्षा-शिक्षण-अनुदेश तथा लय धारणा की विधियाँ।



ISBN bar code:
978-81-86336-21-2